

गर्ग संहिता

Garg Samhita (Sanskrit & Hindi)
Part 4 of 5

७ विश्वजित खण्ड ८ बलभद्र खण्ड



Hindi Translation: Pandey Ram Tej Shastri

संशोधन और परिवर्धन: डा० सुरेन्द्र वर्मा

॥ श्रीः ॥

ब्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला

यदुकुलगुरु श्रीगर्गमहामुनिविरचिता

श्रीगर्गसंहिता

(श्रीगर्गमहामुनेका ओखोंदेखा सम्पूर्ण श्रीकृष्णचरित्र)

पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतया 'प्रियंवदा'ऽभिधया
भाषाटीकयाऽऽटीकिता

Part 4 of 5

७ विश्वजित खण्ड ८ बलभद्र खण्ड

(दशखण्डात्मिका)

Improved upload by removal of dark shadows, page alignment etc.

(Dr. S. K. Verma)



चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
दिल्ली

अध्याय	विषय	पृष्ठ	अध्याय	विषय	पृष्ठ
	विश्वजित्खण्ड ७				
१—महतोपाख्यान	४१७		२०—प्रद्युम्न और कौरवोंमें युद्ध	४७२	
२—प्रद्युम्नका विजयाभिषेक	४२०		२१—श्रीकृष्ण-बलरामका कौरवों और यादवों- में मेल कराना	४७५	
३—यादवी सेनाकी विजयायात्रा	४२२		२२—प्रद्युम्नकी इन्द्रप्रस्थ-त्रिगत आदि देशोंपर विजय	४७९	
४—प्रद्युम्नका दिग्विजयार्थ गमन	४२४		२३—प्रद्युम्नका यक्षदेशको प्रस्थान	४८३	
५—प्रद्युम्नकी कच्छ-कर्लिंग-विजय	४२७		२४—यादव-यक्षयुद्धवर्णन	४८६	
६—प्रद्युम्नकी मरुधन्व-मालव-माहिष्मती- विजय	४२९		२५—प्रद्युम्नकी यक्षदेश तथा कुबेरपर विजय	४९०	
७—प्रद्युम्नकी गुर्जर तथा चेदिदेशयात्रा	४३१		२६—किपुरुष खंडपर प्रद्युम्नकी विजय	४९४	
८—दुर्मान् तथा शकका वध	४३४		२७—हरिवर्षखंड तथा दशार्ण देशपर प्रद्युम्नकी विजय	४९९	
९—प्रद्युम्न द्वारा चेदिदेश-विजय	४३७		२८—उत्तरकुखंडपर विजय	५०१	
१०—प्रद्युम्नकी कोंकण, कुटक, त्रिगत, केरल, तैलंग, महाराष्ट्र तथा कर्णाटक देशपर विजय और कारुषदेश गमन	४३९		२९—हिरण्यमयखंडपर विजय	५०५	
११—दन्तवक्रकी पराजय और कुरुषदेशपर प्रद्युम्नकी विजय	४४३		३०—प्रद्युम्नकी मानवदेशपर विजय	५०७	
१२—प्रद्युम्न और अगस्त्यकी ज्ञानचर्चा	४४५		३१—मन्मथ देशपर प्रद्युम्नकी विजय	५११	
१३—प्रद्युम्नकी शात्व, मत्सार तथा लंकापर विजय	४४९		३२—दृष्ट दैत्यके वधकी कथा	५१५	
१४—प्रद्युम्नकी द्रविड़ देशपर विजय	४५३		३३—भूतसन्तापन दैत्यका वध	५१८	
१५—प्रद्युम्नकी अंग, उड्डोश, डामर, वंग तथा केकय देशपर विजय	४५६		३४—वृक दैत्यके वधकी कथा	५२३	
१६—जनकोपाख्यान	४५८		३५—कालनाभ दैत्यका वध	५२६	
१७—प्रद्युम्नकी मगध देशपर विजय	४६२		३६—महानाभ दैत्यका वध	५२७	
१८—भाथुर तथा झूसेन देशपर विजय	४६६		३७—श्रीकृष्णपुत्र भानु द्वारा हरिश्मन् दैत्य- का वध	५२९	
१९—कौरवों द्वारा युद्धका उपक्रम	४६९		३८—महादैत्य शकुनिका युद्ध	५३१	
२०—प्रद्युम्न और कौरवोंमें युद्ध	४७२		३९—रणभूमिमें श्रीकृष्णका आगमन	५३५	
२१—श्रीकृष्ण-बलरामका कौरवों और यादवों- में मेल कराना	४७५		४०—रणांगणमें गरुड़का आगमन	५३९	
२२—प्रद्युम्नकी इन्द्रप्रस्थ-त्रिगत आदि देशोंपर विजय	४७९		४१—श्रीकृष्णद्वारा युक्तिपूर्वक शकुनिका वध	५४३	
२३—प्रद्युम्नका यक्षदेशको प्रस्थान	४८३		४२—शकुनि आदि दैत्योंके पूर्वजन्मका परिचय	५४६	
२४—यादव-यक्षयुद्धवर्णन	४८६		४३—इलावृत देशपर विजय प्राप्त करके प्रद्युम्नका वेदनगर गमन	५४९	
२५—प्रद्युम्नकी यक्षदेश तथा कुबेरपर विजय	४९०		४४—रागिनियों तथा रागपुत्रोंके नाम और वेदादिकोंके द्वारा भगवत्स्तुति	५५२	
२६—किपुरुष खंडपर प्रद्युम्नकी विजय	४९४		४५—रागिनियों और रागपुत्रों द्वारा भगवत्स्तुति	५५६	
२७—हरिवर्षखंड तथा दशार्ण देशपर प्रद्युम्नकी विजय	४९९		४६—यादव-गन्धर्वयुद्ध और बलराम द्वारा गन्धर्वसेनाका संहार	५५९	
२८—उत्तरकुखंडपर विजय	५०१		४७—यादवसेनाके साथ शक्रसखका युद्ध और उसकी पराजय	५६२	
२९—हिरण्यमयखंडपर विजय	५०५		४८—लीलावतीपुरीके स्वयंवरमें सुन्दरीको प्राप्त करके प्रद्युम्नका द्वारका आगमन	५६६	
			४९—उग्रसेनके राजसूय यज्ञमें ऋषियों और ब्राह्मणों आदिका आगमन	५७०	
			५०—राजसूयका मंगलमय उत्सव और देवताओं-ब्राह्मणों आदिका सत्कार	५७३	

अध्याय	विषय	पृष्ठ
--------	------	-------

बलभद्रखंड ८

१—बलभद्रके अवतारका कारण	५७५
२—बलभद्रके अवतारका उपक्रम	५७७
३—ज्योतिष्मतीका उपाख्यान	५७९
४—रवतीका उपाख्यान	५८१
५—श्रीकृष्ण और बलरामका जन्म	५८६
६—प्राद्विपाक मुनि द्वारा राम-कृष्णकी ब्रजलीलाका वर्णन	५८८
७—राम-कृष्णकी मधुरालीला	५९०
८—राम-कृष्णकी द्वारकालीला	५९३
९—श्रीबलरामकी रासलीला	५९७
१०—बलभद्रजीकी पूजापद्धति और पटल	५९९
११—बलभद्रस्तवराज	६०२
१२—श्रीबलभद्रस्तोत्र-कवच	६०३
१३—बलभद्रसहस्रनाम	६०५

* श्रीकृष्णः शरणं मम *

आचार्य-श्रीगर्गमहामुनिविरचिता—

श्रीगर्गसंहिता

‘प्रियंवदा’ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकिता

(विश्वजित्स्वराडः ७)

अथ प्रथमोऽध्यायः

(मरुतोपाख्यानम्)

श्रीभगवानुवाच

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय साक्षिणे । प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च ॥ १ ॥

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २ ॥

श्रीगर्ग उवाच

इत्थं श्रीकृष्णचरितं मया ते कथितं मुने । चतुष्पदार्थदं नृणां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ३ ॥

शौनक उवाच

बहुलाश्वो मैथिलेन्द्रः श्रीकृष्णेष्टो हरिप्रियः । किं पप्रच्छाथ देवर्षिं तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥ ४ ॥

श्रीगर्ग उवाच

उग्रसेनं यादवेन्द्रं श्रीकृष्णेन कृतं मुने । श्रुत्वाऽतिविस्मितो राजा नारदं ग्राह्यमैथिलः ॥ ५ ॥

बहुलाश्व उवाच

को वाऽयं मरुतो राजा केन पुण्येन भूतले । यादवेन्द्रो महाबुद्धिरुग्रसेनो बभूव ह ॥ ६ ॥

यस्य श्रीकृष्णचन्द्रोऽपि सहायोऽभूद्धरिः स्वयम् । तस्याहो महिमानं मे ब्रूहि देवर्षिसत्तम ॥ ७ ॥

श्रीनारद उवाच

क्षर्यवंशोद्भवो राजा चक्रवर्ती कृते युगे । यज्ञं चकार विधिवन्मरुतो यो जगज्जितः ॥ ८ ॥

महासम्भृतसम्भारैर्हिमाद्रेः पार्श्व उत्तरे । संवर्तं मुनिशार्दूलं गुरुं कृत्वा हि दीक्षितः ॥ ९ ॥

हे भगवान् ! हे वासुदेव ! हे सर्व साक्षिन् ! आपको नमस्कार है । आप ही प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षण हैं ॥ १ ॥ जिसने अपनी ज्ञानास्त्ररूपिणी शलाका (सलाई) द्वारा मुझ अज्ञानान्धकी आँख खोल दी, उन गुरुदेवको हमारा नमस्कार है ॥ २ ॥ श्रीगर्गजी बोले—हे शौनकादि मुनियो ! इस प्रकार मनुष्योंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षदायक श्रीकृष्णचरित्र मैंने तुम्हें सुनाया । अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ३ ॥ शौनक मुनिने कहा—हे तपोधन ! श्रीकृष्णके अनन्य भक्त और भगवत्प्रिय राजा बहुलाश्वने श्रीनारदजीसे क्या पूछा ? सो बताइए ॥ ४ ॥ श्रीगर्गजी बोले—हे मुने ! जब श्रीकृष्णने उग्रसेनको यादवोंका राजा बना दिया । सो सुनकर बहुत विस्मित राजा बहुलाश्वने श्रीनारदजीसे पूछा ॥ ५ ॥ राजा बहुलाश्व बोले—यह राजा मरुत कौन था और किस पुण्यसे वह यादवोंका राजा उग्रसेन हुआ ? ॥ ६ ॥ जिसके सहायक स्वयं श्रीकृष्ण बने ? हे देवर्षि ! आप मुझे उसकी महिमा बताइए ॥ ७ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! सत्ययुगमें एक सूर्यवंशी चक्र-

पञ्चयोजनविस्तीर्णः कुण्डोऽभूद्यस्य चाध्वरे । योजनं ब्रह्मकुण्डस्तु गव्यूतिः पञ्च कुण्डकाः ॥१०॥
 मेखलागर्तविस्तारवेदीभिर्निर्मिता दश । सहस्रहस्तमुच्चाङ्गो यज्ञस्तंभो बभौ महान् ॥११॥
 विंशद्योजनविस्तीर्णः सौवर्णो यज्ञमण्डपः । वितानतोरणै रेजे कदलीषंडमण्डितः ॥१२॥
 ब्रह्मरुद्रादयो देवाः सगणास्तत्र चागताः । ऋषयो मुनयः सर्वे तस्य यज्ञं समाययुः ॥१३॥
 होतारो दश लक्षाणि दश लक्षाणि दीक्षिताः । अध्वर्यवः पञ्चलक्षमुद्रातारस्तथा परे ॥१४॥
 आहूतास्तत्र विद्वांसश्चतुर्वेदविदो द्विजाः । सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञाः कोटिशोऽन्ये प्रपूजिताः ॥१५॥
 हस्तिशुण्डासमां धारां भुक्त्वाऽऽज्यस्य हुताशनः । अजीर्णं प्राप तद्यज्ञे न चित्रं विद्धि मैथिल ॥१६॥
 येभ्यो भागं वदन्तीह विश्वेदेवाः सभासदः । तेभ्यस्तेभ्यो ददुर्वा ताः परिवेष्टार एव ते ॥१७॥
 केऽपि जीवास्त्रिलोक्यां तु न बभूवुर्बुभुक्षिताः । सर्वे देवास्तु सोमेन ह्यजीर्णत्वमुपागताः ॥१८॥
 संवर्ताय ददौ राज्यं जंबूद्वीपस्य चाध्वरे । गजानां हेमभाराणां नियुतानि चतुर्दश ॥१९॥
 शतार्बुदं हयानां तु यज्ञांते दक्षिणां नृप । कोटिशो नवरत्नानां महार्हाणां महात्मने ॥२०॥
 हयानां पञ्चसाहस्रं गजानां शतमेव च । शतभारं सुवर्णानां ब्राह्मणे ब्राह्मणे ददौ ॥२१॥
 जलभोजनपात्राणि हैमानि प्रस्फुरन्ति च । भुक्त्वा तानि विसृज्याशु गतास्तुष्टा द्विजातयः ॥
 विप्रत्यक्तैः स्वर्णपात्रैरुच्छिष्टैर्नृप वर्जितैः । हिमाद्रिपार्श्वे शैलोऽभूदद्यापि शतयोजनम् ॥२३॥
 मरुतस्य यथा यज्ञो न तथाऽन्यस्य कर्हिचित् । त्रिलोक्यां शृणु राजेंद्र न भूतो न भविष्यति ॥२४॥
 यज्ञकुण्डाद्विनिर्गत्य परिपूर्णतमः स्वयम् । आत्मानं दर्शयामास मरुताय महात्मने ॥२५॥
 तमालोक्य हरिं नत्वा कृताञ्जलिपुटो नृपः । गदितुं न समर्थोऽभूद्रोमांची प्रेमविह्वलः ॥२६॥

वर्ती राजा हुआ । उसका नाम मरुत था । उसने विधिवत् विन्ध्यजित् यज्ञ किया था ॥ ८ ॥ हिमालयके उत्तरी भागमें राजा मरुतने यज्ञके लिए प्रचुर सामग्री एकत्र की और मुनियोंमें शार्दूल संवर्त मुनिको आचार्य बनाकर यज्ञकी दीक्षा ली ॥ ९ ॥ उसके यज्ञका कुण्ड पाँच योजन (बीस कोस) विस्तृत बनाया गया था । चार कोसका ब्रह्मकुण्ड था और दो-दो कोसकी पाँच कुंडिकायें बनी थीं ॥ १० ॥ उसके मेखलागर्तका विस्तार वेदियोंसे दसगुना बड़ा था । एक हजार हाथ उँचा उसका यज्ञस्तम्भ था ॥ ११ ॥ उसका सुनहला यज्ञमंडप अस्सी कोस लम्बा-चौड़ा था । वह मंडप चंदोवा, वन्दनवार तथा केलेके खंभोंसे अलंकृत था ॥ १२ ॥ अपने गणोंके साथ ब्रह्मा-शिव आदि देवता और सभी ऋषि-मुनि उस यज्ञमें आये ॥ १३ ॥ उसमें दस लाख होता, पाँच लाख अध्वर्यु और उद्गाता थे ॥ १४ ॥ उस यज्ञमें सब वेदोंके ज्ञाता तथा सब शास्त्रोंके मर्मज्ञ करोड़ों विद्वान् तथा लोकपूजित ब्राह्मण बुलाये गये थे ॥ १५ ॥ हाथीकी सूँड़ सरीखी मोटी घृतधारा पीकर अग्निदेवको अजीर्ण हो गया । हे राजन् ! यह एक आश्चर्यजनक घटना थी ॥ १६ ॥ सभासद विश्वेदेवने जिस-जिसको यज्ञभाग पानेका अधिकारी बताया था, उन्हींको यज्ञभाग मिला और वे ही परिवेष्टा बने ॥ १७ ॥ उस यज्ञके अवसरपर त्रिलोकी भरमें कोई जीव भूखा नहीं रहा । सब देवताओंको सोमरस पीते-पीते अजीर्ण हो गया ॥ १८ ॥ इस यज्ञके आचार्य संवर्त मुनिको पूरे जम्बूद्वीपका राज्य दे दिया गया । साथ ही चौदह लाख हाथी और चौदह लाख भार सोनेकी दक्षिणा दी । सौ अरब घोड़े और करोड़ों रत्न गुरुदेवको और दिये ॥ १९ ॥ २० ॥ राजा मरुतने पाँच हजार घोड़े, सौ हाथी और सौ-सौ भार सुवर्ण प्रत्येक ब्राह्मणको दिया ॥ २१ ॥ जल तथा भोजनके जग-मगाते स्वर्णपात्रोंमें उन्हींने भोजन किया और जल पिया । बादमें संतुष्ट ब्राह्मण उन पात्रोंको वहीं छोड़कर अपने-अपने घर चले गये ॥ २२ ॥ ब्राह्मणों द्वारा त्यागे हुए स्वर्णपात्रों और वहाँ आये अतिथि राजाओंके जूठनका हिमालय पर्वतकी तलहटीमें सौ योजन ऊँचा पहाड़ खड़ा हो गया ॥ २३ ॥ हे राजन् ! राजा मरुतके ममान किसी अन्य राजाका यज्ञ कभी पृथ्वीतलमें न हुआ है और न होगा ॥ २४ ॥ यज्ञान्तमें याज्ञिक हवनकुण्डसे प्रकट होकर परिपूर्णतम परमेश्वरने महात्मा राजा मरुतको प्रत्यक्ष दर्शन दिया ॥ २५ ॥ उन्हें निहारकर राजाने नमस्कार किया और हाथ जोड़कर स्तुति करनेके लिए खड़े हुए तो प्रेमसे विह्वल तथा रोमांचित

तं प्रेमपूरितं दृष्ट्वा पतितं पादयोर्नतम् । उवाच भगवान्साक्षान्मेघगंभीरया गिरा ॥२७॥

श्रीभगवानुवाच

राजंस्त्वयाऽहं विनयेन तोषितो निष्कारणैर्यज्ञपरैः समर्चितः ।
वरं परं ब्रूहि महामते त्वरं दास्यामि देवैरपि दुर्लभं दिवि ॥२८॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा तु राजा मरुतः कृताञ्जलिः प्रदक्षिणीकृत्य हरिं परेश्वरम् ।
संपूज्य भक्त्या विशदोपचारकैर्नत्वा भृशं गद्गदया गिराऽब्रवीत् ॥२९॥

मरुत उवाच

न वेद्म्यहं त्वचरणारविंदतो वरं परं श्रीपुरुषोत्तमोत्तम ।
समेत्य गङ्गां तृषितातिदुर्धियः खनन्ति कूपं हि यथा नरेतराः ॥३०॥
तथापि याचे तव वाक्यगौरवात्पादारविंदं हृदयारविंदात् ।
कदापि मे मा ब्रजतु ब्रजेश्वर मूलं चतुर्णां विदुरर्थसंपदाम् ॥३१॥

श्रीभगवानुवाच

धन्यऽस्ति राजंस्तव निर्मला मतिः प्रलोभितस्यापि वरैर्न कामभृत् ।
तथापि मत्तो वरयेप्सितं वरं विना फलं भक्तसुखान्न मे सुखम् ॥३२॥

मरुत उवाच

देयं यदा मे वरमीप्सितं प्रभो वैकुण्ठलोकं कुरुताद्वरातले ।
रक्ष स्थितं मां निजभक्तवत्सल तस्मिन्पुरे भक्तजनैः परैः सह ॥३३॥

श्रीभगवानुवाच

अस्मिन्मनौ देवमनोरथाब्धि गतेषु विशेषु युगेषु चाष्टौ ।
गत्वाऽथ नाकं धरणीं समेत्य मया हि गोवत्सपदं करिष्यसि ॥३४॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा भगवान्साक्षात्तत्रैवांतरधीयत । सोऽयं तु मरुतो राजा ह्युग्रसेनो बभूव ह ॥३५॥

हो जानेके कारण वे कुछ नहीं बोल सके ॥२६॥ राजाको इस प्रकार प्रेमपूरित हो अपने पैरोंपर पड़ा देखकर स्वयं भगवान् मेघ जैसी गम्भीर वाणीमें बोले ॥ २७ ॥ भगवान्ने कहा—हे राजन् ! तुमने अपनी विनम्रतासे मुझको अपने वशमें कर लिया है । तुमने निष्काम यज्ञ किया है और विधिवत् मेरी पूजा की है । हे महामते ! तुम अपना परम प्रिय वर मांगो । देवताओंके लिए भी दुर्लभ वरदान मैं तुम्हें दूंगा ॥२८॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! श्रीहरिकी वाणी सुनकर राजाने हाथ जोड़ बड़ी भक्तिके साथ विशद उपचारोंसे पूजन एवं साष्टांग प्रणाम करके प्रदक्षिणा की और गद्गद वचनोंमें परमेश्वर श्रीहरिसे बोले ॥२९॥ राजा मरुतने कहा—हे पुरुषोत्तम ! आपके चरणकमलोंके सिवाय मैं और कोई वर मांगना नहीं जानता । जैसे गंगाजीके समीप पहुँचकर कोई प्यासा और निर्बुद्धि मनुष्य कुआँ खोदता हो, वैसे ही उसका वर मांगना है ॥३०॥ तथापि आपके वाक्यगौरव-का आदर करके मैं आपसे वर माँगता हूँ । हे ब्रजेश्वर ! मेरे हृदयकमलसे आपके चरण-कमल कभी भी दूर न हों । कैसे हूँ आपके चरणकमल ? वे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और सम्पदाओंके मूल हैं ॥ ३१ ॥ यह सुनकर भगवान् बोले—हे राजन् ! तुम धन्य हो और तुम्हारी बुद्धि शुद्ध है । तभी वरोंके प्रलोभनसे लुभाने पर भी वह विचलित नहीं हुई । फिर भी मेरे आग्रहसे कोई अन्य उत्तम वर मांगो । क्योंकि भक्तको कुछ वर दिये बिना मुझे चैन नहीं पड़ती ॥ ३२ ॥ राजा मरुत बोले—हे प्रभो ! यदि आप मुझे वर देना ही चाहते हों तो यह वरदान दीजिए कि वैकुण्ठलोक घरती पर आ जाय । हे भक्तवत्सल ! वहाँ ही मैं आपके भक्तोंके साथ निवास करूँ और आप उसकी रक्षा करें ॥ ३३ ॥ भगवान् बोले—हे राजन् ! जब इस मन्वन्तरके अष्टाईस

तं यज्ञं कारयामास राजसूयं हरिः स्वयम् । किं दुर्लभं त्रिलोक्यां तु भक्तानां मैथिलेश्वर ३६॥
मरुतस्यापि चरितं यः शृणोति नृपोत्तम । तस्य ज्ञानं सर्वैराग्यं भक्तियुक्तं प्रजायते ॥३७॥
इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीविश्वजित्खण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे श्रीमरुतोपाख्यानं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

(प्रद्युम्नका विजयाभिषेक)

बहुलाश्व उवाच

कथं चकार विधिवद्राजसूयाध्वरं नृप । श्रीकृष्णेन सहायेन वदैतन्नितरां मुने ॥ १ ॥

श्रीनारद उवाच

उग्रसेनः सुधर्मायां कृष्णं संपूज्य चैकदा । नत्वा ग्राहप्रसन्नात्मा कृताञ्जलिपुटः शनैः ॥ २ ॥

उग्रसेन उवाच

भगवन्नारदमुखाच्छ्रुतं यस्य महत्फलम् । तं यज्ञं राजसूयाख्यं करिष्यामि तवाज्ञया ॥ ३ ॥
त्वत्पादसेवया पूर्वं मनोरथमहार्णवे । तेरुर्जगत्तृणीकृत्य निर्भयाः पुरुषोत्तम ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच

सम्यग्व्यवसितं राजन्भवता यादवेश्वर । यज्ञेन ते जगत्कीर्तिस्त्रिलोक्यां संभविष्यति ॥ ५ ॥
आहूय यादवान्साक्षात्सभां कृत्वाऽथ सर्वतः । तांबूलवीटिकां धृत्वा प्रतिज्ञां कारय प्रभो ॥ ६ ॥
ममांशा यादवाः सर्वे लोकद्वयजिगीषवः । जित्वारीनागमिष्यन्ति हरिष्यन्ति बलिं दिशाम् ॥ ७ ॥

श्रीनारद उवाच

अथांधकादीनाहूय शक्रसिंहासने स्थितः । सुधर्मायां ग्राह नृपो धृत्वा तांबूलवीटिकाम् ॥ ८ ॥

युग बीत जायेंगे, तब तुम स्वर्गके सुख भोगकर पुनः पृथ्वीतलपर आओगे । उस समय मेरा संग पाकर तुम इस मनोरथरूपी महान् समुद्रको गौके खुरके समान उथला करके सहजमें ही तर जाओगे ॥ ३४ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे मिथिलेश ! ऐसा कहकर भगवान् वहाँ अन्तर्धान हो गये और कालान्तरमें वही राजा मरुत उग्रसेन हुए ॥ ३५ ॥ भगवान् ने उग्रसेनसे राजसूय यज्ञ कराया । हे राजन् ! भगवान् के भक्तोंको सारी त्रिलोकीमें कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता ॥ ३६ ॥ हे नृपोत्तम ! जो मनुष्य राजा मरुतका चरित्र सुनता है, उसको वैराग्य तथा भक्तियुक्त ज्ञान अनायास प्राप्त हो जाता है ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषा-टीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

राजा बहुलाश्व बोले—हे नारदजी ! राजा उग्रसेनने विधिवत् राजसूय यज्ञ कैसे किया और भगवान् ने उनकी क्या सहायता की ? इन बातोंको आप भलीभाँति बताइये ॥ १ ॥ श्रीनारदजी बोले—एक दिन उग्रसेनने सुधर्मा सभामें श्रीकृष्णकी सम्यक् पूजा करके प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बड़ी प्रसन्न-मुद्रामें कहा— ॥ २ ॥ हे भगवन् ! नारदजीके मुखसे मैंने जिसका बहुत बड़ा माहात्म्य सुना है, सो आप यदि आज्ञा दें तो मैं राजसूय यज्ञ करूँ ॥ ३ ॥ हे पुरुषोत्तम ! पूर्वकालमें बहुतेरे भक्त आपके श्रीचरणोंकी सेवा करके निर्भय भावसे जगत्को वृणवत् समझते हुए कामनाओंके महासमुद्रको पार कर गये हैं ॥ ४ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे यादवेश्वर ! आपने बहुत अच्छी बात सोची है । उस यज्ञसे आपकी कीर्ति समस्त त्रिलोकीमें फैल जायगी ॥ ५ ॥ अब आप सभी यादवोंको बुलाकर उनकी एक सभा करिए और उसमें पानका बीड़ा रखकर उनसे प्रतिज्ञा करा लीजिये ॥ ६ ॥ क्योंकि सभी यादव मेरे अंश हैं । वे दोनों लोक जीतना चाहते हैं । वे शत्रुओंको जीतकर सभी दिशाओंसे उत्तम उपहार लायेंगे ॥ ७ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! भगवान् के परामर्शानुसार इन्द्र जैसे सिंहासनपर बैठकर राजा उग्रसेनने अन्धक आदि सभी यादवोंको आमंत्रित

उग्रसेन उवाच

यो जयेत्समरे सर्वाञ्जंबूद्वीपस्थितानृपान् । मनस्वी शक्रकोदण्डी सोऽस्ति तांबूलवीटिकाम् ॥ ९ ॥

श्रीनारद उवाच

नृपेषु तूष्णीं प्रगतेषु सत्सु श्रीरुक्मिणीनंदन एव चागात् ।

जग्राह तांबूलचयं महात्मा नत्वा नृपं मैथिल शंवरारिः ॥ १० ॥

प्रद्युम्न उवाच

विजित्य समरे सर्वाञ्जंबूद्वीपस्थितानृपान् । गृहीत्वा च बलिं तेभ्य आगमिष्याम्यहं बलात् ॥ ११ ॥

अगम्यागमनं बभ्रोर्ब्राह्मणस्य गुरोस्तथा । हत्या भ्रूणस्य मे भूयान्न कुर्यां कर्म चेदिदम् ॥ १२ ॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा वचः शंवरारेः साधु साध्विति यूथपाः । ऊचुस्तेषां पश्यतां च तं जग्राह यदूत्तमः ॥ १३ ॥

गर्गाद्यदुकुलाचार्यान्मुहूर्तं बोध्य यत्नतः । तत्स्नानं कारयामास मुनिभिर्वेदसूक्तिभिः ॥ १४ ॥

उग्रसेनोऽथ तिलकं प्रद्युम्नस्य चकार ह । बलिं दत्त्वा नमश्चक्रुः सर्वे यादवयूथपाः ॥ १५ ॥

उग्रसेनो ददौ खड्गं प्रद्युम्नाय महात्मने । कवचं प्रददौ साक्षाद्वलदेवो महाबलः ॥ १६ ॥

स्वतूणाभ्यां विनिष्कृष्य तूणावक्षयसायकौ । धनुश्च शार्ङ्गधनुषः समुत्पाद्य ददौ हरिः ॥ १७ ॥

किरीटकुण्डले दिव्ये पीतं वासो मनोहरम् । छत्रं च चामरे साक्षाच्छूरो वृद्धो ददौ पुनः ॥ १८ ॥

शतचन्द्रं ददौ तस्मै वसुदेवो महामनाः । उद्धवः प्रददौ साक्षान्मालां किञ्जल्किनीं शुभाम् ॥ १९ ॥

अक्रूरो दक्षिणावर्तं शंखं विजयदं ददौ । श्रीकृष्णकवचं यंत्रं गर्गाचार्यो ददौ मुनिः ॥ २० ॥

तदैव ह्यागतः शक्रो लोकपालैः सकौतुकः । आजगमतुर्ब्रह्मशिवौ देवर्षिगणसंवृतौ ॥ २१ ॥

प्रद्युम्नाय ददौ शूली त्रिशूलं ज्वलनप्रभम् । ब्रह्मा ददौ महाराज पद्मरागं शिरोमणिम् ॥ २२ ॥

किया । तदनन्तर सुधर्मा सभाके बीच पानका बीड़ा रखकर कहा ॥ ८ ॥ राजा उग्रसेन बोले—हे बीरो ! आप लोगोंमेंसे जो वीर रणभूमिमें जम्बूद्वीपके सब राजाओंको जीत सके, जो मनस्वी हो और इन्द्रके समान धनुष धारण करे, वह यह ताम्बूलका बीड़ा उठा ले ॥ ९ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! राजा उग्रसेनकी वाणी सुनकर सब यादव चुप रह गये । तब शम्बरामुरका वध करनेवाले और रुक्मिणीके पुत्र वीर प्रद्युम्न उठे । उन्होंने राजा उग्रसेनको प्रणाम किया और सब यादवोंके समक्ष पानका बीड़ा उठा लिया ॥ १० ॥ उन्होंने कहा—मैं समरमें जम्बूद्वीपके सब राजाओंको जीत तथा उनसे बलात् बलि (भेंट) लेकर लौटूँगा ॥ ११ ॥ यदि मैं दिग्विजय करके न लौटूँ तो मुझे अगम्या स्त्रीके साथ सहवास, गो-ब्राह्मण-गुरुकी हत्या तथा गर्भपातका पाप लगे ॥ १२ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! शम्बरशत्रु प्रद्युम्नका वचन सुनकर सभी यादव वीरोंने साधु-साधु कहकर उनकी सराहना की । जब सबके समक्ष प्रद्युम्नने पानका बीड़ा उठा लिया ॥ १३ ॥ तब अपने कुलगुरु गर्गमुनिको बुलाकर राजा उग्रसेनने उनसे यत्नपूर्वक मुहूर्त पूछा और वैदिक मंत्रोंसे प्रद्युम्नको स्नान कराया ॥ १४ ॥ इसके बाद राजा उग्रसेनने प्रद्युम्नको तिलक लगाया । यह देखकर सभी यादव-वीरोंने प्रद्युम्नको विविध उपहार अर्पण करके प्रणाम किया ॥ १५ ॥ राजा उग्रसेनने महात्मा प्रद्युम्नको तलवार दी और महाबली बलदेवने कवच प्रदान किया ॥ १६ ॥ अपने निजी तरकसोंमेंसे दो अक्षय तरकस तथा शार्ङ्गधनुषमेंसे एक धनुष निकालकर भगवान् कृष्णने दिया ॥ १७ ॥ दिव्य किरीट, कुण्डल, मनोहर पीतवसन, छत्र और चमर वृद्ध शूरसेनने दिया ॥ १८ ॥ महामना वसुदेवने उन्हें शतचन्द्र ढाल दी । उद्धवने किञ्जल्कपरिपूरित माला दी ॥ १९ ॥ अक्रूरने विजयदायक दक्षिणावर्त शंख दिया । गर्गाचार्यने उन्हें श्रीकृष्णकवच तथा यंत्र प्रदान किया ॥ २० ॥ उसी समय सभी लोकपालोंके साथ इन्द्र वहाँ आ पहुँचे । बहुतेरे मुनिजनोंके साथ ब्रह्मा तथा शिवजी भी आ गये ॥ २१ ॥ शंकरजीने प्रद्युम्नको अग्निके समान जलजलाता त्रिशूल दिया और ब्रह्माजीने उन्हें पद्मराग मणिका सिरपेंच दिया

पाशी पाशं शक्तिधरः शक्तिं शत्रुविमर्दिनीम् । वायुश्च व्यजने दिव्ये यमो दंडं ददौ पुनः ॥२३॥
 रविर्गदां महागुर्वी कुबेरो रत्नमालिकाम् । चंद्रकांतमणिं चंद्रः परिधं च तनूनपात् ॥२४॥
 क्षितिश्च पादुके प्रादादिव्ये योगमये परे । प्रद्युम्नाय ददौ कुंतं भद्रकाली तरस्विनी ॥२५॥
 हेमाढ्यमुच्चशिखरं सहस्रहयसंयुतम् । विश्वकर्मकृतं साक्षाद्ब्रह्मांडांतर्वाहिर्गतम् ॥२६॥
 सहस्रचक्रसंयुक्तं मनोवेगं घनस्वनम् । मंजीरकिंकिणीजालं घंटाटंकारभूषणम् ॥२७॥
 रथं ददौ महादिव्यं सहस्रध्वजशोभितम् । जैत्रं रत्नमयं शक्रः प्रद्युम्नाय महात्मने ॥२८॥
 शंखदुंदुभयो नेदुस्तालवीणादयस्तदा । मृदंगवेणुसन्नादैर्जयध्वनिसमाकुलैः ॥२९॥
 वेदघोषैर्लाजपुष्पैर्मुक्तावर्षसमन्वितैः । प्रद्युम्नस्योपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ॥३०॥
 इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्स्वण्डे श्रीनारदबहुलाश्रमवादे प्रद्युम्नविजयाभिषेको नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

(यादवी सेनाकी विजययात्रा)

श्रीनारद उवाच

अथ नत्वा हरिं कार्ष्णिगुरुसेनं बलं गुरुम् । नीत्वाज्ञां रथमारुह्य कुशस्थन्या विनिर्ययौ ॥ १ ॥
 तथा तमनुगाः सर्वे यादवा उद्धवादयः । भोजवृष्ण्यंधकमधुशूरसेनदशार्हकाः ॥ २ ॥
 तथा स्वभ्रातरः सर्वे गदाद्याः कृष्णनोदिताः । सपुत्राः सबलाः सर्वे सांबाद्याश्च महारथाः ॥ ३ ॥
 किरीटिनः कुंडलिनो लोहकंचुकमंडिताः । चतुरंगबलोपेताः कोटिशस्ते विनिर्ययुः ॥ ४ ॥
 कलापिहंसगरुडमीनतालध्वजै रथैः । सूर्यमंडलसंकाशैश्चंचलाश्चनियोजितैः ॥ ५ ॥
 हेमकुम्भैः शशिखरैर्मुक्तातोरणराजितैः । विडंबयद्भिर्नितरां वायुवेगमतः परम् ॥ ६ ॥

॥ २२ ॥ वरुणे उन्हें पाश दिया और कार्तिकेयने शत्रुओंका मर्दन करनेवाली शक्ति दी, वायुने दो दिव्य पंखे और यमराजने कालदंड प्रदान किया ॥ २३ ॥ सूर्यने बड़ी भारी गदा दी । कुबेरने रत्नोंकी माला दी, चन्द्रमाने चन्द्रकान्तमणि और अग्निने परिध दिया ॥ २४ ॥ पृथिवीने योगमयी पादुकायें दीं और तरस्विनी भद्रकालीने माला दिया ॥ २५ ॥ इन्द्रने स्वर्णजटित, उच्च शिखरयुक्त, हजार घोड़े जुते, विश्वकर्मा द्वारा निर्मित और जिसकी गति ब्रह्मांडके बाहर-भीतर सर्वत्र थी, ऐसा रथ दिया ॥ २६ ॥ उस रथमें हजार पहिये थे । मनके समान उसका वेग था । मेघ जैसी उसकी ध्वनि थी । मंजीरा, घुँघरू और घंटेका निनाद उसमेंसे निकल रहा था । उसपर हजार ध्वजार्यें फहरा रही थीं । वह बड़ा दिव्य और विजयदाता रथ था ॥२७॥२८॥ उस समय शख, नगाड़े, मृदंग, मजीरा, मुरचंग, वीणा, वेत तथा बाँसुरी बजने लगी और जयजयकारका तुमुल निनाद होने लगा ॥२९॥ वेदघोष, घानके लावे, मोतियों तथा पुष्पकी वर्षा होने लगी और देवता फूल बरसाने लगे ॥ ३० ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्स्वण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे मिथिलेश ! श्रीकृष्ण, बलदेव, उग्रसेन तथा गुरु गर्गको प्रणाम करके और उनसे आज्ञा लेकर प्रद्युम्न अपने रथमें बैठकर द्वारकासे बाहर निकले ॥ १ ॥ उनके पीछे उद्धव आदि यादव, भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन तथा दशार्हवंशी वीर चले ॥ २ ॥ उसी प्रकार गद आदि सभी भ्राता, तथा श्रीकृष्णके भेजे हुए साम्बादि पुत्र अपनी-अपनी सेना और वाहनके साथ चले ॥ ३ ॥ वे सब किरीट-कुण्डल-धारी तथा लौहकंचुकसे मंडित थे । अपनी-अपनी चतुरंगिणी सेना ले-लेकर करोड़ों यादववीर निकल पड़े ॥ ४ ॥ जिनमें मोर, हंस, गरुड तथा तालकी ध्वजा फहरा रही थी और सूर्यमंडलसदृश चंचल घोड़े जुते थे, उन रथोंमें बैठ-बैठकर वे चले ॥५॥ उन रथोंपर स्वर्णकलश, सुन्दर शिखर और मोतियोंकी झालर झूल रही

चामरादोलितैर्दिव्यैर्वीरमंडलमंडितैः । सौवर्णैर्दधिष्ण्याभै रेजुर्वीरा मनोहराः ॥ ७ ॥
 मदच्युताश्चित्रमुखा हेमजालसमन्विताः । महोद्भटा गजा उच्चरणद्वण्टाऽरुणांवराः ॥ ८ ॥
 गिरीन्द्रशिखरा भद्रा द्विपेंद्रान् दिग्विभावितान् । विडम्बयंतो दृश्यन्ते राजसैन्ये द्विपा नृप ॥ ९ ॥
 केचिद्भद्रास्तु कथिताः केचिद्भद्रमृगाः परे । विंध्याचलभवाः केचित्केचित्काश्मीरसंभवाः ॥ १० ॥
 मलयप्रभवाः केचिद्विमाद्रिप्रभवाः परे । मौरंगप्रभवाः केचित्कैलासवनसंभवाः ॥ ११ ॥
 ऐरावतकुलेभाश्च चतुर्दंताः कलापिनः । त्रिशुंडा गरुडाभाश्च गच्छन्ति भुवि चांवरे ॥ १२ ॥
 ध्वजायुक्ताः कोटिगजाः कोटिदुंदुभिसंयुताः । कोटिसैन्या महामात्यै रत्नमंडलमंडिताः ॥ १३ ॥
 गर्जयंतो घनश्यामा नीलोदुंबरराजिताः । इतस्ततो विरेजुस्ते बलेऽब्धौ मकरा इव ॥ १४ ॥
 करैर्गुल्मान्समुत्पाद्य क्षेपयंतोऽर्कमंडलम् । कंपयंतो भुवं पादैर्मैदैरार्द्राकृताचलाः ॥ १५ ॥
 दुर्गाद्रिगंडशैलादीन्पातयंतः शिरःस्थलैः । खंडयंतश्च शत्रूणां बलमेतादृशा गजाः ॥ १६ ॥
 तुरंगा निर्गता राजन् केचिन्मात्स्याः कलिगजाः । औशीनराः कौशलश्च वैदर्भाः कुरुजांगलाः ॥ १७ ॥
 कांबोजजाः सृजयजाः कैकेयाः कुंतिसंभवाः । दारदाः केरला आंगा बांगा विकटसंभवाः ॥ १८ ॥
 कौंकणाः कोटकाः केचित्कर्णाटा गौर्जरा हयाः । सौवीराः सैधवाः केचित्पांचाला अर्बुदाः परे ॥ १९ ॥
 काच्छाश्च केचिदानर्ता गांधारा मालवादयः । महाराष्ट्रभवाः केचित्तैलंगा जलसंभवाः ॥ २० ॥
 परिपूर्णतमस्यापि श्रीकृष्णस्य महात्मनः । वाजिशालासु वर्तते तेऽपि सर्वे विनिर्गताः ॥ २१ ॥
 श्वेतद्वीपाच्च वैकुण्ठात्तथाऽजितपदा नृप । रमावैकुण्ठलोकाच्च प्राप्ता ये तेऽपि निर्गताः ॥ २२ ॥
 हेमहारसमायुक्ता मुक्तामालामनोहराः । शिखामणिमहारश्मिसेविताः सुपरिच्छदाः ॥ २३ ॥

थी । वे अपनी चालसे वायुके वेगको भी तिरस्कृत कर रहे थे ॥ ६ ॥ जिनके ऊपर चमर झूल रहे थे, ऐसे बीरोंसे भरे वे रथ देवताओंके सुवर्णनिर्मित विमान सरीखे दीख रहे थे ॥ ७ ॥ उस सेनामें ऐसे हाथी चल रहे थे, जिनके गण्डस्थलसे मद चू रहा था । जिनके मुखपर चित्र-विचित्र रचना की हुई थी, जिनके पैरोंमें सोनेकी साँकलें पड़ी थीं, जो कदमें बहुत ऊँचे थे, जिनके ऊपर बनातके बने झूल पड़े हुए थे और जिनकी पीठपर बड़े घंटे बज रहे थे ॥ ८ ॥ पर्वतराजकी चोटी सरीखे ऊँचे वे हाथी दिग्गजोंको भी चुनौती दे रहे थे ॥ ९ ॥ उनमें कुछ भद्रजातिके, कुछ भद्रमृगजातिके, कुछ विन्ध्यपर्वतके और कुछ कश्मीरके थे ॥ १० ॥ उनमें कुछ हाथी मलय पर्वतके, कुछ हिमालयके, कुछ मोरंगके और कुछ कैलासके थे ॥ ११ ॥ कुछ ऐरावतकुलके, कुछ चार-चार दाँतोंवाले, कुछ तीन-तीन सूँडोंवाले और कुछ ऐसे भी उर्ध्वगामी गजराज थे, जो पृथ्वीपर चलते और आकाशमें उड़ते थे ॥ १२ ॥ उनमें एक करोड़ हाथी ध्वजाधारी, एक करोड़ हाथी दुन्दुभिधारी और एक ही करोड़ हाथी रत्नोंके मंडलसे शोभित थे ॥ १३ ॥ बादलोंके समान गर्जन करते और आकाशमें उड़ते हुए वे हाथी उस यादवसेनारूपी समुद्रमें मगरके सदृश दिखायी देते थे ॥ १४ ॥ वे मार्गके वृक्षोंको सूँडोंसे उखाड़-उखाड़कर सूर्यमण्डलकी ओर फेंक रहे थे, अपनी चालसे धरतीको कंपा रहे थे और अपनी मदवर्षसे पृथिवीको भिगो रहे थे ॥ १५ ॥ वे अग्ने मस्तककी टक्करसे दुर्गम पर्वत-शिखरों तथा शिलाखंडोंको ढहाते जाते थे । शत्रुओंकी सेनाको ध्वस्त करनेमें वे बड़े माहिर थे ॥ १६ ॥ हे राजन् ! उस सेनाके कुछ घोड़े मत्स्य देशके, कुछ कलिङ्गके, कुछ उशीनरके, कुछ कोशल देशके, कुछ विदर्भ और कुछ कुरुजांगल प्रदेशके थे ॥ १७ ॥ कुछ घोड़े काम्बोज देशके, कुछ सृजय देशके, कुछ केकयदेशके, कुछ कुन्त देशके, कुछ घोड़े दरद देशके, कुछ केरलके, कुछ अंग देशके, कुछ बंग देशके कुछ घोड़े विकट देशके थे ॥ १८ ॥ उस घोड़े दरद देशके, कुछ केरलके, कुछ अंग देशके, कुछ बंग देशके कुछ घोड़े विकट देशके थे ॥ १८ ॥ उस यादवी सेनामें कौंकण, कोटक, कर्नाटक, गुजरात, सौवीर, सिन्धु, पंजाब और अर्बुद देशके भी घोड़े सम्मिलित थे ॥ १९ ॥ इनके साथ ही काच्छ, आनर्त, गांधार, मालवा, महाराष्ट्र, तैलंग देश तथा जलीय प्रदेशमें उत्पन्न घोड़े भी थे ॥ २० ॥ परिपूर्ण महात्मा कृष्णकी अश्वशालाके भी अश्व उस विजयमात्रामें सम्मिलित हो गये ॥ २१ ॥ जो घोड़े श्वेतद्वीप, अजितपद तथा रमावैकुण्ठसे आये थे, वे भी निकल पड़े ॥ २२ ॥ वे घोड़े

चामरैर्मण्डिताः पुच्छमुखपादस्फुरत्प्रभाः । यादवानां महासैन्ये दृश्यन्ते चेदृशा हयाः ॥२४॥
 वायुवेगा मनोवेगा न स्पृशन्तः पदैर्ध्रुवम् । अपकस्रत्रेष्वतिगा बुद्बुदेष्वपि मैथिल ॥२५॥
 व्रजन्तः पारदमनु जालेष्णर्भावेषु च । दृश्यन्तेऽपि निराधारा स्फारा वारिषु मैथिल ॥२६॥
 गंडशैलनदीदुर्गगर्तप्रासादसंचयान् । विलंघयन्तः सततं चंचलास्ते तुरंगमाः ॥२७॥
 मायुरीं तैत्तिरीं क्रौंचीं हंसीं ये खांजनीं गतिम् । कुर्वन्तो भुवि नृत्यन्तो मैथिलेन्द्र इतस्ततः ॥२८॥
 केचित्सपक्षा दिव्यांगाः श्यामकर्णा मनोहराः । पीतपुच्छाश्चंद्रवर्णा वाजिशालाविनिर्गताः ॥२९॥
 उच्चैःश्रवःकुले जाताः सूर्यवाजिभवाः परे । अश्विनीसुतविद्याढ्या वरुणेन प्रयोजिताः ॥३०॥
 केचिन्मंदारभाः केचिच्चित्रवर्णा मनोहराः । अश्विनीपुष्पसंकाशाः स्वर्णाभा हरितप्रभाः ॥३१॥
 पद्मरागप्रभाः केचित्सर्वलक्षणलक्षिताः । कोटिशः कोटिशो राजन्नन्येऽपि निर्गता हयाः ॥३२॥
 धनुर्धृतो भटाः सैन्ये संग्रामे लब्धकीर्तयः । शक्तित्रिशूलासिगदावर्मपाशधराः परे ॥३३॥
 त्र्यंतः शस्त्रधारामिः प्रलयाब्धिसमा नृप । दिग्गजा इव दृश्यन्ते मर्दयन्तो ह्यरोन्मृधे ॥३४॥
 एवं विनिर्गतं राजन् यदूनां विपुलं बलम् । दृष्ट्वा सुरासुराः सर्वे विसिस्मूः परमाद्भुतम् ॥३५॥
 इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीविश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे यादवसैन्यगमनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

(प्रद्युम्नका दिग्विजयार्थं गमन)

श्रीनारद उवाच

इत्थं सेनावृतं वीराः प्रद्युम्नं धन्विनां वरम् । श्रीकृष्णबलदेवाभ्यामुग्रसेन उवाच ह ॥ १ ॥

सुवर्णके हार, मोतियोंकी माला, मणियोंसे जगमगाती कलंगी और उत्तम झूलसे सुसोमित थे ॥ २३ ॥
 उनपर चमर चल रहे थे । उनकी पूँछ, खुर, मुख और पैरकी दीप्ति फैल रही थी । उस विशाल बाहि-
 नीमें ऐसे अश्व भी विद्यमान थे कि जिनका वेग पवन और मनके सदृश था । चलते समय जैसे घरतीसे
 उनके खुरका स्पर्श ही नहीं होता था । वे कच्चे घागे और पानीके बुलबुलेपर भी चल सकते थे ॥२४॥
 ॥ २५ ॥ हे मैथिल ! उनके खुर इतने हल्के पड़ते थे कि पारे जैसे चंचल मकड़ीके जाले और जलके फुहारपर
 भी चल सकते थे ॥ २६ ॥ पर्वतोंके शिखर, शिलाखण्ड, गढ़े, नदी, दुर्ग और प्रासाद इन सबको लाँघते
 हुए वे चंचल घोड़े द्रुतगतिसे चले जा रहे थे ॥ २७ ॥ हे राजन् ! वे मयूर, तित्तिर, क्रौंच, हंस तथा खंजनकी
 चाल चलते और घरतीपर नृत्य करते हुए इधर-उधर भाग रहे थे ॥ २८ ॥ उनमें कुछ घोड़े पंखधारी थे,
 कुछके अंग दिव्य थे, कुछके कान मनोहर श्याम वर्णके थे, कुछकी पूँछ पीतवर्ण थी और कुछ चन्द्रमासदृश
 श्वेतवर्ण थे । वे अभी-अभी अश्वशालासे निकले थे ॥ २९ ॥ कुछ घोड़े उच्चैःश्रवाके वंशज थे, कुछ सूर्यके
 घोड़ोंके वंशज, कुछ अश्विनीकुमारकी विद्याके विज्ञ थे और उन्हें वरुणदेवने भगवान् कृष्णके पास भेजा
 था ॥ ३० ॥ उनमेंसे कुछ घोड़ोंकी कान्ति मन्दार पुष्प जैसी थी, कुछका रंग विचित्र था, कुछ अश्विनी
 पुष्पसरीखे थे, कुछ सुनहले रंगके थे और कुछ एकदम हरे रंगके थे ॥ ३१ ॥ कुछ घोड़े पद्मरागमणि
 (पुष्कराज) जैसे थे, और कुछ सभी सुलक्षणोंसे सम्पन्न थे । हे राजन् ! इसी प्रकार करोड़ों घोड़े और भी
 निकले ॥ ३२ ॥ इन घोड़ोंपर ऐसे वीर योद्धा सवार थे, जिन्होंने रणभूमिमें अपार कीर्ति अर्जित
 की थी । वे लोग हाथोंमें शक्ति, त्रिशूल, तलवार, गदा, कवच और पाश लिये हुए थे ॥ ३३ ॥ वे प्रलयकालके
 समुद्र अथवा दिग्गज जैसे घोर-गंभीर थे । वे शस्त्रास्त्रोंकी वर्षा करके अपने शत्रुओंको छिन्न-भिन्न कर सकते
 थे ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार यादवोंकी विपुल बाहिनी देखकर सभी देवता और दानव दंग रह गये
 ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

उग्रसेन उवाच

हे प्रद्युम्न महाप्राज्ञ श्रीकृष्णकृपया त्वरम् । विजित्य नृपतीन्सर्वान्द्वारकामागयिष्यसि ॥ २ ॥
 मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं सुप्तं बालं जडं स्त्रियम् । प्रपन्नं विरथं भीतं न रिपुं हन्ति धर्मवित् ॥ ३ ॥
 राज्ञो हि परमो धर्म आर्तानामार्तिनिग्रहः । उत्पथानां वधश्चेत्थमाततायी वधार्हणः ॥ ४ ॥
 पुमान् योषिदुत क्लीब आत्मसंभावितोऽधमः । भूतेषु निरनुक्रोशो नृपाणां तद्वधोऽवधः ॥ ५ ॥
 नैनो राज्ञः प्रजाभर्तुर्धर्मयुद्धे वधो द्विषाम् । आदिराज्ञो नृपान्पूर्वं ग्राह स्वायंभुवो मनुः ॥ ६ ॥
 योरणे निर्भयो भूत्वा कृत्वर्घिं प्रागतो व्यसुः । स गच्छेद्भाम परमं मित्वा मार्तण्डमण्डलम् ॥ ७ ॥
 भयाद्रणादुपरतस्त्यक्त्वा युद्धे पतिं च यः । व्रजेधः क्षत्रियो भूत्वा स महारौरवं व्रजेत् ॥ ८ ॥
 सेनां रक्षेत्तु राजा हि सेना राजानमेव हि । स्रुतः कृच्छ्रगतं रक्षेद्रथिनं सारथिं रथी ॥ ९ ॥
 यूयं च यादवाः सर्वे समर्थबलवाहनाः । कार्णिमेवाभिरक्षन्तु कार्णिर्वः परिरक्षन्तु ॥ १० ॥
 गावो विप्राः सुरा धर्मच्छन्दांसि भुवि साधवः । पूजनीयाः सदा सर्वैर्मनुष्यैर्मोक्षकांसिभिः ॥ ११ ॥
 वेदा विष्णुवचो विप्रा मुखं गावस्तनुर्हरेः । अंगानि देवताः साक्षात्साधवो ह्यसवः स्मृताः ॥ १२ ॥
 श्रीकृष्णोऽयं हरिः साक्षात्परिपूर्णतमः प्रभुः । येषां चित्ते स्थितो भक्त्या तेषां तु विजयः सदा ॥ १३ ॥

श्रीनारद उवाच

शिरसा जगृहुः साक्षादुग्रसेनस्य शासनम् । प्रणेभ्युर्यादवाः सर्वे कृताञ्जलिपुटा नृप ॥ १४ ॥
 उग्रसेनं नृपं शूरं वसुदेवं बलं हरिम् । ननाम कार्णिः शिरसा गर्गाचार्यं महाभुनिम् ॥ १५ ॥
 श्रीकृष्णबलदेवाभ्यां पुरीं याते नृपेश्वर । दिग्जयार्थी हरेः पुत्रः प्रययौ यादवैः सह ॥ १६ ॥
 चतुर्योजनलंबीत्थं राजमार्गोऽपि यस्य वै । बभौ हेममयैः सर्वैः शिबिरैर्मथिलेश्वर ॥ १७ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् । इस प्रकारकी सेनासे घिरे धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नसे श्रीकृष्ण तथा बलदेवके साथ बैठे उग्रसेनने कहा ॥ १ ॥ उग्रसेन बोले—हे महाप्राज्ञ प्रद्युम्न । भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे सभी राजाओंको जीतकर तुम द्वारका लौट आओगे ॥ २ ॥ मत्त, उन्मत्त, सुप्त, बालक, जड़, स्त्री, शरणगत, विरथ और भयभीत शत्रुको धर्मज्ञ पुरुष नहीं मारते ॥ ३ ॥ राजाका सर्वश्रेष्ठ धर्म है आर्तजनोंकी पीड़ा दूर करना और विपरीत पंथपर चलनेवाले आततायियोंको मारना ॥ ४ ॥ पुरुष, स्त्री अथवा नपुंसक इनमेंसे जो भी अधम प्राणी अन्य प्राणियोंपर दया न करता हो, ऐसे लोगोंका यदि राजा वध करे तो उसे वध नहीं कहा जायगा ॥ ५ ॥ धर्मयुद्धमें प्रजापालक राजाका शत्रुको मारना धर्म है । ऐसा करनेसे उसे पाप नहीं लगता । सबसे आदिके राजा स्वायम्भुव मनुने अन्य राजाओंसे ऐसा कहा था—॥ ६ ॥ जो वीर निर्भयभावसे रणभूमिमें पैर रखे और लड़ता हुआ मर जाय तो वह सूर्यमण्डलका भेदन करके परम धामको चला जाता है ॥ ७ ॥ जो पुरुष डरकर रणभूमिसे भाग जाता है और अपने स्वामीको त्याग देगा है, वह महारौरव नरकमें जाता है ॥ ८ ॥ राजा सेनाकी रक्षा करता है और सेना राजाकी रक्षा करती है । यदि रथी संकटमें पड़े तो सारथी उसकी रक्षा करे और सारथीपर द्विपत्ति आये तो रथी उसको बचाये ॥ ९ ॥ आप सभी यादव विशाल सेनासे सम्पन्न हैं । अतएव आप श्रीकृष्णतन्म प्रद्युम्नको रक्षा करें ॥ १० ॥ मोक्षकी आकांक्षा रखनेवाला मनुष्य गौ, ब्राह्मण, देवता, धर्म और साधुजनकी रक्षा करे । क्योंकि ये सभी लोगोंके सदा पूजनीय होते हैं ॥ ११ ॥ वेद भगवान्के वचन हैं, ब्राह्मण विष्णुके मुख हैं, गौयें उनका शरीर हैं, देवता विष्णुके अंग हैं और साधु प्राण हैं ॥ १२ ॥ ये भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् परिपूर्णतम परमेश्वर हैं । ये जिन लोगोंके हृदयमें निवास करते हैं, उनकी सदा विजय होती है ॥ १३ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् । यादवोंके राजा उग्रसेनके आदेशको सबने माथा झुकाकर अंगीकार किया और हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥ १४ ॥ राजा उग्रसेन, शूरसेन, वसुदेव, बलदेव, श्रीकृष्ण तथा महाभुनि गर्गको प्रद्युम्नने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया ॥ १५ ॥ जब भगवान् कृष्ण और बलदेव द्वारकापुरी लौट गये, तब श्रीकृष्णके

अग्रतो वाहिनीयुक्तः कृतवर्मा महाबलः । ध्वजिनीसहितः पश्चादक्रूरो धन्विनां वरः ॥१८॥
 तत्पश्चादुद्धवो मंत्री प्रतिमापंचसंयुतः । तत्पश्चात्कृष्णचंद्रस्य सुतास्त्वष्टादश स्मृताः ॥१९॥
 ययुर्महाराथा राजन् ये शताक्षौहिणीयुताः । प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च दीप्तिमान्भानुरेव च ॥२०॥
 सांबो मधुर्बृहद्भानुश्चित्रभानुर्वृकोऽरुणः । पुष्करो वेदबाहुश्च श्रुतदेवः सुनंदनः ॥२१॥
 चित्रभानुर्विरूपश्च कविर्न्यग्रोध एव च । तत्पश्चात्प्रययुः सर्वे गदाद्याः कृष्णनोदिताः ॥२२॥
 भोजवृष्ण्यंधकमधुशूरसेनदशार्हकाः । ऋतुबाणकोटिसंख्या यादवानां प्रकथ्यते ॥

तत्सैन्यसंख्यां नृपते कः करिष्यति भूमिषु ॥२३॥

इत्थं यदूनां चलतां नृपाणां विकर्षतां तां महतीं च सेनाम् ।
 कोदंडटंकारयुतोऽभवत्कौ धुंकार आताडित दुंदुभीनाम् ॥२४॥
 इमं द्रुचीत्कारहयेंद्रहेषणैर्नदद्भुशुंडीदृढवीरगर्जनैः ।
 ढकानिनादैर्यदवस्तडित्स्वनैः प्रचंडमेघा इव ते विडिडिरे ॥२५॥
 राजद्भुवो मंडलमेव दिग्गजा महत्स्वनैस्ते बधिरीकृता इव ।
 सद्योऽथ दुर्गं रिपवो विदुद्रुवुर्निःसाहसाः कौ चलतां महात्मनाम् ॥२६॥
 कूर्मास्तु किं काविति के वदंतः कुतः क गच्छाम इति द्रवंतः ।
 उपद्रवो ह्येष विधे क याति चचाल लोकैः सहिता चलेति ॥२७॥
 छलेन यज्ञस्य हरिः परेश्वरो भारं विदेहेश भुवोऽवतारयन् ।
 योऽभूच्चतुर्व्यूहधरो यदोः कुले तस्मै नमोज्जंतगुणाय भूभृते ॥२८॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे प्रद्युम्नदिविजयार्थं गमनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पुत्र प्रद्युम्न यादवोंके साथ दिविजय करनेको चले ॥ १६ ॥ हे राजन् ! चार योजन लम्बी सेना यात्राके समय राजमार्गके स्वर्णिम शिविरोंमें शोभित हुई ॥ १७ ॥ सबसे आगे महाबली कृतवर्मा अपनी विशाल सेनाके साथ चले । उनके पीछे धनुर्धारियोंमें अग्रणी अक्रूर अपनी सेना लेकर चले । उनके पीछे मंत्री उद्धव पांच प्रतिमाओंके साथ चले । उनके पीछे भगवान् श्रीकृष्णके अठारह पुत्र चले । हे राजन् ! महारथी लोग अक्षौहिणी सेना लेकर आगे बढ़े । वे महारथी थे—प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, दीप्तिमान्, भानु, साम्ब, मधु, बृहद्भानु, चित्रभानु, वृक, अरुण, पुष्कर, वेदबाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन, चित्रभानु, विरूप, कवि और न्यग्रोध । उनके पीछे श्रीकृष्ण द्वारा भेजे हुए गद आदि पुत्र चले ॥ १८-२२ ॥ भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन और दशार्ह आदि छप्पन करोड़ यादव चले । हे राजन् ! यादवोंकी सही संख्या इस भूमण्डलमें कोई नहीं बता सकता ॥ २३ ॥ उस विशाल वाहिनीको साथ लेकर यादव नृपति चले तो धनुषका टंकोर और नगाड़ोंकी तुमुल ध्वनि गूँज उठी ॥ २४ ॥ बढ़े बढ़े हाथियोंके चिगाड़, घोड़ोंकी हिनहिनाहट, तोपोंके साथ वीरोंकी गर्जना और ढोलोंका बजना आदिके कोलाहल बिजली गिरने जैसी गड़गड़ाहटके साथ प्रचंड मेघकी तरह छा गये ॥ २५ ॥ जब वे सुन्दर भूमण्डलकी ओर बढ़े तो उनके घनघोर निनादसे दिग्गज बहरे हो गये । महात्मा यादव जब आगे बढ़े तो उनके शत्रु दुर्ग छोड़कर भाग गये ॥ २६ ॥ कूर्मगण 'यह क्या हुआ ?' यह कहते हुए निकल भागे । बादमें वे सोचने लगे कि कहाँ जायें और क्या करें । हे विधाता ! ऐसा उपद्रव क्यों हो रहा है कि जिससे अन्यान्य लोकोंके साथ सारी पृथ्वी चलायमान हो गयी ॥ २७ ॥ हे विदेहेश ! यज्ञके बहाने भगवान् पृथ्वीका भार उतारेंगे । वे ही चतुर्व्यूह अर्थात् वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धके रूपमें यादवोंके घर अवतरे हैं । उन अनन्तगुणसम्पन्न भूभृत्को नमस्कार है ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पंचमोऽध्यायः

(प्रद्युम्नका कच्छ-कलिङ्ग-विजय)

श्रीबहुलाश्व उवाच

कान्कान्देशान् ययौ जेतुं क्रमतः श्रीहरेः सुतः । तस्य कर्माण्युदाराणि ब्रूहि देवर्षिसत्तम ॥ १ ॥
अहो श्रीकृष्णचंद्रस्य कृपा भक्तेषु चेदृशी । पुनाति प्रश्रुता ध्याता पापिनं सकुलं जनम् ॥ २ ॥

श्रीनारद उवाच

साधु साधु त्वया पृष्ठं साधु ते विमला मतिः । चरितं कृष्णभक्तानां पुनाति भुवनत्रयम् ॥ ३ ॥
तत्काले मेघधाराश्च भूमेः सर्वरजांसि च । कविश्चेद्रणयेद्राजन् हरेः श्रीमतो गुणान् ॥ ४ ॥
चतुर्योजनमात्रं हि छाया यस्य प्रदृश्यते । तेन श्वेतातपत्रेण शोभितो रुक्मिणीसुतः ॥ ५ ॥
रथेन शक्रदत्तेन स्वसैन्यपरिवारितः । कच्छदेशान् ययौ जेतुं त्रिपुरान्गिरिशो यथा ॥ ६ ॥
कच्छदेशाधिपः शुभ्रो मृगयार्थी विनिर्गतः । सेनां समागतां ज्ञात्वा पुरीं हालां समाययौ ॥ ७ ॥
प्रद्युम्नस्यागता सेना गजपादप्रताडनैः । चूर्णयन्ती तरून्देशान्पातयन्ती च मैथिल ॥ ८ ॥
उत्थितैस्तद्रजोवृन्दैरन्धीभूतं नभोऽभवत् । भयं प्रापुर्जनाः सर्वे कच्छदेशनिवासिनः ॥ ९ ॥
तदातिद्वर्षितः शुभ्रो गजानां हेममालिनाम् । नीत्वा पञ्चशतं सद्यो हयानामयुतं तथा ॥ १० ॥
विशङ्कारं सुवर्णानामागतस्यास्य संमुखे । दत्त्वा बलिं ननामाशु स्रजा बद्ध्वा करद्वयम् ॥ ११ ॥
तस्मै तुष्टः शंकरारिः प्रददौ रत्नमालिकाम् । संस्थाप्य राज्ये तं राजंस्तथा हि प्रकृतिः सताम् ॥ १२ ॥
कलिङ्गान्प्रययौ जेतुं रुक्मिणीनन्दनो बली । पतत्पताकैः सत्सैन्यैर्मैघैरिद्रि इव व्रजन् ॥ १३ ॥
कलिङ्गराजः स्वबलैः समर्थद्विपवाहनैः । निर्ययौ संमुखे योद्धुं प्रद्युम्नस्य महात्मनः ॥ १४ ॥

राजा बहुलाश्व बोले—हे देवर्षिसत्तम नारदजी ! श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्न किन-किन देशोंको जीतने गये, सो क्रमशः बताइए । क्योंकि उनके उदार चरित्र बड़े अच्छे हैं ॥ १ ॥ अहो ! भगवान् कृष्णकी अपने भक्तोंपर अपार अनुकम्पा रहती है । जो वक्ता, श्रोता तथा अन्यान्य पामर जनोंको भी पवित्र कर देती है ॥ २ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! आपने बड़ी अच्छी बात पूछी है । आपकी बुद्धि विमल है । श्रीकृष्णके भक्तोंका चरित्र तीनों लोकोंको पवित्र कर देता है ॥ ३ ॥ यह संभव है कि कोई गणितज्ञ बरसातकी बूँदोंको गिन ले, किन्तु वह भी श्रीमात् कृष्णके गुणोंको नहीं गिन सकता ॥ ४ ॥ उस दिग्विजय-यात्राके अवसरपर सिंहासनासीन रुक्मिणीतनय प्रद्युम्नके ऊपर ऐसा श्वेत छत्र लगा था, जिसकी छाया चार योजन तक फैली रहती थी ॥ ५ ॥ वह वीर इन्द्रके दिये रथपर बैठकर सर्वप्रथम कच्छ देशको जीतनेके लिए उसी प्रकार चला, जैसे त्रिपुरको जीतनेके लिए शंकरजी गये थे ॥ ६ ॥ उस समय कच्छनरेश शुभ्र शिकार खेलने गया था । वहाँ ही उसने यादवी सेनाके आगमनकी बात सुनी तो हालापुरीको चला गया ॥ ७ ॥ प्रद्युम्नकी सेनाके आगमनसे और उसके हाथियोंके चरणप्रहारसे वहाँके वृक्ष धराशायी हो गये ॥ ८ ॥ उस समय जो घूल उड़ी, उससे सारे आकाशमें अन्धकार छा गया और कच्छदेशके निवासी दहल गये ॥ ९ ॥ उसी समय बड़े हर्षके साथ उस देशका राजा शुभ्र स्वर्णमाल्यधारी पाँच सौ हाथी, दस हजार घोड़े और बीस भार सोना लेकर प्रद्युम्नको भेंट देने आया । मालासे दोनों हाथ बाँधकर उसने प्रद्युम्नको प्रणाम किया ॥ १० ॥ ११ ॥ इससे प्रसन्न होकर प्रद्युम्नने उसे रत्नमयी माला दी और उसको वहाँके राज्यसिंहासनपर बिठाकर बहुत प्रसन्न हुए । सज्जनोंकी प्रकृति ही ऐसी होती है ॥ १२ ॥ वहाँसे रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न कलिङ्ग-देशको जीतने चले । जिसमें पताकायें फहरा रही थीं, ऐसी सेना लेकर जाते हुए प्रद्युम्न मेघोंसे घिरे इन्द्रके समान शोभित हुए ॥ १३ ॥ कलिङ्गनरेश यादवी सेनाका सामना करनेके लिए हाथी-घोड़े तथा

कलिङ्गमागतं वीक्ष्यानिरुद्धो धन्विनां वरः । रथेनैकेन तत्सैन्यैर्युयुधे यादवाग्रतः ॥१५॥
 शतबाणैश्च कालिङ्गं दशमिर्दशभी रथान् । अताडयद्गजान् वीरश्चापं टङ्कारयन्मुहुः ॥१६॥
 स्वशत्रवश्च स्वे सर्वे साधु साञ्चिति वादिनः । अनिरुद्धः प्रयुयुधे प्रद्युम्नस्य प्रपश्यतः ॥१७॥
 अनिरुद्धस्य बाणौघैः केचिद्भीरा द्विधा कृताः । गजाश्च भिन्नशिरसः पादभिन्ना हया नृप ॥१८॥
 रथाश्च चूर्णचरणा हताश्वा हतनायकाः । रथिसारथ्यो वातैर्निपेतुः पादपा इव ॥१९॥
 पलायमानां तां सेनां कलिङ्गो वीक्ष्य मैथिल । आजगाम गजारूढो विच्छिन्नकवचो रुषा ॥२०॥
 द्विसप्ततिभारयुतां गदां चिक्षेप सत्वरम् । गजेन पातयन्वीराञ्जगर्ज घनवद्वली ॥२१॥
 गदाप्रहारपतितं किञ्चिद्व्याकुलमानसम् । अनिरुद्धं मृधे वीक्ष्य यादवाः क्रोधपूरिताः ॥२२॥
 तदैव तेहुः कालिङ्गं बाणैस्तीक्ष्णैः स्फुरत्प्रभैः । समांसमुद्धमटं द्येनं कुरराश्चक्षुर्भिर्यथा ॥२३॥
 कालिङ्गोऽपि तदा क्रुद्धः सज्जं कृत्वा धनुः स्वयम् । टङ्कारयन्मुहुर्बाणैर्बाणांश्चूर्णीचकार ह ॥२४॥
 गदो गदां समादाय बलदेवानुजो बली । तद्गजं ताडयामास वामहस्तेन मैथिल ॥२५॥
 अर्धचन्द्रप्रहारेण विशीर्णोऽभूद्गजस्तथा । इन्द्रवज्रप्रहारेण गण्डशैलो यथा नृप ॥२६॥
 कालिङ्गः पतितो भूत्वा गृहीत्वा महतीं गदाम् । गदं च ताडयामास कालिङ्गं च गदस्तदा ॥२७॥
 कलिङ्गगदयोस्तत्र घोरं युद्धं बभूव ह । विस्फुलिङ्गान् क्षरन्त्यौ द्वे गदे चूर्णीबभूवतुः ॥२८॥
 गदो गृहीत्वा कालिङ्गं पातयित्वा रणांगणे । चर्ष स्वकरेणाशु फणिनं गरुडो यथा ॥२९॥
 गदाप्रहारव्यथितश्चूर्णितास्थिः कलिङ्गराट् । आययौ शरणं सोऽपि प्रद्युम्नस्य महात्मनः ॥३०॥
 दत्त्वा बलिं प्राह कलिङ्गराजस्त्वं देवदेवः परमेश्वरोऽसि ।
 कः क्रोधवन्तं प्रसहेत कौ त्वां जनो यथा दण्डधरं नमस्ते ॥३१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाधसंवादे कच्छकलिङ्गविजयो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

पैदल सेना लेकर चला ॥ १४ ॥ कलिङ्गनरेशको आते देख धनुर्धरोंमें अग्रणी अनिरुद्ध रथपर बैठ तथा अपनी सेना लेकर आगे बढ़े ॥ १५ ॥ उन्होंने सौ बाण कलिङ्गनरेशको और दस-दस बाण रथियोंको मारकर अपने धनुषका टंकोर किया ॥ १६ ॥ तब अपने सैनिकों तथा शत्रुओं तकने 'साधु-साधु' कहकर अनिरुद्धकी सराहना की । प्रद्युम्नके समक्ष अनिरुद्ध यह लड़ाई लड़ रहे थे ॥ १७ ॥ अनिरुद्धकी बाणवर्षासे कुछ घोर कट-कटकर दो टुकड़े हो गये । हाथियोंके सिर और घोड़ोंके पैर कट गये ॥ १८ ॥ रथोंके पहिये चूर हो गये, घोड़े मर गये, रथी घराशाही हो गये और उनके सारथी इस प्रकार उड़ गये, जैसे प्रबल वायुके झोंकेसे वृक्ष उड़ जाते हैं ॥ १९ ॥ हे मिथिलेश ! भागती हुई अपनी सेनाको देखकर स्वयं कलिङ्गनरेश हाथीपर चढ़ तथा कवच पहिनकर क्रुद्धभावसे आया ॥ २० ॥ आते ही उसने एक सौ चालिस मनकी भारी गदा अनिरुद्धके ऊपर चलायी और हाथीसे यादववीरोंको रौंदते हुए उसने मेघके समान गर्जन किया ॥ २१ ॥ उस गदाके प्रहारसे अनिरुद्धको जमीनपर गिरकर व्याकुल देखा तो सभी यादव क्रुद्ध हो उठे ॥ २२ ॥ उसी समय वे अपने तीक्ष्ण बाणोंसे कलिङ्गनरेशको छेदने लगे, जैसे कुररपक्षी शिकारको चोंचोंसे नोचते हैं ॥ २३ ॥ कलिङ्गनरेशने भी क्रुद्धभावसे धनुष चढ़ाकर अपने बाणोंसे यादवोंकी बाणवर्षा व्यर्थ कर दी ॥ २४ ॥ तभी बलदेवके लघु भ्राता गदने बायें हाथमें गदा लेकर कलिङ्गनरेशके हाथीको मारा ॥ २५ ॥ उसके बाद गदने अर्धचन्द्र-बाणसे मारा तो वह वहीं ढेर होगया । जैसे इन्द्रके वज्रप्रहारसे पर्वत ढेर हो गये थे ॥ २६ ॥ कलिङ्गनरेश हाथीसे गिरा तो क्रोधपूर्वक गदा लेकर गदपर प्रहार किया और गदने भी उसपर प्रहार किया ॥ २७ ॥ इस प्रकार कलिङ्गराज तथा गदमें घोर युद्ध हुआ और आगकी चिनगारियां उगलती हुई दोनों गदायें चूर हो गयीं ॥ २८ ॥ तब गदने कलिङ्गराजको जमीनपर गिरा दिया और हाथसे पकड़कर इस तरह बसीटने

अथ षष्ठोऽध्यायः

(प्रद्युम्नका मरुधन्व-मालव-माहिष्मती-विजय)

श्रीनारद उवाच

इत्थं जित्वाऽथ कालिंगं प्रद्युम्नो यादवेश्वरः । जगाम मरुधन्वानं जलं वैश्वानरो यथा ॥ १ ॥
 गिरिदुर्गसमायुक्तं धन्वदेशाधिपं गयम् । उद्धवं प्रेषयामास ज्ञात्वा तं यादवेश्वरः ॥ २ ॥
 गिरिदुर्गे गतः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः । सभामेत्य गयं ग्राह्यं शृणु राजन्महामते ॥ ३ ॥
 उग्रसेनो यादवेन्द्रो राजराजेश्वरो महान् । जंबूद्वीपनृपाञ्जित्वा राजसूयं करिष्यति ॥ ४ ॥
 परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् । असंख्यब्रह्मांडपतिर्मन्त्री तस्याभवद्वरिः ॥ ५ ॥
 तेन वै प्रेषितः साक्षात्प्रद्युम्नो धन्विनां वरः । शीघ्रं तस्मै बलिं नीत्वा कुलकौशलहेतवे ॥ ६ ॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा किञ्चित्प्रकुपितो वीर्यशौर्यमदोद्धतः । उद्धवं ग्राह्यं नृपतिर्गयो नाम महाबलः ॥ ७ ॥

गय उवाच

बलिं तस्मै न दास्यामि विना युद्धं महामते । अल्पकालेन यदवो गता वृद्धिं भवादृशाः ॥ ८ ॥
 इत्युक्त उद्धवो राजञ्छंबरादिं समेत्य सः । सर्वेषां यादवानां च शृण्वतां प्रशंसं ह ॥ ९ ॥
 तदैव रुक्मिणीपुत्रो गिरिदुर्गं समाययौ । तत्सैन्यैर्यादवैः सार्द्धं घोरं युद्धं बभूव ह ॥ १० ॥
 चूर्णयन् गजपादैश्च नागरान् भूजनान्द्रुमान् । अश्वौहिणीभ्यां संयुक्तो गयो योद्धुं विनिर्ययौ ॥ ११ ॥
 रथिनो रथिभिस्तत्र गजवाहा गजैः सह । अश्ववाहैरश्ववाहा वीरा वीरैः परस्परम् ॥ १२ ॥
 युयुधुस्तीक्ष्णबाणौघैश्चर्मखड्गगदष्टिभिः । पाशैः परश्वधै राजञ्छतघ्नीभिर्भुशुंडिभिः ॥ १३ ॥

लगे, जैसे गरुड़ साँपको घसीटते हैं ॥ २९ ॥ गदके गदाप्रहारसे व्यथित तथा हड्डियें चूर्ण होजानेसे व्याकुल कालिंग-राज भागकर महात्मा प्रद्युम्नकी शरणमें जा पहुँचा ॥ ३० ॥ उनको भरपूर उपहार देकर उसने कहा—हे प्रद्युम्न ! आप देवताओंके देवता तथा परमेश्वर हैं । इस पृथ्वीतलपर ऐसा कौन है कि जो आपके क्रोधको सह सके । जैसे यमराजके क्रोधको कोई नहीं सह पाता । आपको मेरा नमस्कार है ॥ ३१ ॥ इति श्रीगर्ग-संहितायां विश्वजित्सण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे . मिथिलेश ! इस प्रकार कालिंगराजको परास्त करके यादवेश्वर प्रद्युम्न मरुप्रदेशमें गये । जैसे अग्नि जलमें जा पहुँची हो ॥ ११ ॥ उस प्रदेशका राजा गए एक पर्वतके किलेमें रहता था । यह जानकर प्रद्युम्नने उसके पास उद्धवको भेजा ॥ २ ॥ परम बुद्धिमान् उद्धव उस पर्वतीय दुर्गमें गये और उसकी सभामें जाकर कहा—हे राजन् ! सुनिए ॥ ३ ॥ यादवेश्वर और राजराजेश्वर महाराज उग्रसेन जम्बूद्वीपके सब राजाओंको जीतकर राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं ॥ ४ ॥ परिपूर्णतम एवं अखिल ब्रह्माण्डपति भगवान् साक्षात् श्रीकृष्ण स्वयं उनके मन्त्री हैं ॥ ५ ॥ उन्हींके भेजे हुए धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्न यहाँ आये हुए हैं । सो अपने कुलके कल्याणार्थ शीघ्र उपहारसामग्री लेकर उनसे मिलिए ॥ ६ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! उद्धवकी बातसे किञ्चित् कुपित होकर अपने पराक्रमसे मदोद्धत गयने कहा ॥ ७ ॥ गय बोला—हे महामते ! विना युद्धके मैं उन्हें बलि नहीं दूँगा । क्योंकि आप यादव अभी थोड़े दिनोंसे बड़े हैं ॥ ८ ॥ यह सुना तो उद्धव लौट पड़े और प्रद्युम्नके पास जाकर सब यादवोंके समक्ष गयका उत्तर कह सुनाया ॥ ९ ॥ सो सुनते ही रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न गयके गिरिदुर्गमें जा पहुँचे । वहाँ ही गय राजाकी सेनाके साथ यादवोंका भीषण युद्ध हुआ ॥ १० ॥ तभी अपने हाथियोंके पैरोंसे वृक्षों और नगरवासियोंको चूर्ण करता हुआ राजा गय दो अश्वौहिणी सेना लेकर युद्ध करने आया ॥ ११ ॥ उसके आते ही रथियोंसे रथी, हाथीसवारोंसे हाथी

मन्यमानाश्च यदुभिर्गयवीरा भयातुराः । सर्वे स्वं स्वं रथं त्यक्त्वा द्रुमुस्तु दिशो दश ॥१४॥
 पलायमाने स्वबले गयो नाम महाबलः । एकाकी प्रययौ योद्धुं धनुष्कारयन्मुहुः ॥१५॥
 दीप्तिमान् कृष्णपुत्रस्तु धनुर्बाणै र्निपोर्हयान् । एकेन सारथिं जघ्ने द्वाभ्यां केतुं समुच्छ्रितम् ॥१६॥
 रथं च बाणविशत्या कवचं पंचभिः पुनः । धनुस्तस्यापि चिच्छेद शतबाणैर्महाबलः ॥१७॥
 गयोऽन्यद्भनुरादाय दीप्तिमन्तं हरेः सुतम् । जघान बाणविशत्या जगर्ज धनुर्वद्वली ॥१८॥
 तत्प्रहारेण समरे किंचिद्व्याकुलमानसः । दीप्तिमानथ जग्राह शक्तिं ज्योतिर्मयीं दृढाम् ॥१९॥
 चिक्षेप भ्रामयित्वा तां गयाख्याय महात्मने । साऽपि तद्दृष्ट्वा भित्त्वा पपौ च रुधिरं महत् ॥२०॥
 गयोऽपि पतितो राजन्मूर्च्छितोऽभूद्रणांगणे । दीप्तिमांश्च धनुष्कोट्या कर्षयन्स्तदगले रिपुम् ॥२१॥
 प्रद्युम्नस्य पुरः प्रागात्कद्रुजं गरुडो यथा । नरदुन्दुभयो नेदुर्देवदुन्दुभयस्तदा ॥

आकाशाद्रवृषुर्देवाः पुष्पवर्षाणि पार्थिवाः ॥२२॥

तदैव तेनापि समर्पिताग्निः श्रीकृष्णपुत्रो नृप शंवरारिः ।
 अवन्तिकां संप्रययौ महात्मा श्रीकर्णिकां स्वर्णमयीमिवालिः ॥२३॥
 श्रुत्वाऽऽगतं तं जयसेनराजः समर्चयामास स मालवाधिपः ।
 आनीय वृद्धान्सुबलिं महात्मने प्रधर्षितो मैथिल तत्प्रभाववित् ॥२४॥
 राजाधिदेवीं स्वपितुः पितुः स्वसां प्रणम्य तां कृष्णसुतो महामनाः ।

विदानुविदौ परिरम्य तत्सुतौ वभौ वृतो मालवदेशसंभवैः ॥२५॥

प्रद्युम्नो धन्विनां श्रेष्ठः पुरीं माहिष्मतीं ययौ । यादवैः स्वबलैः सार्द्धं नर्मदां स ददर्श ह ॥२६॥
 राजितामं च कल्लोलैः शृङ्गारतिलकामिव । वहन्तीं पुष्पनिचयमुष्णिहं मुद्रिकामिव ॥२७॥

सवार, घुड़मवारोंसे घुड़सवार और पैदल सैनिकोंसे पैदल सैनिक भिड़ गये ॥ १२ ॥ वीर लोग तीखे बाणों, डाल-तलवार, गदा, पटा, फरसा, बछीं और तोपसे लड़ने लगे ॥ १३ ॥ यादवोंके तीखे प्रहारसे राजा गयके योद्धा भयभीत होगये और अपने-अपने रथोंको छोड़कर दसों दिशाओंमें भाग गये ॥ १४ ॥ सेनाके भाग जानेपर महाबली गय स्वयं धनुष टंकारता हुआ युद्धके लिए आया ॥ १५ ॥ तत्काल श्रीकृष्णतनय दीप्तिमान्-ने चार बाणोंसे उसके घोड़ों और एक बाणसे सारथीको मार डाला । बादमें दो बाणोंसे उसकी ऊँची ध्वजा भी काट दी ॥ १६ ॥ पचीस बाणोंसे उसका रथ, पाँच बाणोंसे कवच और सौ बाणोंसे उसका धनुष काट डाला ॥ १७ ॥ तब राजा गयने दूसरा धनुष लेकर बीस बाणोंसे दीप्तिमान्को मारा और मेघके समान गर्जन करने लगा ॥ १८ ॥ रणभूमिमें उसके प्रहारसे कुछ व्यथित होकर दीप्तिमान्ने हाथमें दृढ़ शक्ति ली ॥ १९ ॥ उन्होंने वह शक्ति घुमाकर गयको मारी । उस शक्तिने उसका हृदय फाड़कर बहुत रुधिर पिया ॥ २० ॥ उस शक्तिके प्रहारमें गय मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर गया । तब दीप्तिमान्ने अपने धनुषकी नोक उसके गलेमें डाल दी और उमांस घसीटते हुए वैसेही उसे प्रद्युम्नके पास ले गये । जैसे गरुड़ साँपको घसीटकर लेजाते हैं । दीप्तिमान्का यह योग्य देखकर मनुष्यों तथा देवताओंकी दुन्दुभियाँ एक साथ बजने लगीं । उस समय आकाशमें द्युगात्रों और धरतीसे पार्थिव पुष्पोंकी वर्षा होने लगी ॥ २१ ॥ २२ ॥ कुछ देर बाद जब राजा गय स्वयं शृंगार, तब उगने प्रद्युम्नका पूजन किया और भेंट दी । तदनन्तर श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्न स्वर्णमयी अवन्तिकांगणों गये । जेग किंगी मुनहरी कलीपर भौंरा जाता है ॥ २३ ॥ मालवनरेश राजा जयसेनने प्रद्युम्नके आगमनको बान गुनां नो नगरके वृद्धोंको साथ लेकर उनकी पूजा की और भेंट दी ॥ २४ ॥ तदनन्तर कृष्णपुत्र प्रद्युम्न अपने पितामहकी वहिन राजाधिदेवीसे मिले । उसके पुत्र विन्द और अनुविन्दसे मिलकर मान्यवनगरनिवागियोंमें मिले ॥ २५ ॥ तदनन्तर धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्न वहाँसे माहिष्मती पुरी गये । नहीं अपने यादव वीरोंके साथ जाकर उन्होंने नर्मदा नदीको देखा ॥ २६ ॥ उस समय नर्मदा जलके कल्लोल-

वेतसीवेणुतरुभिः पुष्पितैर्माधवैर्वृतैः । स्फुरद्भिर्भूतिमद्भिश्च देवैः स्वर्गनदीमिव ॥२८॥
तत्तीरे शिबिरैर्युक्तः प्रद्युम्नो यादवेश्वरः । स्थितोऽभूद्वादवैः साकं देवैरिन्द्र इव प्रभुः ॥२९॥
इन्द्रनीलो महाराज ज्ञानी माहिष्मतीपतिः । स्वदूतं प्रेषयामास प्रद्युम्नाय महात्मने ॥३०॥
प्रद्युम्नराजशिबिरे दूतो गत्वा कृताञ्जलिः । उवाच वचनं तत्र सर्वेषां शृण्वतां नृप ॥३१॥

दूत उवाच

हस्तिनापुरनाथेन धार्तराष्ट्रेण धीमता । स्थापितोऽतिबलो वीरो बलिं कस्मै न दास्यति ३२॥
सुयोधनाय चेच्छाभिर्द्रव्यं यच्छति नो बलात् । योद्धव्यं च भवद्भिश्च विफलो हि रणोऽत्र वै ॥३३॥

श्रीप्रद्युम्न उवाच

यथा गयो दूत कर्लिगराड् यथा तथाऽभिभूतोऽपि बलिं प्रदास्यति ।
नृपं न जानाति महोग्रसेनकं माहिष्मतीशोऽयमतीव राजराट् ॥३४॥

श्रीनारद उवाच

उक्तो दूतस्तदैवाशु गत्वा माहिष्मतीपतिम् । सभायां कथयामास प्रद्युम्नकथितं वचः ॥३५॥
यदूनामुद्धटं सैन्यं वीक्ष्य माहिष्मतीपतिः । गजानां पञ्चसाहस्रं हयानां नियुतं शुभम् ॥३६॥
रथानामयुतं जैत्रं नीत्वा राजा विनिर्गतः । बलिं ददौ समेत्याशु प्रद्युम्नाय महात्मने ॥३७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्संहं श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे मरुधन्वमालवमाहिष्मतीदेशविजयो

नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी गुर्जर तथा चेदिदेशकी यात्रा)

श्रीनारद उवाच

प्रद्युम्नोऽथ महावीर्यो जित्वा माहिष्मतीपतिम् । विकर्षन्महतीं सेनां गुर्जराजं समाययौ ॥ १ ॥

स शृंगारतिलकके समान प्रचुर पुष्पसमूहको पगड़ीकी तरह बहाती हुई वह रही थी ॥ २७ ॥ उसके तटपर
बेंत और बाँसके वृक्ष माधवी लतासे अत्यन्त शोभित हो रहे थे । जैसे देवताओंसे स्वर्गनदी मन्दाकिनीकी
शोभा होती है ॥ २८ ॥ उसीके किनारे यादवेश्वर प्रद्युम्नने पड़ाव डाल दिया और यादवोंके साथ टिक गये ।
जैसे देवताओंके साथ इन्द्र टिकते हैं ॥ २९ ॥ तब माहिष्मतीपुरीके नरेश महाराज इन्द्रनीलने उनके पास
अपना दूत भेजा ॥ ३० ॥ वह दूत प्रद्युम्नके शिबिरमें गया और प्रणाम करके सबके समक्ष यह वचन
बोला ॥ ३१ ॥ दूतने कहा—हस्तिनापुरके बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रने महाबली इन्द्रनीलको इस राज्यकी
गद्दीपर बिठाया था । इस कारण वे किसीको भेंट नहीं देते ॥ ३२ ॥ दुर्योधनको अपनी इच्छासे धन देते
हैं, बलपूर्वक नहीं । यदि आप युद्ध करेंगे तो वह विफल होगा ॥ ३३ ॥ श्री प्रद्युम्नने कहा—हे दूत ! जैसे
राजा गय और कर्लिगरनरेशने भेंट दी थी । वैसे ही अपना तिरस्कार कराके माहिष्मती पुरीका नरेश भी
मुझे भेंट देगा । यह बात दूसरी है कि माहिष्मती पुरीका नरेश राजा उग्रसेनको नहीं जानता ॥ ३४ ॥
श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! वह दूत तत्काल वहाँसे चलकर माहिष्मतीपतिके पास गया और सभामें
प्रद्युम्नकी कही बात कह सुनायी ॥ ३५ ॥ यादवोंकी उद्धट सेना देखकर माहिष्मतीनरेश पाँच हजार हाथी,
दस लाख घोड़े तथा दस हजार विजयी रथ लेकर पुरीसे बाहर निकला और प्रद्युम्नके पास जाकर उन्हें भेंट
दी ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्संहं 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! महाबली प्रद्युम्न इस प्रकार माहिष्मतीनरेशको जीतकर अपनी

गुर्जरस्याधिपं वीरमृष्यं नाम महाबलम् । जग्राह सेनया कार्णिकस्तुण्डयाऽर्हि यथाऽविराट् ॥ २ ॥
 सद्यस्तस्माद्बलिं नीत्वा यादवेंद्रो महाबलः । विकर्षन्महतीं सेनां चेदिदेशास्ततो ययौ ॥ ३ ॥
 दमघोषचेदिराजो वसुदेवस्वसुः पतिः । शिशुपालस्तस्य पुत्रः कृष्णशत्रुः प्रकीर्तितः ॥ ४ ॥
 अभीयाय महाबुद्धिर्दमघोषं महाबलम् । नत्वा ग्राह महाबुद्धिमुद्धवो बुद्धिसत्तमः ॥ ५ ॥

उद्धव उवाच

राजन्देहि बलिं तस्मा उग्रसेनाय भूभृते । विजित्य नृपतीन् योऽसौ राजसूयं करिष्यति ॥ ६ ॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं निशम्य वचनं दमघोषसुतः खलः । स्फुरदोष्ठो मन्युपरः ग्राहेदं सदसि त्वरम् ॥ ७ ॥

शिशुपाल उवाच

दुरत्यया कालगतिरहो चित्रमिदं जगत् । विधेः कालात्मकस्यापि प्राजापत्ये भवेत्कलिः ॥ ८ ॥
 क राजहंसः काकः क क मूर्खः क च पण्डितः । भृत्या विजेष्यन्ति नृपं चक्रवर्तिनमीश्वरम् ॥ ९ ॥
 ययातिशापाद्यदवो अष्टराज्यपदाः स्मृताः । राज्यं स्वल्पं जलं प्राप्य प्रोच्छलन्त्यापगा इव १० ॥
 अवंशसंभवो राजा मूर्खपुत्रो हि पण्डितः । निर्धनश्च धनं प्राप्य तृणवन्मन्यते जगत् ॥ ११ ॥
 उग्रसेनः कतिदिनै राजत्वं समुपागतः । मन्त्रिणा वासुदेवेन पूजितः स बलान्नृपः ॥ १२ ॥
 तस्य मंत्री वासुदेवो जरासंधमयाद् द्रुतम् । मथुरां स्वपुरीं त्यक्त्वा समुद्रं शरणं गतः ॥ १३ ॥
 आभीरस्यापि नन्दस्य पूर्वं पुत्रः प्रकीर्तितः । वसुदेवो मन्यते तं मत्पुत्रोऽयं गतत्रयः ॥ १४ ॥
 वसुदेवाद्गौरवर्णादयं दयामः कुतोऽभवत् । पितामहोऽपि गौरश्च दुःखहास्यमिदं वचः ॥ १५ ॥
 प्रद्युम्नं तत्सुतं जित्वा सबलं यादवैः सह । कुशस्थलीं गमिष्यामि महीं कर्तुमयादवीम् ॥ १६ ॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा धनुरादाय तूणौ चाक्षयसायकौ । गंतुमभ्युद्यतं वीक्ष्य चेदिराजस्तमब्रवीत् ॥ १७ ॥

विशाल वाहिनीके साथ गुजरात गये ॥ १ ॥ गुर्जर देशके महाबली नरेश ऋष्यको अपनी सेनाकी सहायतासे पकड़ लिया । जैसे पक्षिराज गरुड अपनी चोंचसे साँप पकड़ लेते हैं ॥ २ ॥ तुरन्त उससे भेंट लेकर अपनी सेना-के साथ चेदिदेशको चल पड़े ॥ ३ ॥ चेदिराज दमघोष वसुदेवकी बहिनका पति था । उसका पुत्र शिशुपाल भगवान् श्रीकृष्णका शत्रु था ॥ ४ ॥ अतिबुद्धिमान् उद्धव महाबुद्धिमान् राजा दमघोषके पास गये और नमस्कार करके बोले ॥ ५ ॥ उद्धवने कहा—हे राजन् ! आप महाराज उग्रसेनको भेंट प्रदान करिए । क्योंकि वे सब राजाओंको जीतकर राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं ॥ ६ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! उद्धवके वचन सुनकर दमघोषके खल पुत्र शिशुपालने कहा । उस समय मारे क्रोधके उसका होंठ काँप रहा था ॥ ७ ॥ शिशुपाल बोला—कालकी गति दुरत्यय होती है । यह संसार बड़े आश्चर्यका विषय है । तभी तो कालात्मा जह्मासे कुम्भकार कहता है कि प्रजापति मैं हूँ या तू है ? ॥ ८ ॥ कहाँ हंस और कहाँ कौआ, कहाँ मूर्ख और कहाँ पण्डित । तभी तो हम चक्रवर्ती राजाओंको ये नौकर जीतना चाहते हैं ॥ ९ ॥ राजा ययातिके शापसे यादवोंका राज्य नष्ट हो गया था । अब थोड़ा-सा राज्य पाकर ये उसी तरह उछलते हैं, जैसे थोड़ेसे भोजन-को पाकर छोटी नदियाँ उमड़ पड़ती हैं ॥ १० ॥ अवंशमें उत्पन्न राजा, मूर्खका पण्डित पुत्र और दरिद्र धनी समस्त संसारको तृणवत् समझता है ॥ ११ ॥ वह उग्रसेन कवका राजा है, जिसका मंत्री कृष्ण है । उसे तो श्रीकृष्णने ही बलपूर्वक राजा बना दिया है ॥ १२ ॥ उसका मंत्री कृष्ण जरासंधके भयसे मथुरापुरी त्याग-कर समुद्रमें जा छिपा है ॥ १३ ॥ कृष्ण वास्तवमें नन्द अहीरका पुत्र है । उसे वसुदेवने बरबस अपना पुत्र मान लिया । उसे इस बातपर तनिक भी लाज नहीं आती ॥ १४ ॥ वसुदेव तो गौरवर्ण हैं । उनके घरमें यह काला पुत्र कैसे उत्पन्न हो गया । उसका पितामह भी गौरवर्ण है । यह बड़े दुःख और बड़ी हँसोकी बात है ॥ १५ ॥ सो मैं कृष्णके पुत्र प्रद्युम्न तथा उसके साथी यादवोंको जीतकर द्वारका जाऊँगा और सारी धरती

दमघोष उवाच

शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि क्रोधं मा कुरु मा कुरु । अकस्मादाचरेत्कार्यं न सिद्धिं विंदते ह्यसौ ॥१८॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं न क्षमासमम् । तस्मात्साम प्रकर्तव्यं साम्नो न सदृशं सुखम् ॥१९॥
दानेन राजते साम दानं सत्क्रियया पुनः । सत्क्रियाऽपि तथा योग्यं गुणं संप्रेक्ष्य राजते ॥२०॥
यादवाश्चेदिपाश्चैव ज्ञातिसंवाधिनः स्मृताः । चेदिपानां च वृष्णीनां कलिं नेच्छामि तत्त्वतः ॥२१॥

श्रीनारद उवाच

शिशुपालो बोधितोऽपि दमघोषेण धीमता । नोवाच किञ्चिद्विमनास्तूष्णींभूतो महाखलः ॥२२॥

श्रुतिश्रवाश्चेदिपराजराज्ञी स्वसा शुभा शूरसुतस्य राजन् ।

समेत्य पुत्रं शिशुपालसंज्ञं प्रत्याह सम्यग्विनयान्विता सा ॥२३॥

श्रुतिश्रवा उवाच

मा पुत्र खेदं कुरुतात्कदाचिन्माभूत्कलिश्चेदिपयादवानाम् ।

ते मातुलोऽयं किल शूरसूनुर्भ्राता च ते तत्सुत एव कृष्णः ॥२४॥

तस्यात्मजा येऽत्र समागतास्ते प्रद्युम्नमुख्याः शतशो महांतः ।

संपूजनीयाश्च मया भवद्भिः संलालनीया न हि युद्धयोग्याः ॥२५॥

अहं गमिष्यामि सहार्द्रचित्ता नेतुं त्वया तात समागतांस्तान् ।

द्रष्टुं चिरोत्कण्ठमना महोत्सवैर्नैतादृशोऽयं समयः कदाचित् ॥२६॥

शिशुपाल उवाच

मम शत्रू रामकृष्णौ यदवः शत्रवश्च मे । घातयिष्यामि तान्सर्वान् यैरहं तु तिरस्कृतः ॥२७॥

पुरा वै कुंडिनपुरे याम्यां मे हेलनं कृतम् । विवाहो वारितो मे वै रामकृष्णावरी मम ॥२८॥

यदि तेषां यादवानां युवां पक्षं करिष्यथः । तदा त्वां सह पित्रा च निगृह्य निगडैर्दृढैः ॥२९॥

यादवोंसे शून्य कर दूंगा ॥ १६ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! ऐसा कह और धनुष तथा अक्षय बाणवाले दो तरकस लेकर जानेको उद्यत शिशुपालसे राजा दमघोषने कहा ॥ १७ ॥ दमघोष बोले—हे पुत्र । मैं कहता हूँ कि क्रोध मत करो—मत करो । अकस्मात् कोई काम कर गुजरनेसे सिद्धि नहीं प्राप्त होती ॥ १८ ॥ धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका साधन क्षमा है । अतएव इस समय सामनीति अपनानी चाहिए । क्योंकि सामनीतिके समान सुख और किसी नीतिमें नहीं है ॥ १९ ॥ दानसे सामकी और श्रेष्ठ कार्यसे दानकी शोभा होती है । श्रेष्ठ कार्यकी भी यथोचित गुणोंसे ही शोभा होती है ॥ २० ॥ यादव और चेदिराजे जातिबन्धु हैं । मैं नहीं चाहता कि चेदिवंशियों और यादवोंमें झगड़ा हो ॥ २१ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! बुद्धिमान् राजा दमघोषके समझानेपर विमनस्क होकर महाखल शिशुपाल कुछ नहीं बोला ॥ २२ ॥ उसी समय चेदिराजकी रानी तथा वसुदेवकी बहिन श्रुतिश्रवा अपने पुत्र शिशुपालके पास गयी और बड़े विनीत भावसे कहा ॥ २३ ॥ श्रुतिश्रवा बोली—हे पुत्र ! तुम खेद न करो । मैं भी यही चाहती हूँ कि कोई ऐसा काम न किया जाय कि जिससे यादवों और चेदिवंशियोंमें कलह हो । हे पुत्र ! वसुदेव तुम्हारे मामा हैं और उनके पुत्र श्रीकृष्ण तुम्हारे भाई हैं ॥ २४ ॥ उन श्रीकृष्णके जो प्रद्युम्न आदि पुत्र तथा अन्यान्य बड़े-बड़े यादव यहाँ आये हैं, वे सब तुमसे सत्कार पानेके अधिकारी हैं—लड़ाईके नहीं ॥ २५ ॥ हे पुत्र ! मैं तेरे साथ उनको लेने जाऊँगी । क्योंकि ऐसा समय बार-बार नहीं मिलता ॥ २६ ॥ शिशुपालने कहा—कृष्ण, बलदेव और सभी यादव मेरे शत्रु हैं । मैं अपना अपमान करनेवालोंको मार डालूँगा ॥ २७ ॥ पूर्वकालमें मेरे विवाहको रोककर कुंडिनपुरमें बलराम और कृष्णने मेरा बहुत बड़ा अपमान किया था । इसीसे वे मेरे शत्रु हैं ॥ २८ ॥ यदि तुम मेरे शत्रुओंका पक्ष लोगी तो मैं तुम्हें और पिताजी दोनोंको मजबूत रस्सोंसे बांधकर वैसे ही जेलमें डाल दूँगा ॥ २९ ॥ जैसे

कारागारे कारयामि कंसः स्वपितरौ यथा । अन्यथा चेद्विधियामि शपथो मे तु दुर्घटः ॥३०॥

श्रीनारद उवाच

तद्वचः परुषं श्रुत्वा तूष्णीं यातेऽथ चेदिपे । तद्वचः स्वबलं प्राप्य ग्राह सर्वं यथोदितम् ॥३१॥

वाहिनी ध्वजिनी चैव प्रतिभाक्षौहिणीयुता । चतुर्धा शिशुपालस्य सेना युक्ता बभूव ह ॥३२॥

बहुलाश्व उवाच

वाहिन्याद्याश्च या सेनास्तत्संख्यां वद मे प्रभो । ऋषयो हि प्रजानन्ति भूतं भव्यं भवत्परम् ॥३३॥

श्रीनारद उवाच

शतं द्विपानां रथिनां सहस्रं शतसंयुतम् । अयुतं तुरगाणां च पत्नीनां लक्षमेव च ॥३४॥

सेनाया लक्षणं स्वल्पं द्विगुणं चतुरङ्गिणी । चतुःशतं द्विपानां च रथानामयुतं तथा ॥३५॥

चतुर्लक्षं हयानां च पत्तीनामेककोटयः । लोहकंचुकसंयुक्ताः समर्थबलवाहनाः ॥३६॥

शस्त्रास्त्रज्ञा यत्र शूरा वाहिनी सा बुधैः स्मृता । वाहिन्या द्विगुणीभूता ध्वजिनी सा प्रकीर्तिता ३७॥

ध्वजिन्या द्विगुणी ज्ञेया पृतनां कथिता पुरा । ससाहसोऽपि शूरः स्यात्सामन्तः शतशूरभृत् ॥३८॥

सामन्तानां शतं बिभ्रत्स गजी कथितो मृधे । समरे सारथिं चाश्वान् रथं रक्षेत्रथी च यः ॥३९॥

सेनां रक्षति यो बाणैः कथ्यते स महारथी । स्वसेनां रक्षयञ्छत्रूसूदयन् रणमण्डले ॥४०॥

योऽक्षौहिण्या समं युद्धचेत्सदा सोऽतिरथी स्मृतः ॥४१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विधित्वखण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे गुर्जरराट्चेदिदेशगमनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

(धुमान् तथा शक्तका वध)

श्रीनारद उवाच

निर्गतः शिशुपालोऽसौ सबलश्चन्द्रकापुरात् । पितरौ तौ तिरस्कृत्य स्वभावो ह्यसतामयम् ॥ १ ॥

कंसने अपने पिताको बन्दी बनाया था । इससे भी काम न चलेगा तो मैं तुम दोनोंको भी मार डालूँगा । मेरी प्रतिज्ञा बड़ी भीषण होती है ॥ ३० ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! उसकी रूखी बातें सुकर चेदिराज और उनकी रानी दोनों चुप हो गये और उनकी चुप्पीसे प्रोत्साहित होकर शिशुपाल मनमानीपर उतारू हो गया । तत्काल उद्वव भी लौट आये और यादवोंको सब हाल कह सुनाया ॥ ३१ ॥ इधर वाहिनी, ध्वजिनी, पृतना और अक्षौहिणी ये चार प्रकारकी सेनायें शिशुपाल द्वारा सुसज्जित की गयीं ॥ ३२ ॥ राजा बहुलाश्व बोले—हे महामुने ! आपने अभी वाहिनी आदि चार प्रकारकी सेनायें बतायी हैं, उनकी संख्या बताइए । क्यों-कि ऋषि लोग वर्तमान, भूत और भविष्यकी सब बात जानते हैं ॥ ३३ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! सौ हाथी, ग्यारह सौ रथ, दस हजार घोड़े और एक लाख पैदल इनकी सेना 'सेना' कहलाती है ॥ ३४ ॥ इससे दूनी अर्थात् दो सौ हाथी बाइस सौ रथ, बीस हजार घोड़े और दो लाख पैदल सैनिकोंकी 'चतुरङ्गिणी' सेना कही जाती है ॥ ३५ ॥ चार सौ हाथी, दस हजार रथ, चार लाख घोड़े, एक करोड़ पैदल, लौहकवचधारी पूर्ण समर्थ सैनिकों तथा शस्त्रास्त्रोंके विशेषज्ञ वीरोंकी सेनाको 'वाहिनी' कहते हैं । इस वाहिनीसे दुगुनी संख्या-वाली सेना 'ध्वजिनी' कहलाती है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ध्वजिनीसे दुगुने हाथी-घोड़े आदिके समवायको 'पृतना' कहते हैं । जो साहसी और शूर हो, जो सौ शूरोंसे लड़ सकता हो, वह सामन्त कहा जाता है ॥ ३८ ॥ जो सौ सामन्तोंको एकत्र कर सके, वह गजो कहलाता है । जो संग्राममें सारथीकी, रथकी और घोड़ोंकी रक्षा करे, वह रथी होता है ॥ ३९ ॥ जो वीर अपने बाणोंसे सेनाकी रक्षा करे और शत्रुओंको मारता रहे, वह 'महारथी' होता है ॥ ४० ॥ जो अकेला ही एक अक्षौहिणी सेनासे लड़ता हुआ अपनी सेनाकी रक्षा

वाहिनीध्वजिनीभ्यां च ध्रुमच्छक्तौ विनिर्गतौ । पृतनाऽक्षौहिणीभ्यां तौ रङ्गपिङ्गौ च मंत्रिणौ ॥ २ ॥
 शिशुपालमहासैन्यं प्रलयान्धिसमं नृप । संवीक्ष्य यदवस्तर्तुं चाजगमुः कृष्णपोतकाः ॥ ३ ॥
 वाहिनीसहितः पश्चाद्द्युमानामा महाबलः । युयुधे यादवैः सार्द्धं शिशुपालप्रणोदितः ॥ ४ ॥
 द्वयोश्च सैन्ययोर्बाणैरंधकारोऽभवद्रणे । ह्यपादरजोवृन्दैः प्रोत्थितैश्छादयन्नभः ॥ ५ ॥
 हयाश्च नृप धावन्तः प्रोत्पतंतो द्विपान्प्रति । द्विपाश्च सक्षता युद्धे पातयंतः पदैर्द्विषः ॥ ६ ॥
 शृङ्गादण्डस्य फूत्कारैर्मर्दयन्त इतस्ततः । कस्तूरीपत्रसिंदूररक्तकंवलमंडिताः ॥ ७ ॥
 बाणैर्गदाभिः परिधैः खड्गैः शूलैश्च शक्तिभिः । छिन्नांगाः पत्तयः पेतुश्छिन्नबाह्वङ्घ्रिजानवः ॥ ८ ॥
 कश्चित्तीक्ष्णासिना राजन् हयान्युद्धे द्विधाऽकरोत् । केचिदंतान् संगृहीत्वा कुम्भेषु करिणां गताः ॥ ९ ॥
 अमात्यं हस्तिवाहं च मर्दयन्तो मृगेन्द्रवत् । उल्लंघयंतः सहया गजवृन्दं महाबलाः ॥ १० ॥
 खड्गप्रहारं कुर्वतो विदार्य परसैनिकान् । ह्यस्पृष्टा न दृश्यन्ते दृश्यन्ते ते नटा इव ॥ ११ ॥
 सैन्यवेगं च शत्रूणां दृष्ट्वाऽक्रूरः समाययौ । चकार दुर्दिनं बाणैर्बाणौघैश्चापि निर्गतैः ॥

छादयामास चाक्रूरं वर्षासूर्यमिवाम्बुदः ॥ १२ ॥

छिन्वा तद्बाणपटलमसिना गांदिनीसुतः । शक्त्या तताड तं वीरं ध्रुमंतं क्रोधमूर्छितम् ॥ १३ ॥
 तत्प्रहारेण भिन्नांगो मूर्छितो घटिकाद्वयम् । पुनरुत्थाय युयुधे शिशुपालसखा बली ॥ १४ ॥
 गृहीत्वाऽथ गदां गुर्वीं लक्षभारविनिर्मिताम् । तताड हृदि चाक्रूरं जगर्ज घनवद्द्युमान् ॥ १५ ॥
 अक्रूरे तत्प्रहारेण किञ्चिद्व्याकुलमानसे । युयुधानस्तदा प्रागाज्ज्याशब्दं कारयन्मुहुः ॥ १६ ॥

करे, वह 'अतिरथी' माना जाता है ॥ ४१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! माता-पिताका निरादर करके शिशुपाल अपनी सेनाके साथ चन्द्रकापुरसे बाहर निकला । दुर्जनोका स्वभाव ही ऐसा होता है ॥ १ ॥ अपनी वाहिनी और ध्वजिनी सेना लेकर द्युमान् और शक्त ये दोनों निकले । बादमें पृतना तथा अक्षौहिणी लेकर रंग और पिगनामके दोनों मंत्री चले ॥ २ ॥ प्रलयकालीन समुद्रके समान उमड़ती शत्रुसेनाको देखकर एकमात्र कृष्ण ही जिनके जहाज थे, वे यादव उस समुद्रको पार करनेके लिए आगे बढ़े ॥ ३ ॥ शिशुपाल द्वारा प्रेरित महाबली द्युमान् विशाल वाहिनी लेकर यादवोंसे लड़ने लगा ॥ ४ ॥ दोनों सेनाओंकी बाणवर्षासे रणभूमिमें अन्धकार छा गया । घोड़ोंके खुरोंसे उड़ी धूलसे सारा आकाश भर गया ॥ ५ ॥ हे राजन् ! दौड़ते हुए हाथियोंपर बाण गिरते थे तो घायल हाथी शत्रुओंको पटकते हुए भागते थे ॥ ६ ॥ अपनी सूँड़से फुंकारते हुए हाथी इधर-उधर लोगोंको रौंदते फिरते थे । कस्तूरी तथा सिन्दूरकी रचनासे उनका मुख सजा रहता था और लाल बनातकी धूल उनकी पीठपर पड़ी रहती थी ॥ ७ ॥ बाण, गदा, परिध, तलवार, त्रिशूल और बर्छासे जिन पैदल सैनिकोंकी भुजा, पैर, घुटने तथा अन्यान्य अंग कट गये थे, वे यत्र-तत्र पड़े हुए थे ॥ ८ ॥ किसी जिन पैदल सैनिकोंकी भुजा, पैर, घुटने तथा अन्यान्य अंग कट गये थे, वे यत्र-तत्र पड़े हुए थे ॥ ८ ॥ किसी वीरने तीखी तलवारसे काटकर घोड़ोंके दो टुकड़े कर दिये और कुछ लोग दांत पकड़कर हाथियोंपर चढ़ गये ॥ ९ ॥ सिंहके समान कुछ वीर महावतों समेत हाथियों और उनके सबारोंको मारने लगे । कुछ घुड़सवार हाथियोंके झुण्डको लाँघकर प्रहार कर रहे थे ॥ १० ॥ कुछ वीर शत्रुसैनिकोंपर तलवारका प्रहार करते थे । कुछ योद्धा नटकी तरह सरपट घोड़े दौड़ाते थे, किन्तु ऐसा लगता था कि जैसे घोड़ोंके शरीरसे उनके किसी अंगका स्पर्श ही नहीं होता है ॥ ११ ॥ शिशुपालकी सेनाका प्रबल प्रहार देखकर अक्रूर आगे आये । उन्होंने बाणोंसे सारा आकाश ढाँक दिया । उनके शत्रुओंने अपनी बाणवर्षासे अक्रूरको ढाँक दिया । जैसे वर्षा सूर्यको ढाँक देती है ॥ १२ ॥ तब गांदिनीके पुत्र अक्रूरने अपनी तलवारसे उस बाणपटलको काटकर क्रोधसे मूर्छित द्युमान्को बर्छासे मारा ॥ १३ ॥ इस प्रहारसे घायल द्युमान् दो घड़ीतक मूर्छित पड़ा रहा । बादमें वह शिशुपालका सखा उठकर फिर लड़ने लगा ॥ १४ ॥ तभी द्युमान्ने एक लाख भारकी भारी गदा लेकर अक्रूरका

शिरस्तस्याशु चिच्छेद बाणैर्नैकेन लीलया । पतिते द्युमति ह्याजौ वीरास्तस्य विदुद्रुवुः ॥१७॥
 तदैव शक्तः संप्राप्तो दृष्ट्वा सेनां पलायिताम् । शूलं चिक्षेप सहसा युयुधानाय धोमते ॥१८॥
 युयुधानश्च बाणौघैस्तच्छूलं शतधाऽकरोत् । शक्तो गृहीत्वा परिधं युयुधानं तताड ह ॥१९॥
 युयुधानोऽर्जुनसखः क्षणं मूर्च्छामवाप ह । तदैव वीरः संप्राप्तः कृतवर्मा महाबलः ॥२०॥
 शक्तस्यापि रथं साश्वं बाणैश्चूर्णीचकार ह । शक्तोऽपि चूर्णयामास गदया तद्रथं परम् ॥२१॥
 कृतवर्मा रथं त्यक्त्वा शक्तं जग्राह रोषतः । पातयित्वा भुजाभ्यां तं चिक्षेप नृप योजनम् ॥२२॥
 शक्ते च पतिते युद्धे शिशुपालप्रणोदितौ । रंगपिंगौ मन्त्रिणौ तौ पृतनाऽक्षौहिणीयुतौ ॥२३॥
 बाणवर्षं प्रकुर्वतौ मर्दयन्तावरीन्मृधे । आजगमतुर्मथिलेन्द्र यथा वातहुताशनौ ॥२४॥
 उद्धटं तद्वलं वीक्ष्य यादवेन्द्रपितुः समः । आदाय चापं सदसि प्रद्युम्नो वाक्यमब्रवीत् ॥२५॥

प्रद्युम्न उवाच

अहं गमिष्यामि पुरो रङ्गपिङ्गमृधे जनाः । रंगपिंगौ च दृश्येते महाबलपराक्रमौ ॥२६॥

श्रीनारद उवाच

एतच्छ्रुत्वा महाबाहुर्भानुः कृष्णसुतो बली । सर्वेषामग्रतो भूत्वा भ्रातरं ग्राह नीतिवित् ॥२७॥

भानुरुवाच

त्रैलोक्यं दृश्यते प्राप्तं यदा ते संयुक्ते प्रभो । तदा ते चापटंकारो भविष्यति न संशयः ॥२८॥

केवलेनापि खड्गेन शिरसी रङ्गपिङ्गयोः । छित्त्वा चात्र प्रवेक्ष्यामि कर्लिगशकलाविव ॥२९॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे धुमच्छक्तवधो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥



छातीपर प्रहार किया और बादलकी तरह गर्जने करने लगा ॥ १५ ॥ इस प्रहारसे अक्रूरको व्याकुल देखकर युयुधान (सात्यकि) आगे बढ़ा ॥ १६ ॥ सम्मुख पहुँचकर युयुधानने एक ही बाणसे द्युमानका सिर काट लिया । इस प्रकार द्युमानके मर जानेपर उसके सब साथी भाग गये ॥ १७ ॥ सेनाको भागती देखकर शक्त आया और आते ही उसने युयुधानपर त्रिशूलका प्रहार किया ॥ १८ ॥ किन्तु युयुधानने अपने पैने बाणोंसे उसके त्रिशूलको काटकर सौ टुकड़े कर दिये । तब शक्तने युयुधानको परिधसे मारा ॥ १९ ॥ इससे अर्जुनका मित्र युयुधान क्षणभरके लिए मूर्च्छित हो गया । तभी महाबलो कृतवर्मा आ पहुँचा ॥ २० ॥ उसने आते ही बाणोंको वीछार करके शक्तके रथ तथा घोड़ोंको चूर कर दिया । बदलेमें शक्तने गदाकी मारसे कृतवर्माके रथको चूर्ण कर दिया ॥ २१ ॥ तब कृतवर्मा रथसे कूद पड़ा और कुपित होकर शक्तको पकड़ लिया और हाथसे धुमाकर एक योजन (चार कोस) दूर फेंक दिया ॥ २२ ॥ जब शक्त रणभूमिमें गिर गया, तब शिशुपालकी प्रेरणासे उसके दो मंत्री रंग और पिंग पृतना तथा अक्षौहिणी सेनाके साथ समरभूमिमें आये ॥ २३ ॥ आते ही उन्होंने बाणोंकी वर्षा करके शत्रुओंका मर्दन आरम्भ कर दिया । हे मिथिलेश ! जैसे आग और आँधी साथ आती हैं, वैसे ही वे दोनों आये थे ॥ २४ ॥ उस उद्धट सेनाको देख श्रीकृष्णके सदृश पराक्रमी यादवेन्द्र प्रद्युम्नने सभामें धनुष लेकर कहा ॥ २५ ॥ प्रद्युम्न बोले—हे साथियो ! रंग-पिंगके युद्धमें मैं स्वयं जाता हूँ । ये दोनों बड़े बलवान् दीखते हैं ॥ २६ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! प्रद्युम्नकी बात सुनकर श्रीकृष्णका पुत्र महाबाहु भानु सबके आगे आ खड़ा हुआ और अपने भाई प्रद्युम्नसे कहा ॥ २७ ॥ भानु बोला—भैया ! यदि आपके समक्ष समस्त त्रिलोकी आ जाय, तभी आपके धनुषका टंकोर होगा । इसमें सन्देह नहीं है ॥ २८ ॥ मैं केवल अपनी इस तलवारसे ही रंग और पिंग दोनोंका सिर वैसे ही काटकर ले आऊँगा, जैसे तर-
 बज काटा जाता है ॥ २९ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

(चेदिदेशविजय)

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा शत्रुहा भानुर्गृहीत्वा खड्गचर्मणी । पदातिः प्रययौ सैन्ये वने वन्यकरीव सः ॥ १ ॥
 भानुः खड्गेन शत्रूंस्ताञ्छिन्नबाहुंश्चकार ह । द्विपान् हयान्सम्मुखस्थान् पार्श्वस्थांश्च द्विधाऽकरोत् ॥
 खड्गद्वितीयो ह्येकाकी रेजे छिदन्नरीन्मृधे । नीहारमेघपटलैर्भानुर्भानुरिव स्फुरन् ॥ ३ ॥
 हस्तिनां छिन्नकुम्भानां भानुः खड्गेन मैथिल । मुक्ता निपेतुश्च यथा तारकाः क्षीणकर्मणाम् ॥ ४ ॥
 क्षणमात्रेण तत्सैन्यं पातयित्वा रणांगणे । रंगपिंगोपरि प्रागाद्भानुर्वीरो महाबलः ॥ ५ ॥
 कृष्णदत्तेन खड्गेन रथौ तौ रङ्गपिङ्गयोः । छित्त्वा हयान्सनेतुंश्च भानुर्युद्धे द्विधाऽकरोत् ॥ ६ ॥
 खड्गौ नीत्वा रङ्गपिंगौ तेडतुस्तं महोद्भटौ । भानुचर्मगतौ खड्गौ भंगीभूतौ बभूवतुः ॥ ७ ॥
 भानुखड्गग्रहारेण शिरसी रंगपिंगयोः । युगपत्पेततुर्थ्युद्धे तदद्भुतमिवामवत् ॥ ८ ॥
 भानुस्तयोश्च शिरसी नीत्वा प्रद्युम्नसंमुखे । आययौ विजयी वीरः श्लाघितः सैन्यनायकैः ॥ ९ ॥
 दिवि दुन्दुभयो नेदुर्नवदुन्दुभिभिः समम् । अभूजयजयारावः पुष्पवर्षाः सुरैः कृताः ॥ १० ॥
 रंगपिंगौ मृतौ श्रुत्वा शिशुपालो रुषान्वितः । जैत्रं रथं समारुह्य यदूनां संमुखं ययौ ॥ ११ ॥
 मदच्युर्द्विर्गजैर्दीर्घै रत्नकंबलमंडितैः । स्वर्णनीडसमायुक्तैर्लोलघण्टाकणत्स्वनैः ॥ १२ ॥
 रथैश्च देवधिषण्यामैर्वायुवेगैस्तुरंगमैः । विद्याधरसमैर्वीरैर्नादयन् वसुधातलम् ॥ १३ ॥
 शिशुपालबलं दृष्ट्वा शक्रदत्तरथे ततः । सर्वेषामग्रतः कार्ष्णिः प्रययौ धन्विनां वरः ॥ १४ ॥
 शंखं दध्मौ हरेः पुत्रो दिशः खं नादयन्नृप । तेन नादेन शत्रूणां कंपोऽभूद्बुद्धिर्मानद ॥ १५ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! ऐसा कहकर शत्रुको नष्ट करनेमें कुशल भानु ढाल-तलवार लेकर वनेले हाथीके समान पैदल ही चल पड़ा ॥ १ ॥ रणभूमिमें पहुँचकर भानुने अपनी तलवारसे शत्रुओंकी भुजायें काट डालीं और सामने पड़नेवाले हाथियों, घोड़ों और पार्श्ववर्ती शत्रुओंको काटकर दो-दो टुकड़े कर दिये ॥ २ ॥ जिसकी सहायक केवल तलवार थी, वह अकेला वीर भानु शत्रुओंको काटता हुआ इस प्रकार शोभित हुआ, जैसे कुहरेको हटाकर सूर्य शोभित होता है ॥ ३ ॥ हे मैथिल ! भानुकी तलवारसे कटे हाथियोंके मस्तकसे गिरकर जो मोती बिखर गये थे, वे क्षीणपुण्यवाले तारागणोंके सदृश दीख रहे थे ॥ ४ ॥ क्षण-मात्रमें रणांगणकी शत्रुसेनाको धराशायी करके महाबली भानु रंग-पिंगकी ओर बढ़ा ॥ ५ ॥ वहाँ पहुँचते ही भानुने श्रीकृष्णकी दी हुई तलवारसे रंग-पिंगके घोड़ों तथा सारथी समेत रथको काटकर दो-दो टुकड़े कर दिये ॥ ६ ॥ तब रंग-पिंगने भी तलवार लेकर भानुपर प्रहार किया, किन्तु भानुकी ढालमें लगते ही दोनोंकी तलवारें टूट गयीं ॥ ७ ॥ इसके बाद जब भानुने उन दोनोंपर अपनी तलवारका प्रहार किया तो दोनोंके सिर कटकर दूर जा गिरे । उस युद्धमें यह बड़ी आश्चर्यजनक घटना घट गयी ॥ ८ ॥ तदनन्तर भानु रंग-पिंगका कटा मस्तक लेकर प्रद्युम्नके समक्ष गये, वहाँ सभी सेनानायकोंने उनकी सराहना की ॥ ९ ॥ तब युद्धस्थलकी दुन्दुभीके साथ देवताओंकी भी दुन्दुभियाँ बजने लगीं । चारों ओर भानुकी जयजयकार होने लगी और देवता उनपर फूल बरसाने लगे ॥ १० ॥ रंग-पिंगके मरणका समाचार सुनकर शिशुपाल क्रोधके साथ अपने विजयी रथपर सवार होकर यादवोंके समक्ष जा पहुँचा ॥ ११ ॥ उसके साथ मद बहाते-वाले बड़े-बड़े हाथी रत्नजटित कंबलोंसे अलंकृत थे । उनपर सुनहले हौदे कसे थे और चंचल घंटे बज रहे थे ॥ १२ ॥ जिनमें वायुके समान द्रुगगामी घोड़े जुते थे, जिनका स्वरूप विमान जैसा था, जिनपर विद्याधरों-के समान वीर बैठे थे, जिनके निनादसे पृथ्वी मुखरित हो उठी, ऐसे रथोंके साथ शिशुपाल रणांगणमें आया ॥ १३ ॥ उसकी अपार सेना देखकर प्रद्युम्न स्वयं इन्द्रके दिये रथपर बैठकर सबके आगे बढ़े ॥ १४ ॥ रणभूमिमें आकर प्रद्युम्नने सभी दिशाओं तथा आकाशको मुखरित करके शंख बजाया । हे मानद ! उस घनघोर निनादसे

शिशुपालमहासैन्ये प्रासाद इव दुर्गमे । चक्रे नाराचसोपानं सहसा रुक्मिणीसुतः ॥१६॥
 दमघोषसुतो धीमान् धनुष्टंकारयन्मुहुः । ब्रह्मास्त्रं संदधे यद्वै दत्तात्रेयेण शिक्षितम् ॥१७॥
 प्रचंडं सर्वतस्तेजो दृष्ट्वा श्रीरुक्मिणीसुतः । ब्रह्मास्त्रेणापि तद्युद्धे संजहार स लीलया ॥१८॥
 शिशुपालो महाधीमानंगारास्त्रं समादधे । जामदग्न्येन यदत्तं महेंद्रे पर्वते नृप ॥१९॥
 तस्मादंगारवर्षाभिः कार्ष्णिसेनाऽतिविह्वला । पर्जन्यास्त्रं महादिव्यं तदा कार्ष्णिः समादधे ॥२०॥
 स्थूलाभिर्मेषभारामिरंगाराः शान्तिमाययुः । शिशुपालस्तदा क्रुद्धो गजास्त्रं तत्समादधे ॥२१॥
 यदगस्त्येन मुनिना शिक्षितं मलयाचले । महोद्भटा गजा दीर्घाः कोटिशस्तद्विनिर्गताः ॥२२॥
 ते सैन्यं पातयामासुः प्रद्युम्नस्य महात्मनः । हाहाकारो महानासीद्यदूनां वाहिनीषु च ॥२३॥
 प्रद्युम्नोऽथ रणश्लाघी नृसिंहास्त्रं समादधे । नृसिंहो निर्गतस्तस्मान्नादयन् वसुधातलम् ॥२४॥
 स्फुरत्सटो दीर्घवालो नखलांगूलभीषणः । ननाद हुंकृतैः शब्दैर्मक्षयंस्तान् गजान् रणे ॥२५॥
 विदार्य गजकुम्भांतमुत्पतन् भगवान् हरिः । गजघ्नं मर्दयित्वा तत्रैवांतरधीयत ॥२६॥
 चिक्षेप परिधं रोषाच्छिशुपालो महाबलः । चिच्छेद परिधं तद्वै यमदंडेन माधवः ॥२७॥
 ततश्चैधो रूपाविष्टो गृहीत्वा खड्गचर्मणी । प्रद्युम्नं तमुपाधावत्पतंग इव पावकम् ॥२८॥
 कार्ष्णिस्तताड तं खड्गं यमदंडेन वेगतः । चूर्णीचभूव तेनापि निस्त्रिंशश्चर्मणा सह ॥२९॥
 पाशदत्तेन पाशेन सहसा यादवेश्वरः । दमघोषसुतं बद्ध्वा विचर्क्य रणांगणे ॥३०॥
 शिशुपालं घातयितुं खड्गं जग्राह रोषतः । तदैव तत्करौ साक्षाद्भदो जग्राह वेगतः ॥३१॥

गद उवाच

परिपूर्णतमेनापि श्रीकृष्णेन महात्मना । वध्योऽयं देववचनं वचनं मा वृथा कुरु ॥३२॥

शत्रुओंका हृदय काँप उठा ॥ १५ ॥ शिशुपालकी उस महल जैसी महासेनापर बाणोंकी सीढ़ी बनाकर रुक्मिणीतनय प्रद्युम्न चढ़ गये ॥ १६ ॥ उसी समय दमघोषका पुत्र शिशुपाल बार-बार धनुषका टंकोर करता हुआ आया और दत्तात्रेय द्वारा प्रदत्त ब्रह्मास्त्रका उसने संधान किया ॥ १७ ॥ चारों ओर प्रचंड तेजका फैलाव देखकर प्रद्युम्नने अपने ब्रह्मास्त्रसे शत्रुके ब्रह्मास्त्रको शान्त कर दिया ॥ १८ ॥ तब बुद्धिमान् शिशुपालने महेंद्रपर्वतपर परशुरामसे प्राप्त अंगारास्त्र चलाया ॥ १९ ॥ उन अंगारोंकी वर्षासे प्रद्युम्नकी सेना विकल हो उठी । ऐसी दशामें प्रद्युम्नने पर्जन्यास्त्र चला दिया ॥ २० ॥ जिससे मेघोंकी बरसायी मोटी जलधारा गिरने लगी और सभी अंगारे बुझ गये । तब क्रुद्ध होकर शिशुपालने गजास्त्रका प्रयोग किया ॥ २१ ॥ उसमेंसे बड़े ही अद्भुत करोड़ों हाथी निकल पड़े । मलयपर्वतपर अगस्त्य मुनिने शिशुपालको इस अस्त्रके निर्माणकी विधि बताया थी ॥२२॥ उन हाथियोंने महात्मा प्रद्युम्नकी सेनाको घराशाही कर दिया । जिससे सारी यादवी सेनामें हहाकार मच गया । तब युद्धके अभिलाषी प्रद्युम्नने नृसिंहास्त्र चलाया । जिससे पृथिवीतलको निनादित करते हुए बहुतेरे नृसिंह निकले ॥ २३ ॥ २४ ॥ उनकी शिखा देदीप्यमान थी, उनके लंबे बाल और भयंकर नख थे । अपने हुंकारसे चारों ओर निनाद करते हुए उन हाथियोंका भक्षण और गर्जन करने लगे ॥ २५ ॥ वे नृसिंह सभी हाथियोंके मस्तक विदीर्ण करके अन्तर्धान हो गये ॥ २६ ॥ तब महाबली शिशुपालने क्रोधके साथ परिध चलाया । किन्तु प्रद्युम्नने अपने यमदंडसे उसे शान्त कर दिया ॥२७॥ तदनन्तर रोषमें भरा शिशुपाल ढाल-तलवार लेकर प्रद्युम्नपर वैसे ही झपटा, जैसे पतंगा दीपकपर झपटता है ॥ २८ ॥ तब प्रद्युम्नने यमदंडसे उसकी तलवारपर प्रहार किया, जिससे वह चूर हो गयी ॥ २९ ॥ उसी समय प्रद्युम्नने वरुणके दिये पाशसे दमघोषके पुत्र शिशुपालको बाँध लिया और घसीटने लगे ॥३०॥ उसको मार डालनेके लिए हाथमें तलवार ली, तैसे ही गदने लपककर प्रद्युम्नके दोनों हाथ पकड़ लिये ॥ ३१ ॥ गदने कहा—भैया ! परिपूर्णतम परमेश्वर श्रीकृष्णके हाथों इसकी मुक्ति होगी । ऐसा देवताओंका कथन है । अतः आप उनकी बात मिथ्या न करें

श्रीनारद उवाच

तदा कोलाहले जाते शिशुपालस्य बंधने । दमघोषो वलिं नीत्वा प्रागात्प्रद्युम्नसंमुखे ॥३३॥
 कार्ष्णिस्तमागतं दृष्ट्वा त्यक्त्वा शस्त्राणि शीघ्रतः । अग्रतश्चेदिषं शश्वजनाम शिरसा भुवि ॥३४॥
 मिलित्वा चाशिषं दत्त्वा प्रद्युम्नाय महात्मने । दमघोषो महाराजः प्राह गद्गदया गिरा ॥३५॥

दमघोष उवाच

प्रद्युम्न त्वं तु धन्योऽसि श्रीयदूनां शिरोमणे । मत्पुत्रेण कृतं यद्वै तत्क्षमस्व दयानिधे ॥३६॥

श्रीप्रद्युम्न उवाच

मम दोषो न ते चायं न ते पुत्रस्य हे प्रभो । सर्वं कालकृतं मन्ये प्रियमप्रियमेव वा ॥३७॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तो दमघोषोऽपि प्रद्युम्नेन प्रयंत्रितः । शिशुपालं मोचयित्वा नीत्वा ज्वाचंद्रकां पुरीम् ॥३८॥
 प्रद्युम्नस्य बलं श्रुत्वा साक्षाच्छ्रीकृष्णतेजसः । न केऽपि युयुधुस्तेन राजानश्च वलिं ददुः ॥३९॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसम्वादे रंगविजयवधे शिशुपालयुद्धे
 चेदिदेशविजयो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥



अथ दशमोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी कौकण, कुटक, त्रिगर्त, केरल, तैलंग, महाराष्ट्र, कर्णाटकपर विजय और कारुषदेशको गमन)

श्रीनारद उवाच

मनुतीर्थे ततः स्नात्वा प्रद्युम्नो यदुभिः सह । प्रययौ कौकणान्देशान्दुंदुभीचादयन्मुहुः ॥ १ ॥
 कौकणस्थोऽथ मेधावी गदायुद्धविशारदः । एकाकी मल्लयुद्धेन परीक्षन्नाययौ बलम् ॥ २ ॥
 प्रद्युम्नं सबलं प्राह शृणु मे यादवेश्वर । गदायुद्धं देहि महां मद्बलं नाशय प्रभो ॥ ३ ॥

प्रद्युम्न उवाच

एकतो ह्येकतो वीरा बलवन्तो महीतले । मानं मा कुरु हे मल्ल विष्णुमायाऽतिदुर्गमा ॥ ४ ॥

॥३२॥ शिशुपालके बाँध लिये जानेपर चारों ओर कोलाहल मच गया । तब राजा दमघोष भेंट लेकर प्रद्युम्नके पास गये ॥ ३३ ॥ दमघोषको सम्मुख खड़ा देखकर प्रद्युम्नने सब शस्त्रास्त्र फेंक दिया और पृथ्वीपर लोटकर प्रणाम किया ॥ ३४ ॥ राजा दमघोषने प्रद्युम्नको गले लगाकर आशीर्वाद दिया और गद्गद वाणीमें बोले ॥ ३५ ॥ दमघोषने कहा—हे प्रद्युम्न ! तुम धन्य हो । हे यादवोंके शिरोमणि ! हे दयानिधे ! मेरे पुत्र शिशुपालने जो कुकर्म किये हैं, उन्हें क्षमा कर दो ॥ ३६ ॥ प्रद्युम्न बोले—देखिए महाराज ! न मेरा दोष है, न आपका । हे प्रभो ! शिशुपालका भी कोई दोष नहीं है । प्रिय और अप्रिय सभी कार्य कालप्रेरित होते हैं ॥ ३७ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! प्रद्युम्नके वचन सुनकर सन्तुष्ट राजा दमघोष शिशुपालको छुड़ाकर चन्द्रकापुरी चले गये ॥ ३८ ॥ साक्षात् श्रीकृष्णके तेजस्वरूप प्रद्युम्नका यह पराक्रम सुनकर बाकी सभी राजाओंने भेंट दे दी—कोई उनसे लड़ा नहीं ॥ ३९ ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'-भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! इसके बाद प्रद्युम्न मनुतीर्थमें स्नान करके नगाड़े बजाते हुए यादवोंके साथ कौकण प्रदेशकी ओर बढ़े ॥ १ ॥ वहाँका राजा मेधावी गदायुद्धमें पूर्ण निपुण था । सो मल्लयुद्धसे परीक्षा लेनेके लिए वह अकेला ही आ उपस्थित हुआ ॥ २ ॥ सम्मुख पहुँचकर यादवोंके साथ विराजमान प्रद्युम्नसे उसने कहा—हे प्रभो ! हे यादवेश्वर ! आप मेरे साथ गदायुद्ध करके मेरा बल नष्ट कर दीजिए ॥ ३ ॥ प्रद्युम्नने कहा—हे मल्ल ! धरतीपर एकसे एक वीर हैं । अतएव तुम धमंड मत करो ।

वयं तु बहवो वीरास्त्वमेकाकी समागतः । अधमोऽयं महामल्ल दृश्यते याहि सांप्रतम् ॥ ५ ॥

मल्ल उवाच

यदायुद्धं न कुरुत भवन्तो बलशालिनः । मत्पादोऽधोऽत्र निर्यातु तदा यास्यामि सांप्रतम् ॥ ६ ॥

श्रीनारद उवाच

एवं वदति मल्ले वै सर्वे यादवपुंगवाः । बभूवुः क्रोधसंयुक्ताः पश्यतस्तस्य मैथिल ॥ ७ ॥
गदो गदां समादाय बलदेवानुजो बली । तस्थौ सोऽपि गदां नीत्वा सर्वेषां पश्यतां नृप ॥ ८ ॥
गदां वरिष्ठां चिक्षेप गदाय स महाबलः । गदोपरि गदां नीत्वा स्वगदां प्राक्षिपद्गदः ॥ ९ ॥
गदस्य गदया सोऽपि ताडितः पतितो भुवि । मृधेच्छां न चकाराशु ह्युद्धमन् रुधिरं मुखात् ॥ १० ॥
कोंकणस्थोऽथ मेधावी नत्वा ग्राह हरेः सुतम् । परीक्षार्थं च भवतामेतत्कार्यं मया कृतम् ॥ ११ ॥
त्वमेव भगवान्साक्षात्कृतोऽहं प्राकृतो जनः । क्षमस्व मेऽपराधं भो त्वामहं शरणं गतः ॥ १२ ॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वाऽथ बलिं दत्त्वा नमस्कृत्य हरेः सुतम् । कोंकणस्थः पुरीं प्रागान्मेधावी क्षत्रियोत्तमः ॥ १३ ॥
कुटकाधिपतिं मौलिं मृगयायां विनिर्गतम् । जग्राह स महाबाहुः सांबो जांबवतीसुतः ॥ १४ ॥
कार्णिस्तस्माद्बलिं नीत्वा दंडकार्ण्यं वनं ययौ । मुनीनामाश्रमान्पश्यन्स्वसैन्यपरिवारितः ॥ १५ ॥
निर्विघ्नां च पयोष्णीं च तापीं स्नात्वा हरेः सुतः । शूर्पारकं महाक्षेत्रमार्यां द्वैपायनीं ततः ॥ १६ ॥
ऋष्यमूकं ततः पश्यन्प्रवर्षणगिरिं गतः । पर्जन्यो भगवान्साक्षान्नित्यदा यत्र वर्षति ॥ १७ ॥
गोकर्णार्ण्यं शिवक्षेत्रं दृष्ट्वा कार्णिः स्वसैन्यकैः । त्रिगतोऽन्केरलान् देशान् ययौ जेतुं महाबलः ॥ १८ ॥
अम्बष्ठः केरलाधीशः श्रुत्वा वार्तां तु मन्मुखात् । ददौ तस्मै बलिं शीघ्रं प्रद्युम्नाय महात्मने ॥ १९ ॥
कृष्णां वेणीं तदोत्तीर्य तैलंगान् विपयान् ययौ । सैन्यपादरजोवृन्दैरंधीकुर्वन्ममः स्थलम् ॥ २० ॥
तैलंगस्याधिपो राजा विशालाक्षः प्रकीर्तितः । पुरस्योपवने रेमे सुंदरीगणसंवृतः ॥ २१ ॥

विष्णुकी माया बड़ी दुर्गम है ॥ ४ ॥ और फिर हम तो बहुतेरे वीर हैं और तुम अकेले आये हो । अतएव तुम चले जाओ । हम तुमसे नहीं लड़ेंगे ॥ ५ ॥ मल्ल बोला—आप महाबली होकर भी नहीं लड़ते तो मेरी टांगके भीतरसे निकल जाइये, तब मैं चला जाऊंगा ॥ ६ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! मल्लने जब यह बात कही तो सभी यादव क्षुब्ध हो उठे ॥ ७ ॥ तत्काल बलदेवका अनुज गद गदा लेकर उठ खड़ा हुआ । तब मल्लने भी अपनी विशाल गदा लेकर गदके ऊपर चला दी । किन्तु गदने उसकी मार अपनी गदापर झेल ली और अपनी गदाका प्रहार मल्लपर कर दिया ॥ ८ ॥ ९ ॥ गदके प्रहारसे मल्ल धरतीपर गिर गया । उसके मुखसे रुधिर निकलने लगा और उसने युद्ध करनेसे इनकार कर दिया ॥ १० ॥ कोंकणाधिपति मेधावी श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नको नमस्कार करके बोला—हे प्रभो ! आपकी परीक्षाके लिए ही मैंने यह काम किया था ॥ ११ ॥ कहाँ साक्षात् भगवान् आप और कहाँ मैं पामर प्राणी । मेरा अपराध क्षमा करिए । मैं शरणागत हूँ ॥ १२ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! ऐसा कहकर कोंकणनरेश मेधावीने भेंट देकर प्रद्युम्नको प्रणाम किया और अपनी पुरीको चला गया ॥ १३ ॥ कुटक देशके नरेशको जाम्बवतीसुत साम्बने शिकार खेलते समय पकड़ लिया ॥ १४ ॥ प्रद्युम्नने उससे भेंट ली और दण्डकारण्यको चल पड़े । अपनी सेनाके साथ चलते हुए प्रद्युम्न रास्तेमें मुनियोंके आश्रम देखते चलते थे ॥ १५ ॥ निर्विघ्ना, पयोष्णी तथा ताप्ती नदीमें स्नान करके वे शूर्पारक महाक्षेत्र गये । वहाँसे चलकर द्वैपायनी देवीके धाममें पहुँचे ॥ १६ ॥ वहाँसे ऋष्यमूक पर्वत तथा वहाँसे चलकर उस प्रवर्षण गिरिपर पहुँचे, जहाँ पर्जन्यदेवता नित्य विराजमान रहते हैं ॥ १७ ॥ तदनन्तर गोकर्ण नामके शिवक्षेत्रको गये । वहाँसे त्रिगत तथा केरलदेशको जीतनेके लिए चले ॥ १८ ॥ केरल देशके राजा अम्बष्ठने तो मेरे (नारदके) मुखसे सब हाल सुनकर ही तुरन्त प्रद्युम्नको भेंट दे दी ॥ १९ ॥ तलङ्गात् वेणी तथा कृष्णा नदीको पार करके तैलंग देशको गये । चलते समय सैनिकोंके पाँवोंकी धूलसे सारा

मात्रा पित्रा वारितोऽपि दैत्यो दैत्याननुव्रतः । यादवान् घातयिष्यामि कोऽयमित्थं चकार ह ॥३५॥
 आदाय स गदां गुर्वीं लक्षभारविनिर्मिताम् । एकाकी प्रययौ योद्धुं प्रद्युम्नबलसम्मुखे ॥३६॥
 दंतवक्र कृष्णवर्णं कज्जलाद्रिसमप्रभम् । ललज्जिह्वं घोररूपं तालवृक्षदशोच्छ्रितम् ॥३७॥
 किरीटकुण्डलधरं हेमवर्णविभूषितम् । किंकिणीजालसंयुक्तं चलचरणनूपुरम् ॥३८॥
 कंपयन्तं भुवं वेगात्पातयन्तं गिरीन्दुमान् । घातयन्तं स्वगदया कृतांतमिव दुर्जनान् ॥३९॥
 तं दृष्ट्वा यादवाः सर्वे भयं प्रापुर्मृधांगणे । आगते दंतवक्रे च महान्कोलाहलो ह्यभूत् ॥४०॥
 प्रद्युम्नः प्रेषयामास तस्योपरि महद्वलम् । अष्टादशाक्षौहिणीनां धनुष्टंकारयन् मुहुः ॥४१॥
 वार्ष्णेः परश्वधैः राजञ्छतघ्नीभिर्भुशुन्दिभिः । तं तेडुर्यादवाः सर्वे सर्वतोऽद्रिं यथा गजाः ॥४२॥
 दंतवक्रः स्वगदया करीन्द्रानुत्कटान्वहन् । पातयामास राजेन्द्रं भिन्नकुम्भस्थलान् मृधे ॥४३॥
 कांश्चित्पादेषु चोन्नीय किंकिणीजालनादितान् । सशृङ्खलान्सनीडांस्तौल्लोलघंटारणत्स्वनान् ॥४४॥
 वातस्तूलमिवाकाशे चिक्षेप शतयोजनम् । शृङ्गादङ्गेषु कांश्चिद्वै गृहीत्वा दैत्यपुंगवः ॥४५॥
 आमयित्वा गजान्दिक्षु नदतः प्राक्षिपद्गुषा । कांश्चिद्गजान्वंशयोश्च कक्षयोरुभयोरपि ॥४६॥
 पद्म्यामाक्रम्य शुशुभे दैत्यः कालागिरुद्रवत् । रथान्ससूतान्साश्वांश्च सध्वजान्समहारथान् ॥

चिक्षेप गगने वीरः पद्मानीव प्रभञ्जनः ॥४७॥

तुरगांश्च पदातींश्च प्राक्षिपद्गगने वलात् । अधोमुखा ऊर्ध्वमुखा राजपुत्रा महाबलाः ॥४८॥
 सशस्त्रा रत्नकेयूरसंयुक्तास्तारका इव । आकाशात्प्रपततस्ते वर्मतो रुधिरं मुखात् ॥४९॥
 वलं विलोडयामास गदया दैत्यपुंगवः । दंष्ट्रया प्रलयाब्धिं श्रीवराह इव मैथिल ॥५०॥

इति श्रीमर्गासंहितायां विश्वजित्खंडे नारदबहुलाश्वसंवादे कौकणकुटक्रत्रिगर्तकेरलतैलंगमहाराष्ट्रकर्णाटविजये

कारूपदेशगमनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

उसका पुत्र दन्तवक्र भगवान् श्रीकृष्णका विख्यात शत्रु था । शिशुगालके समान क्रुद्ध होकर उसने प्रद्युम्नसे लड़नेका निश्चय किया ॥ ३४ ॥ दैत्योके अनुचर होनेके कारण माता-पिताके रोकनेपर भी वह बोला कि मैं समस्त यादवोंको मार डालूंगा ॥ ३५ ॥ तदनुसार दन्तवक्र लाख भारकी भारी गदा लेकर अकेला ही प्रद्युम्नकी सेनाके समक्ष जा घमना ॥ ३६ ॥ दन्तवक्र कज्जलगिरिके समान काला था । उसकी जीभ लपलपा रही थी । उसका बड़ा भयंकर स्वरूप था और दस ताज वृक्षों जितनी उसकी ऊँचाई थी ॥ ३७ ॥ वह किरीट-कुंडल पहने था । सुनहला कवच उसके शरीरपर विद्यमान था । उसके पैरोंमें झाँझ तथा बजने-वाले नूपुर थे ॥ ३८ ॥ अपने वेगसे वह पृथिवी हिलाता, पर्वतों और वृक्षोंको गिराता और गदाके प्रहारसे यमराजके समान दुर्जनोंको मारता हुआ दन्तवक्र चला ॥ ३९ ॥ युद्धभूमिमें उसे देखकर सभी यादव भयभीत हो उठे । उसके वहाँ आनेपर भीषण कोलाहल मच गया ॥ ४० ॥ तत्काल धनुष टंकारते हुए प्रद्युम्नने उससे लड़नेके लिए दस अक्षौहिणी सेना भेजी ॥ ४१ ॥ हे राजन् । उसके पास पहुँचते ही यादववीर बाण, फरसे, तोप और बन्दूकसे उसको मारने लगे ॥ ४२ ॥ उधर दन्तवक्र अपनी भीषण गदाकी मारसे बड़े-बड़े हाथियोंके मस्तक फोड़-फोड़कर उन्हें धरतीपर गिरा दिया ॥ ४३ ॥ कितने किंकिणीजालसे मंडित, साँकल लटकाये, बड़े-बड़े घण्टे बजानेवाले अम्बारी समेत हाथियोंको उसने पैरोंसे उछाल दिया ॥ ४४ ॥ जैसे वायु रुईको उड़ा देता है, वैसे ही उस वीर दैत्यने उन हाथियोंको सौ योजन दूर फेंक दिया । कुछ हाथियोंकी सूँड़ पकड़कर उसने ऊपर घुमाया और इधर-उधर फेंक दिया । कुछको पीठकी रीढ़ पकड़कर और कुछको कोखमें पकड़कर फेंकने लगा ॥४५॥४६॥ दंतवक्र अपने पैरोंसे कुछ हाथियोंको दबाकर कालाग्निके समान शोभित हुआ । घोड़े, सारथी और सवार सहित रथोंको भी वह आकाशमें फेंकने लगा । जिससे कुछ नीचे मुख और

अथ एकादशोऽध्यायः

(दन्तवक्त्रकी पराजय और करुणदेशपर प्रद्युम्नकी विजय)

तदा श्रीकृष्णपुत्राणामष्टादश महारथाः । सक्षतं कारयामासुर्दन्तवक्रं महाबलम् ॥ १ ॥
दंतवक्रोऽतिशुशुभे स क्षतो रक्तधारया । लाक्षयेव यथा सौधं प्रहारं नानुचितयन् ॥ २ ॥
कृतवर्मा च बाणौघैस्तं जघान रणांगणे । युयुधानश्च खड्गेन शक्त्याऽक्रूरो महाबलम् ॥ ३ ॥
सारणस्तं कुठारेणाहनचं रोहिणीसुतः । दंतवक्रोऽपि गदया युयुधानं तताड ह ॥ ४ ॥
करेण कृतवर्माणसक्रूरं स्वांघ्रिणाऽहनत् । सारणं भुजवेगेन कारूपो रणदुर्मदः ॥ ५ ॥
अक्रूरः कृतवर्मा च युयुधानोऽथ सारणः । निपेतुर्भूछिता भूमौ मरुता पादपा इव ॥ ६ ॥
ततो गदां समादाय सांबो जांबवतीसुतः । गदोपरि गदां नीत्वा गदया तं तताड ह ॥ ७ ॥
दंतवक्रो गदां त्यक्त्वा सांबं जांबवतीसुतम् । गृहीत्वा पातयामास भुजाभ्यां रणमंडले ॥ ८ ॥
सांबस्तदा समुत्थाय गृहीत्वा पादयोश्च तम् । अपोथयद्भूमिपृष्ठे तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ९ ॥
दंतवक्रः समुत्थाय साङ्गहासं तदाऽकरोत् । ननाद तेन ब्रह्मांडं सप्तलोकैर्विलैः सह ॥ १० ॥
पताकाढ्येन दिव्येन सहस्रादित्यवर्चसा । सहस्रहययुक्तेन प्रद्युम्नं धन्विनां वरम् ॥

दंतवक्रोऽपि तं वीक्ष्य ग्राहेदं परुषं वचः ॥११॥

दन्तवक्त्र उवाच

यूयं च यादवाः सर्वे वृष्णयो ह्यंधकादयः । अल्पसत्त्वा जनास्तुच्छा विद्रुता युद्धभीरवः ॥१२॥
ययातिशापसंभ्रष्टा भ्रष्टराज्या गतव्रपाः । एकोऽहं बहवो यूयं युष्माभिश्च कृतं मृधम् ॥१३॥
अधमवर्तिभिस्तुच्छैर्धर्मशास्त्रविलोपिभिः । पूर्वं पिता ते श्रीकृष्णो नन्दस्य पशुरक्षकः ॥१४॥

कुछ उर्ध्वमुख, शस्त्रसहित, रत्नांकि कैयूर पहने और रुधिरकी उलटी करते हुए राजकुमार आकाशसे वैसे ही गिरने लगे, जैसे तारे गिरते हैं ॥४७-४९॥ उस दैत्यपुंगवने अपनी गदासे सारी यादवी सेनाको वैसे ही मथ डाला, जैसे प्रलयकालमें वाराहभगवान्ने समुद्रको मथा था ॥५०॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'त्रियंवदा'भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! तभी श्रीकृष्णके अठारह महारथी पुत्रोंने उस महाबली दंतवक्रको घायल कर दिया ॥ १ ॥ धावोंसे निरन्तर रक्त बहनेपर भी शत्रुके प्रहारकी कुछ भी चिन्ता न करता हुआ दंतवक्र लाखकी धाराबहानेवाले महुल्की तरह क्षोभित हुआ ॥ २ ॥ तब रणांगणमें कृतवर्माने दंतवक्रपर बाणोंसे प्रहार किया । सात्यकिने तलवारसे और अक्रूरने बछियोंसे उसको मारा ॥ ३ ॥ इसी प्रकार सारणने कुठारसे और रोहिणीसुतवलरामने हल्से उसपर प्रहार किया । इसके बाद दंतवक्रने सात्यकिपर गदा चलायी ॥ ४ ॥ उसने हाथसे कृतवर्माले, लातसे अक्रूरको और भुजवेगसे सारणको मारा ॥ ५ ॥ अक्रूर, कृतवर्मा, युयुधान और सारण ये सब उसकी मारसे इस तरह गिर पड़े, जैसे पवनकी मारसे वृक्ष गिर जाते हैं ॥ ६ ॥ तदनन्तर जाम्बवती-मुत्त साम्बने गदा लेकर दन्तवक्रपर प्रहार किया ॥ ७ ॥ तब दंतवक्रने गदा त्याग दी और साम्बको हाथोंसे पकड़कर रणभूमिपर पटक दिया ॥ ८ ॥ तत्काल उठकर साम्बने उसके दोनों पैर पकड़ लिये और उठाकर बहुत जोरसे पृथिवीपर दे मारा ॥ ९ ॥ किन्तु दन्तवक्र तुरन्त उठ खड़ा हुआ और उसने ऐसा अट्टहास किया कि जिससे सम्लोकोंके साथ समस्त ब्रह्माण्ड चीत्कार कर उठा ॥ १० ॥ उसी समय जिसपर पताका फहरा रही थी, जिसमें हजार घोड़े जुटे थे और हजार सूर्य सदृश जिसका तेज था, उस रथपर बैठकर प्रद्युम्न रणाङ्गणमें आये । उन्हें देखकर दन्तवक्रने बड़ी ही खूबी वाणीमें कहा ॥ ११ ॥ दन्तवक्र बोला—सभी वृष्णि गणमें आये । उन्हें देखकर दन्तवक्रने बड़ी ही खूबी वाणीमें कहा ॥ ११ ॥ दन्तवक्र बोला—सभी वृष्णि गणमें आये । उन्हें देखकर दन्तवक्रने बड़ी ही खूबी वाणीमें कहा ॥ ११ ॥ दन्तवक्र बोला—सभी वृष्णि गणमें आये । उन्हें देखकर दन्तवक्रने बड़ी ही खूबी वाणीमें कहा ॥ ११ ॥ दन्तवक्र बोला—सभी वृष्णि गणमें आये । उन्हें देखकर दन्तवक्रने बड़ी ही खूबी वाणीमें कहा ॥ ११ ॥ दन्तवक्र बोला—सभी वृष्णि गणमें आये । उन्हें देखकर दन्तवक्रने बड़ी ही खूबी वाणीमें कहा ॥ ११ ॥

राजा ययातिके स्नापसे तथा अन्धकवंशी यादव बड़े तुच्छ, बड़े निर्बल, बड़े डरपोक और भगोड़े हैं ॥ १२ ॥ राजा ययातिके स्नापसे वे झट हो गये हैं, उनका राज्य भी झट हो गया है और वे बड़े निर्लब्ध हैं । इस रणभूमिमें मैं अकेला हूँ और

गोपालोच्छिष्टभोजी च सोऽद्य वै यादवेश्वरः । इय्यंगवीनदध्याज्यदुग्धतक्रादिकं रसम् ॥१५॥
 चोरयामास गोपीनां रसिको रासमंडले । जरासंधभयात्सोऽपि समुद्रं शरणं गतः ॥१६॥
 सोऽयैव यदुनाथोऽभूद्यो भीरुः कालसंमुखे । तेन दत्तं स्वल्पराज्यमुग्रसेनः समेत्य सः ॥१७॥
 करिष्यत्यन्यसाराथे राजसूयं क्रतूत्तमम् । दुरत्यया कालगतिर्जातं चित्रमहो जगत् ॥
 अध्यास्ते सिंहशार्दूलं शृगालो ह्यतिदुर्बलः ॥१८॥

श्रीप्रद्युम्न उवाच

पुरा वै कुंडिनपुरे यदूनां बलमूर्जितम् । त्वया दृष्टं न किं त्वत्र पश्याद्यैव विनिन्दक ॥१९॥
 युष्मान्संश्रिणो ज्ञात्वा नेच्छे युद्धं करुष्वप । बलात्त्वं युद्धमाकार्षीर्धर्मशास्त्रं त्वया कृतम् ॥२०॥
 नंदो द्रोणो वसुः साक्षाज्जातो गोपकुलेऽपि सः । गोपाला ये च गोलोके कृष्णरोमसमुद्भवाः ॥२१॥
 राधारोमोद्भवा गोप्यस्ताश्च सर्वा इहागताः । काश्चित्पुण्यैः कृतैः पूर्वैः प्राप्ताः कृष्णं वरैः परैः ॥२२॥
 परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् । असंख्यब्रह्मांडपतिर्गोलोकेऽसौ परात्परः ॥२३॥
 यस्मिन्सर्वाणि तेजांसि विलीयन्ते स्वतेजसि । तं वदन्ति परे साक्षात्परिपूर्णतमः स्वयम् ॥२४॥
 उग्रसेनोऽथ राजेंद्रो मरुतो नाम यः पुरा । श्रीकृष्णस्य वरेणासौ यादवेन्द्रो बभूव ह ॥२५॥
 निरंकुशो महामूर्खो विनिन्दसि महद्गुणम् । स न प्रार्थयते किंचिद्यथा सिंहः शिवारुतम् ॥२६॥

श्रीनारद उवाच

एवं वचस्तदा श्रुत्वा दन्तवक्रो मदोत्कटः । गदां गुर्वीं समादाय प्राद्रवत्तद्रथोपरि ॥२७॥
 गदया पातयामास सहस्रं घोटकाब्जदन् । घोटका दुद्रुवुः सर्वे दृष्ट्वा रूपं भयंकरम् ॥२८॥

तुम बहुतेरे हो । फिर भी तुम मुझे मार रहे हो ॥ १३ ॥ तुम अधर्मी हो, तुच्छ हो और तुमने धर्मशास्त्रका लोप किया है । पहले तुम्हारे पिताको भी मैंने देखा था । उस समय वह नन्दगोपकी गोवोंकी रखवाली करता था ॥ १४ ॥ वह भ्वालोके जूठन खाता था । दही, दूध और मक्खन चुराता-चुराता आज वह यादवोंका राजा बन बैठा है ॥ १५ ॥ पहले तो उसने चोरी की । उसके बाद रासमंडलमें गोपियोंका रसिक बना । फिर जरासंधके डरसे समुद्रकी शरणमें जा पड़ा ॥ १६ ॥ अब वह यदुराज बन गया है । अभी कलतक वह कालय-वनके डरसे छिपता-फिरता था । जब उसको थोड़ा राज्य दे दिया गया तो उसपर उग्रसेनने कब्जा कर लिया ॥ १७ ॥ अब वे तुच्छ यादव राजसूय यज्ञ करने लगे । कालकी गति बड़ी दुरत्यय होती है । यह जगत् बड़ा विचित्र है । तभी तो अतिशय दुर्बल शृगाल सरीखे यादव हम जैसे सिंहों और शार्दूलोंसे लड़नेको तैयार हैं ॥ १८ ॥ यह सुनकर प्रद्युम्न बोले—अरे परनिन्दक और निर्लज्ज ! पहले कुंडिनपुरमें तूने यादवोंका ऊर्जस्वी पराक्रम नहीं देखा था । ले, अब मेरा पराक्रम देख ॥ १९ ॥ अरे करुष देशका शासक ! हम लोग तुझे अपना सम्बन्धी समझकर नहीं लड़ना चाहते थे । किन्तु तूने वरवस जो हमसे युद्ध ठान दिया है, यह धर्मशास्त्र ही तो है ॥ २० ॥ नन्दराय साक्षात् द्रोण नामके वसु हैं, जिन्होंने गोपकुलमें जन्म लिया है । गोकुलके सभी गोप भगवान्के रोमसे जायमान हुए हैं । वे सब वास्तवमें गोलोकवासी हैं ॥ २१ ॥ श्रीराधाकी रोमावलिसे सब गोपियाँ उत्पन्न होकर यहाँ आयी हैं । उनमेंसे कुछ गोपियाँ अपने पुराकृत पुण्यसे श्रीकृष्णको वररूपमें प्राप्त कर सकी हैं ॥ २२ ॥ परिपूर्णतम श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं । वे असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति, गोलोकेका तथा परात्पर परमेश्वर हैं ॥ २३ ॥ जिसके तेजमें सब तेज विलीन हो जाते हैं, ब्रह्मादिक देवता उन्हें परिपूर्ण-तम ब्रह्म कहते हैं ॥ २४ ॥ राजेन्द्र उग्रसेन पहले मरुत नामके राजा थे । वे ही अब यादवोंके राजा हुए हैं ॥ २५ ॥ तू निरंकुश और महामूर्ख है । तभी महान् गुणसम्पन्न पुरुषोंकी निन्दा करता है । सो हम लोग तेरी बात मनपर नहीं लाते । जैसे गौदड़ोंके रोदनपर सिंह ध्यान नहीं देता ॥ २६ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! प्रद्युम्नकी बात सुनकर दन्तवक्र लाख मनकी भारी गदा लेकर उनके रथकी ओर दौड़ा ॥२७॥ उसने अपनी गदाकं प्रहारसे प्रद्युम्नके रथके हजार घोटोंको छिन्न-भिन्न कर दिया और वे उसके विकराल रूपको

प्रद्युम्नोऽपि गदां नीत्वा तं तताड दृढं हृदि । तत्प्रहारेण दैत्येद्रः किञ्चिद्वथाकुलमानसः ॥२९॥
 तयोश्च गदया युद्धं घोररूपं बभूव ह । गदाभ्यां प्रहरंतौ द्वौ मर्दयंतौ परस्परम् ॥३०॥
 दंतवक्रो भुजाभ्यां तं गृहीत्वा श्रीहरेः सुतम् । भूमौ निपातयामास सिंहः सिंहमिवौजसा ॥३१॥
 प्रद्युम्नोऽपि समुत्थाय गृहीत्वा भुजयोर्वलात् । आमयित्वा भुजाभ्यां तं पातयामास भूतले ॥३२॥
 प्रद्युम्नस्य प्रहारेण सोऽपतद्रुधिरं वमन् । चूर्णितास्थिःखिन्नगात्रो मूर्च्छितोविह्वलाकृतिः ॥३३॥
 गिरीन्द्र इव भ्रूषृष्ठे रेजे शक्रायुधाहतः । तत्प्रहारेण वसुधा चचाल सजलाऽभवत् ॥३४॥
 विचेलुर्दिग्गजास्ताराः समुद्राश्च चक्रंपिरे । पातशब्देन राजेन्द्र त्रिलोकी बधिरीकृता ॥३५॥

तदैव कारुषपतिर्महात्मा श्रीवृद्धशर्मा श्रुतदेवया च ।

राज्ञ्या महारंगपुराद्यदूनां समाययौ सुंदरसंधिकारी ॥३६॥

दत्त्वा बलिं मैथिल शंवरारये सुतं गृहीत्वा कृतसंधिरग्रतः ।

तथा यदूनां प्रवरैः प्रपूजितः पुनर्महारंगपुरं समाययौ ॥३७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्सण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे दंतवक्रयुद्धे करुषदेशविजयो नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

(प्रद्युम्न और अगात्यकी ज्ञानचर्चा)

श्रीनारद उवाच

अर्णवं दक्षिणं स्नात्वा प्रद्युम्नो यादवाधिपः । उशीनरांस्ततो जेतुमाजगाम बलैः सह ॥ १ ॥
 कोटिशः कोटिशो गावो यत्र देशे चरन्ति हि । गोपालमंडलैर्युक्ता व्रजंत्यो भव्यमूर्तयः ॥ २ ॥
 औशीनराः क्षीरपाना गौरवर्णा मनोहराः । हय्यंगवीनमादाय ते ययुः कार्ष्णिंसमुखे ॥ ३ ॥
 तैः पूजितः शंवरारिर्ददौ तेभ्यो महाधनम् । गजान् रथान् हयान् रत्नवस्त्रभूषादि हर्षितः ॥ ४ ॥

देखकर भाग गये ॥ २८ ॥ तब प्रद्युम्नने भी गदा लेकर उसकी छातीपर प्रहार किया । उस आघातसे दंत-
 वक्र कुछ व्याकुल हो गया ॥ २९ ॥ फिर दोनोंमें विकट गदायुद्ध होने लगा और गदासे दोनों एक दूसरेपर
 निर्भम प्रहार करने लगे । जैसे किसी पर्वतपर दो सिंह परस्पर जूझ रहे हों ॥ ३० ॥ तभी दन्तवक्रने प्रद्युम्नको
 दोनों भुजाओंसे उठाकर धरतीपर पटक दिया । जैसे सिंह सिंहको पटक दे ॥ ३१ ॥ तत्काल उठकर प्रद्युम्नने
 भी जोरसे पकड़कर दन्तवक्रको पृथिवीपर दे मारा ॥ ३२ ॥ प्रद्युम्नके प्रहारसे दंतवक्र रुधिर वमन करता
 हुआ मूर्च्छित हो गया । उसकी हड्डियां चूर हो गयीं और वह व्याकुल हो उठा ॥ ३३ ॥ जैसे इन्द्रके वज्र-प्रहारसे
 पर्वत गिर जाता है, उसी तरह कारुषदेशका राजा दन्तवक्र पृथिवीपर गिर गया । उसके गिरनेपर सब
 समुद्रों समेत पृथ्वी डगमगा उठी ॥ ३४ ॥ सभी दिग्गज, तारागण और समुद्र कांपने लगे । उसके गिरनेके
 भौषण निनादसे सारी त्रिलोकी बहरी हो गयी ॥ ३५ ॥ उसी समय सुन्दर संधि करनेवाला कारुषदेशका
 अधिपति राजा वृद्धशर्मा महारंगपुरसे रानी श्रुतदेवाके साथ यादवोंके पास आया ॥ ३६ ॥ हे मिथिलेश !
 उसने आकर प्रद्युम्नको भेंट दी, भविष्यके लिए सन्धि की और प्रमुख यादवों द्वारा पूजित हो अपने पुत्र दंत-
 वक्रको साथ लेकर महारंगपुर लौट गया ॥ ३७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्सण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां
 एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! दक्षिणी समुद्रमें स्नान करके यादवाधिपति प्रद्युम्न अपनी सेनाके
 साथ उशीनर देशको जीतनेके लिए आगे बढ़े ॥ १ ॥ उस उशीनर देशमें करोड़ों गौर्वे चरती थीं, वे बालोंकी
 टोलीके साथ विचरती थीं और उन गौओंका बड़ा सुन्दर स्वरूप था ॥ २ ॥ वहांके निवासी गौर वर्ण थे
 और सदा दूध ही पीते थे । वे मक्खनकी भेंट लेकर प्रद्युम्नके पास गये ॥ ३ ॥ उन्होंने प्रद्युम्नका विधिवत्

चंपावती नाम पुरी मणिरत्नसमन्विता । विराजते यत्र नृपैः सपैर्भोगवती यथा ॥ ५ ॥
 चंपावतीपतिर्वीरो नाम्ना हेमांगदो नृपः । नीत्वा बलिं समेत्याशु श्रीकार्णिके प्रणनाम ह ॥ ६ ॥
 तस्मै तुष्टः शंवरारिर्मालां किञ्जल्किनीं ददौ । सहस्रदलशोभाढ्यं पद्मं दिव्यं ददौ पुनः ॥ ७ ॥
 अथ कार्णिकेर्महाबाहुः स्वसैन्यपरिवारितः । विदर्भान्प्रययौ धन्वी दुंदुभीचादयन्मुहुः ॥ ८ ॥
 भीष्मकः कुंडिनपतिरागतं रुक्मिणीसुतम् । आनीय पूजयामास ससैन्यं बहुभिर्धनैः ॥ ९ ॥
 मातामहं ततो नत्वा रुक्मिणीनन्दनो बली । कुंतदेशांश्च दरदान्प्रययौ यादवेश्वरः ॥ १० ॥
 मलयाचलपाटीरवायुभिः परिसेवितः । श्रीखंडकेतकीपुष्पगंधाक्ते मलयाचले ॥ ११ ॥
 अगस्त्यं मुनिशार्दूलं पीताब्धिं स ददर्श ह । कृताञ्जलिपुटः कार्णिकेर्ममस्कृत्य महासुनिम् ॥

स्थितोऽभूदुदजे साक्षादाक्षीभिरभिनन्दितः ॥ १२ ॥

श्रीप्रद्युम्न उवाच

दृश्यं पदार्थं तु जगत्सत्यवद्वर्तते कथम् । मुक्तो ब्रह्मांशको भूत्वा बद्धयतेऽयं कथं गुणैः ॥ १३ ॥
 एतत्प्रश्नं मम ब्रूहि नितरां मुनिसत्तम । त्वं सर्वविद्विष्यचक्षुः सर्वब्रह्मविदां वरः ॥ १४ ॥

अगस्त्य उवाच

त्वं साक्षात्कुष्णचंद्रस्य परिपूर्णतमस्य च । पुत्रोऽसि पृच्छसे मां वै लीलामात्रमिदं वचः ॥ १५ ॥
 लोकसंग्रहमेवार्थं कुर्वन्देवो हरिर्यथा । तथा नृणां च कल्याणं कुर्वन्विचरसि प्रभो ॥ १६ ॥
 यथा सत्यस्य सूर्यस्य विवं वारिषु सत्यवत् । दृश्यते सत्यवद्दृश्यं प्रधानपरयोस्तथा ॥ १७ ॥
 काचे मुखं गुणे सर्पं सैकते जीवनं यथा । तथाऽयं सन्देहगुणैर्बद्धयते प्रेक्षता स्वयम् ॥ १८ ॥

प्रद्युम्न उवाच

कथं न बद्धयते देही येनोपायेन तद्वद । वैराग्येण दृढेनापि ब्रूहि ब्रह्मविदां वर ॥ १९ ॥

पूजन किया । प्रद्युम्नने भी उन्हें प्रचुर धन, हाथी, घोड़े, रथ, रत्न और आभूषण दिये ॥ ४ ॥ विविध मणियों और रत्नोंसे शोभित चम्पावती नगरी राजाओंसे ऐसी भरी रहती है, जैसे सपोंसे भोगवतीपुरी भरी रहती है ॥ ५ ॥ चम्पावतीनरेश हेमांगद भेंट लेकर प्रद्युम्नके पास आया और प्रणाम किया ॥ ६ ॥ उसके ऊपर प्रसन्न होकर प्रद्युम्नने उसको किञ्जल्किनी माला दी और बहुत सुन्दर सहस्रदलका कमल दिया ॥ ७ ॥ तदनन्तर महाबाहु प्रद्युम्न अपनी सेनाके साथ नगाड़े वजवाते हुए विदर्भदेशको गये ॥ ८ ॥ कुंडिनपुरके राजा भीष्मकने प्रद्युम्नका आगमन सुना तो सेनासमेत उनको अपने घर बुलवाया और पुष्कल धन देकर उनका पूजन किया ॥ ९ ॥ तदनन्तर महाबली प्रद्युम्न अपने नाना भोष्मकको प्रणाम करके कुन्त तथा दरद देशकी ओर चल पड़े ॥ १० ॥ मलयगिरिके चन्दनसे सुगन्धित पवन द्वारा सेवित और चन्दन तथा केतकीके पुष्पसे सुवासित मलयपर्वतपर उन्होंने अगस्त्यजीको देखा । जो मुनिशार्दूल समुद्र पी गये थे । उन्हें प्रणाम करके खड़े प्रद्युम्नको अगस्त्यने आक्षेपार्थ देकर प्रसन्न किया ॥ ११ ॥ १२ ॥ प्रद्युम्न बोले—हे मुनिराज ! यह जगत् दृश्य पदार्थ है, तब सत्यके समान क्यों दीखता है ? जीव ब्रह्मका अंश है और सदा मुक्त है, तब वह गुणोंसे कैसे बंध जाता है ॥ १३ ॥ हे मुनिसत्तम ! आप कृपया मेरे इन प्रश्नोंका समाधान बताइए । क्योंकि आप सर्वज्ञ, दिव्य दृष्टिसम्पन्न तथा ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं ॥ १४ ॥ अगस्त्यजी बोले—आप साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् कुष्णके पुत्र हैं । तथापि आप मुझसे ऐसे प्रश्न करते हैं ? यह पूछताछ आपकी लीलामात्र है ॥ १५ ॥ हे प्रभो ! भगवानकी तरह आपके सब कार्य केवल लोकसंग्रहके निमित्त होते हैं । लोककल्याणके लिए ही आप विचरते हैं ॥ १६ ॥ जैसे सत्य सूर्यका प्रतिबिम्ब जलमें पड़कर सत्य जैसा दीखता है, वैसे ही उस प्रधान पुरुषका यह संसार सत्यके समान दृष्टिगोचर होता है ॥ १७ ॥ जैसे दर्पणमें मुख, रस्सीमें सर्प और बालूमें सूर्यकी चमकमें जल सत्य दीखता है, वैसे ही मिथ्या जगत् सत्यसरीखा दीखता है । उसी प्रकार यह जीव देहमें अहंबुद्धि के देहके गुणोंसे बंध जाता है ॥ १८ ॥ प्रद्युम्न बोले—यह देहधारी जीव किस उपायसे बन्धनको नहीं

अगस्त्य उवाच

विवेकं यः समाश्रित्य भजेद्ब्रह्म सनातनम् । मनोमयं जगन्मत्त्वा स ब्रजेत्परमं पदम् ॥२०॥
जन्ममृत्यु शोकमोहौ जराबाल्युवाचयः । अहं मदो व्याधिभयं दुःखं शोकः क्षुधा रतिः ॥२१॥
आधिर्भयं तस्य राजन्न भवेत् कदाचन । आत्मा निरीहो ह्यतस्तुः सर्वतश्चानहंकृतिः ॥

शुद्धो गुणाश्रयः साक्षात्परो निष्कल आत्मद्रक् ॥२२॥

ज्ञानात्मकः सदा पूर्णो विदितो यो मुनीश्वरैः । तं ब्रह्म परमात्मानं ज्ञात्वाऽयं विचरेत्सुखी ॥२३॥
अस्मिञ्छयाने जागर्ति सर्वं पश्यति यः पुमान् । नायं तं वेत्ति पश्यन्तं न पश्यति कदाचन ॥२४॥
नभोऽग्निपवनाः कोष्ठकाष्ठप्रोद्धतरेणुभिः । न सज्जन्ते गुणैर्ब्रह्म वर्णश्च स्फटिको यथा ॥२५॥
लक्षणाभिर्ध्वनिव्यंग्यैर्ज्ञायते न कदाचन । कुतस्तु लौकिकैर्वाक्यैस्तस्मै श्रीब्रह्मणे नमः ॥२६॥
केचित्कर्म वदन्त्येनं केचित्कालं तथाऽपरे । कर्तारं योगमपरे सांख्यं ब्रह्म वदन्ति कम् ॥२७॥
केचित्तं परमात्मानं वासुदेवं वदन्ति के । प्रत्यक्षेणानुमानेन निगमेनात्मसंविदा ॥२८॥
विचार्य तद्ब्रह्म परं निःसंगो विचरेदिह । यथाभसा प्रचलता तत्रोऽपि चला इव ॥२९॥
चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते चलतीव भूः । तथा गुणानां भ्रमणो भ्रमता मनसा यतः ॥३०॥
भ्राम्यमाणः सदा राजन्करेणालातचक्रवत् । करिष्यामि करोमीति ममेदं तव चान्रुवन् ॥

त्वमहं च सुखी दुःखी सदाज्ञानविमोहितः ॥३१॥

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः । तैरिदं जगदाव्याप्तमोतप्रोतपटं यथा ॥३२॥
ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः । यधन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥३३॥

प्रात होता, सो बताइए । हे ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ! क्या दृढ़ वैराग्य होनेपर जीव बन्धनमें नहीं बँधता ? ॥ १९ ॥
अगस्त्यजी बोले—जो प्राणी विवेकके सहारे जगत्को मनोमय जानकर सनातन ब्रह्मको भजता है, वह परम पद प्राप्त कर लेता है ॥ २० ॥ जन्म, मृत्यु, शोक, मोह, बाल्य, वार्धक्य, यौवन, अहंता, ममत्ता, मद, रोष, भय, सुख, दुःख, भूख, प्यास, रति और आधि (मानसी व्यथा) ये सब आत्माको नहीं होते ॥ २१ ॥
आत्मा निरीह है, यह कोई चेष्टा नहीं करता, इसका शरीर नहीं है, यह सर्वव्यापी है, अहंकाररहित है, शुद्ध है, गुणोंका आश्रय है, साक्षात् परब्रह्म है, मायासे परे है, निष्कल है और आत्मद्रष्टा है । इसको कभी कोई आधि अथवा भय नहीं होता ॥ २२ ॥ परमात्मा ज्ञानस्वरूप है, सदासे परिपूर्ण है और मुनीश्वरों द्वारा जाना जाता है । उस परब्रह्मको जानकर सानन्द विचरे ॥ २३ ॥ जब जगत् सोता है, तब वह जागता और देखता है, पर जो पुरुष देखता है, उसको वह जगत् नहीं देखता और नहीं जानता ॥ २४ ॥ जैसे आकाश कोष्ठकमें, अग्नि काष्ठमें, वायु रेणुमें और स्फटिक रंगोंमें नहीं बँधता, उसी तरह आत्मा गुणोंमें नहीं बँधती ॥ २५ ॥ जो लक्षणा, ध्वनि और व्यंग्यसे भी कभी नहीं जाना जाता, वह लौकिक वाक्योंसे कैसे जना जा सकेगा ? ऐसे अज्ञेय ब्रह्मको हमारा नमस्कार है ॥ २६ ॥ कुछ लोग उसे कर्म, कुछ कर्ता, कुछलोग योग, कुछ ज्ञान और कुछ लोग उसे ब्रह्म कहते हैं ॥ २७ ॥ कुछ लोग उसे परमात्मा कहते हैं । कुछलोग प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं । कुछलोग अनुमानसे, कुछ वेदसे और कुछ योगसे उसके अस्तित्वका प्रतिपादन करते हैं ॥ २८ ॥ इस प्रकार ब्रह्मका विचार करके निःसंग विचरे । जैसे बहते पानीमें वृक्ष भी चलते हुए प्रतीत होते हैं ॥ २९ ॥ जैसे नेत्रोंके फिरनेसे पृथिवी भी फिरती दीखती है, वैसे ही गुणोंसे भ्रमित मनके द्वारा आत्मामें जन्म-मरण आदि विकार दृष्टिगोचर होते हैं ॥ ३० ॥ जैसे हाथसे घुमायी गयी लुआठी घूमती है, उसी प्रकार 'मैं यह कहूँगा' 'मैं यह करता हूँ' 'यह मेरा है' 'यह तेरा है' 'तू सुखी है' 'मैं सुखी हूँ' 'तू दुखी है' 'मैं दुखी हूँ' ऐसी-ऐसी बातें करता हुआ प्राणी अज्ञानसे मोहित होकर चक्कर काटा करता है ॥ ३१ ॥
सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण ये तीनों गुण मायाके हैं—आत्माके नहीं । इन्हीं तीनोंसे सारा संसार ओत-प्रोत है । जैसे सूतसे कपड़ा ओत-प्रोत रहता है ॥ ३२ ॥ सत्त्वगुणमें स्थित लोग ऊपरके स्वर्गादि

अंधकारे गुणात्काष्णं सर्पबुद्धिर्भवेद्यथा । आरान्मरीचिकां वारि तथेदं मन्यते जगत् ॥३४॥
गतागतं सुखं विद्धि यथा मंडलवर्तिनाम् । तथा नृणां च तद्दुःखं यथा नरकवासिनाम् ॥

घनावलिर्देहगुणा अहोरात्रमृतेर्यथा ॥३५॥

यथा सार्थं तथा दृश्यं न किंचित्सर्वदैव हि । पक्षे जाते यथा नीडात्पारे याते यथोडुपात् ॥३६॥
ज्ञाने प्राप्ते तथा लोकाद्दर्पणात्किं प्रयोजनम् । तथा मार्गं निधायाशु विचरेत्समदृङ्मुनिः ॥३७॥
यथेदुरुदपात्रेषु यथाग्निः काष्ठसंचये । तथैको भगवान्साक्षात्परमात्मा व्यवस्थितः ॥३८॥
घटे मठे यथाऽऽकाशो वर्ततेऽन्तर्बहिर्महान् । तथा परात्मा निर्लिप्तो देहिषु स्वकृतेषु च ॥३९॥
यः कृष्णभक्तः शान्तात्मा ज्ञाननिष्ठो विरागवान् । तं न स्पृशंतीह गुणाः कानीव विसिनीदलम् ॥४०॥
ज्ञानो सदानन्दमयो बालवद्विचरेत्तनुम् । न पश्यति धृतं वासो मदिरामदमत्तवत् ॥४१॥
सूर्योदये यथा वस्तु गृहे राजन् प्रदृश्यते । दूरीकृत्य तथाऽज्ञानं साक्षात्तत्त्वं ततो बृहत् ॥४२॥
यथेन्द्रियं पृथग्द्वारैरर्थो बहुगुणाश्रयः । नानेयते तथा ब्रह्म वाचिभिः शास्त्रवर्त्मभिः ॥४३॥
परं पदं वदंत्येतत्केचिद्वै वैष्णवं नृप । केचिद्वै व्याप्य वैकुण्ठं शान्तं केऽपि ततः परम् ॥४४॥
कैवल्यं तद्ब्रह्म केचित्परमं धाम चान्ययम् । अक्षरं च परां काष्ठां गोलोकं प्रकृतेः परम् ॥४५॥
केचिन्निकुञ्जं विशदं वदंतीह पुराविदः । ज्ञानवैराग्यभक्तिभ्यः प्राप्नोतीह न चान्यतः ॥४६॥

लोकोंको जाते हैं । रजोगुणी लोग बीचके मानवलोकमें रहते हैं और तमोगुणी लोग नीचेके नरकादि लोकों-
को जाते हैं ॥ ३३ ॥ हे कृष्णसुत प्रद्युम्न ! जैसे अन्धकारसे रस्सीमें सर्पका भ्रम होता है और दूरसे देखनेपर
जैसे बालूमें जलकी भ्रान्ति होती है, उसी प्रकार इस मिथ्या जगत्में सत्यका भ्रम होता है ॥ ३४ ॥ जैसे
छोटे-मोटे राजाओंका राज्य आता-जाता रहता है, वैसे ही जनसाधारणका सुख-दुःख आता-जाता रहता
है । यही दशा नरकवासियोंकी भी होती है । जैसे बादलोंका समूह और देहके गुण स्थायी नहीं रहते ॥ ३५ ॥
वैसे ही देह आदि भी सदा नहीं रहते । जैसे मार्गके पथिकोंका संग सदा नहीं रहता, वैसे ही इस जगत्का
भी साथ सदा नहीं रहता । जैसे पंख निकल आनेपर पंछियोंको नीडकी आवश्यकता नहीं रहती और
पार उतर जानेवालोंको नौकाका प्रयोजन नहीं रहता ॥ ३६ ॥ उसी प्रकार ज्ञान प्राप्त हो जानेपर दर्पणस्वरूप इस
संसारकी आवश्यकता नहीं रह जाती । समदर्शी मुनिको चाहिए कि अपने निस्तारका कोई मार्ग निश्चित
करके उसीपर चले ॥ ३७ ॥ जैसे जलभरे पात्रमें चन्द्रबिम्ब और काष्ठमें अग्नि स्थित रहती है, वैसे ही
भगवान् सब जगत्में स्थित रहते हैं ॥ ३८ ॥ जैसे घट और मठके बाहर-भीतर आकाश विद्यमान रहता है,
किन्तु किसीमें लिप्त नहीं होता, वैसे ही परमात्मा अपनी बनायी देहमें रहता है, किन्तु उसमें लिप्त नहीं
होता ॥ ३९ ॥ जो कृष्णभक्त है, शान्तात्मा है, ज्ञाननिष्ठ है, वैराग्यवान् है, उसको ये गुण स्पर्श नहीं करते ।
जैसे कमलके पतेको जल स्पर्श नहीं करता ॥ ४० ॥ ज्ञानीको चाहिए कि वह सदा आनन्दमय होकर बालक-
की तरह विचरे । उसे अपने तन-बदनकी भी सुधि न रहनी चाहिए । जैसे मदिरासे मत्त पुरुषको अपने बखकी
भी सुधि नहीं रहती ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! जैसे सूर्योदय हो जानेपर घरकी वस्तुयें दिखायी देने लगती है, वैसे
ही ज्ञान होनेपर सब तत्त्व स्वतः दिखायी देने लगते हैं ॥ ४२ ॥ जैसे एक ही वस्तुको पृथक्-पृथक् इन्द्रियाँ
अनेक प्रकारकी बताती हैं, उसी तरह एक ही ब्रह्मको विभिन्न शास्त्र भिन्न-भिन्न प्रकारका बताते हैं । जैसे
दूधको नेत्र सफेद बताते हैं । उंगलियाँ गर्म-ठंडा बताती हैं । जीभ मीठा-फीका बताती है । नाक
गुग्गुलि-दुर्गन्धि बताती है । बुद्धि पथ्य-कुपथ्य बताती है और कान उसकी ध्वनि बताते हैं ॥ ४३ ॥
कुछ उसको परम पद, कुछ वैष्णवधाम, कुछ व्यास, कुछ लोग वैकुण्ठ, कुछ शान्त, कुछ कैवल्य, कुछ ब्रह्म,
कुछ परमधाम, कुछ लोग अव्यय, कुछ लोग अक्षर, कुछ पराकाष्ठा, कुछ गोलोक और कुछ लोग प्रकृतिसे
परे कहते हैं ॥ ४५ ॥ कुछ पुराविद् विद्वान् उसे विशद और कुछ निकुञ्ज कहते हैं । वह परम पद ज्ञान-वैराग्य और

श्रीकृष्णचंद्रस्य हरेः परस्य कैवल्यनाथस्य परात्परस्य ।
ब्रजेत्पदं श्रीपुरुषोत्तमस्य यत्प्राप्य भक्तो न निवर्ततेऽथ ॥४७॥

श्रीनारद उवाच

इति भागवतं ज्ञानं श्रुत्वा कार्णिमहामुनिम् । अगस्त्यं पूजयामास भक्त्या नत्वा कृतांजलिः ॥४८॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे उशीनरविदर्भकुंतलरददेशविजये
अगस्त्यकार्णिज्ञानप्रस्तावो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी शाल्व-मत्सार तथा लंकापर विजय)

श्रीनारद उवाच

कृतमालां ताम्रपर्णीं स्नात्वा श्रीयादवेश्वरः । यदुभिः सैनिकैः सार्द्धं राजन् राजपुरं ययौ ॥ १ ॥
शाल्वो राजपुराधीशः श्रुत्वा मन्मुखतो यदून् । आगतान् स ययौ शीघ्रं द्विविदं वानराधिपम् ॥ २ ॥
द्विविदो ह्यतिसंकुद्धो वीरो मित्रसहायकृत् । शंवरारिबलं प्रागाच्चालयन् वसुधातलम् ॥ ३ ॥
विददार नखैर्दतैः पताकाध्वजपट्टकान् । काश्मीरकंबलैर्युक्तान्सामुद्रान्स्वर्णभूषितान् ॥ ४ ॥
स्थानुत्पातयामास गजानारुह्य वेगतः । अश्वान्विद्रावयामास भ्रूभंगैर्वानरस्वनैः ॥ ५ ॥
इत्थं कोलाहले जाते प्रद्युम्नो धन्विनां वरः । आजगाम रथेनासौ धनुर्घंकारयन् मुहुः ॥ ६ ॥
द्विविदस्तद्रथस्यारादुच्चक्राम मदोत्कटः । छत्रं ध्वजं स्वपुच्छेन कंपयन्सहयं रथम् ॥ ७ ॥
प्रद्युम्नः स्वधनुष्कोट्या धृत्वा कंठे चकर्ष ह । कपिस्तदाऽतिकुपितो मुष्टिना तं तताड ह ॥ ८ ॥
प्रद्युम्नो धनुरादाय सज्जं कृत्वा विधानतः । आकृष्य कर्णपर्यंतं विशिखेन तताड तम् ॥ ९ ॥
विशिखी भ्रामयित्वा तं गगने शतयोजनम् । प्रहराद्धैन राजेंद्र लंकायां संन्यपातयत् ॥ १० ॥

भक्तिसे प्राप्त होता है—और किसी तरह नहीं ॥ ४६ ॥ श्रीकृष्णका भक्त परात्पर कैवल्यनाथ पुरुषोत्तमके पदको प्राप्त करके फिर भवसागरमें नहीं लौटता ॥ ४७ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! इस प्रकार भगवद्-ज्ञानविषयक वार्ता सुनकर श्रीकृष्णसुत प्रद्युम्नने महामुनि अगस्त्यको बड़ा भक्तिक साथ हाथ जोड़कर प्रणाम किया और विधिवत् पूजा की ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषा-टीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! कृतमाला तथा ताम्रपर्णी नदीमें स्नान करके यादवेश्वर प्रद्युम्न अपने यादव सैनिकोंके साथ राजपुर गये ॥ १ ॥ राजपुरके नरेश शाल्वने मेरे (श्रीनारदजीके) मुखसे यादवोंके आगमनकी बात सुनकर वानरराज द्विविदके पास गया ॥ २ ॥ यादवोंके आगमनका बात सुनकर मित्रकी सहायताके लिए तत्पर द्विविद बहुत कुपित हुआ और सारी वसुधाको कंपाता हुआ प्रद्युम्नकी ओर चला ॥ ३ ॥ वहाँ जाकर वह अपने दाँतों और नखोंसे काश्मीरी शालोंसे युक्त, मुद्रांकित और स्वर्णभूषित ध्वजा-पताकाओंकी पट्टियोंकी चीरने लगा ॥ ४ ॥ वह वेगके साथ हाथियोंपर चढ़कर भीड़ें चढ़ाता और किल-कार करके रथोंको फेंकने और घोड़ोंको भगाने लगा ॥ ५ ॥ जब इस प्रहारसे सेनामें कोलाहल मच गया, तब धनुर्घरोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्न रथपर बैठकर धनुषका टंकार करते हुआ आये ॥ ६ ॥ मदोत्कट द्विविदने देखा, तैसे-ही उछलकर उनके रथपर चढ़ गया और अपनी पूँछसे छत्र, ध्वज एवं घोड़ों समेत रथको शकझोरने लगा ॥ ७ ॥ तभी प्रद्युम्नने अपने धनुषकी नोकसे फँसाकर उसे अपनी ओर खींचा । इसमें बहुत कुपित होकर द्विविदने प्रद्युम्नको एक मुक्का मारा ॥ ८ ॥ प्रद्युम्नने भी विधिवत् धनुष चढ़ाकर द्विविदको एक बाण मारा

रक्षोभिः सह तद्युद्धं बभूव घटिकाद्वयम् । न्यपातयत्स रक्षांसि प्रद्युम्नोऽथ यदूत्तमः ॥११॥
 नादयन्दुं दुर्भिराजन् विजित्य जगृहे बलिम् । दक्षिणां मथुरां दृष्ट्वा त्रिकूटं चारुरोह ह ॥१२॥
 प्रोच्चक्राम त्रिकूटात्स मैनाकशिखरोपरि । मैनाकात्सिंहलं चैत्य भारतं चाययौ पुनः ॥१३॥
 शनैः शनैर्वानरेन्द्रो हिमाचलगिरिं गतः । हिमाचलस्य शिखरात्प्राग्योतिषपुरं ययौ ॥१४॥
 मत्सारदेशाधिपतिं प्रद्युम्नो यादवेश्वरः । महाक्षेत्रं रामकृष्णं प्रययौ सेतुबंधनम् ॥१५॥
 शतयोजनविस्तीर्णं समुद्रं मकरालयम् । वीक्ष्य कार्णिकर्महावीरस्तस्थौ वेलं समेत्य सः ॥१६॥
 सांवादीन्स समाहूयाक्रूराद्यान् यादवान्स्वकान् । सभायामुद्धवं प्राह कार्णियोगेश्वरेश्वरः ॥१७॥

प्रद्युम्न उवाच

विभीषणो द्वीपपतिर्महोज्ज्वलो लङ्कापतिः कौणपवृन्दमुख्यः ।
 वदाथ किं भोजवराय मन्त्रिन् चेद्वलिं यच्छति मे वदाशु ॥१८॥

उद्धव उवाच

त्वं देवदेवः पुरुषोत्तमोत्तमः श्रीकृष्णचन्द्रः परमस्त्वमेव हि ।
 त्वं पृच्छसे लोक इव प्रभो मां मायाऽपि ते योगिवरैर्दुरत्यया ॥१९॥
 ब्रह्मादयो यस्य परानुशासनं वहन्ति मूर्ध्ना सततं प्रधर्षिताः ।
 स एव साक्षात्पुरुषोऽसि भूमन् दासानुदासोऽस्मि वदामि किं ते ॥२०॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तः पश्यतां तेषां प्रद्युम्नो भगवान्हरिः । पत्रं गृहीत्वा व्यलिखत्संदेशं मैथिलेश्वर ॥२१॥
 श्रीभोजराजाय बलिं प्रयच्छ बलात्त चेन्मे वचनं शृणु त्वम् ।
 कोदण्डमुक्तैर्विशिखैश्च सेतुं बद्ध्वाऽऽगमिष्यामि ससैन्यसंघः ॥२२॥
 लिखित्वेदं समादाय कोदण्डं चण्डविक्रमः । बाणे पत्रं समाधाय कर्णातं तं ततान ह ॥२३॥

॥ ९ ॥ उस बाणने द्विविदको चार घड़ी तक आकाशमें घुमाया और आधे पहरमें सी योजन दूर लङ्कामें ले जाकर पटक दिया ॥१०॥ दो घड़ी तक वहाँ उसका राक्षसोंके साथ युद्ध हुआ । उसमें उसने बहुतेरे राक्षसोंको मार डाला । इतनेमें यादवेश्वर प्रद्युम्नने राजपुरके अधीश्वर शात्वको जीत लिया और नगाड़े बजवाते हुए दक्षिणी मथुरा (मथुरा) के त्रिकूट पर्वतपर चढ़ गये ॥ ११ ॥ १२ ॥ उधर द्विविद भी त्रिकूटाचलपर पहुँचा और वहाँसे मैनाक पर्वतपर चढ़ गया । वहाँसे सिंहल होता हुआ द्विविद फिर भारतमें आ गया ॥ १३ ॥ फिर धीरे-धीरे वह वानरेन्द्र हिमालय पर्वतपर गया और वहाँसे चलकर वह प्राग्योतिषपुर जा पहुँचा ॥ १४ ॥ उधर प्रद्युम्न मत्सारदेशाधिपतिको जीतकर रामकृष्ण-महाक्षेत्र होते हुए सेतुबन्ध गये ॥ १५ ॥ सी योजन विस्तृत उस मकरालय समुद्रको देखकर महावीर प्रद्युम्न उसके तटपर ही रुक गये ॥ १६ ॥ तदनन्तर साम्ब, अक्रूर तथा उद्धव आदि यादवोंको बुलाकर प्रद्युम्नने योगेश्वर उद्धवसे कहा ॥ १७ ॥ प्रद्युम्न बोले—हे उद्धव । विभीषण इस देशका स्वामी है । वह लंकापति सभी राक्षसोंका मुखिया है । सो हे मन्त्रिन् । क्या वह मुझको शीघ्र भेंट नहीं देगा ? ॥ १८ ॥ उद्धव बोले—आप देवदेव पुरुषोत्तम साक्षात् श्रीकृष्ण हैं । तब साधारण मनुष्यके समान आप मुझसे क्या पूछते हैं ? आपकी माया बड़े-बड़े योगियोंके लिए भी दुर्लभ्य है । ॥ १९ ॥ ब्रह्मादिक देवता भयभीत होकर आपकी आज्ञाका पालन करते हैं । हे भूमन् ! आप साक्षात् परम पुरुष हैं । मैं तो आपका दासानुदास हूँ । तब मैं आपसे क्या कहूँ ? ॥ २० ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! जब उद्धवने यह कहा, तब सबके समक्ष प्रद्युम्नने एक पत्रमें यह सन्देश लिखा— ॥ २१ ॥ हे विभीषण ! श्री-भोजराज उग्रमेनको शीघ्र भेंट दो । यदि तूम हठ करके भेंट न दोगे तो अपने धनुषके छूटे हुए बाणोंसे समुद्र-पर सेतु बनाकर मैं अपनी सेनाके साथ शीघ्र आऊँगा ॥ २२ ॥ ऐसा पत्र लिखकर प्रचण्ड पराक्रमी प्रद्युम्नने

प्रस्फुटं स्फोटते नैव टङ्करोऽभूत्तडित्स्वनः । ननाद तेन ब्रह्मांडं सप्तलोकैर्विलैः सह ॥२४॥
 कोदण्डमुक्तो विशिखो द्योतयन्मण्डलं दिशाम् । विभीषणसभामध्ये संपपात तडित्स्वनः ॥२५॥
 तदैव राक्षसाः सर्वे प्रोत्थिताश्चकिता इव । सकंचुकानि शस्त्राणि जगृहुर्वेगतः खलाः ॥२६॥
 पत्रं बाणात्समाकृष्य पठित्वाऽथ विभीषणः । विस्मितोऽभूत्सभामध्ये राक्षसेन्द्रो महाबलः ॥२७॥
 प्राप्तं तदैव सदसि शुक्राचार्यं विभीषणः । पूजयामास पाद्याद्यैर्नत्वा ग्राह कृताञ्जलिः ॥२८॥

विभीषण उवाच

भगवन्कस्य बाणोऽयं भोजराजस्तु कः क्षितौ । किं बलं तस्य मे ब्रूहि त्वं साक्षादिव्यदर्शनः ॥२९॥

श्रीशुक्र उवाच

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । यस्य श्रवणमात्रेण राजन्पापं प्रशाम्यति ॥३०॥
 पुरा हि ब्रह्मणः पुत्राः सनकाद्या दिवं गताः । विष्णोर्लोकं ययुर्दिव्यं चरन्तो भुवनत्रयम् ॥३१॥
 दिगंबराञ्छिन्नमत्वा जयो विजय एव तान् । द्वारपालौ रुरुधतुर्वेत्रेणांतःपुरस्थितौ ॥३२॥
 अशपंस्तौ च ते क्रुद्धाः कृष्णदर्शनलालसाः । भूयास्तामसुरौ दुष्टौ शुद्धौ हि जन्मभित्तिभिः ॥३३॥
 एवं शप्तौ स्वभवनात्पतंतौ भूमिमण्डले । जज्ञाते तौ दितेः पुत्रौ दैत्यदानवपूजितौ ॥३४॥
 हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्तथा । भगवान् यज्ञवाराहो भूत्वा क्षमाशुद्धरञ्जलात् ॥३५॥
 जघान मुष्टिना दैत्यं हिरण्याक्षं महाबलम् । हिरण्यकशिपुं साक्षान्नृसिंहश्चण्डविक्रमः ॥३६॥
 ददार जठरे तं वै कायाधवसहायकृत् । भ्रातरौ तौ पुनर्जातौ केशिन्यां विश्रवःसुतौ ॥३७॥
 रावणः कुम्भकर्णश्च सर्वलोकैकतापनौ । सायकै राघवस्यापि पेततुर्युद्धमंडले ॥३८॥
 राक्षसेन्द्रौ महावेगौ ससैन्यौ पश्यतस्तव । तृतीयेऽस्मिन्भवे जातौ क्षत्रियाणां कुले किल ॥३९॥

बाणमें पत्रको बांधकर धनुषपर रक्खा और उसे कानतक खींचकर छोड़ दिया ॥ २३ ॥ उस धनुषके भीषण टंकारसे विद्युत्पात जैसा भयानक निनाद हुआ । उससे सातों लोकों तथा सातों पातालों समेत समस्त ब्रह्माण्ड शंकृत हो उठा ॥ २४ ॥ प्रद्युम्नके धनुषसे छूटा बाण दसों दिशाओंको आलोकित करता हुआ विजली-के समान कड़ककर विभीषणकी सभामें जा गिरा ॥ २५ ॥ इससे सभी राक्षस चौंक उठे और कंचुकसमेत अपने-अपने शस्त्रास्त्र लेकर उठ खड़े हुए ॥ २६ ॥ तब बाणसे खोलकर पत्र पढ़ा तो महाबली राक्षसेन्द्र विभीषण बहुत विस्मित हुए ॥ २७ ॥ उसी समय सहसा आये हुए शुक्राचार्यका विभीषणने अर्घ्य-पाद्यादिसे विधिवत् पूजन किया और कहा ॥ २८ ॥ विभीषण बोले—हे भगवन् ! यह किसका बाण है और ये भोजराज कौन हैं ? उनमें कितना बल है ? यह सब रहस्य बताइए । क्योंकि आप दिव्यदर्शी हैं ॥ २९ ॥ श्रीशुक्राचार्य बोले—हे राजन् ! इस प्रसंगका एक पुरातन इतिहास है, जिसके श्रवणमात्रसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ३० ॥ पूर्व समयमें ब्रह्माजीके सत्यलोकवासी सनकादि पुत्र तीनों लोकोंमें भ्रमण करते हुए वैकुण्ठ लोकको गये ॥ ३१ ॥ उन्हें नन्न शिशु समझकर भगवान्के द्वारपाल जय-विजयने वेंतसे रोक दिया ॥ ३२ ॥ सनकादि-कोंको श्रीकृष्णके दर्शनोंकी उत्कण्ठा थी । उसमें बाधा पड़नेपर क्रुद्ध होकर उन्होंने जय-विजयको शाप देते हुए कहा—तुम दोनों दुष्ट हो । अतएव तुम असुर हो जाओ । तीन जन्मोंमें तुम्हारी शुद्धि होगी ॥ ३३ ॥ उनके शाप देते ही वे दोनों अपने-अपने स्थानसे नीचे आ गिरे । आगे चलकर वे दैत्यों और दानवोंसे वन्दित दिक्षि-पुत्र हुए ॥ ३४ ॥ उनमें बड़ा हिरण्याक्ष और छोटा हिरण्यकशिपु हुआ । कालान्तरमें यज्ञवाराह वनकर भगवान्ने जलसे पृथिवीका उद्धार किया ॥ ३५ ॥ उन्होंने ही मुद्गोंकी भारसे हिरण्याक्षको मार डाला । फिर वे ही भगवान् प्रचण्ड नृसिंह हुए और प्रह्लादकी सहायता करते हुए उन्होंने हिरण्यकशिपुका पेट फाड़ डाला । जन्मान्तरमें वे ही दोनों भाई केशिनीसे उत्पन्न होकर विश्रवाके पुत्र हुए । सब लोगोको सन्ताप देनवाले रावण और कुम्भकर्ण भगवान् रामके बाणोंसे कटकर रणभूमिमें मर मिटे ॥ ३६-३८ ॥ बड़े ही वेगवान् वे दोनों

शिशुपालो दन्तवक्रो वर्तमानौ महाबलौ । परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् ॥४०॥
 असंख्यब्रह्मांडपतिर्गोलोक्तेः परात्परः । जातस्तयोर्वधार्थाय यदुवंशे हरिः स्वयम् ॥४१॥
 यादवेन्द्रो भूरिलीलो द्वारकायां विराजते । युधिष्ठिरमहायज्ञे युद्धे शान्वस्य माधवः ॥४२॥
 शिशुपालं दन्तवक्रं हनिष्यति न संशयः । तस्य पुत्रः शंबरारिर्दिग्जयार्थं विनिर्गतः ॥४३॥
 विजेष्यति नृपान्सर्वाञ्जंबूद्वीपस्थितान् नृपान् । जितेषु सत्सु देवेषु द्वारकायां यदूत्तमः ॥

उग्रसेनो भोजराजो राजसूयं करिष्यति ॥४४॥

तस्यैव कोदण्डविनिर्गतो बलात्प्रचण्डवेगो विशिखस्त्विहागतः ।

तन्नामचिह्नोऽतितडित्स्वनो बभौ प्रद्योतयन् राक्षसमंडलं दिशाम् ॥४५॥

श्रीनारद उवाच

श्रीरामभक्तोऽथ विभीषणोऽसौ विज्ञाय कृष्णं नृप रामचन्द्रम् ।

नीत्वा बलिं कौणपवृंदमुख्यः समाययौ सुंदरशत्रुसेनाम् ॥४६॥

तदाऽवतीर्याशु महांवरात्स्फुरद्भनद्युतिर्दीर्घवर्जयेक्षणः ।

प्रदक्षिणीकृत्य हरेः सुतं पुनः कृताञ्जलिः संमुख आस्थितोऽभूत् ॥४७॥

विभीषण उवाच

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय वेधसे । प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च ॥४८॥

नमो मत्स्याय कूर्माय वराहाय नमो नमः । नमः श्रीरामचंद्राय भार्गवाय नमो नमः ॥४९॥

वामनाय नमस्तुभ्यं नृसिंहाय नमो नमः । नमो बुद्धाय शुद्धाय कल्क्ये चातिहारिणे ॥५०॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा श्रीहरेः पुत्रं पूजयामास मानदः । उपचारैः षोडशभिर्भक्त्या परमयाऽर्द्रवाक् ॥५१॥

तस्मै तुष्टः शंबरारिर्ददौ ज्ञानं विरक्तिमत् । भक्तिं शान्तिकरीं साक्षाद्याति दुष्प्रेमलक्षणाम् ॥५२॥

ब्रह्मदत्तं महादिव्यं पद्मरागं शिरोमणिम् । पौलस्त्येन पुग दत्ता रत्नमालां स्फुरत्प्रभाम् ॥५३॥

राक्षसेन्द्र तुम्हारे देखते-देखते तीसरे जन्ममें क्षत्रियकुलमें जनमे हैं ॥ ३९ ॥ शिशुपाल तथा दन्तवक्रके नामसे विख्यात वे दोनों महाबली इस समय विद्यमान हैं । साक्षात् परिपूर्णतम श्रीकृष्ण उन्हें मारनेके लिए यदुकुलमें अवतरे हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥ अनेकानेक लीलायें करनेवाले यादवेन्द्र श्रीकृष्ण द्वारकामें रहते हैं । आगे चलकर राजा युधिष्ठिरके राजसूय महायज्ञके समय शान्वयुद्धमें वे ही उन दोनों दुष्टों शिशुपाल और दंतवक्रका वध करेंगे । उन्हीं भगवान् कृष्णके पुत्र शम्बरारि प्रद्युम्न दिग्विजयके लिए निकले हुए हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ वे जम्बूद्वीपके सब राजाओंको जीतेंगे और जब सब देवताओंको भी जीत लेंगे, तब द्वारकामें भोजराज उग्रसेन राजसूय यज्ञ करेंगे ॥ ४४ ॥ उन्हीं यादवेन्द्र प्रद्युम्नके धनुषसे छूटकर यह प्रचण्ड वेगवाला बाण आया है । उन्हींका नामांकित बाण सभी दिशाओंमें प्रकाश फैलाता हुआ यहाँ पहुँचा है ॥ ४५ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! रामभक्त विभीषण श्रीकृष्णको रामका ही अवतार समझ प्रचुर भेंटकी सामग्री लेकर उस सुन्दर शत्रुसेनामें जा पहुँचे ॥ ४६ ॥ वहाँ आकाशसे नीचे उतरकर विभीषणने प्रद्युम्नकी परिक्रमा की और हाथ जोड़कर उनके सम्मुख जा खड़े हुए ॥ ४७ ॥ और स्तुति करते हुए कहने लगे—आप भगवाद् वासुदेव और ब्रह्मा हैं । मैं आपको प्रणाम करता हूँ । आप ही संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हैं । आपको प्रणाम है ॥ ४८ ॥ आप ही मत्स्य, कूर्म, वाराह, रामचन्द्र और परशुराम हैं । आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४९ ॥ आप ही वामन, नृसिंह, शुद्ध, बुद्ध और भगवान् कल्कि हैं । आपको मेरा प्रणाम है ॥ ५० ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! ऐसा कहकर मानदायक विभीषणने श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नकी षोडश उपचारोंसे पूजा की ॥ ५१ ॥ इससे प्रसन्न होकर प्रद्युम्नने विभीषणको ज्ञान, वैराग्य, शान्ति और प्रेमलक्षणा भक्ति प्रदान की ॥ ५२ ॥ इनके अतिरिक्त उन्होंने ब्रह्माकी दी हुई शिरोमणि तथा पद्मराग मणि और पौलस्त्यकी दी हुई चम-

चन्द्रकान्तमणिं तस्मै चन्द्रदत्तं ददौ पुनः । पीतांबरं परं साक्षात्प्रद्युम्नः परमः प्रभुः ॥५४॥
विभीषणोऽथ प्रद्युम्नं नत्वा दत्त्वा बलिं ततः । जगाम लंकां सगणो राक्षसेन्द्रो महाबलः ॥५५॥
इति श्रीमद्भगवद्गीतायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे शास्त्रमत्सारलंकाविजयो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

(प्रद्युम्न द्वारा द्रविडदेशपर विजय)

श्रीनारद उवाच

ऋषभाद्रिं ततो दृष्ट्वा श्रीरङ्गाख्यं हरेः सुतः । कामः काष्णिः पुरीं कांचीं नदीं प्राचीं सरिद्वराम् १
कावेरीं च तदोत्तीर्य सद्भाद्रिविषयं ययौ । यादवैः सहितः साक्षात्प्रद्युम्नो भगवान्हारिः ॥ २ ॥
शिविरेषु समायातं मुक्तकेशं दिगंबरम् । अवधूतं प्रधावतं पुष्टांगं रजसावृतम् ॥ ३ ॥
बालास्तमनुधावन्तस्तलशब्दैरितस्ततः । कोलाहलं प्रकुर्वतो हसंतो मैथिलेश्वर ॥ ४ ॥
तं दृष्ट्वा चोद्वहं प्राह काष्णिर्बुद्धिमतां वरः । ॥ ५ ॥

प्रद्युम्न उवाच

क्वोऽयं पुष्टवपुर्धावन्बालोन्मत्तपिशाचवत् । तिरस्कृतोऽपि हसति जनैरानन्दवान्महान् ॥ ६ ॥

उद्धव उवाच

अयं परमहंसाख्योऽवधूतो वा हरेः कला । सदानन्दमयः साक्षाद्दत्तात्रेयो महासुनिः ॥ ७ ॥
यस्य प्रसादात्परमां सिद्धिं प्रापुः परे नृपाः । सहस्रार्जुनमुख्या ये यदुक्तायाधवादयः ॥ ८ ॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा शंवरारिर्नत्वा संपूज्य तं मुनिम् । संस्थाप्य चासने दिव्ये पप्रच्छेदं यदूत्तमः ॥ ९ ॥

प्रद्युम्न उवाच

भगवन्मे हृदिस्थं वै सन्देहं नाशय प्रभो । जगतो ब्रह्ममार्गाश्च हेत्वंतं ब्रूहि तत्त्वतः ॥१०॥

चमाती रत्नमाला दी ॥ ५३ ॥ उसके बाद प्रद्युम्नने उन्हें चन्द्रमाकी दी हुई चन्द्रकान्त मणि तथा पीताम्बर दिया ॥ ५४ ॥ इस प्रकार प्रद्युम्नको भेंट देकर महाबली राक्षसेन्द्र विभीषण अपने गणोंके साथ लड्का लौट गये ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटोकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! इसके बाद श्रीकृष्णसुत प्रद्युम्न ऋषभाद्रिका दर्शन करके श्रीरंग, कांची और प्राची सरस्वती गये ॥ १ ॥ फिर कावेरी नदी पार करके सद्यः पर्वतपर गये । सभी यादववीर उनके साथ थे ॥ २ ॥ वहाँके शिविरमें आते हुए एक ऐसे अवधूतको उन्होंने देखा कि जिसके तनपर वस्त्र नहीं थे । वह दिगम्बर, मुक्तकेश, परिपुष्ट और झूलिझूसरित शरीरका था । वह तेजीसे दौड़ रहा था ॥ ३ ॥ बहुतेरे बालक तालियाँ बजाते, कोलाहल करते और हँसते हुए पीछे-पीछे चल रहे थे ॥ ४ ॥ उसको देखकर परम बुद्धिमान् प्रद्युम्नने उद्धवसे कहा । प्रद्युम्न बोले—हे महाभाग ! यह परिपुष्ट शरीरवाला कौन मनुष्य बालक, उन्मत्त तथा पिशाचकी तरह भागा जा रहा है ? जनसाधारण द्वारा तिरस्कृत होकर भी हँसते रहने-वाला और आनन्दमें निमग्न यह पुरुष कौन है ? ॥ ५ ॥ ६ ॥ उद्धवजी बोले—ये परमहंस, अवधूत, भगवत्कला-स्वरूप, सदा आनन्दमय साक्षात् दत्तात्रेय महासुनि हैं ॥ ७ ॥ इनकी कृपासे सहस्रार्जुन, यदु और प्रह्लाद आदि बहुतेरे राजे सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं ॥ ८ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! यह सुनकर कृष्णपुत्र प्रद्युम्नने मुनि दत्तात्रेयको प्रणाम करके पूजन किया और दिव्य सिंहासनपर बैठकर कहा ॥ ९ ॥ प्रद्युम्न बोले—हे भगवन् ! मेरे हृदयमें एक बहुत बड़ा सन्देह है, आप उसका निवारण करिए । इस जगत्को और ब्रह्ममार्गको

दत्तात्रेय उवाच

दृश्यते न वसुर्यावित्तावदुल्काप्रयोजनम् । प्राप्ते वशे महानन्देऽथोल्कायाः किं प्रयोजनम् ॥११॥
तावदास्ते जगत्साधो यावत्तत्त्वं न वेद्यते । परस्मिन्ब्रह्मणि प्राप्ते जगतः किं प्रयोजनम् ॥१२॥
आस्यर्विबो यथाऽऽदर्शे पश्यते न परं वपुः । प्रधानार्थे तथा जीवो ज्ञानेनासौ परात्परम् ॥१३॥
यथा सूर्योदये सर्वं वस्तु नेत्रेण दृश्यते । तथा ज्ञानोदये ब्रह्मतत्त्वं जीवेन सर्वतः ॥१४॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वाऽथ तं नत्वा प्रद्युम्नो यादवेश्वरः । वैकुण्ठाद्रिं द्वाविडेषु ययौ सेनासमन्वितः ॥१५॥
सत्यवाग्धर्मतत्त्वज्ञो राजर्षिर्द्वाविडेश्वरः । प्रद्युम्नं पूजयामास भक्त्या परमया युतः ॥१६॥
श्रीशैलदर्शनं कृत्वा गिरिशालयमद्भुतम् । स्कन्दं वीक्ष्य ततो राजन् ययौ पंपासरोवरे ॥१७॥
गोदावरीं भीमरथीं गतः श्रीद्वारकेश्वरः । प्रदर्शयन्द्वरेस्तीर्थं महेंद्राद्रिं ततो ययौ ॥१८॥
महेंद्राद्रिं स्थितं रामं भार्गवं क्षत्रियांतकम् । नत्वा प्रदक्षिणीकृत्य तत्र तस्थौ हरेः सुतः ॥१९॥
रामस्तस्याशिषं दत्त्वा यादवानां बलाय वै । चतुरंगाय राजेंद्र योगेनार्हणमाचरत् ॥२०॥
भक्त्यपः प्रलेहश्च रुदिका दधिशकजाः । शिखरिण्यवलेहश्च बलका चक्षुखरिणी ॥२१॥
त्रिकोणशर्करायुक्तो बटको मधुशीर्षकः । फेणिका चोपरिष्ठश्च शतपत्रः सच्छिद्रकः ॥२२॥
चक्रामचिह्नकाश्चेत्थं सुधाकुण्डलिकाः स्मृताः । घृतपूरो वायुपूरस्तथा चन्द्रकला स्मृताः ॥२३॥
दधिस्थलीश्च कर्पूरनाडीस्थं खंडमंडलम् । गोधूमपरिखाश्चैव सुफलाढ्यास्तथैव च ॥२४॥
दधिरूपो मोदकश्चाकसौधान एव च । मंडकापायसं युक्तं दधि गोघृतमेव च ॥२५॥
हैयंगवीनमंडूरी कूपिका पर्पटस्तथा । शक्तिका लसिका चैव सुवृत्संधाय एव हि ॥२६॥
सुफलैश्च सितायुक्तैः फलानि विविधानि च । यथा मोहनभोगैश्च लवणं च तथैव च ॥२७॥

तत्त्वतः बताइए ॥ १० ॥ दत्तात्रेय बोले—हे राजन् ! जबतक अपेक्षित वस्तु न दिखायी दे, तभीतक मशाल-
की आवश्यकता रहती है । महान् आनन्दरूपी वस्तु दिख जानेपर मशालका क्या काम ? ॥ ११ ॥ जबतक
नस्त्वज्ञान नहीं प्राप्त होता, तभीतक जगत् रहता है । परब्रह्मको जान लेनेके बाद जगत्का क्या प्रयोजन ?
॥ १२ ॥ मुखका प्रतिबिम्ब रहते हुए भी दर्पणमें शरीर दिखायी नहीं देता । उसी प्रकार प्रधान अर्थमें जीवको
भी समझिए । यह ज्ञानसे परेकी बात है ॥ १३ ॥ जैसे सूर्योदय हो जानेपर नेत्रोंसे सभी वस्तुयें दिखायी
देने लगती हैं, वैसे ही ज्ञानरूपी सूर्यके उदय हो जानेपर जीवको सब ओर ब्रह्मतत्त्व दिखायी देने लगता
है ॥ १४ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! मुनि दत्तात्रेयके वचन सुनकर यादवेश्वर प्रद्युम्नने उनको प्रणाम
किया और सेनाके साथ वहाँसे द्रविड़देशमें विद्यमान वैकुण्ठपर्वतपर गये ॥ १५ ॥ वहाँ धर्मके तत्त्वको जानने-
वाले द्रविड़देशके नरेश सत्यवाक्ने परम भक्तिसे प्रद्युम्नका पूजन किया ॥ १६ ॥ फिर शंकरभगवानके धाम
श्रीशैलपर्वत तथा स्वामिकार्तिकेयका दर्शन करके प्रद्युम्न पम्पासरोवर गये ॥ १७ ॥ वहाँसे चलकर वे गोदा-
वरी तथा भीमरथी नदीपर गये । द्वारकानाथ उस तीर्थका दर्शन करके महेंद्राचलपर गये ॥ १८ ॥ उस पर्वतपर
विराजमान क्षत्रियोंके काल भृगुवंशो परशुरामको प्रणाम तथा प्रदक्षिणा करके प्रद्युम्न उनके सम्मुख बैठे
॥ १९ ॥ तब परशुरामने उन्हें आशीर्वाद देकर यादवोंकी चतुरंगिणी सेनाके लिए अपने योगबलसे भोजनकी
व्यवस्था की ॥ २० ॥ भात, दाल, चटनी, दहीकी सामग्री, अनेक शाक, सिखरन, शर्बत, मुरब्बा, तिकोना,
गुक्षिया, घेवर, खाझा, फेनी, पुआ, मालपुआ, शतपत्र, सच्छिद्रक (बड़ा), रामचक्रचिह्निका, अमृतकुण्डली,
घृतपूर, वायुपूर, चन्द्रकला, दधिस्थली, कर्पूरनाडो, खुरमा, गोधूमपरिखा और सुफलाढ्या ॥ २१-२४ ॥
दाघरूप, मोदक, शाक, अचार, खड़ी, मांड, मलाई, खीर, दही, मखन, ॥ २५ ॥ घृतमंडूरी, कूपिका,
पापड़, लस्सी, सुवृत्संधाय, ॥ २६ ॥ अनेक अचार, मुरब्बा, अनेक फल, मोहनभोग, नमकीन ॥ २७ ॥

कपायो मधुरस्तिक्तः कटुरम्लस्त्वनेकधा । पट्पंचाशत्तमश्चैव ह्येते भोगाः प्रकीर्तिताः ॥२८॥
 एतेषां भार्गवः शैलानकाशीद्योगमास्थितः । सैन्ये संभोजिते तत्र हस्तन्यूना न तेऽभवन् ॥२९॥
 वैभवं भार्गवस्यापि दृष्ट्वा सर्वेऽतिविस्मिताः । प्रद्युम्नस्तं नमस्कृत्य यादवैः सहितस्तदा ॥३०॥
 सर्वेषां शृण्वतां राजन् प्रच्छेदं हरेः सुतः ।

प्रद्युम्न उवाच

भगवन्भवता दत्तं सर्वेभ्यो भोजनं परम् ॥३१॥
 समृद्धयः सिद्धयश्च त्वदंघ्रावास्थिताः प्रभो । सर्वेषां हरिभक्तानां प्रियो भक्तस्तु को हरेः ॥
 एतन्मे ब्रूहि विप्रेन्द्र त्वं परावरचित्तमः ॥३२॥

परशुराम उवाच

त्वं प्रभो किं न जानासि लोकवत्पृच्छसेऽथ माम् । लोकसंग्रहमेवारात्कुर्वन् विचरसि क्षितौ ॥३३॥
 निष्किंचनो हरिपदाब्जपरागलुब्धः श्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनतत्परो यः ।
 तद्रूपसिंधुलहरीविनिमग्नचित्तः श्रीकृष्णचंद्रदयितः कथितः स भक्तः ॥३४॥
 दांतो महानखिलजंगमवत्सलोऽयं शांतस्तिष्ठतिक्षुरतिकारुणिकः सुहृत्सत् ।
 लोकं पुनाति निजपादरजोभिराराच्छ्रीकृष्णचंद्रदयितः कथितः परेश ॥३५॥
 यः पारमेष्ठ्यमखिलं न महेंद्रधिष्यं नो सार्वभौममनिशं न रसाधिपत्यम् ।
 नो योगसिद्धिमभितो न पुनर्भवं वा वाञ्छत्यलं परमपादरजः स भक्तः ॥३६॥
 निष्किंचनाः स्वकृतकर्मफलैर्विरागा यत्तत्पदं हरिजना मुनयो महांतः ।
 भक्ता जुषंति हरिपादरजःप्रसक्ता अन्ये विदंति न सुखं किल नैरपेक्ष्यम् ॥३७॥
 भक्तात्प्रियो न विदितः पुरुषोत्तमस्य शंभुर्विधिर्न चरमान च रौहिणेयः ।
 भक्ताननुव्रजति भक्तनिबद्धचित्तचूडामणिः सकललोकजनस्य कृष्णः ॥३८॥

कसेले, मीठे, फीके, चटपटे, खट्टे और कड़ुए प्रकारके छप्पन भोग प्रकट किये ॥ २८ ॥ भगवान् परशुरामने अपने योगबलसे इन सभी सामग्रियोंके पहाड़ बना दिये । उन्होंने प्रद्युम्नकी समस्त सेनाको उन्होंने भोजन कराया । किसी भी वस्तुकी कमी नहीं पड़ी ॥ २९ ॥ परशुरामजीका यह वैभव देखकर सब लोग चकित हो गये । तदनन्तर सभी यादवोंके साथ प्रद्युम्नने उन्हें प्रणाम करके कहा—हे भगवन् ! आपने हम सबको परम उत्तम भोजन दिया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ हे प्रभो ! सभी सिद्धियाँ और समृद्धियाँ आपके चरणोंमें नित्य लोटती रहती हैं । हे विप्रेन्द्र ! आप परावरके विज्ञ हैं । सो कृपया मुझे यह बताइए कि सब भगवद्भक्तोंमें भगवान्को कौन भक्त प्रिय होता है ॥ ३२ ॥ परशुरामजी बोले—हे प्रभो ! यह बात क्या आप नहीं जानते, जो साधारण मनुष्यकी तरह मुझसे पूछते हैं । मानवजाति को शिक्षा देनेके लिए ही आप धरतीपर घूम रहे हैं ॥ ३३ ॥ जो भक्त निष्किञ्चन, श्रीहरिके चरणकमलका भ्रमर जैसा लोभी, भगवत्कथाश्रवण तथा नामकीर्तनमें तत्पर हो और भगवान्के रूपसमुद्रकी लहरोंमें जिसका चित्त डूबा रहता हो, वही श्रीकृष्णका प्यारा भक्त होता है ॥ ३४ ॥ जो इन्द्रियोंका दमन करनेवाला, महापुरुष, सब जीवोंसे प्यार करनेवाला, शान्त, सहनशील, अतिक्रुणावान् और सबका सहृद हो, ऐसा पुरुष अपने चरणोंकी रजमे समस्त भुवनको पवित्र कर देता है और वही भगवान्का प्रिय भक्त होता है ॥ ३५ ॥ जो ब्रह्मपदकी, चक्रवर्ती राज्यकी, इन्द्रपदकी, समस्त पृथ्वीके आधिपत्यकी, योगसिद्धिकी और मुक्ति तककी कामना नहीं करता, बल्कि भगवान्के चरणरजका अभिलाषी रहता है, वही भगवान्का प्रिय भक्त होता है ॥ ३६ ॥ जो अकिंचन भक्त कर्मफलकी इच्छा नहीं करते, वे ही हरिजन और महामुनि भगवान्का चरण प्राप्त करते हैं । वे ही भगवच्चरणरजका उपभोग करते हैं और वे ही नैरपेक्ष्य सुखका स्वाद जानते हैं, दूसरे लोग उम सुखका महत्त्व नहीं जानते ॥ ३७ ॥

गच्छन्निजं जनमनु प्रपुनाति लोकानावेदयन्हरिजने स्वरुचिं महात्मा ।
तस्मादतीव भजतां भगवान्मुकुन्दो मुक्तिं ददाति न कदापि सुभक्तियोगम् ॥३९॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा यादवेंद्रो नत्वा श्रीभार्गवोत्तमम् । प्राच्यां दिशि ययौ राजन् गंगासागरसंगमम् ४०॥
इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीविश्वजित्खंडे नारदबहुलाश्वसंवादे द्वाविडदेशविजयो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी अङ्ग, उड्डीश-डामर, बंग तथा केकयदेशपर विजय)

श्रीनारद उवाच

दिग्जयस्य मिषेणासौ भूभारं हारयन्मुहुः । प्रद्युम्नो भगवान्साक्षादंगदेशं ततो ययौ ॥ १ ॥
अंगेशोऽन्तःपुराधीशो गृहीतो यादवैर्वने । सोऽपि तस्मै बलिं प्रादात्प्रद्युम्नाय महात्मने ॥ २ ॥
उड्डीशडामराधीशो बृहद्बाहुर्महाबलः । न ददौ स बलिं तस्मै प्रद्युम्नाय मदोत्कटः ॥ ३ ॥
प्रद्युम्नप्रेषितो वीरः साम्बो जांबवतीसुतः । एकाकी प्रययौ धन्वी रथेनादित्यवर्चसा ॥ ४ ॥
छादयामास बाणौघैर्दामरं नगरं नृप । गिरिं तुषारपटलैर्जीमूत इव सर्वतः ॥ ५ ॥
तदा तु डामराधीशो धर्षितः सन्कृतांजलिः । बलिं ददौ नमस्कृत्य प्रद्युम्नाय महात्मने ॥ ६ ॥
बंगदेशाधिपो वीरो वीरधन्वा मदोत्कटः । आययौ संमुखे योद्धुमक्षौहिण्यावृतो बली ॥ ७ ॥
चंद्रभानुर्हरेः पुत्रः प्रद्युम्नस्य प्रपश्यतः । बिभेद तद्वलं बाणैः कुवाक्यैर्मित्रतामिव ॥ ८ ॥
करिणां बाणभिन्नानां शिरसो मौक्तिकानि च । प्रस्फुरन्ति निपेतुः कौ रात्रौ तारागणा इव ॥ ९ ॥
निपेतू रथिनोऽनेका गजाश्वाश्च पदातयः । तद्बाणैश्छिन्नशिरसः कूष्माण्डशकला इव ॥ १० ॥

भगवान् अपने भक्तसे बढकर प्रिय किसीको नहीं मानते । ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी और बलदेवको भी वे भक्तसे प्रिय नहीं समझते । भक्तोंसे चित्त बँधा होनेके कारण सभी लोकोंके चूडामणि श्रीकृष्ण भक्तोंके पीछे-पीछे चला करते हैं ॥ ३८ ॥ उनका अनुसरण करते हुए भगवान् सब लोकोंको पवित्र करते रहते हैं । श्रीकृष्ण अपने भक्तोंमें अपनी रुचिका प्रदर्शन करते फिरते हैं । इसीसे वे अत्यधिक अपना भजन करनेवालोंको मुक्ति तो दे देते है, किन्तु भक्तियोग नहीं देते ॥ ३९ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! भगवान् परशुरामकी ऐसी बाणी सुनकर यादवेश प्रद्युम्नने उन्हें प्रणाम किया और वहाँसे पूर्वदिशामें गंगासागरको गये ॥ ४० ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! दिग्जयके बहाने बराबर भूभार हरते हुए साक्षात् भगवान् प्रद्युम्न अंगदेशको गये ॥ १ ॥ वहाँ यादवोंने अंगदेशके नरेशको वनमें पकड़ लिया, तब उसने आकर महात्मा प्रद्युम्नको भेंट दी ॥ २ ॥ उड्डीशडामर (उड्डीसा) के महाबली और मदोत्कट नरेश बृहद्भानुने प्रद्युम्नको भेंट नहीं दी ॥ ३ ॥ तब प्रद्युम्नके भेजेनेपर जाम्बवतीसुत धनुर्धर साम्ब सूर्यसदृश तेजस्वी रथपर सवार होकर अकेले ही बृहद्भानुके नगरमें गये ॥ ४ ॥ हे राजन् ! वहाँ पहुँचते ही उन्होंने बाणोंकी बौछारसे डामरनगरको ढाँक दिया । जैसे घना हिमपात पर्वतको ढाँक देता है ॥ ५ ॥ इस प्रकार दबाव पड़नेपर डामराधीशने हाथ जोड़ और प्रणाम करके महात्मा प्रद्युम्नको भेंट दी ॥ ६ ॥ बङ्गदेशका महाबली नरेश वीरधन्वा एक अक्षौहिणी सेना लेकर लड़नेके लिए यादवोंके सामने आया ॥ ७ ॥ तब श्रीकृष्णके पुत्र चन्द्रभानुने प्रद्युम्नके देखते-देखते अपने बाणोंसे उसकी सारी सेनाको छिन्न-भिन्न कर दिया । जैसे कुवाक्योंसे मित्रता छिन्न-भिन्न हो जाती है ॥ ८ ॥ उनके बाणोंसे कटे हाथियोंके मस्तकसे गिरकर बिखरे हुए झिलमिलाते मोती रात्रिके समय आकाशमें जगमगाते तारागणों जैसे दीखते थे ॥ ९ ॥ अनेक रथी, अनेक हाथी, अनेक घोड़े

क्षणमात्रेण तत्सैन्यक्षतजानां नदी ह्यभूत् । मनस्विनां हर्षकरी त्रस्तानां भयकारिणी ॥११॥
 मुंडैः कवधैर्धावद्भिर्हारकेयूरकुण्डलैः । किरीटैः कंकणैः शस्त्रैर्महामारीव भूर्वभौ ॥१२॥
 कृष्मांडोन्मादवेताला भैरवा ब्रह्मराक्षसाः । शिरांसि जगृहुर्वेगाद्भरमालार्थहेतवे ॥१३॥
 इत्थं निपातिते सैन्ये वीरधन्वा समागतः । चंद्रभानुं तताडाशु गदया वज्रकल्पया ॥१४॥
 तद्गदातिप्रहारेण न चचाल हरेः सुतः । चंद्रभानुर्गदां नीत्वा तं तताड भुजांतरे ॥१५॥
 गदाप्रहारव्यथितो मूर्च्छितो धरणीतले । पपात पादप इव प्रोद्धमन् रुधिरं मुखात् ॥१६॥
 लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन बंगदेशाधिपो नृपः । प्रययौ शरणं सोऽपि प्रद्युम्नस्य महात्मनः ॥१७॥
 याते दत्तवलौ राजन्नगरं वीरधन्वनि । ब्रह्मपुत्रं समुत्तीर्य प्रद्युम्नोऽमितविक्रमः ॥१८॥
 आशीमाधिपतिं विवं गृहीत्वा यादवेश्वरः । वलिमादय यदुभिः कामरूपं समाययौ ॥१९॥
 कामरूपेश्वरः पुंङ्गु ऐन्द्रजालविशारदः । निर्गतः सेनया सार्द्धं योद्धुं प्रद्युम्नसंमुखे ॥२०॥
 आशीमानां यदूनां च घोरं युद्धं बभूव ह । बाणैः कुठारैः परिधैः शूलैः खड्गैश्चिह्निभिः ॥२१॥
 पुंङ्गो विद्याश्चकाराशु पैशाचोरगराक्षसीः । ततो गुह्यकगंधर्वाः सर्वतो मैथिलेश्वर ॥२२॥
 प्रधावंतो रणे राजन्पिशाचाः पिशिताशनाः । कोटिशः कोटिशोऽङ्गारान् क्षेपयंतो मुहुर्मुहुः ॥२३॥
 क्षणमात्रेण तत्सैन्यं वमंतो गरलं मुखात् । फूत्कारमपि कुर्वतो दंदशूकाः समागताः ॥२४॥
 खरारूढा दंतवक्रा ललज्जिह्वाभयंकराः । चर्वयंतो नरान् युद्धे धावंतो राक्षसास्ततः ॥२५॥
 यक्षाश्च सिंहवदना तुरंगवदना नृप । छिंधि मिंधीति गर्जतः शूलहस्ता इतस्ततः ॥२६॥
 क्षणमात्रेण मेघानां समूहैश्छादितं नमः । अंधकारो ह्यभूद्राजन् रजसा वातवेगतः ॥२७॥

और अनेक पैदल सैनिकोंके मस्तक बाणोंकी मारसे कट-कटकर कोंहड़के टुकड़ोंकी भांति गिरने लगे ॥ १० ॥
 क्षणमात्रमें सैनिकोंके घावोंसे निकले रुधिरकी नदी बह चली । जो वीरोंको हर्षदायिनी, किन्तु कायरोंके लिए भयदायिनी प्रतीत हुई ॥ ११ ॥ हुए दौड़ते नरमुण्डों और कवन्धों (घड़ों) हारों, केयूरों, कुण्डलों, किरीटों और शस्त्रोंसे वह रणभूमि महामारी जैसी दीखने लगी ॥ १२ ॥ कृष्माण्ड, उन्माद, वेताल, भैरव और ब्रह्मराक्षस शंकरजीके लिए मुण्डमाला बनानेके निमित्त बड़े-बड़े वीरोंके मुण्ड बटोरने लगे ॥ १३ ॥ इस प्रकार सेनाके नष्ट हो जानेपर वीरधन्वा आया और उसने आते ही वज्रके समान भीषण गदासे चन्द्रभानुको मारा ॥ १४ ॥ उस गदाके भयानक प्रहारसे श्रीकृष्णपुत्र चन्द्रभानु तनिक भी विचलित नहीं हुए । तभी चन्द्रभानुने गदा लेकर वीरधन्वाके भुजान्तरपर प्रहार किया ॥ १५ ॥ जिससे वीरधन्वा मूर्च्छित हो गया और मुखसे रुधिर वमन करता हुआ कटे वृक्षकी तरह घरतीपर गिर गया ॥ १६ ॥ एक मुहूर्त बाद जब होश आया तो वह बंगदेशका नरेश महात्मा प्रद्युम्नकी शरणमें आया ॥ १७ ॥ भेंट देकर वीरधन्वा जब अपने नगरको लौट गया, तब ब्रह्मपुत्र नदको पार करके अमित पराक्रमी प्रद्युम्नने आशीम (आसाम) देशके राजा बिम्बको पकड़कर उससे भेंट ली और यादवेश्वर प्रद्युम्न वहाँसे कामरूप देशको चल पड़े ॥ १८ ॥ १९ ॥ इन्द्रजाल-विद्यामें निपुण कामरूप देशका राजा पुण्ड्र सेना लेकर प्रद्युम्नसे लड़ने आया ॥ २० ॥ उसके आते ही बाण, फरसा, त्रिशूल, तलवार, पटा और बछिसि आशीमों और यादवोंमें भीषण युद्ध हुआ ॥ २१ ॥ बादमें पुण्ड्रने इन्द्रजाल-विद्या द्वारा पैशाची, सार्पी, राक्षसी आदि बड़ी-बड़ी माया फैलायी, जिससे हे मिथिलेश ! सब ओरसे गुह्यक तथा गन्धर्व आदि निकल-निकलकर आने लगे । करोड़ों मांसलोलुप पिशाच बारम्बार अंगार उगलने लगे ॥ २२ ॥ २३ ॥ क्षण ही भरमें सारी सेना विषका वमन करने लगी और तभी फुफकारते हुए बहुतसे सर्प वहाँ आ गये ॥ २४ ॥ तदनन्तर गधोंपर सवार, टेढ़े दाँतोंवाले, और लपलपाती जोभवाले भयंकर राक्षस आये, जो आते ही लोगोंको चवाने लगे ॥ २५ ॥ सिंह तथा घोड़ों जैसे मुखवाले बहुतसे यक्ष आये, जो हाथोंमें त्रिशूल लिये हुए थे । वे गर्जते हुए कह रहे थे—छेद दो, भेद दो ॥ २६ ॥ क्षण ही भर बाद बादलोंसे सारा आकाश भर गया और वायुके बेगसे उड़ी धूलके कारण अन्धकार छा गया ॥ २७ ॥ इससे भोज, वृष्णि,

भोजवृष्ण्यंधकमधुशूरसेनदशार्हकाः । भयं प्रापुर्महायुद्धे न्यस्तशस्त्रा यदूत्तमाः ॥२८॥
 कृष्णदत्तं धनुः कार्ष्णिरादाय प्रतिकारवित् । सत्त्वात्मिकां महाविद्यां बाणैः प्रायुक्तमैथिल ॥२९॥
 बाणैः पिशाचानुरगान् सयक्षान् रक्षांसि गन्धर्वधनांधकारान् ।
 विभेद दिव्यैः प्रभवैर्यथा हि नीहारमेषान्किरणैर्विवस्वान् ॥३०॥
 बाणैश्च पुंड्रं सरथं सवाहनं तं भ्रामयित्वा घटिकाद्वयं खे ।
 निपातयामास रणे सपत्नं पद्मं पृथिव्यामिव मारुतः किल ॥३१॥
 बुद्धस्तदा तं शरणं समेत्य प्रधर्षितः सद्य उपायनानि ।
 लक्षैर्हयानामयुतैर्गजानां युतानि दत्त्वा प्रणनाम कार्ष्णिम् ॥३२॥
 विपाशां स तदोत्तीर्य सैन्यैः शोणनदं नृप । कैकयानाययौ धन्वी प्रद्युम्नो यदुनंदनः ॥३३॥
 कैकयस्याधिपो राजा धृतकेतुर्महाबलः । वसुदेवस्वसुः साक्षाच्छ्रुतकीर्तः पतिर्महान् ॥३४॥
 प्रद्युम्नमर्हयामास धृतकेतुः स यादवम् । भक्त्या परमया राजञ्छ्रीकृष्णस्य प्रभाववित् ॥३५॥
 इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलध्वसंवादे कैकयविजयो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

(दन्तवक्रकी पराजय और करूपदेशपर प्रद्युम्नकी विजय)

श्रीनारद उवाच

दंतभीजादयंस्तस्मात्प्रद्युम्नो यदुनंदनः । मैथिलानाययौ राजंस्तव देशान् सुखावृतान् ॥ १ ॥
 सुवर्णसौधैरत्युच्चैः सघटै राजतीं पुरीम् । मिथिलां वीक्ष्य तामारादुद्धवं प्राह माधवः ॥ २ ॥

प्रद्युम्न उवाच

कस्यैषा नगरी मंत्रिन् दृश्यते सांप्रतं मया । राजते बहुसौधैश्च पुरी भोगवती यथा ॥ ३ ॥

अन्धक, मधु, शूरसेन तथा दशार्हवंशी यादव उस रणांगणमें भयभीत हो उठे और उन्होंने हथियार डाल दिये ॥ २८ ॥ तब विपत्तिका प्रतीकार करनेमें निपुण प्रद्युम्नने श्रीकृष्णका दिया हुआ धनुष हाथमें लिया । हे राजन् ! उन्होंने उस धनुषपर वैष्णवी सत्त्वात्मिका मायाका संधान करके छोड़ दिया ॥ २९ ॥ उससे निकले बाणों द्वारा उन्होंने पिशाचों, सर्पों, यक्षों, राक्षसों, गन्धर्वों तथा उस भीषण अन्धकारको नष्ट कर दिया, जैसे सूर्यदेव अपनी किरणोंसे कुहरेके वादलोंको नष्ट कर देते हैं ॥ ३० ॥ उन्होंने बाणोंसे प्रद्युम्नने रथ-घोड़ों समेत राजा पुण्ड्रको दो धड़ी धुमाकर संग्रामभूमिमें पटक दिया, जैसे वायु कमलके फूलको पटक दे ॥ ३१ ॥ जब वह सचेत हुआ तो तत्काल एक लाख घोड़े तथा दस हजार हाथियोंकी भेंट देकर पुण्ड्रने प्रद्युम्नको प्रणाण किया ॥ ३२ ॥ तदनन्तर सेनाके साथ विपाशा नदी तथा सोनभद्र नदको पार करके वनुर्धर यदुनन्दन प्रद्युम्न कैकयदेशमें जा पहुँचे ॥ ३३ ॥ कैकयदेशका नरेश महाबली धृतकेतु वसुदेवकी बहिन श्रुतकीर्तिका पति था ॥ ३४ ॥ सो धृतकेतुने यादवी सेना समेत प्रद्युम्नका उत्तम सत्कार किया । क्योंकि वह भगवान् कृष्णका प्रभाव जानता था ॥ ३५ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! वहाँसे प्रद्युम्न नगाड़े वजवाते हुए आपके सर्वथा सुखी मिथिला-पुरीको आये ॥ १ ॥ बड़े-बड़े ऊँचे सुनहले कलशोंवाले महलोंसे अलंकृत मिथिलापुरीको देखकर प्रद्युम्नने उद्वेगसे कहा ॥ २ ॥ प्रद्युम्न बोले—हे मंत्रिन् ! बहुतेरे प्रासादोंसे भरी-पूरी भोगवतीपुरी जैसी सुन्दर यह

उद्धव उवाच

जनकस्य पुरी ह्येषा मिथिला नाम मानद । मिथिलेंद्रो धृतिस्तस्यां महाभागवतः कविः ॥ ४ ॥
 सर्वधर्मभृतां श्रेष्ठः श्रीकृष्णो ह्येति हरिप्रियः । बहुलाश्वस्तस्य सुत आवाल्याङ्गिकृद्धरेः ॥ ५ ॥
 तस्मै स्वं दर्शनं दातुं भगवानागमिष्यति । बहुलाश्वं राजपुत्रं श्रुतदेवं द्विजं तथा ॥ ६ ॥
 स्मरत्यलं द्वारकायां श्रीकृष्णो भगवान् हरिः । जेतुं न शक्यो देवैर्द्रैर्भुजैश्च कुतः प्रभो ॥ ७ ॥
 धृतिः परमया भक्त्या श्रीकृष्णवशकारकः ।

श्रीनारद उवाच

तच्छ्रुत्वा भगवान् कार्णिकरुद्धवेन समन्वितः । स्वशिष्यमुद्धवं कृत्वा धृतिं द्रष्टुं समाययौ ॥ ८ ॥
 भक्तेरेव परीक्षां हि कर्तुं तस्य नृपस्य च । ददर्श मिथिलां कार्णिकरुद्धवेन समन्वितः ॥ ९ ॥
 चर्मशस्त्रधृता वीरा मालातिलकशोभिताः । जपंतः कृष्णनामामानि सर्वे वै यत्र मालया ॥ १० ॥
 लिखितानि च नामानि द्वारि द्वारि हरेर्नृणाम् । तथा श्रीकृष्णचित्राणि लिखितानि शुभानि च ॥ ११ ॥
 कुड्ये कुड्ये गृहाणां च गदापद्मानि मानद । दशावतारचित्राणि शंखचक्राणि यत्र वै ॥ १२ ॥
 तुलसीमंदिराणीत्थं प्रांगणे च गृहे गृहे । एवं पश्यन्स सौधानि मिथिलायां जनान् बहून् ॥ १३ ॥
 मालातिलकसंयुक्तान् सर्वान्भक्तान्ददर्श ह । तिलकैर्द्वादशाख्यैश्च युक्तैः कुंकुमजैर्वृतान् ॥ १४ ॥
 गोपीचन्दनमुद्राभिश्चिन्ताञ्छांतविग्रहान् । ऊर्ध्वपुंड्रधारान् विप्रान् हरिमंदिरचित्रितान् ॥ १५ ॥
 गदां मुद्रां ललाटे च ऊर्ध्वं वाहरिनामतः । चक्रं शंखं च कमलं कूर्मं मत्स्यं भुजद्वये ॥ १६ ॥
 दधतश्च धनुर्बाणं मूर्ध्नि श्रीनंदकं हृदि । सुसलं च हलं राजन्थ कार्णिकददर्श ह ॥ १७ ॥
 यस्या वीथ्यां भागवतं केचिच्छृण्वन्ति मानवाः । इतिहासं भारतं च हरिवंशं तथापरे ॥ १८ ॥
 सनत्कुमारवासिष्ठयाज्ञवल्क्यपराशराः । गर्गपौलस्त्यधर्मादिसंहिताः के पठन्ति वै ॥ १९ ॥

किसकी नगरी है ? ॥ ३ ॥ उद्धवने कहा—हे मानद ! यह राजा जनककी मिथिली पुरी है । परम भगवद्भक्त और ज्ञानी राजा धृति इस पुरीका राजा है ॥ ४ ॥ वह सभी धर्मात्माओंका अग्रणी, श्रीकृष्णका भक्त और भगवान्को प्रिय है । बहुलाश्व उसका बेटा है, जो जन्मसे ही भगवान्का भक्त है ॥ ५ ॥ उसको और विप्र श्रुत-देवको दर्शन देनेके लिए भगवान् स्वयं यहाँ आयेगे ॥ ६ ॥ द्वारकामें श्रीकृष्ण राजा बहुलाश्वको बहुत याद करते हैं । बड़े-बड़े देवता भी उसे नहीं परास्त कर सकते, तब मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ॥ ७ ॥ राजा धृतिने अपनी उत्कट भक्तिसे श्रीकृष्णको अपने वशमें कर लिया है । श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! यह सुनकर प्रद्युम्न उद्धवको शिष्य बना और स्वयं ब्रह्मचारी बनकर राजा धृतिसे मिलने गये ॥ ८ ॥ उनका उद्देश्य उस राजाकी भक्तिकी परीक्षा लेना था । इसीके लिए उद्धवके साथ वे मिथिलापुरी गये थे ॥ ९ ॥ वहाँके सभी वीर धर्मशास्त्रके अनुसार माला और तिलकसे शोभित थे । वे सब मालापर श्रीकृष्णके नाम जप रहे थे ॥ १० ॥ वहाँके द्वार-द्वारपर श्रीकृष्णके नाम लिखे थे और उनके चित्र बने हुए थे ॥ ११ ॥ हर घरकी दीवारपर गदा, पद्म, शंख, चक्र और दशावतारके चित्र चित्रित थे ॥ १२ ॥ हर घरके आंगनमें तुलसी-के मन्दिर बने हुए थे । इस प्रकार उस नगरीके महलों तथा मनुष्योंको देखते हुए प्रद्युम्न मिथिलापुरीमें गये ॥ १३ ॥ वहाँके सभी निवासी भगवद्भक्त और माला-तिलकधारी थे । उनके मस्तकपर केसरके बारह-बारह तिलक लगे थे ॥ १४ ॥ गोपीचन्दनकी मुद्राओंसे सुशोभित, शान्तिके सूतरूप तथा ऊर्ध्वपुंड्रधारी ब्राह्मण वहाँके मन्दिरोंमें विराजमान थे ॥ १५ ॥ ऊर्ध्वपुंड्र तथा गदाकी मुद्रा वे ललाटमें लगाये और ब्राह्मण भगवन्नाम, शंख, चक्र, पद्म, मत्स्य और कूर्मकी दोनों भुजाओंमें अंकित किये हुए थे ॥ १६ ॥ कुछ ब्राह्मण धनुष तथा बाणको मस्तकपर रखे हुए थे । वे हृदयपर नन्दक, हल तथा सूसल धारण किये थे । उनको सनत्कुमारने देखा ॥ १७ ॥ उस नगरीकी किसी गलीमें कोई भागवत सुन रहा था । कोई महाभारत इतिहास तथा हरिवंश सुनता था ॥ १८ ॥ बहुतेरे लोग सनत्कुमारसंहिता, याज्ञवल्क्यसंहिता, पाराशरसंहिता, गर्ग-

ब्राह्मं पाशं वैष्णवं च शैवं लैंगं सगारुडम् । नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कन्दसंज्ञितम् ॥२०॥
 भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम् । वाराहमात्स्यकौर्मणि ब्रह्मांडाख्यं तथैव च ॥२१॥
 वीथ्यां वीथ्यां स्म शृण्वन्ति जनाः सर्वे गृहे गृहे । वाल्मीकिकाव्यं केचिद्वै श्रीरामचरितामृतम् ॥२२॥
 स्मृतीः पठन्ति केचिद्वै केचिद्वेदत्रयीं द्विजाः । केचित्कुर्वन्ति यज्ञं वै वैष्णवं मंगलायनम् ॥२३॥
 राधाकृष्णेति कृष्णेति के वदन्ति मुहुर्मुहुः । केचिन्नृत्यन्ति गायन्ति हरिकीर्तनतत्पराः ॥२४॥
 मृदंगतालवादित्रैः कांस्यवीणामनोहरैः । मंदिरे मंदिरे विष्णोः कीर्तनं श्रूयते जनैः ॥२५॥
 नवलक्षणसंयुक्तां भक्तिं यां प्रेमलक्षणां । कुर्वन्ति मैथिला राजन् मिथिलायां गृहे गृहे ॥२६॥
 एवं तु नगरीं दृष्ट्वा प्रद्युम्नो भगवान्हरिः । राजद्वारं समेत्याशु मैथिलेशं ददर्श ह ॥२७॥
 मैथिलेशसभायां तु वेदव्यासः शुको मुनिः । याज्ञवल्क्यो वसिष्ठश्च गौतमोऽहं बृहस्पतिः ॥२८॥
 अन्ये च मुनयस्तत्र वेदमूर्तिधरा इव । दृश्यन्ते धर्मवक्तारो हरिनिष्ठा इतस्ततः ॥२९॥
 मैथिलेन्द्रो धृतिस्तत्र भक्तिभावनताननः । बलस्य पादुकापूजां कुरुते विधिवन्नृप ॥३०॥
 जपन्मुक्तिकरं नाम श्रीकृष्णबलदेवयोः । दृष्ट्वात्थाय नमश्चक्रे सशिष्यं ब्रह्मचारिणम् ॥३१॥
 तं पूजयित्वा विधिवत् पाद्याद्यैर्मैथिलेश्वरः । कृताञ्जलिपुटो राजा तदग्रे च स्थितोऽभवत् ॥३२॥

जनक उवाच

अद्य मे सफलं जन्म मंदिरं विशदीकृतम् । देवर्षिपितरः सर्वे संतुष्टा आगते त्वयि ॥३३॥
 निर्विकल्पाः समदृशस्त्वादृशाः साधवः क्षितौ । निःश्रेयसाय भगवन्दीनानां विचरन्ति हि ॥३४॥

ब्रह्मचार्युवाच

धन्योऽसि राजशार्दूल धन्या ते मिथिलापुरी । धन्याः प्रजाश्च ते सर्वा विष्णुभक्तिसमन्विताः ॥३५॥

संहिता तथा धर्मसंहिता पढ़-सुन रहे थे ॥ १९ ॥ कहीं ब्रह्मपुराण १, पद्मपुराण २, विष्णुपुराण ३, शिव-पुराण ४, लिंगपुराण ५, गरुडपुराण ६, नारदपुराण ७, भागवतपुराण ८, अग्निपुराण ९, स्कन्दपुराण १०, भविष्यपुराण ११, ब्रह्मवैवर्तपुराण १२, मार्कण्डेयपुराण १३, वामनपुराण १४, वाराहपुराण १५, मत्स्य-पुराण १६, कूर्मपुराण १७, और ब्रह्माण्डपुराण १८, इन अठारह पुराणोंको लोग बड़े प्रेमसे सुन रहे थे ॥ २० ॥ २१ ॥ वहाँको गली-गलीमें लोग रामचरित्रसे ओतप्रोत वाल्मीकीय रामायण पढ़ या सुन रहे थे ॥ २२ ॥ कुछ ब्राह्मण स्मृति तथा कुछ वेदत्रयीका अध्ययन कर रहे थे । कुछ विप्र यज्ञ कर रहे थे ॥ २३ ॥ कुछ ब्राह्मण राधाकृष्ण-मंत्रका बारम्बार जप कर रहे थे । उनमेंसे कुछ गाते थे, कुछ नाचते थे और कुछ हरिकीर्तन कर रहे थे ॥ २४ ॥ कुछ लोग मृदंग, झांझ, मजोरा, त्रोणा तथा सितार आदि मनोहर वाद्य बजाते हुए सभी मन्दिरोंमें हरिकीर्तन कर रहे थे ॥ २५ ॥ हे राजन् ! मिथिलापुरीके घर-घरमें मैथिल लोग नौ लक्षणों युक्त प्रेम-लक्षणा भक्ति करते थे ॥ २६ ॥ इस प्रकार भगवान् प्रद्युम्न मिथिला नगरी देखते हुए राजद्वारपर जाकर मिथिलात्रिपतिको देखा ॥ २७ ॥ उन मिथिलेशकी सभामें वेदव्यास, शुक्रदेव, याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ, गौतम, नारद और बृहस्पति विराजमान थे ॥ २८ ॥ मूर्तिमान् वेदकी भाँति धर्मवक्ता अन्यान्य हरिभक्त मुनि भी इधर-उधर दिखायी दे रहे थे ॥ २९ ॥ मिथिलेश धृति भक्तिभावसे मस्तक झुकाकर बलदेवजीकी चरणपादुका-का पूजन करते थे ॥ ३० ॥ वे श्रीकृष्ण तथा बलदेवके मुक्तिदायक नाम जपते थे । एकाएक शिष्यके साथ एक ब्रह्मचारीको आया देखकर वे उठ खड़े हुए और उन्हें प्रणाम किया ॥ ३१ ॥ हे मिथिलेश ! पाद्य-अर्घ्य आदिसे उनकी पूजा करके राजा जनकने हाथ जोड़कर ब्रह्मचारीसे कहा । जनक बोले—आज मेरा जीवन सफल हुआ और मेरा घर पवित्र हो गया । आपके आगमनसे सभी देवता, ऋषि और पितर प्रसन्न हो गये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ आप जैसे निर्विकल्प और समदर्शी साधु हम जैसे दीन गृहस्थोंपर कृपा करनेके लिए ही विचरते रहते हैं ॥ ३४ ॥ ब्रह्मचारीजी बोले—हे नृपशार्दूल ! तुम्हारी प्रजाके हृदयमें ऐसी उत्कृष्ट विष्णुभक्ति है,

जनक उवाच

ममेयं नगरी नास्ति न प्रजा न गृहं धनम् । कलत्रपुत्रपौत्रादि सर्वं कृष्णस्य चैव हि ॥३६॥
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् । असंख्यब्रह्माडपतिर्गोलोके धाम्नि राजते ॥३७॥
वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम् । अनिरुद्धस्तथा चैकश्चतुर्व्यूहोऽभवत् क्षितौ ॥३८॥
काथेन मनसा वाचा बुद्ध्या वार्चेद्रियैः कृतम् । तस्मै समर्पितं शौक्न्यं मया ब्रह्मन्महाद्युने ॥३९॥

ब्रह्मचार्युवाच

हे वैदेह महाभाग विष्णुभक्तिमतां वर । त्वद्भक्त्या तोषितः कृष्णस्तवैकत्वं प्रदास्यति ॥४०॥

जनक उवाच

दासोऽहं कृष्णभक्तानां त्वादृशानां महात्मनाम् । मुक्तिं नेच्छामि हे ब्रह्मभेकतां हेतुवर्जितः ॥४१॥

ब्रह्मचार्युवाच

करोष्यहेतुकीं भक्तिं राजस्त्वं हेतुवर्जितः । निर्गुणैर्भक्तिभावैश्च प्रेमलक्षणसंयुतः ॥४२॥
प्रद्युम्नो भगवान्साक्षाद्दिग्जयार्थं विनिर्गतः । नायातस्तव गेहेषु संदेहो मे महानभूत् ॥४३॥

जनक उवाच

प्रद्युम्नो भगवान्साक्षादन्तर्यामी हरिः स्वयम् । सर्वगः सर्वविच्छिन्नश्च द्रव्यं नास्ति च किं प्रभो ॥४४॥

ब्रह्मचार्युवाच

ज्ञानदृष्ट्याऽपि चेत्कार्ष्णिं मन्यसेऽत्र निरन्तरम् । तर्हि दर्शय तं देवं प्रह्लाद इव दिव्यदृक् ॥४५॥

श्रीनारद उवाच

एतच्छ्रुत्वा तदा राजा महाभागवतो धृतिः । अश्रुपूर्णमुखो भूत्वा प्राह गद्गदया गिरा ॥४६॥

जनक उवाच

यदि मे श्रीहरेर्भक्तिरनिमिच्छा कृता भुवि । तर्हि कार्ष्णिहरेः पुत्रः प्रादुर्भूयान्ममाग्रतः ॥४७॥
यदि श्रीकृष्णभक्तानां दासोऽहं यदि तत्कृपा । सर्वत्र यदि तद्भावस्तर्हि भूयान्मनोरथः ॥४८॥

श्रीनारद उवाच

प्रादुर्बभूवाशु तदैव कार्ष्णिर्विसृज्य सद्यः किल वर्णरूपम् ।

पश्यत्सु सर्वेषु जनेषु शिष्यः स गद्गदोऽभूद्भक्तिनिष्ठः ॥४९॥

अतएव तुम धन्य हो, तुम्हारी मिथिला पुरी धन्य है और तुम्हारी सब प्रजा धन्य है ॥ ३५ ॥ जनकजी बोले—यह नगरी मेरी नहीं है । न मेरी प्रजा है और न मेरा घर है । स्त्री-पुत्र-पौत्र आदि सब कुछ भगवान् श्रीकृष्ण-के हैं ॥ ३६ ॥ परिपूर्णतम श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं । वे असंख्य ब्रह्माण्डोंके स्वामी गोलोकमें रहते हैं ॥ ३७ ॥ वासुदेव, संकर्षण (बलदेव), प्रद्युम्न और अनिरुद्ध यह चतुर्व्यूह धरतीपर अवतरा है ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्मन् ! शरीर, मन, वचन, बुद्धि तथा इन्द्रियोसे मैंने जो सुकर्म किया है, उसका सारा फल मैंने श्रीकृष्णको अर्पण कर दिया है ॥ ३९ ॥ ब्रह्मचारीजी बोले—हे महाभाग विदेह ! हे विष्णुभक्तोंमें श्रेष्ठ ! तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न श्रीकृष्ण तुम्हें अपनेमें मिला लेंगे ॥ ४० ॥ जनकजी बोले—हे भगवन् ! मैं तो आप जैसे श्रीकृष्णभक्तोंका दास हूँ । मैं मुक्ति और एकात्मता भी नहीं चाहता ॥ ४१ ॥ ब्रह्मचारीजी बोले—हे राजन् ! तुम बिना किसी कामनाकी अहेतुकी भक्ति करते हो । अतएव तुम अपनी निर्मल भक्तिके कारण प्रेमलक्षणसे पूर्ण हो ॥ ४२ ॥ किन्तु साक्षात् भगवान् प्रद्युम्न दिग्विजयके लिए निकले हैं, किन्तु वे तुम्हारे घर नहीं आये । यही मुझे आश्चर्य है ॥ ४३ ॥ जनकजी बोले—हे प्रभो ! प्रद्युम्न तो अन्तर्यामी, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ और साक्षात् भगवान् हैं । क्या वे यहाँ नहीं हैं ? ॥ ४४ ॥ ब्रह्मचारीने कहा—यदि ज्ञानदृष्टिसे प्रद्युम्नको सर्वव्यापी मानते हो तो प्रह्लादकी तरह हमें उनको प्रत्यक्ष दिखा दो ॥ ४५ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! यह बात सुनकर परम भगवद्भक्त राजा धृति आँखोंमें आँसु भरके गद्गद वाणीमें बोले—यदि मैंने निष्काम ईश्वरभक्ति की हो तो प्रद्युम्न

घनप्रभं पद्मदलायतेक्षणं प्रलंबवाहुं जगतां मनोहरम् ।
पीतांबरं नीलगुडालकालिभिः स्वलंकृतं श्रीमुखपद्ममंडलम् ॥५०॥
शीतर्तुवालार्ककिरीटकुंडलं काच्यंगदस्फूर्जितदिव्यविग्रहम् ।
विलोक्य तं कृष्णसुतं कृताञ्जलिर्ननाम साष्टांगमलं धृतिनृपः ॥५१॥

जनक उवाच

अहोऽतिधन्यं मम भूरि भाग्यं दत्तं त्वया मे निजदर्शनं हि ।
जातोऽद्य कायाधवतुल्य आराद्गृहं कृतार्थोऽस्मि कुलेन भूमन् ॥५२॥

श्रीप्रद्युम्न उवाच

धन्यस्त्वं नृपशार्दूल भक्तस्त्वं मत्प्रभाववित् । भक्तिभावपरीक्षार्थं प्राप्तोऽहं तव सांप्रतम् ॥५३॥
अद्यैव मम सारूप्यं भूयात्ते मैथिलेश्वर । वलमायुर्यशःकीर्तिरिह लोके भवत्वलम् ॥५४॥

श्रीनारद उवाच

तव पित्रा च धृतिना पूजितः पश्यतां सताम् । प्रययौ शिविरान् राजन् प्रद्युम्नो भक्तवत्सलः ५५ ॥
इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसम्वादे जनकोपाख्यानां नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥



अथ सप्तदशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी मथुरा और शूसेनदेशपर विजय)

श्रीनारद उवाच

अथातो मागधाञ्जेतुं प्रद्युम्नो मीनकेतनः । गिरिव्रजं जगामाशु स्वसैन्यैः परिवारितः ॥ १ ॥
श्रुत्वाऽऽगतं हरेः पुत्रं दिग्जयार्थं विशेषतः । जरासंधो मागधेन्द्रो महाक्रोपं चकार ह ॥ २ ॥

जरासंध उवाच

तुच्छा ये यादवाः सर्वे युधि विक्लवचेतसः । तेऽद्य वै जगतीं जेतुं निर्गता गतबुद्धयः ॥ ३ ॥

भगवान् मेरे सम्मुख प्रकट हो जाय ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ यदि मैं श्रीकृष्णके भक्तोंका दास होऊँ और यदि मेरे ऊपर भगवान्की कृपा हो तथा यदि मेरा सर्वत्र भगवद्भाव हो तो मेरा मनोरथ पूर्ण हो जाय ॥ ४८ ॥ श्रीनारदजी बोले—तब ब्रह्मचारीका स्वरूप त्यागकर सब लोगोंके देखते-देखते श्रीकृष्णक पुत्र प्रद्युम्न वहाँ ही प्रकट हो गये । यह चमत्कार देखकर वह भगवन्निष्ठ राजा धृति गद्गद हो गया ॥ ४९ ॥ श्याम विग्रह, कमल सरीखे नेत्र, विशाल भुजा, जगत्के मनोहारी, पीताम्बरधारो, श्याम अलकोंसे शोभायमान मुखारविन्दवाले, शीत-कालीन बालसूर्य सदृश चमकीले किरीट-कुण्डलधारो करधनी, वाज्रवन्द तथा नूपुरसे देदीप्यमान शरीरवाले भगवान् प्रद्युम्नको देखकर राजा धृति हाथ जोड़ और नमस्कार करके गद्गद वाणीमें बोले ॥ ५० ॥ ५१ ॥ उन्होंने कहा—मेरा भाग्य धन्य है, जो आपने मुझे दर्शन दिया । आपने आज मुझको प्रह्लादके तुल्य बना दिया । हे भूमन् ! मैं अपने कुलसमेत कृत-कृत्य हो गया ॥ ५२ ॥ प्रद्युम्न बोले—हे नृपशार्दूल ! तुम धन्य हो । तुम्हारे भक्तिभावकी परीक्षाके लिए ही मैं यहाँ आया हूँ ॥ ५३ ॥ तुमको अभी मेरी सारूप्य मुक्ति प्राप्त हो जायगी । हे मिथिलेश्वर ! तुमको इस लोकमें बल, आयु, कान्ति और अतिशय विख्यात यश प्राप्त हो ॥ ५४ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! आपके पिता महाराज धृतिसे पूजित होकर भक्तवत्सल प्रद्युम्न सब लोगोंके देखते-देखते अपने शिविरको लौट गये ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियवदा' भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! इसके बाद मगध देशको जीतनेके लिए प्रद्युम्न अपनी सेनाके साथ गिरिव्रज गये ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नको दिग्विजयके लिए आया सुनकर मगधनरेश जरासन्ध

मथुरां स्वपुरीं त्यक्त्वा मद्भयान्माधवोऽपिहि । समुद्रं शरणं प्रागात्पिता चास्य दुरात्मनः ॥ ४ ॥
प्रवर्षणे रामकृष्णौ मया भस्मीकृतौ बलात् । छलाद्दुद्रुवतुस्तौ द्वौ द्वारकायां समाश्रितौ ॥ ५ ॥
बद्ध्वा तौ चानयिष्यामि सोऽग्रसेनौ कुशस्थलीम् । अयादवीं करिष्यामि पृथ्वीं सागरमेखलाम् ॥ ६ ॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा निर्गतो राजा गिरिव्रजपुराद्वहिः । अक्षौहिणीभिर्विश्रुता तिसृभिः संयुतो बली ॥ ७ ॥
गोमूत्रचयसिंदूरकस्तूरीपत्रभृन्मुखे । स्रवन्मदैश्चतुर्दतैरैरावतकुलोद्भवैः ॥ ८ ॥
शुण्डादण्डस्य फूत्कारैः क्षेपयद्भिस्तारुन्वहून् । बभौ गजैर्मागधेन्द्रो मेघैरिन्द्र इव प्रभुः ॥ ९ ॥
रथैश्च देवधिष्याभैः सध्वजैरश्वनेतृभिः । चामरैर्दोलितै राजल्लोलचक्रध्वनिद्युतिः ॥ १० ॥
तुरङ्गमैर्वायुवेगैश्चित्रवर्णैर्मदोत्कटैः । सौवर्णपट्टहाराद्यैः शिखारश्म्यूर्ध्वचामरैः ॥ ११ ॥
सकंचुकैर्वीरजनैः खड्गचर्मधनुर्धरैः । विद्याधरसमैः प्रागान्मागधेन्द्रो महाबलः ॥ १२ ॥
धुंकारैर्दुर्दुभीनां च दिशो नेदुर्धनुःस्वनैः । चचाल वसुधा सैन्यै रजोभिश्छादितं नभः ॥ १३ ॥
जरासंधस्य तत्सैन्यं प्रलयाब्धिनिवोन्वणम् । विस्मिता यादवाः सर्वे बभूवुर्वीक्ष्य मैथिल ॥ १४ ॥
प्रद्युम्नो भगवान्वीक्ष्य मागधेन्द्रबलार्णवम् । शंखं दध्मौ दक्षिणाख्यं मा मैष्टेत्यभयं ददत् ॥ १५ ॥
ततः सांबो महाबाहुः प्रद्युम्नस्य प्रपश्यतः । अक्षौहिणीनां दशभिर्गुण्युधे मागधेन सः ॥ १६ ॥
गजा गजैर्युधिरे रथिभी रथिनो मृधे । हया हयैः पत्तयश्च पत्तिमिमैथिलेश्वर ॥ १७ ॥
बभूव तुष्टुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् । मागधानां यदूनां चासुराणां निर्जरैर्यथा ॥ १८ ॥
अश्वारूढाः केऽपि वीरा भल्लहस्ता इतस्ततः । मर्दयंतो गजारूढाः करिकुम्भगताचर्यः ॥ १९ ॥
केचिच्छक्तीस्तडिद्वर्णा गृहीत्वा चिक्षिपुर्वलात् । ताः शक्तयस्त्वरीन् भित्त्वा दंशितान् धरणीं गताः ॥

बहुत कुपित हुआ ॥ २ ॥ वह बोला—जो यादव बड़े तुच्छ थे और युद्धसे घबड़ाते थे, वे मूर्ख आज सारी पृथ्वी जीतने चले हैं ॥ ३ ॥ जिसका दुरात्मा पिता कृष्ण मेरे डरसे मथुरा त्यागकर समुद्रमें जा छिपा ॥ ४ ॥ प्रवर्षण पर्वतपर मैंने बलात् बलराम और कृष्णको जलवा दिया था । वे छलपूर्वक वहांसे निकलकर द्वारका जा पहुँचे थे ॥ ५ ॥ सो अब मैं कृष्ण, बलदेव और उग्रसेनको बांधकर द्वारका ले जाऊँगा और समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वी यादवविहीन कर दूँगा ॥ ६ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! ऐसा कहकर बली जरासन्ध तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर गिरिव्रजपुरसे बाहर निकला ॥ ७ ॥ गोमूत्र, सिन्दूर और कस्तूरीसे मस्तकपर चित्ररचना किये, मद बहाते, ऐरावतके कुलमें उत्पन्न, चार दाँतके, सूँड़से फुंकारते और वृक्षोंको उखाड़ते हुए हाथियोंसे जरासंध मेघमण्डलके साथ विद्यमान इन्द्रके समान शोभित हुआ ॥ ८ ॥ १॥ देवताओंके विमान सरीखे सुन्दर रथोंपर ध्वजायें फहरा रही थीं । उनमें दिव्य घोड़े जुते थे और सारथी बैठे थे । उनके रथियोंपर चमर चल रहे थे और उनके चञ्चल पहियोंसे ध्वनि निकल रही थी ॥ १० ॥ वायु जैसे वेगवाले और विविध रंगके घोड़ोंका स्वर्णपट्ट तथा हार आदिसे शृंगार किया गया था और उनके मस्तकपर कलंगी शोभित थी ॥ ११ ॥ विद्याधरों जैसे सुन्दर और कंचुकधारी बड़े-बड़े वीर ढाल-तलवार लिये हुए थे । उन्हें लेकर जरासंध अपने किल्लेसे बाहर निकला ॥ १२ ॥ तब दुन्दुभियोंकी ध्वनि और धनुषोंके टंकारसे दसों दिशाएँ झंकृत हो उठीं, पृथिवी हिलने लगी और धूलसे सारा आकाश भर गया ॥ १३ ॥ प्रलयकालीन समुद्रके समान भयंकर जरासंधकी सेनाको देखकर यादव बड़े आश्चर्यमें पड़ गये ॥ १४ ॥ भगवान् प्रद्युम्नने जरासंधकी समुद्र सदृश भीषण सेनाको देखकर “डरो मत-डरो मत” ऐसा कहकर यादवोंको अभयदान देते हुए अपना दक्षिणावर्त शंख बजाया ॥ १५ ॥ उसी समय महाबाहु साम्ब दस अक्षौहिणी सेना लेकर जरासंधसे लड़ने लगा ॥ १६ ॥ रथियोंसे रथी, हाथियोंसे हाथी, घुड़सवारोंसे घुड़सवार और पैदलोंसे पैदल सैनिक लड़ने लगे ॥ १७ ॥ उस समय मागधवीरोंके साथ यादवोंका बड़ा भीषण युद्ध हुआ, जैसे पूर्वकालमें दैत्यों और देवताओंमें हुआ था ॥ १८ ॥ कुछ अस्वारोही वीर भाला और कुछ बिजली जैसी चमकीली बछीं

केचिद्वीरा नदंतः कौ रथांगानि च चिक्षिपुः । चिच्छिदुर्वीरपटलं नीहारं रवयो यथा ॥२१॥
 मिदिपालैर्मुद्गरैश्च कुठारैरसिपट्टिभैः । अच्छरिकाष्टिभिस्तीक्ष्णैर्निस्त्रिंशैर्युधुश्च खे ॥२२॥
 तोमरैश्च गदाभिश्च बाणैश्छिन्नानि भूतले । निपेतुर्वीरकरिणामश्वानां च शिरांसि च ॥२३॥
 कबंधास्तत्र चोत्पेतुः पातयंतो ह्याचरान् । खड्गहस्ताः प्रधावंतः संग्रामेषु भयङ्करा ॥२४॥
 वीरोपरि गता वीरा निपेतुश्छिन्नबाहवः । हयोपरि हयाः केचिद्बाणैः सच्छिन्नकंधराः ॥२५॥
 विद्याधर्यश्च गंधर्व्यो वज्रिरे ह्यवरे गतान् । वीरान्पतीन्समिच्छंत्यस्तासां चाभूत्कलिर्महान् २६॥
 क्षात्रधर्मपराः केचिद्युद्धदत्तासवो नृप । न चलंतः पदं पृष्ठे सदा संग्रामशालिनः ॥२७॥
 जग्मुः परं पदं ते वै भित्त्वा मातङ्गमण्डलम् । ननृतुः शिशुमारे वै मण्डले च नटा इव ॥२८॥
 एवं सांवमहावीरैर्मदितं मागधं बलम् । दुद्राव पश्यतां तेषां कृष्णभक्त्या यथाऽशुभम् ॥२९॥
 केचिद्वै वृक्णवर्माणश्छिन्नचापास्तथापरे । पलायमाना धावंतस्त्यक्तखड्गष्टिपाणयः ॥३०॥
 पलायमानं स्वबलं वीक्ष्य तन्मागधेश्वरः । धनुष्टंकारयन्प्राप्तो माभैष्टेत्यभयं ददौ ॥३१॥
 स्वबलं नोदयामास जरासंधो धनुर्जया । महामात्यः प्रेरयति ह्यंकुशेन गजं यथा ॥३२॥
 सांवस्तदैव सम्प्राप्तो दशभिश्चापनिर्गतैः । बाणैर्विन्व्याध समरे मागधेद्रं महाबलम् ॥३३॥
 धनुर्ज्यामन्धिकल्लोलभीमसंघर्षनादिनीम् । चिच्छेद दशभिर्बाणैः सांवो जांबवतीसुतः ॥३४॥
 धनुरन्यत्समादाय जरासंधो महाबलः । धनुः सांवस्य चिच्छेद बाणैर्दशभिर्ग्रतः ॥३५॥
 चतुर्भिश्चतुरो वाहान्द्राभ्यां केतुं रथं त्रिभिः । एकेन सारथिं जघ्ने मागधेद्रो जरासुतः ॥३६॥
 स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । पुनरन्यं समास्थाय रथं सांवो महाबलः ॥३७॥

हाथियोंपर बैठकर इधर-उधर फेंक रहे थे । वे बर्छियां शत्रुको बाँधकर घरतीमें समा गयीं ॥ १९ ॥ २० ॥
 गर्जन करते हुए कुछ वीरोंने पृथिवीपर रथके पहिये फेंके । वे वीरोंको इस तरह मारने लगे, जैसे सूर्य कुहरेको मार भगाता है ॥ २१ ॥ कुछ वीर भिन्दिपाल, मुद्गर, फरसे, तलवार, पट्टे, ढाल तथा तीक्ष्ण भालोंको लेकर जुझने लगे ॥ २२ ॥ तोमर, गदा तथा बाणोंकी मारसे मरे हुए वीरों, हाथियों, घोड़ों और पैदल सैनिकोंके सिर गिरने लगे ॥ २३ ॥ कितने ही वीरोंके धड़ गिरते समय घोड़ों तथा मनुष्योंको भी लेकर गिरे । कितने वीर हाथमें तलवार लेकर भयंकर ढंगसे दौड़ रहे थे ॥ २४ ॥ मरे हुए वीरोंपर वीर पड़े थे । उनकी भुजायें कट गयी थीं । इसी प्रकार बाणोंसे कटी गर्दनवाले बहुतेरे घोड़े भी एकके ऊपर एक पड़े थे ॥ २५ ॥ विद्याधरियां और गन्धर्वियां स्वर्गमें पहुँचे हुए वीरोंका वरण कर रही थीं । इस प्रकार वीर पति चाहनेवलियोंमें परस्पर बहुत बड़ा झगड़ा खड़ा हो गया ॥ २६ ॥ कितने ही क्षात्रधर्मा वीरोंने युद्धमें प्राण दे दिये । सदा संग्राममें तत्पर रहते हुए उन्होंने कभी पीछे पैर नहीं हटाया ॥ २७ ॥ वे सूर्यमण्डल भेदकर परम पदको पहुँच गये । शिशुमार चक्रमें जाकर वे इस प्रकार नाचने लगे, जैसे मण्डलमें नट नाचते हैं ॥ २८ ॥ इस युद्धमें साम्ब आदि वीरोंने जरासंधकी सेनाका खूब मर्दन किया । जिससे उनके सामनेसे वह भागने लगी ॥ २९ ॥ उनमेंसे बहुतीके कवच कट गये थे, बहुतीके धनुष बेकार हो गये थे और बहुतेरे तलवारें टूट जानेसे भाग रहे थे ॥ ३० ॥ अपनी सेनाको भागते देख जरासंध स्वयं धनुष टंकारता हुआ आगे बढ़ा और 'डरो मत' ऐसा कहकर सैनिकोंको धीरज बंधाने लगा ॥ ३१ ॥ साथ ही उसने धनुषकी प्रत्यंघासे अपने वीरोंको युद्धके लिए प्रेरित किया । जैसे महावत अंकुशसे हाथीको प्रेरित करता है ॥ ३२ ॥ सहसा साम्बने सम्मुख पहुँचकर महाबली जरासंधको दस बाणोंसे बाँध दिया ॥ ३३ ॥ उसके बाद समुद्रके कल्लोल सदृश भीषण निनाद करनेवाली उसकी प्रत्यंघाको साम्बने दस बाणोंसे काट डाला ॥ ३४ ॥ तब दूसरा धनुष लेकर जरासंधने दस बाणोंसे साम्बके धनुषको काट दिया ॥ ३५ ॥ चार बाणोंसे जरासन्धने घोड़ोंको, दो बाणोंसे ध्वजाको और तीन बाणोंसे साम्बके रथको ध्वस्त कर दिया ॥ ३६ ॥ जब साम्बका रथ टूट गया, धनुष कट गया,

गृहीत्वा चापमत्युग्रं सज्जं कृत्वा विधानतः । तद्रथं चूर्णयामास सांबो बाणशतैरपि ॥३८॥
 रथं त्यक्त्वा जरासंधो गजमारुह्य वेगतः । वभौ गजे मागधेन्द्र इन्द्र ऐरावते यथा ॥३९॥
 चित्रपत्रविचित्रांगं कालांतकयमोपमम् । सांबाय नोदयामास मत्तेभं क्रुद्धमानसः ॥४०॥
 गृहीत्वा सरथं सांबं शुण्डादण्डेन नागराद् । कुर्वन्शीत्कारविकलश्चिक्षेप नवयोजनम् ॥४१॥
 तदा कोलाहले जाते सांबसेनासु मैथिल । प्रद्युम्नपाश्चाच्च गदः प्राप्तोऽभूद्भेगतो बलम् ॥४२॥
 विनाशयन्नंधकारं यथार्कं उदयाचलात् । जरासंधस्यापि गजं मुष्टिना वसुदेवजः ॥४३॥
 जघान शक्रो वज्रेण यथा ओच्चदरीभृतम् । गजो मुष्टिप्रहारेण विह्वलो धरणीं गतः ॥४४॥
 जगाम पञ्चतां राजस्तदद्भुतमिवाभवत् । जरासंधः समुत्थाय गदामादाय वेगतः ॥४५॥
 गदं तताड सहसा जगर्ज घनवद्वली । तत्प्रहारेण स गदो न चचाल रणांगणात् ॥४६॥
 त्वरं गदां समादाय लक्षभारविनिर्मिताम् । अताडयज्जरासंधं सिंहनादमथाकरोत् ॥४७॥
 तत्प्रहारेण व्यथितो वृहद्रथसुतो बली । जरासंधः समुत्थाय गृहीत्वा सगदं गदम् ॥४८॥
 चिक्षेप रोषतो राजन्नाकाशे शतयोजनम् । गदोऽपि मागधं नीत्वा भ्रामयित्वा महाबलः ॥४९॥
 चिक्षेप गगने तं वै योजनानां सहस्रकम् । आकाशात्पतितो राजा मागधो विध्यपर्वते ॥५०॥
 उत्थाय युयुधे तेन गदेनापि महाबलः । तदैव सांबः संप्राप्तो गृहीत्वा मागधेश्वरम् ॥५१॥
 भृष्टे पोथयामास सिंहः सिंहमिवौजसा । एकेन मुष्टिना सांबं द्वितीयेन गदं तथा ॥५२॥
 तताड मागधो राजा जगर्जाशु रणांगणे । मुष्टिप्रहारव्यथितौ गदः सांबश्च मूर्च्छितौ ॥५३॥
 हाहाकारो महानासीत्तदैवाशु रणांगणे । रथेनातिपताकेन प्रद्युम्नो यादवेश्वरः ॥५४॥
 अशौहिणीयुतः प्राप्तो मामैष्टेत्यभयं ददौ । जरासंधो गदां नीत्वा लक्षभारविनिर्मिताम् ॥५५॥
 विवेश यदुसेनायामरण्येऽग्निरिव प्रभुः । रथान्गजान्सवीरांश्च तुरङ्गान्सैधवान्बहून् ॥५६॥

घोड़े मर गये और सारथी भी मर गया, तब वह दूसरे रथपर जा बैठा ॥ ३७ ॥ तत्काल साम्बने अति उग्र धनुषपर विधिवत् सौ बाण चढ़ाकर उससे जरासंधके रथको धूर कर दिया ॥ ३८ ॥ तब रथ त्यागकर वह हाथीपर सवार हो गया । उस समय ऐसा लगा कि मानों इन्द्र ऐरावतपर बैठे हुए है ॥ ३९ ॥ विचित्र प्रकारकी रचनासे जिसका मस्तक चित्रित था, उस कालान्तक यमके समान भयंकर हाथीको जरासंधने साम्बके ऊपर प्रेरित किया ॥ ४० ॥ तदनुसार चीत्कार करते हुए उस गजराजने साम्बको उठाकर नौ योजन दूर फेंक दिया ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! यह देखकर साम्बकी सेनामें हलचल मच गयी । उसी समय प्रद्युम्नके पाससे गद रणांगणमें जा पहुँचा ॥ ४२ ॥ जैसे सूर्य उदयाचलपर उदित होकर अन्धकार दूर कर देते हैं, वैसे ही गदने जरासंधके हाथीको एक घूँसा मारा ॥ ४३ ॥ जैसे इन्द्रके वज्रप्रहारसे पर्वत गिरते हैं, वैसे ही गदके घूँसा मारनेपर वह हाथी विकल होकर धरतीपर गिर गया ॥ ४४ ॥ घूँसेकी मारसे हाथीको मरा देखकर लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ । तभी जरासंधने गदा लेकर बड़े वेगसे गदको मारा और जोरसे गरजा । किन्तु इस प्रहारसे गद तनक भी विचलित नहीं हुआ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ शीघ्र गदने लाख भार लोहेकी बनी गदा लेकर जरासंधको मारा और सिंहनाद किया ॥ ४७ ॥ इस प्रहारसे विकल होकर बलवान् जरासंधने गदासमेत गदको उठाकर आकाशमें सौ योजन ऊपर ऊछाल दिया । उसी समय गदने भी जरासंधको पकड़कर आकाशमें हजार योजन ऊपर फेंक दिया । आकाशसे वह विध्यपर्वतपर जा गिरा ॥ ४८-५० ॥ किन्तु वह फिर आकर गदसे लड़ने लगा । तभी साम्ब पहुँच गये और उन्होंने जरासंधको पकड़कर धरतीपर पटक दिया, जैसे सिंह सिंहको पटक दे ॥ ५१ ॥ फिर जरासंधने उठकर एक घूँसा साम्बको और एक घूँसा गदको मारा ॥ ५२ ॥ इस प्रकार दोनोंको मारकर वह गर्जा । उस घूँसेके प्रहारसे साम्ब तथा गद दोनों मूर्च्छित हो गये ॥ ५३ ॥ इससे रणभूमिमें हाहाकार मच गया । तब एक बड़ी ध्वजावाले रथपर बैठकर प्रद्युम्न रणांगणमें आ पहुँचे ।

पातयामास राजेन्द्र पद्मानीव महागजः । जरासंधस्य या सेना सापि सर्वा समागता ॥५७॥
जघान निशितैर्बाणैर्यदूनां सर्वतो बलम् । प्रद्युम्नो युयुधे युद्धे निर्भयो यादवेश्वरः ॥५८॥
निपातयन्नरीन्बाणैर्धनुष्टङ्कारयन्मुहुः । तदैव यदुपुर्यास्तु बलदेवः समागतः ॥५९॥
प्रादुर्बभूव तत्रापि सर्वेषां पश्यतां सताम् । समाकृष्य हलाग्रेण मागधेन्द्रं महाबलम् ॥६०॥
मुसलेनाहनत्क्रुद्धो बलदेवो महाबलः । शतयोजनपर्यन्तं रथाश्वगजपत्तयः ॥६१॥
पतिता भिन्नशिरसः सर्वे वै निधनं गताः । देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभयस्तथा ॥६२॥
बलदेवोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचकिरे । तदा जयजयारावो यदूनां स्वबले महान् ॥६३॥
प्रद्युम्नाद्यास्ततो नेमुः कामपालं गतव्यथाः । इत्थं जित्वा मागधेन्द्रं बलदेवो महाबलः ॥६४॥
प्रययौ द्वारकां राजन्भगवान्भक्तवत्सलः । जरासंधसुतो धीमान् सहदेव उपायनम् ॥६५॥
नीत्वा पुरः शंवरारिगिरिदुर्गाद्विनिर्गतः । अश्वार्बुदं रथानां च द्विलक्षं हस्तिनां तथा ॥६६॥
ददौ षष्टिसहस्राणि नत्वा कार्ष्णिं प्रभाववित् ॥६७॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे नारदबहुलाश्वसंवादे मागधविजयो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः

(कौरवोंका दूत-प्रेषण)

श्रीनारद उवाच

अथ कार्ष्णिर्गयामेत्य फल्गुं स्नात्वा ससैनिकः । अन्यान्देशांस्ततो जेतुं प्रस्थानमकरोत्पुनः ॥ १ ॥
श्रुत्वा जितं जरासंधं तदातं कानृपाः परे । उपायनं ददुस्ते वै भयार्ताः शरणं गताः ॥ २ ॥

उनके साथ एक अक्षौहिणी सेना थी । पहुँचते ही उन्होंने 'मत डरो' कहकर सैनिकोंको आश्वस्त किया । तभी जरासंध एक लाख भारकी गदा लेकर यादवी सेनाके भीतर घुस गया, जैसे आग वनमें घुसती है । उसकी मारसे उसने यादवोंके बहुतेरे रथों, हाथियों और घोड़ोंको ध्वस्त कर दिया ॥ ५४-५६ ॥ उसी समय जरासंधकी सेना भी आ गयी । आते ही उसने अपने तीखे बाणोंसे यादवी सेनाको मारना आरंभ कर दिया । किन्तु यादवेश्वर प्रद्युम्न तब भी निर्भय होकर जरासंधसे लड़ते रहे ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ वे भीषण रूपसे शत्रुओंका संहार कर रहे थे । उसी समय देखते-देखते द्वारकासे बलदेवजी आ गये । आते ही उन्होंने अपने हलके अग्रभागसे बलवान् जरासंधको घसीट लिया ॥ ५९ ॥ ६० ॥ फिर अपने मूसरसे जरासंधको मारा । उसके कुछ ही देरके युद्धसे रणभूमिमें सौ योजन पर्वन्त रथ, घोड़े, हाथी और पैदल सैनिक मरकर बिछ गये और उन सबके मस्तक कट गये । तब नभमंडलमें देवताओं तथा धरतीपर मानवोंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ देवता बलदेवजीके ऊपर पुष्प बरसाने लगे और यादवी सेनामें उनकी जयजयकार होने लगी ॥ ६३ ॥ प्रद्युम्न आदि वीरोंने उन्हें प्रणाम किया और उनकी सारी व्यथा दूर हो गयी । इस प्रकार जरासंधको जीतकर महाबली और भक्तवत्सल बलदेव द्वारका चले गये । तदनन्तर जरासंधका पुत्र सहदेव दस करोड़ घोड़े, दो लाख हाथी, साठ हजार रथोंकी भेंट लेकर शम्बरारि प्रद्युम्नके पास गया और उन्हें अर्पित किया ॥ ६४-६७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् बहुलाश्व ! इसके बाद प्रद्युम्न गया आये और सैनिकोंके साथ उन्होंने फल्गु नदीमें स्नान किया । वहाँसे अन्यान्य देशोंपर विजय प्राप्त करने चले ॥ १ ॥ जब अन्य राजाओंने

गोमतीं सरयूं पुण्यामनुस्रोतं ततोऽगमत् । ततो भागीरथीतीरे काशीमभिजगाम ह ॥ ३ ॥
 पार्ष्णिग्राहः काशिराजो गृहीतो मृगयां गतः । सोऽपि तस्मै बलिं प्रादाच्छ्रुत्वा तस्य बलं महत् ॥
 प्रद्युम्नः सैनिकैः सार्द्धं कोशलान्प्रगतो बली । अयोध्यानिकटे राजचंडिग्रामे स्थितोऽभवत् ॥ ५ ॥
 कोशलेन्द्रो नयजिच्च तुरङ्गैश्च गजै रथैः । महाधनैः शंवरारिमर्हयामास तत्त्ववित् ॥ ६ ॥
 उत्तरेषो दीपतमो नयपालाधिपो गजः । विशालेशो बर्हिणश्च एते वै तं बलिं ददुः ॥ ७ ॥
 नैमिषेशो हरेर्भक्तः श्रीकृष्णस्य प्रभाववित् । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ददौ तस्मै बलिं नृपः ॥ ८ ॥
 प्रयागं गतवान्कार्ष्णिस्त्रिवेणीं पापनाशिनीम् । स्नात्वा ददौ महादानं तीर्थराजप्रभाववित् ॥ ९ ॥
 गजा विंशतिसाहस्रमश्वानां दशलक्षकम् । रथानां च चतुर्लक्षं गवां तत्र दशार्बुदम् ॥ १० ॥
 हेममालासमायुक्तं हेमांबरसमन्वितम् । दशभारं सुवर्णानां मुक्तानां लक्षमेव हि ॥ ११ ॥
 द्विलक्षं नवरत्नानां वस्त्राणां दशलक्षकम् । काश्मीरकंबलानां च द्विलक्षं नवकंबलम् ॥ १२ ॥
 ब्राह्मणेभ्यो ददौ कार्ष्णिस्तीर्थराजे हरिप्रिये । कारुषाधिपतिस्तत्र पौंड्रको नाम मैथिल ॥ १३ ॥
 कृष्णशत्रुः सोऽपि कार्ष्णिं पूजयामास शंकितः । प्रद्युम्नं चागतं वीक्ष्य पाञ्चाले कान्यकुब्जके ॥ १४ ॥
 शयं प्राप्नुर्नृपाः सर्वे दुर्गे दुर्गे कृतार्गलाः । विचेलुर्यादवात्सर्वे भयार्ता दुर्गमाश्रिताः ॥ १५ ॥
 बिन्दुदेशाधिपो राजा दीर्घबाहुर्महाबलः । शंबरारेः परं सन्धिं कर्तुं सैन्ये समाययौ ॥ १६ ॥

दीर्घबाहुर्बुवाच

यूयं सर्वे यादवेन्द्रा आगता जयिनो दिशाम् । मनोरथं मे कुरुतां भवेयं तुष्टमानसः ॥ १७ ॥
 सजलस्यापि काचस्य पात्रस्य शरवेधतः । न क्षरेद्विदुरेकोऽपि बाणस्तदधितिष्ठति ॥ १८ ॥
 न पात्रं शकलीभूतं तन्मध्ये हस्तलाघवम् । ये कुर्वन्ति प्रतिज्ञां मे तेभ्यो दास्यामि कन्यकाः १९ ॥

सुना कि यादवोंने जरासन्धको जीत लिया है तो वे आतंकित होकर उनकी शरणमें गये और उन्हें भेंट दी ॥ २ ॥ तदनन्तर गोमती, पवित्र सरयू नदी होकर भागीरथीके तटपर बसी काशी नगरीमें आये ॥ ३ ॥ पार्ष्णिग्राही काशीनरेश प्रद्युम्न उस समय शिकारपर गया था । उसे प्रद्युम्नने पकड़ लिया । उसने भी बड़ा बली मानकर प्रद्युम्नको भरपूर भेंट दी ॥ ४ ॥ वहाँसे चलकर कोसल देश गये । वहाँ अयोध्याके निकट नन्दिग्राममें टिके ॥ ५ ॥ कोसल देशके नरेश नग्नजित्ने हाथी, घोड़े, रथ, पुष्कल धन और चतुरंगिणी सेना देकर प्रद्युम्नका पूजन किया ॥ ६ ॥ उत्तरी प्रदेशके राजा दीपतम, नेपालके राजा गज और विशालके राजा बर्हिणने भी प्रद्युम्नको भेंट दी ॥ ७ ॥ नैमिषके राजा भगवद्भक्त थे और श्रीकृष्णके प्रभावको जानते थे । अतएव उन्होंने हाथ जोड़कर प्रद्युम्नको भेंट दी ॥ ८ ॥ तदनन्तर प्रद्युम्न प्रयाग गये । वहाँ उन्होंने पापनाशिनी त्रिवेणीमें स्नान करके महादान दिया । क्योंकि वे तीर्थराजका प्रभाव जानते थे ॥ ९ ॥ वहाँपर उन्होंने बीस हजार हाथी, दस लाख घोड़े, चार लाख रथ और दस अरब गायें दान करके दीं ॥ १० ॥ सोनेकी माला और सुनहले वस्त्रोंके साथ दस भार सोना और एक लाख मोतीका दान दिया ॥ ११ ॥ साथ ही दो लाख नवरत्न, दस लाख वस्त्र, दो लाख काश्मीरी कम्बल भी दान दिये ॥ १२ ॥ हे मिथिलेश्वर ! प्रद्युम्नने प्रिय तीर्थ प्रयागमें दान करके ब्राह्मणोंको ये सब वस्तुयें दीं । वहाँ ही कलूषदेशका राजा पौंड्रक रहता था । वह श्रीकृष्णका प्रमुख शत्रु था । तथापि भयवश उसने प्रद्युम्नकी पूजा की । पांचाल तथा कन्नौजमें प्रद्युम्नको पहुँचा देखकर अन्यान्य राजे भयभीत हो उठे । यादवोंसे डरकर वे अपने-अपने किलेमें चले गये और भीतरसे उसके द्वार बन्द कर लिये । कितने तो भाग ही गये ॥ १३-१५ ॥ बिन्दुदेशका नरेश दीर्घबाहु बड़ा बलवान् था । वह प्रद्युम्नसे सन्धि करनेके लिए उनके शिविरमें आया ॥ १६ ॥ उसने कहा—आप लोग यादवेंद्र हैं और विभिन्न दिशाओंको जीतकर यहाँ आये हैं । यदि आप मेरी अभिलाषा पूर्ण कर दें तो मुझे बड़ा सन्तोष हो ॥ १७ ॥ जलभरे कांचके पात्रमें आप तीर गाड़ दें और पात्रसे एक बूंद जल न गिरे, फिर भी बाण वहाँ गड़ा रहे ॥ १८ ॥ पात्र भी न फूटे और बाण गड़ा रहे । यह हस्तलाघव आपमेसे जिन लोगोंमें हो, वे

युयं सर्वे यादवेन्द्रा धनुर्वेदविशारदाः । मयाऽपि नारदमुखाच्छ्रुताः पूर्वं महाबलाः ॥२०॥
 सर्वेषां विस्मितानां च प्रद्युम्नो धन्विनां वरः । तथेत्युवाच सदसि बिंदुदेशाधिपं नृप ॥२१॥
 दीर्घवंशौ सुविस्थाप्य गुणं वद्ध्वा तदन्तरे । गुणे वद्ध्वा काचकुम्भं सजलं पश्यतां सताम् ॥२२॥
 धनुर्गृहीत्वा तद्वीक्ष्य बाणं काष्णिः समादधे । काचपात्रं शरो भित्वा तस्थौ मध्येऽर्द्धनिःसृतः २३॥
 एकतो मुखपुङ्खाभ्यां रविरविमरिवांबुदे । काचपात्रे बभौ बाणस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥२४॥
 न पात्रं शकलीभूतं त्रिकुशस्य फलं यथा । न चालनं कपनं च बिंदुस्रावोऽपि नाभवत् ॥२५॥
 प्रद्युम्नो भगवान्बाणं द्वितीयं संदधे पुनः । सोऽपि पूर्वं समुत्सृज्य तत्र तस्थौ विदेहराट् ॥२६॥
 सावोऽपि धनुरादाय बाणान्पञ्च समादधे । काचपात्रं च ते भित्त्वा तस्थुस्तत्रार्द्धनिःसृताः २७॥
 युयुधानो धनुर्नीत्वा बाणमेकं समाक्षिपत् । सर्वेषां पश्यतां तेषां पात्रं चूर्णीबभूव ह ॥२८॥
 उच्चकैर्जहसुः सर्वे यादवाः परसैनिकाः । त्वं महान्बाणधारीह कार्तवीर्यार्जुनो यथा ॥२९॥
 अर्जुनो भरतो रामस्त्रिपुरघ्नो हि वा भवान् । द्रोणो भीष्मोऽथवा कर्णो जासदग्न्य इवाभवत् ३०॥
 अन्यत्पात्रं समाधायानिरुद्धो धन्विनां वरः । अधो गत्वाऽथ तद्दृष्ट्वा बाणं चिक्षेप लाघवात् ॥३१॥
 सोऽपि पात्रतलं भित्वा तस्थौ तत्रापि निःसृतः । तत्पात्राद्भस्तपश्चोर्ध्वं वद्ध्वा पाषाणमंबरे ॥३२॥
 दीप्तिमान् धनुरादाय बाणमेकं समादधे । सोऽपि पात्रतलं भित्वा बाणमुत्सृज्य चाग्रतः ॥३३॥
 ताडयित्वा च पाषाणं पुनस्तत्र समाश्रितः । बाणवेगेन तदपि बिंदुस्रावोऽपि नाभवत् ॥३४॥
 गतागतेन यावद्वै बिंदुस्रावोऽपि नाभवत् । तदा वीराश्च ते सर्वे साधु साध्विति वादिनः ॥३५॥
 भानुर्धनुः संगृहीत्वा वीक्ष्य मीलितलोचनः । आराचिक्षेप नाराचं सर्वेषां पश्यतां सताम् ॥३६॥

मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण करें तो मैं उन्हें कन्यायें दूंगा ॥ १९ ॥ आप सभी यादव धनुर्विद्याके विज्ञ हैं । मैंने श्रीनारद-
 जीके मुखसे आप लोगोंकी बड़ी बड़ाई सुनी है ॥२०॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् । यद्यपि राजा दीर्घबाहुकी
 बात सुनकर सबलोग आश्चर्यमें पड़ गये, तथापि प्रद्युम्नने वैसा करनेकी स्वीकृति दे दी ॥२१॥ तदनुसार एक बड़ा
 बाँस घरतीपर गाड़कर उसमें एक रस्सी बाँधी गया । रस्सीमें जलसे भरा काँचका पात्र बँधा । सभी लोग यह
 कार्यवाही देख रहे थे ॥ २२ ॥ तब प्रद्युम्नने एक बाण लेकर धनुषपर चढ़ाया । काँचके पात्रको बाँधकर बाण
 बीचमें आधा निकला हुआ स्थित हो गया ॥ २३ ॥ बाणके अग्रभाग और पुच्छ भागसे किरणें निकल रही
 थीं । इससे वह बाण ऐसा शोभित हुआ, जैसे बादलमें सूर्य । यह देखकर लोगोको बड़ा विस्मय हुआ ॥ २४ ॥
 प्रद्युम्नके ऐसा करनेपर न तो पात्र फूटा और न हिला-डुला । उससे एक बूँद पानी भी नहीं गिरा ॥ २५ ॥
 तदनन्तर भगवान् प्रद्युम्नने दूसरे बाणका संधान किया । हे विदेहराज । वह भी पहलेवाले बाणकी बगलमें
 जाकर गड़ गया ॥ २६ ॥ उसके बाद पाँच बाण साम्बने मारे । व भी उस काँचके पात्रको भेदकर आधे-आधे
 उभरे हुए स्थित हो गये ॥ २७ ॥ तब युयुधानने धनुष लेकर सबके समक्ष एक बाण मारा । उस बाणके लगते
 ही पात्र फूट गया ॥ २८ ॥ यह देख सभी यादव ठाकर हँसने और कहने लगे—वाह-वाह, तुम कार्तवीर्य
 अर्जुनके समान बहुत बड़े बाणधारी हो ॥ २९ ॥ या तो अर्जुन, भरत, परशुराम, त्रिपुरनाशक शिव, द्रोणा-
 चार्य, भाष्म, कर्ण और रामचन्द्र धनुर्धर थे, या कि तुम हो ॥ ३० ॥ फिर दूसरा पात्र रक्खा गया । तब धनु-
 र्धरोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धने उसके नीचे जाकर भली-भाँति देखा और हल्के हाथसे बाण मारा ॥ ३१ ॥ वह बाण
 पात्रको नाँचेसे छेदकर आधा निकला हुआ गड़ गया । बादमें उस पात्रसे पाँच हाथ ऊँचा एक पत्थर लटका
 दिया गया ॥ ३२ ॥ तब दीप्तिमान्ने धनुषपर चढ़ाकर एक बाण मारा, वह भी पात्रतलको भेदकर पहलेवाले
 बाणके आगवाले पत्थरको आहत करके पात्रमें आ गया, फिर भी एक बूँद जल नहीं गिरा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस
 प्रकार बाणोंके आने-जानेपर भी एक बूँद पानी न गिरते देख सभी वीरोंने 'साधु-साधु' कहकर सराहना की
 ॥३५॥ तब श्रीकृष्णसुत भानुने धनुष लेकर पात्रको देखा और नेत्र बन्द करके सबके समक्ष एक बाण मारा

सोऽपि पात्रं तदा भित्त्वा पात्रं कृत्वा ह्यधोमुखम् । पुनरूर्ध्वमुखं कृत्वा तस्थौ तत्रार्द्धनिःसृतः ॥३७॥
 बाणवेगेन तदपि बिंदुस्रावोऽपि नाभवत् । न पात्रं शकलीभूतं तदद्भुतमिवाभवत् ॥३८॥
 एवं श्रीकृष्णपुत्रा ये अष्टादश महारथाः । सर्वे ते विभिदुः पात्रं जलस्रावोऽपि नाभवत् ॥३९॥
 बिंदुदेशाधिपो राजा दीर्घबाहुः सुविस्मितः । तेभ्योऽदात्कन्यकाः सृष्टा अष्टादश सुलोचनाः ॥४०॥
 तेषां विवाहसमये शंखभेर्यानाकादयः । नेदुर्जगुश्च गंधर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥४१॥
 तेषामुपरि देवास्ते जयध्वनिसमाकुलाः । ववृषुः पुष्पवर्षाणि चक्रुः श्लाघां दिवि स्थिताः ॥४२॥
 गजान्घट्टिसहस्राणि हयानामर्बुदं तथा । दशलक्षं रथानां च दासीनां लक्षमेव च ॥४३॥
 शिबिकानां चतुर्लक्षं पारिवर्हे ददौ नृपः । ताः प्राहिणोद्द्वारवतीं बभौ कर्णिर्यदूत्तमः ॥४४॥
 दीर्घबाहुमनुप्राप्य निषधान्प्रययौ ततः । निषधाधिपतिर्वीरसेनजिन्नाम मैथिल ॥४५॥
 उपायनं ददौ सोऽपि प्रद्युम्नाय महात्मने । तथा हि मद्राधिपतिः श्रीकृष्णेष्टो हरिप्रियः ॥४६॥
 पूजयामास सबलं बृहत्सेनो हरेः सुतम् । माथुरान्शूरसेनांश्च मधून्प्राप्तः ससैनिकः ॥४७॥
 स्वागतैः पूजितः कार्णिर्मथुरायां ययौ पुनः । ततः प्रक्षिणीकृत्य मथुरां सवनां किल ॥४८॥
 गोपान्गोपीं यशोदां च नन्दराजं ब्रजेश्वरम् । वृषभानूपनंदांश्च नत्वा कार्णिर्वभौ नृप ॥४९॥
 बलिं च नन्दराजाय दत्त्वा दत्त्वा पुनः पुनः । तैः पूजितः कतिदिनैः स्थितोऽभूच्चंदगोकुले ॥५०॥
 इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे माथुरशूरसेनदेशविजयो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

(कौरवों द्वारा युद्धका उपक्रम)

श्रीनारद उवाच

अथ कार्णिर्महाबाहुर्ध्वजिनीभिः समन्वितः । नादयन्दुन्दुभीन्दीर्घान्दीर्घवेगः कुरुन् ययौ ॥ १ ॥

॥ ३६ ॥ वह भी पात्रको भेद तथा उसे उलटा करके पात्रपर ही टिक गया, किन्तु एक बूँद भी जल नहीं गिरा ॥ ३७ ॥ बाणके वेगसे न पानी गिरा और न पात्र फूटा । यह देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ३८ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णके अठारहों महारथी पुत्रोंने बाणोंसे पात्रको छेदा, किन्तु एक बूँद भी जल नहीं गिरा ॥ ३९ ॥ तब बिन्दुदेशके नरेश दीर्घबाहुने विस्मित होकर अपनी अठारह सुनयनी कन्यायें श्रीकृष्णके अठारहों पुत्रोंको दे दीं ॥ ४० ॥ उनके विवाहके समय शंख, भेरी, नगाड़े और ढोल बजने लगे । गन्धर्व गाने और अप्सरायें नाचने लगीं ॥ ४१ ॥ देवता पुष्प बरसाने और सभी स्वर्गवासी प्राणी जय-जयकार करने लगे । साथ ही सब लोगोंने उनकी खूब प्रशंसा की ॥ ४२ ॥ उसके बाद राजा दीर्घबाहुने सात हजार हाथी, दस करोड़ घोड़े, दस लाख रथ और एक लाख दासियें दहेजमें दीं ॥ ४३ ॥ चार लाख पालकी, पोनस, डोला और चंदोवे भी दिये । दहेजकी इन सभी वस्तुओंको प्रद्युम्नने द्वारका भेज दिया ॥ ४४ ॥ इस प्रकार दीर्घबाहुसे सम्मानित होकर प्रद्युम्न निषध देशको चल पड़े । हे मिथिलेश्वर ! निषध देशका राजा सेनजित् था ॥ ४५ ॥ उसने भी प्रद्युम्नको भेंट दी । मद्रदेशके अधिपति बृहत्सेन श्रीकृष्णके अनन्य भक्त और उनके प्रमी थे ॥ ४६ ॥ उन्होंने सेना समेत श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नका पूजन किया । दूसरे दिन सबेरे ही अपनी सेनाके साथ प्रद्युम्न माथुर और शूरसेन देशको गये ॥ ४७ ॥ जब वे मथुरामें पहुँचे तो उनका भरपूर स्वागत-सत्कार हुआ । तदनन्तर सभी वर्णोंके साथ मथुराकी परिक्रमा करके गोकुल गये । वे वहाँके सब गोपों और गोपियसि मिले । वहाँ नन्दराय, यशोदा, वृषभानु, नन्द, उपनन्दको प्रणाम करके प्रद्युम्न बहुत प्रसन्न हुए ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ नन्दराजको बार-बार अनेक प्रकारकी भेंट देकर प्रणाम किया । नन्दराजने भी उनका बड़ा सत्कार

विंशतियोजनानां च मर्यादीकृततद्वले । तस्थौ तच्छिविराणां च विस्तारो दशयोजनम् ॥ २ ॥
 पंचयोजनमाश्रित्य तद्वले राजपद्धतिः । धनाढ्यानां च वैश्यानामापणानि सहस्रशः ॥ ३ ॥
 तथा रत्नपरीक्षाणां वस्त्रव्यापारकारिणाम् । काचकारा वायकाश्च रंगकाराः कुलालकाः ॥ ४ ॥
 कुंदकारास्तूलकाराः पटकारास्तथैव च । टंककाराश्चित्रकाराः पत्रकाराश्च नापिताः ॥ ५ ॥
 पट्टकारा रेतिकाराः पर्णकाराश्च शिल्पिनः । लाक्षाकारा मालिनश्च रजकास्तैलिनस्तथा ॥ ६ ॥
 ताम्बूलशोधिनस्तत्र चित्रपाषाणकर्मकाः । अन्नभर्जकरास्तत्र काचमेदिन एव हि ॥ ७ ॥
 मुक्तादीनां च रत्नानां सूक्ष्माणां रत्नवेधिनः । एते कारुजनाः सर्वे दृश्यन्ते राजपद्धतौ ॥ ८ ॥
 क्वचिद्भानुमतीलीला ऐंद्रजालविधायकाः । क्वचिन्नटाश्च नृत्यन्ते युद्धं भन्तुकयोः क्वचित् ॥ ९ ॥
 क्वचित्तु वानरी लीला डमरूवाद्यसंयुताः । गायन्ति कुत्रचिद्राजन्मूतमागधवंदिनः ॥ १० ॥
 वारांगनाश्च नृत्यन्ति भूषैर्द्वादशभिर्युताः । दिव्यैः षोडशशृंगारैर्हरन्त्यप्सरसां मनः ॥ ११ ॥
 बन्धूनामपि सेनानां महातंका गजाह्वये । चालनं संभ्रमोपेतं विह्वलैश्च जनैरभूत् ॥ १२ ॥
 विदुर्बुधुर्जनाः सर्वे गृहेष्वापातितार्गलाः । कोलाहलो महानासीद्गोहे गेहे जने जने ॥ १३ ॥
 वीर्यशौर्यबलोपेताः कौरवाश्चक्रवर्तिनः । आसमुद्राः क्षितीशेन्द्रा जातास्तेऽप्यतिशङ्किताः ॥ १४ ॥
 प्रद्युम्नप्रेषितः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः । कौरवेन्द्रपुरं प्राप्तो धृतराष्ट्रं ददर्श ह ॥ १५ ॥

मदच्युतामस्य नृपस्य दंतिनां कस्तूरिकाकुङ्कुमगंडशालिनाम् ।

सिंदूरशुंडास्पदकर्णताडितैः षडंगिभिर्मंडितमंदिराजिरम् ॥ १६ ॥

यं भीष्मकर्णगुरुशन्यकृपैश्च भूरिवाहीकधौम्यशकुनैः सह संजयेन ।

दुःशासनेन विदुरेण च लक्ष्मणेन दुर्योधनेन च कृपीसुतसोमदत्तैः ॥ १७ ॥

किया । प्रद्युम्न नन्दके गोकुलमें कई दिन रहे ॥ ५० ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'-
 भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! इसके बाद महाबाहु प्रद्युम्न अपनी विशाल सेनाके साथ नगाड़े वजवाते हुए कुशदेश गये ॥ १ ॥ वहाँ बीस योजनके विस्तारमें उनकी सेनाका पड़ाव पड़ा । उसके दस योजन विस्तृत क्षेत्रमें झण्डे गड़े थे ॥ २ ॥ पाँच योजनके क्षेत्रमें बाजार लगी थी, जिसमें बड़ी लम्बी-चौड़ी सड़क बनी थी । सड़कके दोनों ओर बड़े-बड़े साहूकारोंकी दूकानें लगी थीं ॥ ३ ॥ वहाँ जौहरियों और वजाजोंकी भी दूकानें थी । शीशे बनानेवाले, दर्जी, रंगरेज, कुम्हार, कुन्दकार, घुनिया, बुनकर, टंककार, चित्रकार, पत्रकार, नाई, पटहारे, बारी, संगतराज, लखेरे, माली, घोड़ी, तेली, तमोली, चितेरे, कसेरे, भड़भूँजे, शीशा काटनेवाले, मोतियों और रत्नोंको छेदनेवाले आदि सभी कारीगर वहाँ विद्यमान थे ॥ ४-८ ॥ वहाँपर कहीं भानुमती तथा इंद्रजालके खेल हो रहे थे, कहीं नर्तक नाच रहे थे और कहीं भालुओंका युद्ध हो रहा था ॥ ९ ॥ कहीं डमरूके तालपर बन्दरोंका नाच हो रहा था और कहीं सूत-मागध-वंदीजन गा रहे थे ॥ १० ॥ कहीं बारह प्रकारके आभूषण धारण करके वेक्यायें नाच रही थीं । वे अपने सोलह शृंगारोंसे अप्सराओंका भी मन मोह रही थीं ॥ ११ ॥ तभी हस्तिनापुरमें कौरव पाण्डवोंकी सेनाओंके टकरावके कारण आतंक छा गया । जिससे विकल होकर नागरिक घबरा उठे ॥ १२ ॥ कितने ही लोग भाग-भागकर घरमें घुस गये और भीतरसे साँकल चढ़ा ली । इस प्रकार घर-घर और जन-जनमें बड़ा कोलाहल मच गया ॥ १३ ॥ जिनमें बल, वीर्य और धूरता थी और जो समुद्रपर्यन्त भूभागके चक्रवर्ती राजा थे, वे कौरव भी दहल उठे ॥ १४ ॥ तब साक्षात् प्रद्युम्नके भेजेनेपर बुद्धिमानोंके अग्रणी उदव हस्तिनापुरमें राजा धृतराष्ट्रसे मिलने चले ॥ १५ ॥ मदवाही, कस्तूरी केसर और सिन्दूरसे मंडित गंडस्थलवाले हाथियोंके सिन्दूरसे रंजित सुँड़पर बैठे और उनके कानोंसे ताडित भ्रमरोंसे भरे महलके

श्रीयज्ञकेतुसहितैः सहितं नृपेन्द्रं लीलातपत्रसितचामरहेमपीठैः ।

संसेवितं परिसमेत्य गजाह्वयेशं नत्वोद्धवः प्रणत आह कृताञ्जलिस्तम् ॥१८॥

उद्धव उवाच

प्रद्युम्नेन प्रकथितं शृणु राजेंद्रसत्तम । उग्रसेनः क्षितीशेन्द्रो यादवेन्द्रो महाबलः ॥१९॥
विजित्य नृपतीन्सर्वान् राजसूयं करिष्यति । प्रेषितस्तेन सेनाभिः प्रद्युम्नो रुक्मिणीसुतः ॥२०॥
जेतुं महोद्भटान् वीराञ्जंबूद्वीपस्थितानृपान् । चैवशाल्वजरासंधदंतवक्रादिभूपतीन् ॥२१॥
विजित्य चागतः कार्णिकस्तस्मै यच्छ बलिं बहु । उपायनं च दानव्यं बंधूनामैक्यकाम्यया ॥२२॥
माभूत्कुरुणां वृष्णीनां कलिर्नो चेद्भविष्यति । तेनोदितं मे कथितं तत्क्षमस्व नृपेश्वर ॥२३॥
दूतस्य हीनदोषस्य त्वयोक्तं यद्वदामि तत् ।

श्रीनारद उवाच

तच्छ्रुत्वा कौरवाः सर्वे राजन्संजातमन्यवः । वीर्य्यशौर्य्यमदोन्नद्धा ऊचुः प्रस्फुरिताधराः ॥२४॥

कौरवा ऊचुः

दुरत्यया कालगतिरहो चित्रमिदं जगत् । सिंहोपरि प्रधावन्ति शृगाला दुर्वला वने ॥२५॥
अस्मत्सकाशात्संबन्धा अस्मदत्तनृपासनाः । दातॄणां प्रतिकूलास्तु दातॄणां फणिनो यथा ॥२६॥
वृष्णयो भीरवः सर्वे युधि विक्लवचेतसः । तथैव शासनं कर्तुं प्रवृत्ता हि गतहियः ॥२७॥
उग्रसेनोऽल्पवीर्य्यश्च जंबूद्वीपस्थितानृपान् । विजित्याहो बलिं नीत्वा राजसूयं करिष्यति ॥२८॥
यत्र भीष्मश्च कर्णश्च द्रोणो दुर्योधनादयः । तत्र त्वं प्रेषितो मंत्री प्रद्युम्नेन कुबुद्धिना ॥२९॥
तस्माद्यात पुरीमध्ये यूयं वै जीवनेच्छया । नचेद्यास्यथ वः सर्वाभयामो यमसादनम् ॥३०॥

आंगनमें बैठे धृतराष्ट्रके पास गये ॥ १६ ॥ भीष्म, कर्ण, द्रोण, शल्य, कृपाकार्य, भूरिश्रवा, बाह्लीक, धौम्य ऋषि, शकुनी, संजय, दुःशासन, विदुर, लक्ष्मण, दुर्योधन, अश्वत्थामा और यज्ञकेतु उस समय उनके पास बैठे थे । धृतराष्ट्रके ऊपर छत्र लगा था और चमर चल रहे थे । सोनेके सिंहासनपर विराजमान हस्तिनापुरके स्वामी धृतराष्ट्रको प्रणाम करके हाथ जोड़कर उद्धव बोले ॥१७॥१८॥ उद्धवजीने कहा—हे राजेन्द्रसत्तम ! प्रद्युम्नने जो कुछ कहा है, उसे सुनिए । महाराज उग्रसेन जो यादवेन्द्र हैं और राजेन्द्र भी हैं ॥ १९ ॥ वे सारी पृथिवीके राजाओंको जीतकर राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं । एतदर्थ उन्होंने विशाल सेनाके साथ प्रद्युम्नको भेजा है ॥ २० ॥ जम्बूद्वीपके उद्भट वीर शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध और दन्तवक्र आदि बड़े-बड़े राजाओंको जीतकर प्रद्युम्न यहाँ आये हैं । सो आप उन्हें भेंट प्रदान करिए । आपके ऐसा करनेसे भाइयोंकी एकता बनी रहेगी ॥ २१ ॥ २२ ॥ यदि आप भेंट न देंगे तो कौरवों और यादवोंमें युद्ध होगा । हे नृपेश्वर । यह मैंने प्रद्युम्नकी कही हुई बात आपसे कही है । सो क्षमाकरिएगा ॥ २३ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! उद्धवकी बात सुनकर सभी कौरव क्रोधसे तमतमा उठे । शौर्य, वीर्य और मदसे उन्मत्त होकर होंठ कंपाते हुए वे बोले ॥ २४ ॥ कौरवोंने कहा—अहो ! कालकी गति बड़ी दुरत्यय होती है । यह जगत् भी बड़े आश्चर्य्यकी वस्तु है । तभी तो दुर्बल सियार भी सिंहपर धावा बोल रहे हैं ॥ २५ ॥ हमलोगोंसे सम्बन्ध होनेके नाते हमारा ही दिया हुआ राज्यसिंहासन जिनको मिला है, वे ही अब हमारे प्रतिकूल हो गये । इनको देना तो साँपको दूध पिलानेके समान घातक सिद्ध हुआ ॥ २६ ॥ यादव बड़े डरपोक हैं और युद्धसे घबरा जाते हैं, फिर भी वे निर्लज्ज हमपर शासन करना चाहते हैं ॥ २७ ॥ अहो ! अल्पवीर्य्य उग्रसेन जम्बूद्वीपके राजाओंको जीत तथा उनसे भेंट लेकर राजसूय यज्ञ करना चाहता है ॥ २८ ॥ जहाँ भीष्म, कर्ण, द्रोणाचार्य और दुर्योधन विद्यमान हैं, वहाँ कुबुद्धि प्रद्युम्नने तुम्हें मंत्री बनाकर भेजा है ? ॥ २९ ॥ सो यदि जीनेकी इच्छा हो तो तुरन्त द्वारका चले जाओ । यदि न जाओगे तो हमलोग तुम्हें यमपुरी भेज देंगे ॥ ३० ॥ श्रीनारदजी

श्रीनारद उवाच

इत्थं श्रीकृष्णविमुखैः कौरवैः परिभाषितम् । श्रुत्वोद्धवः शंबरारिमेत्य सर्वमुवाच ह ॥३१॥
कौरवोक्तं वचः श्रुत्वा प्रद्युम्नो धन्विनां वरः । प्रतिशार्ङ्गं संगृहीत्वा रोषात्प्रस्फुरिताधरः ॥३२॥

प्रद्युम्न उवाच

कौरवान्घातयिष्यामि बंधूनपि मदोद्धतान् । बाणैस्तीक्ष्णैर्यथा योगी नियमैर्देहजा रुजः ॥३३॥
यदूनां सैन्यचक्रेषु बलिं यो न प्रदास्यति । कौरवेभ्योऽपि स पुमान् पितुर्मातुर्न चौरसः ॥३४॥

श्रीनारद उवाच

तदैव यादवाः सर्वे भोजवृष्ण्यंधकादयः । गजाह्वयं ययुः सैन्यै राजन्संजातमन्यवः ॥३५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे कौरवोपाख्यानं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अथ विशोऽध्यायः

(प्रद्युम्न और कौरवोंका युद्ध-)

श्रीनारद उवाच

तदैव कौरवाः सर्वे निर्गता दीप्तमन्यवः । स्वैः स्वैर्वलैः समायुक्ता योद्धुं प्रद्युम्नसंमुखे ॥ १ ॥
विजयध्वजसंयुक्ता रत्नकंबलमंडिताः । गजाः षष्टिसहस्राणि निर्ययुः स्वर्णशृंगखलाः ॥ २ ॥
प्रलयाब्धिमहावर्तसंघर्षध्वनिकारिणाम् । गजाः षष्टिसहस्राणि दुंदुभीनां विनिर्गताः ॥ ३ ॥
गजा गावो बृहद्भृङ्गा लोहकंचुकमंडिताः । शिरस्रङ्मौलिसंयुक्ता द्विलक्षाणि विनिर्ययुः ॥ ४ ॥
हेमकंकणकेयूरकिरीटवरकुंडलाः । गजस्थाश्च द्विलक्षाणि निर्ययुः स्वर्णकंचुकाः ॥ ५ ॥
पीतकंचुकसंयुक्तास्तिर्यग्गुणीषशालिनः । गजस्थाश्च द्विलक्षाणि संग्रामे लब्धकीर्तयः ॥ ६ ॥
रक्तांबरधराः केचिद्रक्तभूषणभूषिताः । रक्तकंबलसंयुक्तैर्गजैरुच्चैर्विनिर्गताः ॥ ७ ॥

बोले—हे राजन् ! श्रीकृष्णसे विमुख कौरवोंकी बात सुनकर उद्धव लौट आये और उन्होंने प्रद्युम्नको उनकी कही बात कह सुनायी ॥ ३१ ॥ कौरवोंके कहे वाक्य सुनकर क्रोधसे धनुर्धरोंमें प्रमुख प्रद्युम्नके होंठ फड़कने लगे और शार्ङ्ग धनुष लेकर बोले ॥ ३२ ॥ प्रद्युम्नने कहा—अपने बन्धु होनेपर भी ये कौरव कितने मतवाले हो गये हैं । सो मैं इन कौरवोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मारूँगा, जैसे योगी नियमोंसे देहके रोगोंको मारते हैं ॥ ३३ ॥ यादवोंकी सेनाका जो सैनिक कौरवोंसे भेंट लेनेकी चेष्टा नहीं करेगा, वह अपने माता-पिताका सगा पुत्र न माना जायगा ॥ ३४ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! प्रद्युम्नकी बात सुनकर भोज, वृष्णि तथा अंधकवंशी सभी यादव बड़े क्रोधके साथ अपनी-अपनी सेना लेकर हस्तिनापुरीको चल पड़े ॥ ३५ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! उसी समय क्रोधसे बावले होकर कौरव अपनी सेना लेकर युद्धके लिए प्रद्युम्नका सामना करने चले ॥ १ ॥ सर्वप्रथम रत्नोंके गहनोंसे सुसज्जित, कश्मीरी कम्बलकी झूल ओढ़े, विजयध्वज फहराते और पाँवोंमें सोनेकी साँकल खनकाते हुए साठ हजार हाथी आये ॥ २ ॥ प्रलयकालीन समुद्रकी लहरोंके संघर्षसे उत्पन्न होनेवाले गर्जनके समान जिनकी पीठपर बंधे नगाड़ोंका गर्जन हो रहा था, ऐसे हाथी भी आये ॥ ३ ॥ हाथी, बैल तथा बड़े-बड़े दो लाख मल्ल लौहकंचुक धारण करके आये ॥ ४ ॥ सुनहले कड़े, वाजुबन्द, किरीट-कुण्डल तथा सुनहले कामदार कुरते पहने और हाथियोंपर सवार दो लाख वीर निकले ॥ ५ ॥ पीले कुरते पहने, टेढ़े साफे बाँधे बड़े-बड़े नामी दो लाख वीर हाथियोंपर चढ़कर चले ॥ ६ ॥ कितने ही लाल कपड़े पहने और लाल मणियोंके गहने धारण किये हुए वीर लाल बनातकी झूलवाले

युयुधुः क्रोधसंयुक्ताः सिंहैः सिंहा इवौजसा । खड्गैः कुतैः शक्तिभिश्च भल्लैः पट्टिशमुद्गरैः ॥२६॥
 गदाभिर्मुसलैश्चक्रैस्तोमरैर्भिदिपालकैः । शतघ्नीभिर्भुशुण्डीभिः कुठारैश्च स्फुरत्प्रभैः ॥२७॥
 चिच्छिदुर्वाणपटलैः शिरांसि क्रोधमूर्च्छिताः । बाणांधकारे संजाते प्रद्युम्नो धन्विनां वरः ॥२८॥
 दुर्योधनेन युयुधे धनुष्टङ्कारयन्मुहुः । अनिरुद्धश्च भीष्मेण दीप्तिमांश्च कृपेण वै ॥२९॥
 भानुद्रोणेन सांवस्तु बाह्लीकेन नृपेश्वरः । मधुः कर्णेन चायुध्यद्वृहद्भानुः शलेन वै ॥३०॥
 चित्रभानुर्हरः पुत्रः सोमदत्तेन धोमता । अश्वत्थाम्ना वृकश्चैवारुणो धौम्येन मैथिल ॥३१॥
 पुष्करो लक्ष्मणेनाशु दुर्योधनसुतेन वै । वेदबाहुः कृष्णसुतः शकुनेन महामृधे ॥३२॥
 दुःशासनेन समरे श्रुतदेशो हरेः सुतः । तथा हि युयुधे युद्धे संजयेन सुनन्दनः ॥३३॥
 विदुरेण गदः साक्षात्कृतवर्मा च भूरिणा । अक्रूरो युयुधे राजन्नाहवे यज्ञकेतुना ॥३४॥
 एवं परस्परं युद्धं बभूव तुमुलं महत् । कार्णिर्विलोकयामास दुर्योधनबलं महत् ॥३५॥
 बाणसंधेन वाराहो दंष्ट्रया च यथार्णवम् । बाणसंभिन्नकुम्भानां करिणां प्रपतन्ति खात् ॥३६॥
 मुक्ताफलानि रेजुः कौ रात्रौ तारागणा इव । बाणैः संपातयामास रथिनः सारथीन् रथान् ॥३७॥
 महामृधे मैथिलेन्द्र वेगेर्वातो यथा तरून् । दुर्योधनस्तदा प्राप्नो धनुष्टङ्कारयन्मुहुः ॥३८॥
 प्रद्युम्नं ताडयामास सायकैर्दशभिर्मृधे । तान्प्रचिच्छेद भगवान् प्रद्युम्नो यादवेश्वरः ॥३९॥
 दुर्योधनः पुनस्तस्य कवचे सायकान् दश । निचखान स्वर्णपुंखान् भित्वा वर्म तनौ गताः ४०॥
 सहस्रैर्वाणपटलैः सहस्राश्वाञ्जघान ह । चिच्छेद बाणशतकैः कोदण्डं सगुणं परम् ॥४१॥
 शंबरारेर्महावीरो घृतराष्ट्रसुतो बली । प्रद्युम्नस्तं रथं त्यक्त्वाथान्यमारुह्य सत्वरम् ॥४२॥
 कृष्णदत्तं धनुर्नीत्वा सज्जं कृत्वा विधानतः । एकं बाणं समाधाय कर्णात् तश्चर्क्य ह ॥४३॥

महावत, सारथीसे सारथी और राजाओंसे राजे लड़ने लगे ॥२५॥ जैसे क्रोधमें भरे सिंह सिंहसे लड़ते हैं, उसी प्रकार वे वीर योद्धा तलवारों, बछियों, भालों, पट्टिशों और मुद्गरोंसे लड़ने लगे ॥ २६ ॥ कुछ वीर गदाओं, मुसलों, चक्रों, तोमरों (गंडासों), भिन्दिपालों (डेलवासों), शतघ्नीयों (बन्दूकों), तोपों, कुठारों तथा अन्यान्य चमकीले शस्त्रास्त्रोंसे लड़ने लगे ॥ २७ ॥ क्रोधसे मूर्च्छित वीर अपनी बाणवर्षासे शत्रुओंके सिर काटकाटकर गिराने लगे । जब वीरोंकी बाणवर्षासे अन्धकार छा गया, तब धनुर्धरोंमें प्रमुख प्रद्युम्न दुर्योधनसे लड़ने लगे । अनिरुद्ध भीष्मसे और दीप्तिमान् कृपाचार्यसे भिड़ गये ॥ २८ ॥ २९ ॥ भानु द्रोणाचार्यसे, साम्ब बाह्लीकसे, मधु कर्णसे और बृहद्भानु शलसे लड़ने लगे ॥ ३० ॥ श्रीहरिके पुत्र चित्रभानु बुद्धिमान् सोमदत्तसे, वृक अश्वत्थामासे और अरुण सौम्यसे लड़ने लगे ॥ ३१ ॥ पुष्कर दुर्योधनके पुत्र लक्ष्मणसे और श्रीकृष्णका पुत्र वेदबाहु शकुनीसे लड़ने लगा ॥ ३२ ॥ श्रीकृष्णका पुत्र श्रुतदेव दुःशासनसे और सुनन्दन संजयसे लड़ने लगा ॥ ३३ ॥ विदुरसे साक्षात् गद, भूरिसे कृतवर्मा और यज्ञकेतुसे अक्रूर लड़ने लगे ॥ ३४ ॥ इस प्रकार दोनों पक्षकी सेनाओंमें परस्पर घोर युद्ध हुआ । जब प्रद्युम्नने देखा कि दुर्योधनकी सेना बड़ी विशाल है ॥ ३५ ॥ तब जैसे वाराह भगवान्ने प्रलयसमुद्रको अपने दाँतोंसे मथा था, वैसे ही प्रद्युम्न अपने बाणों द्वारा कौरवोंकी सेनाको मथने लगे । उनके बाणोंसे कटे हुए हाथियोंके मस्तक आकाशसे धरतीपर गिरने लगे ॥ ३६ ॥ उन हाथियोंके मस्तकसे धरतीपर गिरे हुए मोती तारिकाओंके समान चमकने लगे । वीर प्रद्युम्न अपने बाणोंकी मारसे रथियों, रथों और सारथियोंको वैसे ही घराशायी करने लगे ॥ ३७ ॥ जैसे वायु अपने वेगसे वृक्षोंको घराशायी करता है । उसी समय दुर्योधन बार-बार धनुष टंकारता हुआ वहाँ आया ॥ ३८ ॥ उसने आते ही उस संग्राममें प्रद्युम्नको दस बाण मारे, किन्तु प्रद्युम्नने उन सभी बाणोंको काट दिया ॥ ३९ ॥ तब दुर्योधनने दस बाण प्रद्युम्नके कवचमें मारे और वे सभी बाण कवचको काटकर प्रद्युम्नके शरीरमें घुस गये ॥ ४० ॥ फिर हजार बाणोंसे उसने प्रद्युम्नके हजार थोड़े मार डाले । सौ बाणोंसे दुर्योधनने प्रद्युम्नका धनुष काट दिया । तब प्रद्युम्न वह रथ छोड़कर दूसरे रथपर जा बैठे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ तत्काल उन्होंने श्रीकृष्णका

खङ्गहस्ता भिन्नबाणैः पत्तयोऽपि द्विधाऽभवन् । रथाश्चूर्णीकृता येन हतस्रताश्चनायकाः ॥ ६ ॥
 अधोमुखा ऊर्ध्वमुखाश्चिन्नपादा नृपात्मजाः । खङ्गहस्तधनुर्हस्ताः पतिताश्चिन्नबाहवः ॥ ७ ॥
 केचिद्वै छिन्नकवचा निपेतुर्भूमिमण्डले । अधैर्वीरैर्यैर्नगैः पतितैः स्वर्णभूषितैः ॥ ८ ॥
 युद्धमण्डलमारेजे वनं वृक्षैर्हतैर्यथा । शस्त्रदंता बाणकेशा ध्वजवस्त्रा करिस्तना ॥ ९ ॥
 बाणैर्निपातयामासानिरुद्धस्य बलं महत् । करिणश्चिन्नशिरसो हयास्ते भिन्नकंधराः ॥ १० ॥
 रथांगकुशला राजन्महामारीव भूर्वभौ । क्षतजस्त्रावसंभृता रथाश्वनरवाहिनी ॥ ११ ॥
 आपगाऽभून्महादुर्गा नरैर्वैतरणी यथा । कूष्माण्डोन्मादवेताला नदन्तो भैरवं स्वनम् ॥ १२ ॥
 हरमालार्थमागत्य जगृहुर्नृशिरांसि च । रथेनातिपताकेनानिरुद्धो धन्विनां वरः ॥ १३ ॥
 स्वबलं पतितं दृष्ट्वा प्रागाङ्गीष्मं मृधे महान् । प्रलयाब्धिमहावर्तमीमसंघर्षनादिनीम् ॥ १४ ॥
 धनुर्ज्या तस्य चिच्छेद बाणेनैकेन काष्णिजः । तुण्डया तीक्ष्णया राजन् गरुडः सर्पिणीं यथा ॥ १५ ॥
 भीष्मोऽन्यद्वनुरादाय सज्जं कृत्वा तदात्मवान् । सर्वेषां पश्यतां तत्र ब्रह्मास्त्रं संदधे मृधे ॥ १६ ॥
 ततः प्रादुष्कृतं तेजः प्रचंडं वीक्ष्य माधवः । स्वबलस्यापि रक्षार्थं ब्रह्मास्त्रं संदधे स्वयम् ॥ १७ ॥
 द्वादशादित्यसंकाशे युयुधाते परस्परम् । त्रीँल्लोकान्दहती द्वीपेऽनिरुद्धस्ते जहार ह ॥ १८ ॥
 गांगेयस्यापि कोदण्डं तडिद्वर्णं यदूत्तमः । चिच्छेद सायकैः सूर्यो नीहारमिव रश्मिभिः ॥ १९ ॥
 भीष्मो गृहीत्वाऽथ गदां लक्षभारमयीं दृढाम् । प्राहिणोदनिरुद्धाय सिंहनादं तदाऽकरोत् ॥ २० ॥
 गृहीत्वा वामहस्तेन गरुत्मानिव पद्मगीम् । प्रद्युम्नो भगवान्साक्षात्प्राहिणोत्स्वगदां हृदि ॥ २१ ॥

रणांगणमें विचर रहे थे ॥ ४ ॥ तभी भीष्म अपने बाणोंकी मारसे अनिरुद्धकी विशाल सेनाको ध्वस्त करने लगे । मस्तक कटे हाथी और गर्दन कटे घोड़े जमीनपर गिर गये ॥ ५ ॥ हाथमें तलवार लिये हुए पैदल सैनिक दो-दो टुकड़े होकर गिर पड़े । जिनके रथी, सारथी और घोड़े मर चुके थे, ऐसे रथ चूर-चूर हो गये ॥ ६ ॥ ऐसे बहुतेरे राजपुत्र रणभूमिमें गिर पड़े, जिनके मुख ऊपर या नीचेकी ओर थे । उनके हाथ, सिर और पैर कट गये थे । उनके हाथोंमें धनुष तथा तलवार अब भी विद्यमान थी ॥ ७ ॥ कवच कट जानेसे कितने ही वीर भूमिपर गिर गये । उनके अतिरिक्त बहुतेरे स्वर्णभूषित घोड़े, हाथी, रथ और रथी घरा-शायी हो गये ॥ ८ ॥ उस समय उस युद्धभूमिकी ऐसी शोभा हुई, जैसे गिरे हुए फलवाले वृक्षोंसे वनकी शोभा होती है । शस्त्र जिसके दाँत थे, ध्वजायें जिसका वस्त्र थीं, हाथी जिसके स्तन थे और रथोंके पहिये जिसके कर्णफूल थे, वह युद्धभूमि मूर्तिमती महामारी सरोखी दीख रही थी । देखते-देखते वहाँ रुधिरकी नदी बह निकली और उस नदीमें रथ, घोड़े और मृत मनुष्य बहने लगे ॥ ९ ॥ १० ॥ वह महा भीषण नदी वैतरणी जैसी थी । उसके तटवर्ती कूष्माण्ड, उन्माद, वैताल और भैरव भयंकर ढंगसे गर्जन करने लगे ॥ ११ ॥ उसी समय रुद्रगण रणभूमिमें पहुँचे और शिवजीकी मुण्डमाला बनानेके निमित्त नरमुण्डोंका संग्रह करने लगे । तभी एक ऊँचा पताकाओंवाले रथपर बैठकर धनुषधरोंमें श्रेष्ठ कृष्णतनय प्रद्युम्न जा पहुँचे ॥ १२ ॥ वहाँ अपनी सेनाको मरकर पड़ी देख वे लपककर भीष्मके समक्ष जा पहुँचे । प्रलयकालीन समुद्रके समान भीषण निनाद करनेवाली भीष्मके धनुषकी प्रत्यंचाकी अनिरुद्धने एक ही बाणसे काट दिया । जैसे गरुड अपनी चौंचसे सर्पिणीको काट डालते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥ तब भीष्मने दूसरा धनुष लिया और उसपर प्रत्यंचा चढ़ाकर सब लोगोंके समक्ष ब्रह्मास्त्र चढ़ाया ॥ १५ ॥ उसके प्रचण्ड तेजको देखकर अनिरुद्धने भी अपनी सेनाके रक्षार्थ ब्रह्मास्त्रका संधान किया ॥ १६ ॥ अब द्वादश सूर्यो जैसे तेजस्वी दोनों ब्रह्मास्त्र आपसमें लड़ने लगे । उस महा संघर्षसे तीनों लोकोंके भस्म हो जानेकी संभावना देखकर अनिरुद्धने दोनों ब्रह्मास्त्रोंको खींच लिया ॥ १७ ॥ तदनन्तर उन्होंने भीष्मके विजली जैसे तेजस्वी धनुषको अपने बाणोंसे काट डाला, जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे कुहरेको काट देते हैं ॥ १८ ॥ ऐसी स्थितिमें भीष्मने एक लाख भारकी भारी गदा अनिरुद्धपर चलाकर सिंहर्जन किया ॥ १९ ॥ किन्तु अपने ऊपर आनेके पहले ही अनिरुद्धने बायें हाथसे गदा ऐसे पकड़ ली,

गदाप्रहारव्यथितो मूर्च्छितः पतितो रथात् । बभौ सूर्यो यथाऽऽकाशाद्गङ्गेगो मृधमण्डले ॥२१॥
 कृपाचार्योऽपि तत्रैवानिरुद्धाय महात्मने । शक्तिं चिक्षेप सहसा रुपा प्रस्फुरिताधरः ॥२२॥
 दीप्तिमान्कृष्णपुत्रस्तु पथि चिच्छेद तां नृप । खड्गेन शितधारेण कुवाक्येनेव मित्रताम् ॥२३॥
 द्रोणाचार्यो महाबाहुर्भानूपरि रुपान्वितः । चिक्षेप पार्वतं चास्त्रं धनुष्टङ्कारयन्मुहुः ॥२४॥
 पतंतः पर्वता व्योम्नश्चूर्णयंतो द्विपद्मलम् । तेषां पातेन राजेन्द्र हाहाकारो महानभूत् ॥२५॥
 तदा हरेः सुतो भानुर्वायव्यास्त्रं समादधे । तद्वातेनाद्रयः सर्वे उड्डीता ह्यभवन् रणात् ॥२६॥
 बाह्लीकस्तु तदा क्रुद्धो वह्निहस्त्रं संदधे ततः । भस्मीभूतं शूलं जातं वह्निनेव महद्भनम् ॥२७॥
 पार्जन्यमाददे तत्र सांबो जांबवतीसुतः । तेन शान्तिं गतो वह्निर्जानेनेव त्वहंकृतिः ॥२८॥
 कर्णस्ततो मधुं हित्वा सांबोपरि रुपान्वितः । जघान बाणविंशत्या जगर्ज घनवद्बली ॥२९॥
 तद्बाणैः सरथः सांबो बभ्राम घटिकाद्वयम् । क्रोशं पुनः प्रपतितः किञ्चिद्ब्रथाकुलमानसः ॥३०॥
 पुनर्गदां समादाय रथं त्यक्त्वा समेत्य सः । तताड गदया कर्णं सांबो जांबवतीसुतः ॥३१॥
 गदाप्रहारव्यथितः पतितो धरणीतले । मूर्च्छां प्राप रणे राजन्कर्णो वीरो महाबलः ॥३२॥
 सांबोऽपि स्वधनुर्नीत्वा रथमारुह्य वेगतः । शूलं जघान विंशत्या सोमदत्तं च पञ्चभिः ॥३३॥
 द्रौणिं च दशभिर्वर्णैर्धौम्यं षोडशभिस्तथा । लक्ष्मणं दशभिस्तत्र शकुनिं पञ्चभिस्तथा ॥३४॥
 दुःशासनं च विंशत्या विंशत्या संजयं पृथक् । भूरिं बाणशतैः राजन्यज्ञकेतुं शतैः शितैः ॥३५॥
 बाणैर्जघान समरे जगर्ज घनवद्बली । दशभिर्दशभिर्नतनेकैकेन गजान् हयान् ॥३६॥
 पञ्चभिः पञ्चभिर्वीरान् बाणैः सांबस्तताड ह । वीक्ष्य जांबवतीसूनोः सांबस्य करलाघवम् ॥३७॥

जैसे गरुड़ सर्पिणीको पकड़ लेते हैं । इस तरह भीष्मकी गदाके प्रहारको व्यर्थ करके अनिरुद्धने भीष्मकी छाती-पर अपनी गदा चला दी ॥ २० ॥ इस प्रहारसे आहत होकर भीष्म रथसे नीचे गिर पड़े, जैसे सायंकालके समय सूर्य आकाशसे पश्चिम दिशामें गिरते हैं ॥ २१ ॥ तब रोषसे जिनके होंठ काँप रहे थे, उन कृपाचार्यने महात्मा अनिरुद्धपर शक्ति चला दी ॥ २२ ॥ तेजस्वी श्रीकृष्णसुत अनिरुद्धने तलवारसे रास्तेमें ही उस शक्तिको काट दिया । जैसे कुवाक्योंसे मित्रता कट जाती है ॥ २३ ॥ तब महाबाहु द्रोणाचार्यने कुपित होकर भानुपर पर्वतास्त्र चलाया और अपने धनुषको बार बार टंकारने लगे ॥ २४ ॥ उस अस्त्रका उपयोग होते ही आकाशसे पर्वतोंकी वर्षा होने लगी और वे पर्वत गिर-गिरकर यादवी सेनाको पीसने लगे । इससे बड़ा हाहाकर मचा ॥ २५ ॥ तब श्रीकृष्णके पुत्र भानुने वायव्यास्त्रका प्रयोग किया, जिससे सब पर्वत रणभूमिसे उड़ गये ॥ २६ ॥ तब बाह्लीकने आग्नेयास्त्र चलाया, जिससे इस तरह सेना भस्म होने लगी, जैसे दावान्निसे बड़ा भारी जंगल भस्म हो जाता है ॥ २७ ॥ तब जाम्बवतीके पुत्र साम्बने पर्जन्यास्त्र चलाया, जिससे आग बुझ गयी । जैसे ज्ञान प्राप्त होते ही अहंकार नष्ट हो जाता है ॥ २८ ॥ उसी समय कर्ण मधुको त्यागकर साम्बकी ओर बढ़ा और उन्हें बीस बाण मारकर मेघके समान गर्जन करने लगा ॥ २९ ॥ उन बाणोंका मारसे रथ समेत साम्ब कोस भर दूर जा गिरे । दो घड़ीके लिए उन्हें चक्कर आ गया और वे व्याकुल हो गये ॥ ३० ॥ तब रथ त्यागकर साम्बने गदा सम्हाली और कुछ पास जाकर कर्णपर प्रहार कर दिया ॥ ३१ ॥ उस गदाके प्रहारसे महाबली कर्ण भूमिपर गिर पड़ा और मूर्च्छित होगया ॥ ३२ ॥ उसी समय साम्ब धनुष लेकर शीघ्र रथपर बैठे । उन्होंने बीस बाण शलको और पाँच बाण सोमदत्तको मारे ॥ ३३ ॥ उसी प्रकार साम्बने दस बाण अश्वत्थामाको, सोलह बाण धौम्यको, दस बाण लक्ष्मणको और पाँच बाण शकुनीको मारे ॥ ३४ ॥ बीस बाण दुःशासनको, बीस संजयको, सौ बाण भूरिको और सौ तीक्ष्ण बाण यज्ञकेतु-को भी मारा ॥ ३५ ॥ उसी प्रकार साम्बने दस-दस बाण सारथियोंको, एक-एक बाण हाथियों और घोड़ोंको तथा पाँच-पाँच बाण सभी वीरोंको मारा । जाम्बवतीसुत साम्बका यह हस्तलाघव देखकर अपनी तथा

स्वे परे सैनिकाः सर्वे विस्मयं परमं गताः । तदा भीष्मः समुत्थाय गृहीत्वा धनुरुत्तमम् ॥३८॥
चिच्छेद दशभिर्बाणैः सांवकोदण्डमुत्तमम् । भीष्मो महाबलो वीरो द्रोणाचार्यश्च सायकैः ॥३९॥
कर्णः सद्यो यदुबलं जघ्नुर्ज्ञानं यथा गुणाः । दुर्योधनः पुनर्योद्धुं रथमारुह्य मानदः ॥४०॥

अक्षौहिणीभिर्दशभिर्नादयन्नाययौ मृधे ॥४१॥

देवौ पुराणौ पुरुषौ तदाविर्वभूवतुर्मैथिल रामकृष्णौ ।
सुपर्णतालध्वजशालियानौ प्रद्योतयन्तौ परितौ हि शस्तौ ॥४२॥
तदा जयारावसमाकुलाः सुरा गंधर्वमुख्याश्च जगुर्मनोहरम् ।
सुरानका दुंदुभयो विनेदुः श्रीलाजपुष्पैर्ववृषुः सुरस्त्रियः ॥४३॥
तदैव नेमुर्यदवः परेश्वरौ दुर्योधनाद्याः कुरवस्तु सर्वतः ।
निवाय शस्त्राणि ददुर्वलिं परं सर्वे प्रसन्नाः कृतहस्तसंपुटाः ॥४४॥
प्रद्युम्नमुख्यान् स्वसुतान् मदोद्धतान् निर्भर्त्स्य वाग्भिः परमेश्वरो हरिः
प्रणम्य देवव्रतमुख्यकौरवान् समेत्य दुर्योधनमूचतुः परौ ॥४५॥

श्रीरामकृष्णाबूचतुः

राजन् यदेभिः किल बालबुद्धिभिस्तत्क्षम्यतां मा भव दुर्मनाः स्वतः ।
यदा तु किञ्चित्पुरुषं प्रकीर्तितं प्रकीर्तितां नौ भवतां नृपेश्वर ॥४६॥
माभूत्कुरुणां भुवि यादवानां कदापि किञ्चित्कलिरेव राजन् ।
सम्बन्धिनो ज्ञातय एव सर्वे निचौलवस्त्रांतरवत्प्रियार्थाः ॥४७॥

श्रीनारद उवाच

पूजितौ कुरुभिः शश्वद्रामकृष्णौ सुरेश्वरौ । प्रद्युम्नाद्यैः सयदुभी रेजतुर्मैथिलेश्वर ॥४८॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीरामकृष्णागमनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

शत्रुसेनाके वीर आश्चर्य करने लगे । उसी समय भीष्म भी उठ खड़े हुए ॥ ३६-३८ ॥ उठते ही भीष्मने अपने दस बाणोंसे सामन्वके उत्तम धनुषको काट डाला । फिर भीष्म, महाबली द्रोणाचार्य और कर्ण ये सब एक साथ यादवोंकी सेनापर प्रहार करने लगे । जैसे सतो गुण-रजोगुण-तमोगुण ज्ञानको मारते हैं । हे मानद ! उसी समय दुर्योधन भी रथकर चढ़कर फिर रणभूमिमें आ पहुँचा ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उसके साथ दस अक्षौहिणी सेना थी और वह बार बार गर्जन कर रहा था ॥ ४१ ॥ हे मैथिल ! उस समय सहसा श्रीकृष्ण और बलदेव ये दोनों पुराणपुरुष वहाँ प्रकट हो गये । गरुड़ तथा तालकी ध्वजा जिसपर फहरा रही थी, उस रथपर वे बैठे थे और उनके आनेपर चारों ओर प्रकाश फैल गया ॥ ४२ ॥ उनके आते ही चारों ओर जयजयकार होने लगा । देवता फूल बरसाने लगे, मुख्य-मुख्य गन्धर्व मनोहर गायन गाने लगे, देवताओंकी स्त्रियाँ उनपर फूल तथा धानका लावा बरसाने लगीं और देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं ॥ ४३ ॥ परमेश्वर श्रीकृष्ण और बलदेवको समक्ष देखकर सभी यादव और दुर्योधन आदि कौरव उन्हें प्रणाम करने लगे । सभी लोगोंने अपने-अपने बाणास्त्र जमीनपर रख दिया और प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोड़कर खड़े हो गये ॥ ४४ ॥ तब प्रद्युम्न आदि अपने मदोद्धत पुत्रोंकी भर्त्सना करके भीष्म आदि वृद्ध कौरवोंको प्रणाम करके श्रीकृष्ण-बलराम दुर्योधनसे बोले ॥ ४५ ॥ श्रीकृष्ण-बलरामने कहा—हे राजन् ! इन बालबुद्धि बालकोंने जो अनुचित काम किया हो, उसे क्षमा कर दीजिए । आप खिन्न न हों । हे नृपेश्वर ! इन्होंने आपके प्रति जो कठोर वचन कहे हों, वैसे ही वचन आप हम दोनोंको कह लीजिए ॥ ४६ ॥ हे भूपते ! ऐसा कुछ किया जाय कि जिससे कौरवों और यादवोंमें कभी कुछ भी कलह न हो । क्योंकि हम लोग सम्बन्धी हैं और हमारा-आपका

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी इन्द्रप्रस्थ तथा त्रिगर्त आदि देशोंके राजाओंपर विजय)

श्रीनारद उवाच

दुर्योधनं शान्तयित्वा सानुजैः कुरुभिः सह । जग्मतुः पांडवान्द्रष्टुमिन्द्रप्रस्थं यदूत्तमौ ॥ १ ॥
 इन्द्रप्रस्थात्ततो राजाज्जातशत्रुर्युधिष्ठिरः । भ्रातृभिः स्वजनैः सार्द्धं नेतुं कृष्णं समाययौ ॥ २ ॥
 शंखदुंदुभिनादेन ब्रह्मघोषेण वेणुभिः । पुष्पवर्षं प्रकुर्वद्भिरिन्द्रप्रस्थनिवासिभिः ॥
 रामकृष्णौ परिष्वज्य दोभ्यां राजा युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥

परमां निर्वृतिं लेभे योगीवानंदसंवृतः । प्रद्युम्नाद्या हरिसुताः प्रणेष्टुः श्रीयुधिष्ठिरम् ॥ ४ ॥
 युधिष्ठिगेऽनुजग्राह कराम्यां तान्कृताशिषः । अर्जुनं भीमसेनं च परिरभ्य हरिः स्वयम् ॥ ५ ॥
 पप्रच्छ कुशलं तेषां यमाभ्यां चामिवंदितः । परिपूर्णतमौ साक्षाच्छ्रीकृष्णौ च स्वयं हरिः ॥ ६ ॥
 असंख्यब्रह्मांडपती हरिदासेन पूजितौ । प्रस्थाप्य यदुमुख्यांश्च प्रद्युम्नादीन् ससैनिकान् ॥ ७ ॥
 समग्रां जगतीं जेतुं चाज्ञां दत्त्वा विधानतः । मिलित्वा सानुजं धर्मं सर्वेणैव भक्तवत्सलौ ॥ ८ ॥
 द्वारकां जग्मतू राजन् गौरश्यामौ मनोहरौ । इत्थं श्रीकृष्णचरितं मया ते कथितं नृप ॥ ९ ॥
 चतुष्पदार्थदं नृणां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।

बहुलाश्व उवाच

कुशलस्थलीं गते कृष्णे सचले पुरुषोत्तमे ॥ १० ॥

ततश्चकार किं साक्षात्प्रद्युम्नो भगवान्हरिः । अद्भुतं तस्य चरितं श्रवणीयं मनोहरम् ॥ ११ ॥
 मुक्तानामपि भक्तानां जिज्ञासूनां पुनः किमु । अर्थार्थिनामर्थदं सदातर्तानामर्तिनाशनम् ॥ १२ ॥

चौली-दामनका साथ है ॥ ४७ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे मैथिल ! उनके ऐसा कहनेपर कौरवोंने श्रीकृष्ण और बलरामकी बार-बार पूजा की । प्रद्युम्न आदि यादवोंसे श्रीकृष्ण-बलरामकी अनुपम शोभा हुई ॥ ४८ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीयामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! इस प्रकार दुर्योधनको शान्त करके श्रीकृष्ण और बलराम छोटे भाइयों तथा कौरवोंको साथ लेकर पाण्डवोंसे मिलनेके लिए इन्द्रप्रस्थ गये ॥ १ ॥ उधर जब युधिष्ठिरने श्रीकृष्णके आगमनकी खबर सुनी तो अपने भ्राताओं तथा स्वजनोंको साथ लेकर उनकी अगवानी करने आये ॥ २ ॥ उस समय शंख और नगाड़ेकी ध्वनि हो रही थी, ब्राह्मण वेदघोष कर रहे थे, वंशो बज रही थी और सारे इन्द्रप्रस्थनिवासी उनपर फूल बरसा रहे थे । तभी राजा युधिष्ठिर दोनों भ्राताओंमें भरकर दोनोंसे मिले ॥ ३ ॥ उनसे मिलकर युधिष्ठिरको योगियोंकी तरह परम आनन्द प्राप्त हुआ । श्रीकृष्णके प्रद्युम्न आदि पुत्रोंने युधिष्ठिरको प्रणाम किया ॥ ४ ॥ उनको आशीर्वाद देकर युधिष्ठिरने उन्हें हृदयसे लगा लिया । तदनन्तर श्रीकृष्ण अर्जुन और भीमसेनसे गले लगकर मिले ॥ ५ ॥ बादमें उनसे कुशलप्रश्न किया । उसके बाद परिपूर्णतम परमेश्वर श्रीकृष्ण और बलदेवको नकुल-सहदेवने प्रणाम किया ॥ ६ ॥ इस प्रकार भगवद्भूक्तोंसे पूजित असंख्यब्रह्मांडपति श्रीकृष्ण तथा बलदेव सैनिकों समेत प्रद्युम्न आदि यादवोंको समस्त पृथिवी जीतनेका विधिबत् आदेश देकर लघुभ्राताओं समेत युधिष्ठिरसे फिर मिले ॥ ७ ॥ ८ ॥ बादमें मनोहर गौर और श्याम वपुधारी दोनों भाई द्वारका चल पड़े । हे राजन् ! इस प्रकार मैंने आपको श्रीकृष्णका चरित्र सुनाया ॥ ९ ॥ यह अपने श्रोताको धर्म-अर्थ आदि चारों पदार्थ प्रदान करता है । अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ? राजा बहुलाश्व बोले—हे महामुने ! बलदेवके साथ पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण जब द्वारका चले गये ॥ १० ॥ तब साक्षात् भगवान् प्रद्युम्नने क्या किया ? उनका मनोहर चरित्र सुनने योग्य है ॥ ११ ॥ जब उनका 32 चरित्र मुक्त जनकों भी सभी पदार्थ प्रदान करता है, तब जिज्ञासु भक्तोंको उन पदार्थोंकी प्राप्ति हो तो

चतुर्विधानां जीवानां सर्वेषां पापनाशनम् । कथं दिग्विजयं कृत्वा दिग्जयार्थी हरेः सुतः ॥१३॥
आजगाम पुनः सैन्यैरेतन्मे वद तत्त्वतः । देवर्षे त्वं ब्रह्मसुतो भगवान्सर्वदर्शनः ॥
श्रीकृष्णस्य मनः पूर्वं तस्मै ते हरये नमः ॥१४॥

श्रीनारद उवाच

साधु पृष्ठं त्वया राजन्धन्यस्त्वं तत्प्रभाववित् । श्रीकृष्णचरितं श्रोतुं पात्रं त्वमसि भूतले ॥१५॥
कृष्णे यातेऽजातशत्रू रक्षार्थं स्नेहतो नृप । शत्रुभ्यः शंकितः कार्ष्णिं प्रायुक्ता शुकिरीटिनम् ॥१६॥
अथ कार्ष्णिर्यदुश्रेष्ठः फाल्गुनेन समं नृप । विकर्षन्महतीं सेनां त्रिगर्तान्प्रययौ त्वरम् ॥१७॥
त्रिगर्ताधीश्वरो धन्वी सुशर्मा तेन शंकितः । उपायनं ददौ तस्मै प्रद्युम्नाय महात्मने ॥१८॥
विराटेन तथा राज्ञा पूजितो यादवेश्वरः । सरस्वतीं नदीं स्नात्वा कुरुक्षेत्रं ददश ह ॥१९॥
पृथूदकं बिन्दुसरस्वितं कूपं सुदर्शनम् । स्नात्वा सरस्वतीं प्रागाहत्वा दानान्यनेकशः ॥२०॥
सारस्वताधिपो राजा कुशांबौ न ददौ बलिम् । कौशांबी नगरीमेत्य दुर्योधनवशानुगः ॥२१॥
चारुदेष्णः सुदेष्णश्च चारुदेहश्च वीर्यवान् । सुचारुश्चारुगुप्तश्च भद्रचारुस्तथाऽपरः ॥२२॥
चारुचंद्रो विचारुश्च चारुश्च दशमस्तथा । रुक्मिणीनंदना ह्येते प्रद्युम्नेन प्रणोदिताः ॥२३॥
सिन्धुदेशहयारूढाः सर्वेषां पश्यतां गताः । कौशांबी नगरीमेत्य रुरुधुः सर्वतस्तदा ॥२४॥
बाणैः प्रासादशिखरा ध्वजकुंभादितोलिकाः । चूर्णीभूता निपेतुः कौलंकाट्टाला यथा मृगैः ॥२५॥
बाणांधकारे च कृते रुक्मिणीनंदनैर्यदा । तदोपायनपाणिः सन्कुशांबो निर्गतः पुरात् ॥२६॥
कृतांजलिः शंबरारिं दत्त्वा नत्वा बलिं बहु । जुगोप नगरीं राजा भयार्तो भयविह्वलः ॥२७॥
तदैव सौवीरपतिः सुदेव आभीरनाथोऽपि विचित्रनामा ।
चित्रांगदः सिन्धुपतिर्महौजाः काश्मीरपो जांगलयः सुमेरुः ॥२८॥

कयः आश्चर्यं है । वह अर्थाधिको अर्थ देता है और आर्तजनोंका संकट दूर करता है ॥ १२ ॥ वह अण्डज, पिंडज, उद्भिज तथा स्वेदज इन चारों ही प्रकारके जीवोंके पाप नष्ट करता है । हाँ, तो दिग्विजयके लिए प्रस्थित प्रद्युम्नने किस तरह दिग्विजय किया ॥ १३ ॥ उसके बाद वे अपनी सेनाके साथ कैसे द्वारका लौटे । यह वृत्तान्त आप भलांभाँति कहिए । हे देवर्षे ! आप ब्रह्माजीके पुत्र तथा समदर्शी हैं, आप श्रीकृष्णके मन और उनके स्वरूप हैं । मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ १४ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! आपने बड़ी अच्छी बात पूछी है । आप भगवान्का प्रभाव जानते हैं । अतएव आप धन्य हैं । इस भूतलपर आप ही श्रीकृष्णका चरित्र सुननेके अधिकारी हैं ॥ १५ ॥ श्रीकृष्णके द्वारका चले जानेपर शत्रुओंसे सशंक होकर युधिष्ठिरने प्रद्युम्न आदि श्रीकृष्णके पुत्रोंकी रक्षाके लिए शीघ्र अर्जुनको भेजा ॥ १६ ॥ इसके बाद यदुश्रेष्ठ प्रद्युम्न अर्जुनके साथ विशाल यादवी सेना लेकर द्रुतगतिसे त्रिगर्त देशकी ओर चले ॥ १७ ॥ तब त्रिगर्तनरेश सुशर्माने भयवश महात्मा प्रद्युम्नको भेंट दी ॥ १८ ॥ उसी प्रकार राजा विराटने भी भेंट देकर उनकी पूजा की । फिर सरस्वती नदी पार करके प्रद्युम्न कुरुक्षेत्र गये ॥ १९ ॥ वहाँ पृथूदक, बिन्दुसर, त्रितकूप, सुदर्शन क्षेत्र तथा सरस्वती नदीमें स्नान करके विविध प्रकारके दान देकर आगे बढ़े ॥ २० ॥ तब कौशाम्बी नगरी गये, किन्तु दुर्योधनका वशवर्ती होनेके कारण सारस्वत देशके राजा कुशाम्ब्रने प्रद्युम्नको भेंट नहीं दी ॥ २१ ॥ अतएव प्रद्युम्नने चारुदेष्ण, सुदेष्ण, चारुदेह, वीर्यवान्, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुचन्द्र, विचारु और चारु इन दस रुक्मिणीके पुत्रोंको भेजा । सिन्धुदेशीय घोड़ोंपर सवार होकर वे गये और देखते-देखते कौशाम्बी नगरीको चारों ओरसे घेर लिया ॥ २२-२४ ॥ इसके बाद उनके बाणोंसे महलोंके शिखर, ध्वजा, कलश तथा प्रतोलो चूर्ण होकर गिर पड़ी, जैसे लंकाकी अटारियोंको वन्दरोंने तोड़कर गिरा दिया था ॥ २५ ॥ जब रुक्मिणीके उपर्युक्त पुत्रोंने अपनी बाणवर्षासे अन्धकार फैला दिया, तब राजा कुशाम्ब भेंट लेकर महलसे बाहर निकला ॥ २६ ॥ उसने हाथ जोड़कर शम्बरारि प्रद्युम्नको पुष्कल भेंट दी और भयसे

लाक्षेश्वरो धर्मपतिर्विडौजा गांधारमुख्योऽपि सुयोधनस्य ।

वशे स्थितास्तेऽपि भयात्किलैते दत्त्वा बलिं नेमुरतीव कार्ष्णिम् ॥२९॥

ययौ कार्ष्णिर्महाबाहुः स्वसैन्यपरिवारितः । अर्बुदान्मलेच्छदेशांश्च जेतुं कन्किरिवोद्भटः ॥३०॥
कालस्यापि सुतश्चंडो यवनैद्रो महाबलः । कार्ष्णिं समागतं श्रुत्वा संमुखान्कोपपूरितः ॥३१॥
पितृहंतुः सुतं हत्वा यास्याम्यपचितिं पितुः । इत्थं विचार्य मनसा मलेच्छानां दशकोटिभिः ॥३२॥
मदच्युतं प्रोन्नदन्तं गजमारुह्य रक्तदृक् । निर्ययौ संमुखे योद्धुं प्रद्युम्नस्य महात्मनः ॥३३॥
आगतां महतीं सेनां शितवाणप्रवर्षिणीम् । चंडप्रणोदितां दृष्ट्वा प्रद्युम्नो वाक्यमब्रवीत् ॥३४॥

प्रद्युम्न उवाच

सेनां हत्वापि यश्चाण्डं शिरस्त्रसहितं शिरः । आनेष्यते तं स्वबले करिष्यामि ध्वजापतिम् ॥३५॥

श्रीनारद उवाच

एवं काष्णौ वदत्यारात्फान्गुनो वानरध्वजः । एको विवेश गांडीवी धनुष्टंकारयन्मुहुः ॥३६॥
वीरान् रथान् गजानश्चान्संमुखस्थान्द्विधाऽकरोत् । गांडीवमुक्तैर्विशिखैर्गांडीवी रणदुर्मदः ॥३७॥
केचिच्छिन्नभुजाः पेतुः शक्तिखड्गट्टिपाणयः । भिन्नपादा भिन्ननखाः केचिद्वीराः सकंचुकाः ॥३८॥
दुद्रुवुः करिणो युद्धे भिन्नकक्षाश्च सक्षताः । गतघंटाः श्लथन्नीडाः पातयंतः करैर्गजान् ॥३९॥
जिष्णुबाणैर्द्विधाभूतैर्गजैरश्वै रणांगणम् । वभौ क्षेत्रं शंकुलया कूष्माण्डशकलैरिव ॥४०॥
तदैव दुद्रुवुस्लेच्छास्त्यक्त्वा स्वं स्वं रणांगणम् । नभोऽर्करविमसंभिन्ना नीहारपटला इव ॥४१॥
गजारूढो मलेच्छपतिः शक्तिं चिक्षेप जिष्णवे । भ्रामयित्वा मैथिलेंद्र सिंहनादमथाकरोत् ॥४२॥

विह्वल होकर वह नगरीको लौट गया । ऐसा करके उसने अपनी नगरी बचा ली ॥ २७ ॥ तभी सौवीर देशका नरेश सुदेव, आभीरदेशका राजा विचित्र, सिन्धुदेशका नरेश चित्रांगद, कश्मीरका राजा महोजा, जांगलदेशका राजा सुमेरु, लक्षद्वीपका नरेश धर्मपति और गान्धारदेशका स्वामी विडौजा, दुर्योधनके वशवर्ती इन सभी राजाओंने भी भयके मारे प्रद्युम्नको भेंट देकर प्रणाम किया ॥ २८ ॥ २९ ॥ कल्किभगवान्के समान उद्भट और आजानुबाहु प्रद्युम्न अपनी सेनाके साथ अर्बुद (अरब) तथा मलेच्छ देशोंको जीतनेके लिये आगे बढ़े ॥ ३० ॥ महाबली प्रद्युम्नका आगमन सुनकर काल्यवनका पुत्र चण्ड मारे क्रोधके तमतमा उठा ॥ ३१ ॥ उसने सोचा कि अपने पिताका वध करनेवाले श्रीकृष्णके पुत्रको यदि मैं मार लूँगा तो पितृवृणसे मुक्त हो जाऊँगा । ऐसा विचार करके उसने दस करोड़ मलेच्छोंको साथ लिया ॥ ३२ ॥ फिर मद बहाने तथा बड़े-बड़े दांतोंवाले हाथीपर सवार होकर वह महात्मा प्रद्युम्नसे युद्ध करने गया ॥ ३३ ॥ बड़े ही तीक्ष्ण बाण बरसानेवाली चण्डकी सेनाको आती देखकर प्रद्युम्नने कहा ॥ ३४ ॥ प्रद्युम्न बोले—हे वीरो ! आप लोगोंमेंसे जो वीर सेना समेत चण्डको मार तथा शिरस्त्राणके साथ उसका सिर काटकर यहां लायेगा, उसे मैं सेनापति बना दूँगा ॥ ३५ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! प्रद्युम्न ऐसा कह रहे थे, तभी कपिध्वज अर्जुन अपने धनुषको बारम्बार टंकारते हुए शत्रुसेनामें घुस गये ॥ ३६ ॥ रणदुर्मद गाण्डीवधारी अर्जुनने अपने धनुषके द्वारा छोड़े हुए बाणोंसे सम्मुख आये वीरों, रथों, हाथियों और घोड़ोंको काट-काटकर दो-दो टुकड़े कर दिये ॥ ३७ ॥ उनमेंसे कुछ लोगोंके हाथ कट गये और कुछ वीर शक्ति तथा तलवार लिये, कुछ पांव कटे, कुछ नख कटे, और कुछ वीर कवच पहने मर-मरकर गिर गये ॥ ३८ ॥ उस युद्धमें जो हाथी घायल हो गये, उनके हौदे खिसक गये, घंटे टूट गये और कक्षा टूट गयी । बादमें वे हाथी अपनी सूँड़ोंसे अन्य हाथियोंको पटकते हुए निकल भागे ॥ ३९ ॥ अर्जुनके बाणोंसे दो-दो टुकड़े जिनके हो गये थे, ऐसे हाथी-घोड़े और मनुष्योंसे रणसूमिका क्षेत्र ऐसा शोभित हुआ, जैसे सरोतेसे कटे कोंहड़ेके टुकड़े पड़े हुए हों ॥ ४० ॥ उसी समय सब मलेच्छ अपना-अपना रणांगण छोड़कर भाग गये । जैसे सूर्यकी किरणोंसे आकाशका कुहरा भाग जाता है ॥ ४१ ॥ उसी समय हाथीपर सवार मलेच्छराज

विद्युप्लतामिवायांतीं बाणैः कृष्णसखो वली । गांडीवमुक्तै राजेंद्र लीलया शतधाऽच्छिनत् ॥४३॥

त्रचंडो महाम्लेच्छो धनुर्जग्राह रोषतः । तावच्चिच्छेद गांडीवी बाणेनैकेन लीलया ॥४४॥

द्वितीयं धनुरादाय स चंडश्चंडविक्रमः । प्रलयाब्धिमहावर्तभीमसंघर्षनादिनीम् ॥४५॥

चिच्छेद सिंजनीं जिष्णोर्गरुत्मानिव पन्नगीम् ।

बीभत्सुः स्वमसि नीत्वा स्फुरंतं चर्मणा सह ॥४६॥

जघान तद्रजं कुंभे शैलमिंद्रो यथा पविः । अग्निदत्तेन खड्गेन भिन्नकुंभो गजो नदन् ॥४७॥

जानुभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा कश्मलं परमं ययौ । चंडः खड्गं गृहीत्वाऽथ ग्राह्य पांडुनंदनम् ॥४८॥

तत्खड्गं चर्मणोनीय प्राहिणोत्तं कुरुद्रहः । सशिरस्त्रं शिरस्तस्य देहाद्भिन्नं बभूव ह ॥४९॥

सज्जं कृत्वा धनुर्जिष्णुनिधाय विशिखे च तत् । आकृष्य पातयामास प्रद्युम्नस्य बले महत् ॥५०॥

तदा दुंदुभिनादोऽभूज्जयारावसमाकुलः । अर्जुनस्योपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ॥५१॥

तदैव कार्ष्णिः सवलस्य जिष्णुं चकार नाथं विजयध्वजस्य ।

संवीज्यमानं सितचामराद्यैः कपिध्वजं यादववृंदमुख्यैः ॥५२॥

वेगवानर्बुदाधीशः प्रद्युम्नं शरणं गतः । उपायनं ददौ भीरुर्नमस्कृत्य कृतांजलिः ॥५३॥

मौरंगेशो मंदहासो ह्यानां दशलक्षकम् । दत्त्वा भीरुर्नमश्चक्रे प्रद्युम्नाय महात्मने ॥५४॥

इत्थं खंडं भारताख्यं जित्वा कार्ष्णिर्यदूत्तमः ।

हिमाद्रिं दक्षिणीकृत्य प्रागुदीचीं दिशं ययौ ॥५५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे बहुदिग्बिजयो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

चण्डने शक्ति घुमाकर अर्जुनपर चलायी और सिंहके समान गर्जन करने लगा ॥ ४२ ॥ बिजली जैसी चमकती वह शक्ति आयी, तब श्रीकृष्णके सखा अर्जुनने गाण्डीवके छूटे बाणोंसे अनायास उसके सौ टुकड़े कर डाले ॥ ४३ ॥ जब म्लेच्छराज दूसरा घनुष लेने लगा, तभी अर्जुनने एक ही बाणसे उसका वह घनुष काट डाला ॥ ४४ ॥ प्रचण्ड बलवान् चण्डने जब दूसरा घनुष हाथमें लिया, तब अर्जुनने प्रलयकालीन समुद्र जैसी गर्जना करनेवाली उसके घनुषकी प्रत्यक्षा काट डाली । जैसे गरुड़ सर्पिणीको काट डालते हैं । तब अर्जुनने अपनी ढाल-तलवार लेकर उसके हाथीके मस्तकपर इस तरह प्रहार किया, जैसे इन्द्र पर्वतपर वज्रप्रहार करते हैं । तभी अग्निकी दी हुई तलवारकी मारसे चण्डके हाथीका मस्तक फट गया, जिससे वह चिंगाड़ उठा ॥ ४५-४७ ॥ इसके बाद वह हाथी घुटनोंके बल बैठकर मूर्छित हो गया । तब चण्डने अपनी तलवारसे अर्जुनपर प्रहार किया ॥ ४८ ॥ किन्तु अर्जुनने उसके प्रहारको ढालपर झेल लिया और अपनी तलवारका प्रहार चण्डपर किया, जिससे शिरस्त्राण समेत उसका सिर कटकर उसके शरीरसे अलग हो गया ॥ ४९ ॥ तदनन्तर अर्जुनने अपना घनुष चढ़ाया । उसपर बाण चढ़ाकर बाणपर चण्डका सिर रखा । फिर बाण समेत चण्डका सिर प्रद्युम्नकी सेनामें फेंक दिया ॥ ५० ॥ उस समय नगाड़े बजने लगे, जय-जयकारका निनाद होने लगा और सभी देवता अर्जुनके ऊपर फूल बरसाने लगे ॥ ५१ ॥ उसी समय श्रीकृष्णसुत प्रद्युम्नने अर्जुनको अपनी सेनाका सेनापति बना दिया । तब प्रमुख यादव अर्जुनपर श्वेत व्यजन और चमर चलाने लगे ॥ ५२ ॥ तदनन्तर अर्बुद देशका नरेश वेगवान् प्रद्युम्नकी शरणमें आया । उसने भयभीत हो हाथ जोड़कर प्रणाम किया और भेंट दी ॥ ५३ ॥ मौरंग देशके नरेश मंदहासने दस लाख घोड़े भेंट देकर भयभीत भावसे प्रद्युम्नको नमस्कार किया ॥ ५४ ॥ इस प्रकार भरतखंडको जीतकर यदुश्रेष्ठ प्रद्युम्न हिमालयकी परिक्रमा करते हुए ईशान दिशाको चल पड़े ॥ ५५ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'त्रियंवदा'भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नका यक्षदेशको प्रयाण)

श्रीनारद उवाच

नदा नद्यः समुद्राश्च रथवीथिं ददुर्नृप । धर्षितास्तेजसा तस्मै ससैन्याय महात्मने ॥ १ ॥
कैलासगिरिपार्श्वे च वरवीरश्च मानुषः । बाणस्य शोणितपुरं प्रययौ यादवेश्वरः ॥ २ ॥
बाणासुरोऽतिसंकुद्धो यदून् वीक्ष्यागतान्पुनः । अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिर्युद्धं कर्तुं मनो दधे ॥ ३ ॥

तदेव साक्षात्पुरुषः पुराणो महेश्वरो नन्दिवृषस्थितोऽसौ ।

हिमाद्रिपुत्रीसहितस्त्रिशूली समेत्य बाणं नृपमाह देवः ॥ ४ ॥

शिव उवाच

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् । असंख्यब्रह्मांडपतिर्गोलोकेशः परात्परः ॥ ५ ॥
त्रयो वयं तत्कला हि ब्रह्मविष्णुशिवादयः । मूर्धन्याज्ञां यस्य विभ्रति त्वादृशानां च का कथा ॥ ६ ॥
तस्य पौत्रस्त्वया बद्धोऽनिरुद्धो मेन तेजसा । छिन्ना भुजा न जानासि संग्रामे तं हरिः स्वयम् ॥ ७ ॥
तस्मात्तेषां दानवानां पूजनीया हरेः सुताः । अनिरुद्धः पूजनीयो जामाता ते न संशयः ॥ ८ ॥
न ददामि त्वनुज्ञां ते युद्धायासुरपुंगव । न चेद्युद्धं कुरु बलाद्वृथा दृष्टं मनस्तव ॥ ९ ॥

श्रीनारद उवाच

शिवप्रबोधितो बाणोऽनिरुद्धं धन्विनां वरम् । समाहूय च संपूज्य पारिवर्हं ददौ पुनः ॥ १० ॥
ससैन्यं सादरेणापि प्रद्युम्नं पूज्य बंधुवत् । गजायुतं चाश्वकोटिं रथानां पंचलक्षकम् ॥ ११ ॥
ददौ बाणो महाबाहुः प्रद्युम्नाय महात्मने । अथ कार्ष्णिर्महाराज स्वसैन्यैर्यदुभिः सह ॥ १२ ॥
अलकां प्रययौ धन्वी पुरीं गुह्यकमंडिताम् । श्रीनंदालकनंदाभ्यां गंगाभ्यां परिखीकृता ॥ १३ ॥
रत्नसोपानयुक्ताभ्यां यज्ञिभिः परिशोभिताम् । विद्याधरीभिः परितः किन्नरीभिर्मनोहराम् ॥ १४ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! नद, नदी तथा समुद्र सबने प्रद्युम्नके तेजसे अभिभूत होकर उनके रथ तथा सेनाको मार्ग दे दिया ॥ १॥ तब यादवेश्वर प्रद्युम्न कैलासपर्वतके समीपवर्ती बाणासुरके शोणितपुरको गये ॥ २ ॥ यादवोंको आया देखकर बाणासुर बहुत कुपित हुआ और बारह अक्षौहिणी सेना लेकर यादवोंसे लड़नेका विचार करने लगा ॥ ३ ॥ उसी समय साक्षात् पुराणपुरुष त्रिशूलधारी शिव पार्वतीके साथ नन्दीश्वरपर सवार होकर बाणासुरके पास गये और बोले ॥ ४ ॥ श्रीशिवजीने कहा—परिपूर्णतम श्रीकृष्ण साक्षात् परमेश्वर हैं । वे असंख्य ब्रह्माण्डोंके स्वामी, गोलोकके अधिपति और परात्पर ईश्वर हैं ॥ ५ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिव हम तीनों उनकी कला हैं और उनकी आज्ञाको मस्तकपर धारण करते हैं, तब तुम जैसेकी तो बात ही क्या है ॥ ६ ॥ जिनके पुत्र अनिरुद्धको तुमने बांध लिया था, उसीके कारण संग्राममें जिन्होंने तुम्हारी भुजायें काट दी थीं, उन श्रीहरिको क्या तुम नहीं जानते ? ॥ ७ ॥ अतएव भगवान् कृष्णके सभी पुत्र दानवोंके पूज्य हैं । और फिर अनिरुद्ध तो तुम्हारा दामाद ही है । इस लिए वह तो तुम्हारा सदाका पूज्य है ॥ ८ ॥ इसीसे मैं तुम्हें यादवोंके साथ युद्ध करनेकी अनुमति नहीं दूंगा । यदि तुम बलपूर्वक युद्ध करोगे तो कोई लाभ नहीं होगा ॥ ९॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! शिवजीके इस प्रकार समझाने-पर बाणासुरने धनुर्धरोंमें अग्रणी अनिरुद्धको बुलाकर उनकी पूजा की और भरपूर दहेज दिया ॥ १०॥ इसके बाद सेनासमेत प्रद्युम्नका भी महाबाहु बाणने बन्धुके समान पूजन किया और दस हजार हाथी, एक करोड़ घोड़े और पांच लाख रथ महात्मा प्रद्युम्नको प्रदान किया । हे महाराज ! इसके बाद प्रद्युम्न यादव सैनिकोंके साथ यक्षोंसे मण्डित अलकापुरी गये । जिसको नन्दा और अलकनन्दा नामकी दो गंगाएँ खाईकी तरह चारों ओरसे घेरकर बहती थीं ॥ ११-१३ ॥ उन दोनों नदियोंमें रत्नजटित सीढ़ियाँ थीं । यक्षिणी, विद्याधरी

दिव्याभिर्नागकन्याभिः पुरीं भोगवतीमिव । धनदो न ददौ तस्मै प्रद्युम्नाय बलिं नृपः ॥१५॥
हरेः प्रभावविदपि विष्णोर्मायाबलं त्वहो । लोकपालोऽस्म्यहं नित्यमित्यज्ञानविमोहितः ॥१६॥
नोदितो बलिभिर्यक्षैर्युद्धं कर्तुं मनो दधे । निर्धनो हि धनं प्राप्य तृणवन्मन्यते जगत् ॥१७॥
नवानां तु निधीनां कौ पतीनां किमु वर्णनम् । तदैव हेममुकुटो दूतो धनदनोदितः ॥

कार्ष्णिमेत्य सभामध्ये नत्वेदं प्राह मानदः ॥१८॥

हेममुकुट उवाच

धनेश्वरो राजराजो लोकपालोऽलकेश्वरः । तेन यत्कथितं राजञ्छृणु त्वं तद्यदूत्तम ॥१९॥
देवराजो यथा शक्रः स्मृतो दिवि यथा प्रभुः । तथैको राजराजोऽहं कथितो भूतले महान् ॥२०॥
मनुष्यधर्मा राज्ञैः पूजितोऽहं सदा शुवि । उग्रसेनेन दातव्यं मह्यं सोपायनं परम् ॥२१॥
पराक् तस्मै न दास्यामि यदुराजाय भूभृते । न मन्यसे चेत्संग्रामं करिष्यामि न संशयः ॥२२॥

श्रीनारद उवाच

एवं दूतवचः श्रुत्वा प्रद्युम्नो भगवान्हरिः । चकार कोपं रक्ताक्षो रुषा प्रस्फुरिताधरः ॥२३॥

प्रद्युम्न उवाच

वृष्णींद्रं राजराजेंद्रं राजराजो न वेत्ति तम् । शक्रादीनां तु यः साक्षान्मुकुटैर्घृष्टपादुकः ॥२४॥
सुधर्मा पारिजातं च तस्मा इंद्रो ददौ भयात् । श्यामवर्णान्हयान्पाशी तस्मै दत्त्वा ननाम ह ॥२५॥
अनेन राजराजेन भीरुणा निधयो नव । प्राप्तास्तं हि न जानाति राजराजो महाबलम् ॥२६॥
वर्तते तत्सभामध्ये परिपूर्णतमो हरिः । असंख्यब्रह्मांडपतिः श्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् ॥२७॥
यस्यैकमूर्ध्नि तिलकं दृश्यते मंडलं शुवः । उग्रसेनसभामध्ये सोऽपि नित्यं विराजते ॥२८॥
उग्रसेनप्रेषितोऽहं कुबेराय महात्मने । नाराचानां बलिं दातुं तत्करिष्यामि सांग्रतम् ॥२९॥

तथा किन्नरियोसे अलकापुरी बड़ी सुन्दर लग रही थी ॥ १४ ॥ दिव्य नागकन्याओंसे अलंकृत अलकापुरी भोगवतीपुरी सरीखी दीख रही थी । किन्तु उस पुरीके अधिपति कुबेरने प्रद्युम्नको भेंट नहीं दी ॥१५॥ यद्यपि वे भगवान् कृष्णके प्रभावको जानते थे । किन्तु भगवान्की माया बड़ी प्रबल होती है । उसीके फेरमें पड़कर कुबेर 'मैं लोकपाल हूँ' ऐसा सोचकर अज्ञानमोहित हो गये ॥ १६ ॥ बलवान् यक्षोंकी प्रेरणासे उन्होंने युद्ध करनेकी इच्छा की । ठीक ही है, निर्धन धनी बनकर सारे संसारको तृणवत् तुच्छ समझने लगता है ॥ १७ ॥ तब जो नौ निधियोंका स्वामी बन जाय, उसके घमंडका तो कहना ही क्या है । यक्षराज कुबेरका भेजा हुआ हेममुकुट नामका दूत प्रद्युम्नके पास जाकर बोला । हेममुकुटने कहा—हे राजन् ! धनेश्वर, राजाओंके राजा, लोकपाल और लोकेश्वर कुबेरने जो कुछ कहा है, उसको सुनिए ॥ १८ ॥ १९ ॥ जैसे स्वर्गमें इन्द्र देवताओंके राजा हैं, उसी प्रकार पृथिवीपर मैं राजाओंका भी राजा हूँ । इसीसे मेरा राजराज नाम पड़ा है ॥ २० ॥ मैं मनुष्यधर्मा हूँ । पृथ्वीके सब बड़े-बड़े राजे मेरी पूजा करते हैं । अतएव मैं उग्रसेनको भेंट नहीं दूंगा ॥ २१ ॥ यदुराज उग्रसेनको मैं कुछ भी भेंट न दूंगा । यदि आपलोग मेरी बात न मानेंगे तो युद्ध करूंगा ॥ २२ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! कुबेरके दूतकी बात सुनकर भगवान् प्रद्युम्न कुपित हो गये । मारे क्रोधके होंठ फड़कने लगे और नेत्र लाल हो गये ॥२३॥ प्रद्युम्न बोले—यादवेन्द्र, राजाओंके राजा और इन्द्रादिक देवताओंके मुकुटों द्वारा सेवितचरण उग्रसेनको कुबेर नहीं जानते ॥ २४ ॥ जिनसे डरकर देवराज इन्द्र सुधर्मा सभा और कल्पवृक्ष दे गये और श्यामवर्ण घोड़ोंको वरुण देवताने जिनको प्रदान किया ॥ २५ ॥ इन्हीं डरपोक राजराजने जिनके पास नौ निधियें भेजी हैं, वे हूं कुबेर महाबल । उग्रसेनको नहीं जानते ॥ २६ ॥ जिनकी सभामें परिपूर्णतम परमेश्वर और अगणित ब्रह्माण्डोंके नायक श्रीकृष्ण भगवान् स्वयं विराजते हैं ॥ २७ ॥ जिनके हजार मस्तकोंमेंसे एक मस्तकपर सारा भूमण्डल तिलके समान चिह्नमान रहता है, वे शेषभगवान् (बलदेव) जिनकी सभामें नित्यबने रहते हैं ॥२८॥ उन्हीं उग्रसेनका

श्रीनारद उवाच

एवमुक्त्वा गृहीत्वा स्वं कोदंडं चंडविक्रमः । चकार भुजदंडाभ्यां टंकारं वादयन् गुणम् ॥३०॥
 प्रत्यंचास्फोटनेनैव मंडितोऽभूच्छटित्स्वनः । ननाद तेन ब्रह्मांडं सप्तलोकैर्विलैः सह ॥३१॥
 विचेलुर्दिग्गजास्तारा- राजन्भूखंडमंडलम् । निपंगाच्छरमाकृष्य प्रद्युम्नो धन्विनां वरः ॥३२॥
 प्रतिशार्ङ्गे स्वधनुषि बाणमेकं समादधे । द्वादशादित्यसंकाशं द्योतयन्मंडलं दिशाम् ॥३३॥
 चिच्छेद गुह्यकेशस्य बाणं छत्रं च चामरे । तदा क्रुद्धो राजराजो दृष्ट्वा चित्रमिदं महत् ॥३४॥
 आरुह्य पुष्पकं सैन्यैर्युद्धकामो विनिर्ययौ । घंटानादेन यक्षेण मंत्रिणा पार्श्वमौलिना ॥३५॥
 नलकूबरमणिग्रीवौ शुशुभाते ध्वजाग्रतः । तुरंगवदनाः केचिन्मृगैर्द्रवदनाः परे ॥३६॥
 शिशुमारमुखाः केचित्केचिन्नक्रमुखा इव । अर्द्धपिंगा अर्द्धकृष्णा ऊर्ध्वकेशा मदोत्कटाः ॥३७॥
 वक्रदंता ललज्जिह्वा बृहदंष्ट्रा महाबलाः । करालास्याः सकवचाः खड्गचर्मधराः पराः ॥३८॥
 शक्तिहस्ता ऋष्टिहस्ता भुशुंडिपरिघायुधाः । धनुर्बाणधरा यक्षाः केचित्परशुपाणयः ॥३९॥
 यक्षाणां हस्तिवाहानां रथिनामध्विनां तथा । विरेजुर्निर्गतानां च मंडलानि सहस्रशः ॥४०॥
 शंखदुंदुभिनादैश्च स्रुतमागधवंदिभिः । रेजिरे श्रीदवीराः कौ मेघा इव तडित्स्वनैः ॥४१॥
 एवं यक्षेषु मत्तेषु कोटिशो निर्गतेषु च । दिव्यान्महायोगमयात्सिद्धक्षेत्राद्विदेहराट् ॥४२॥
 आययौ तत्सहायार्थं प्रमथानां बलं महत् । भूताश्च प्रमथाः केचित्करालास्या मदोत्कटाः ॥४३॥
 डाकिन्यो यातुधानाश्च वेतालाः सविनायकाः । कूष्माण्डोन्मादसंयुक्ताः प्रेता मातृगणाः परे ॥४४॥
 निशाचरपिशाचाश्च ब्रह्मराक्षसभैरवाः । नदंतो भैरवं नादं छिंधि मिंधीति वादिनः ॥४५॥
 इत्थं तु भूतावलयः कोटिशश्चाययुस्तदा । रोदस्याच्छादिते भूता मेघैः सांवर्तकैरिव ॥४६॥

मेजा हुआ मैं यहाँ आया हूँ । सो मैं महात्मा कुबेरको अपने बाणोंकी भेंट दूँगा ॥ २९ ॥ नारदजी बोले—
 हे मेथिल । ऐसा कहकर प्रचण्ड पराक्रमी प्रद्युम्नने अपना धनुष हाथमें लिया और बार-बार टंकार करने
 लगे ॥ ३० ॥ उस प्रत्यंचाके ही टंकारसे बिजली गिरने जैसा भीषण निनाद हुआ और चौदहों भुवनोंसमेत
 सारा ब्रह्माण्ड झंकृत हो उठा ॥ ३१ ॥ सारा भूमण्डल, आठों दिग्गज और तारागण विचलित हो उठे ।
 तभी धनुर्धारियोंमें अग्रणी प्रद्युम्नने तरकससे एक बाण निकाला ॥ ३२ ॥ उसे धनुषपर रखकर छोड़ा, तैसे
 ही द्वादश सूर्योंके समान प्रकाशसे सभी दिशायें भर गयीं ॥ ३३ ॥ उसी बाणने कुबेरके बाण, छत्र तथा कवच
 काट डाले । यह विचित्र काम देखकर कुबेर बहुत क्रुद्ध हो उठे ॥ ३४ ॥ तदनुसार अपने सैनिकोंके साथ
 पुष्पक विमानमें बैठकर घंटानाद यक्ष तथा पार्श्वमौलि मंत्रीको साथ लेकर कुबेर युद्ध करनेके लिए अपने
 महलसे बाहर निकले ॥ ३५ ॥ उनके दोनों पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव ध्वजाके आगे बैठे । घोड़े सरीखे
 मुखवाले, सिंह जैसे मुखवाले, शिशुमार तथा मगर जैसे मुखवाले, आधे पीले, आधे काले, ऊँचे केशवाले,
 बड़े उत्कट, टेढ़े दाँत, लपलपाती जीभ, बड़े बड़े दाँत और भयंकर मुखवाले, कवच पहने, ढाल-तलवार लिये,
 शक्ति हाथमें लिये, पोलादी धारण किये, तोप, परिघ, धनुष-बाण तथा फरसा हाथमें लिये हुए बहुतेरे यक्ष
 निकले ॥ ३६-३९ ॥ हाथियों, रथों तथा घोड़ोंपर सवार यक्षोंके हजारों मंडल निकलकर शोभित हुए ॥ ४० ॥
 शंखों और दुन्दुभियोंके निनाद तथा सूतों-मागधों-बन्दीजनोके स्तुतिगानसे कुबेरके वीरगण पृथ्वीपर बहुत
 शोभित हुए । जैसे बिजलीसे बादलकी शोभा होती है ॥ ४१ ॥ हे विदेहराज । इसी प्रकार करोड़ों यक्ष
 दिव्य योगमय सिद्धक्षेत्रसे बाहर निकले ॥ ४२ ॥ उनकी सहायताके लिए प्रमथोंकी बहुत बड़ी सेना आयी ।
 उन भूतों और प्रमथोंका मुख बहुत ही विकराल था और वे बहुत मदोन्मत्त थे ॥ ४३ ॥ डाकिनी, राक्षस,
 वेताल, विनायक, कूष्माण्ड, उन्मत्त मातृगण, बहुतेरे निशाचर, पिशाच, ब्रह्मराक्षस और भैरव भयंकर नाव
 करते और 'इसे छेद डालो' 'इसे भेद डालो' ऐसा कहते हुए आगये ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ इस प्रकार भूतोंके करोड़ों झुंड
 आ पहुँचे । उनसे सारी घरती और सारा आकाश आच्छादित हो गया, ऐसा लगा किजैसे प्रलयकालीन मघ

मयूरस्थः कार्तिकेयो मूपकस्थो गणेश्वर । प्रमथैर्गीयमानौ तौ ढकावादित्रनिःस्वनैः ॥४७॥
 सर्वेषामग्रतः प्राप्तौ वीरभद्रेण संयुतौ । इत्थं पुण्यजनानां तु गणानां यदुभिः सह ॥४८॥
 वभूव तुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् । रथिनो रथिभिस्तत्र पत्तिभिः सह पत्तयः ॥४९॥
 हया हयैरिभाश्वेभैर्युधुस्ते परस्परम् । रथेभाश्वपदातीनां चरणैरुत्थितं रजः ॥५०॥
 छादयामास राजेंद्र सस्यं व्योममण्डलम् ॥५१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे यक्षदेशप्रयाणं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

(यक्षयुद्धवर्णन)

श्रीनारद उवाच

शस्त्रांधकारे संजाते मणिग्रीवो महाबलः । बिभेदारिवलं बाणैः कुवाक्यैर्मित्रतामिव ॥ १ ॥
 मणिग्रीवस्य बाणौघैर्गजाश्वरथपत्तयः । निपेतुः सक्षता भूमौ वृक्षा वातहता इव ॥ २ ॥
 चंद्रभानुर्हरेः पुत्रः सत्यभामात्मजो वली । मणिग्रीवस्य क्रोदं पंचबाणैस्तदाऽच्छिनत् ॥ ३ ॥
 दशभिस्तद्रथं भित्वा जगर्ज घनवद्वली । मणिग्रीवोऽपि चिक्षेप शक्तिं स्वां चंद्रभानवे ॥ ४ ॥
 भासयन्तीं दिशः शश्वन्महोल्कामिव मैथिल । अग्रहीचंद्रभानुस्तां वामहस्तेन लीलया ॥ ५ ॥
 तथा जघान समरे मणिग्रीवं महाबलम् । पुनर्जगर्ज समरे चंद्रभानुर्महांबलः ॥ ६ ॥
 तत्प्रहारेण पतिते मणिग्रीवे प्रमूर्च्छिते । चन्द्रभानुं बाणजालैर्नलकूबरनोदिताः ॥ ७ ॥
 छादयामासुरसुरा वर्षादित्यं यथांबुदाः । दीप्तिमान्कृष्णपुत्रस्तु खड्गमुद्यम्य वेगवान् ॥ ८ ॥
 विवेश यक्षसेनासु नीहारेषु यथा रविः । तस्य खड्गप्रहारेण केचिद्यक्षा द्विधाऽभवन् ॥ ९ ॥

उमह आये हों ॥४६॥ मयूरपर कार्तिकेय और मूपकपर सवार गणेशजी भी आये । प्रमथगण उनका यक्ष गाते हुए ढोल बजा रहे थे ॥ ४७ ॥ सबके आगे वीरभद्रके साथ और कार्तिकेय ही आये । इस प्रकार आये हुए पुण्यजनोंका यादवोंके साथ बड़ा अद्भुत, रोमांचक और तुमुल युद्ध हुआ । उस युद्धमें रथो रथियोंके साथ, पैदल सैनिक पैदलोंके साथ, घुड़सवार घुड़सवारोंके साथ और हाथीसवार हाथीसवारोंके साथ लड़ने लगे । हे राजेन्द्र ! युद्धके समय रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सैनिकोंके पैरोंसे उठी हुई धूलसे सारा आकाश और सूर्यमण्डल ढँक गया ॥ ४८-५१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

नारदजी बोले—हे राजन् ! जब रणभूमिमें शस्त्रोंकी वर्षासे अन्धकार छा गया, तब महाबली मणिग्रीव अपने तीक्ष्ण बाणोंसे यादवोंकी सेनाको बेधने लगा । जैसे कुत्सित वचनोंसे मित्रता बिध जाती है । मणिग्रीवकी विकराल बाणवर्षासे बहुतेरे हाथी, घोड़े तथा पैदल सैनिक घायल हो-होकर धरतीपर गिर पड़े जैसे आँधीके झोंकेसे वृक्ष जमीनपर गिर जाते हैं ॥ १ ॥ २ ॥ तब श्रीकृष्णका पुत्र तथा सत्यभामाके आत्मज वली चन्द्रभानुने अपने पाँच बाणोंसे मणिग्रीवके घनुषको काट डाला ॥ ३ ॥ तदनन्तर दस बाणोंसे उसके रथको ध्वस्त करके चन्द्रभानुने मेघके समान गर्जन किया । तब मणिग्रीवने चन्द्रभानुपर अपनी शक्ति चलायी ॥ ४ ॥ हे मैथिल ! वह शक्ति दसों दिशाओंमें प्रकाश फैलाती हुई बहुत बड़ी मशालकी तरह आयी, तब चन्द्रभानुने अनायास उसे अपने हाथसे पकड़ लिया ॥ ५ ॥ फिर उसी शक्तिसे मणिग्रीवपर प्रहार करके चन्द्रभानु बहुत जोरसे गरजे ॥ ६ ॥ उस शक्तिके आघातसे मणिग्रीव मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर गया । तब नलकूबरसे प्रेरित असुरोंने चन्द्रभानुको इस तरह ढाँक दिया, जैसे वर्षाकालमें बादल सूर्यको ढाँक लेते हैं ।

केचिद्वै छिन्नशिरसश्छिन्नपादांसवाहवः । भिन्नहस्ताश्छिन्नकर्णाश्छिन्नोष्ठाः पेतुराहवे ॥१०॥
 तेषां शिरोभिर्वीभत्सैः सकिरीटैः सकुण्डलैः । सशिरस्त्रैः स्रवद्रक्तैर्महामारीव भूर्वभौ ॥११॥
 शेषा विदुद्रुर्यक्षाः सक्षता भयविह्वलाः । हाहाकारस्तदा जातो यक्षसेनासु मैथिल ॥१२॥
 धनुष्टंकारयन्प्राप्तो दंशितो नलकूबरः । रथेनातिपताकेन मार्मैष्टेत्यभयं ददौ ॥१३॥
 पंचभिः कृतवर्माणमर्जुनं दशभिः शरैः । दीप्तिमंतं च विंशत्या तताड नलकूबरः ॥१४॥
 कृतवर्मा महाबाहुर्जघान नलकूबरम् । पंचभिर्विशिखै राजन्नादयन्मंडलं दिशाम् ॥१५॥
 ते बाणाः कवचं भित्वा तनुं भित्वा धरातलम् । विविशुः पश्यतां तेषां वल्मीके फणिनो यथा ॥१६॥
 वीक्ष्य तद्बाणमिच्छांगं मूर्छितं नलकूबरम् । अपोवाह रणात्सूतो हेममालीति नामभाक् ॥१७॥
 घंटानादः पार्श्वमौलिः कुबेरस्य च मंत्रिणौ । जघनतुर्वाणपटलैर्यदूनामुद्धृतं बलम् ॥१८॥
 स्वर्णपुंखैस्तीक्ष्णमुखैर्गृध्रपक्षैर्मनोजवैः । द्योतयद्भिर्दिशः सर्वा मार्तण्डकिरणैरिव ॥१९॥
 ततोऽर्जुनो महावीरः प्रतिबाणान्समादधे । बाणसंघर्षजा युद्धे विस्फुलिगाः सहस्रशः ॥२०॥
 विरेजुर्नुप खद्योतचंचलालातचक्रवत् । सर्वं तद्बाणपटलं क्षणमात्रेण चाच्छिनत् ॥२१॥
 गांडीवमुक्तविशिखैर्गाण्डीवी रणदुर्मदः । योजनद्वयमात्रेण तद्रथौ सध्वजौ बलात् ॥२२॥
 अर्जुनो बाणपटलैश्चकार शरपंजरे । हताविमाविति ज्ञात्वा सर्वे पुण्यजनास्त्वरम् ॥२३॥
 दुद्रुवुः स्वं रणं त्यक्त्वा परं हाहेति वादिनः । तदा तु भूतावल्यः कोटिशिवाययुर्मृधे ॥२४॥
 डाकिन्यः कोटिशो राजंश्चिपुर्वारणामृधे । भक्षयंत्यो नरानश्वाश्चर्ययंत्यो स्थान्पृथक् ॥२५॥
 नरे नरे पृथग्भूता धावन्तो दशभिर्दश । प्रमथाः पातयामासुः खट्वांगेन जनान्मुहुः ॥२६॥

तब श्रीकृष्णका पुत्र दीप्तिमान् तलवार लेकर कुहरेमें प्रविष्ट सूर्यकी तरह यक्षोंकी सेनामें घुस गया । उसके खन्न-प्रहारसे कितने ही यक्ष दो-दो टुकड़े हो-होकर धरतीपर गिर गये ॥ ७-९ ॥ उनमेंसे कितनोंके सिर, कितनोंकी भुजायें कितनोंके पैर, बहुतोंके होंठ और कितनोंके कान कट गये । वे सब जमीनपर पड़े हुए थे ॥ १० ॥ उनके किरीट, कुण्डल और शिरस्त्राणयुक्त तथा रुधिर बहानेवाले सिरोंसे रणभूमि मूर्तिमती महामारी जैसी दीख रही थी ॥ ११ ॥ हे मैथिल ! शेष घायल यक्ष विकल होकर रणांगणसे निकल भागे । इससे यक्षोंकी सेनामें हाहाकार मच गया ॥ १२ ॥ उसी समय कवचधारी नलकूबर ऊँचो पताकावाले रथमें बैठकर धनुष टंकारता और यक्षोंको अभय करता हुआ आया ॥ १३ ॥ रणभूमिमें पहुँचते ही नलकूबरने पाँच बाण कृतवर्माको, दस अर्जुनको और बीस बाण दीप्तिमान्को मारा ॥ १४ ॥ तत्काल महाबाहु कृतवर्माने पाँच बाणोंसे नलकूबरपर प्रहार किया । उससे दसों दिशायें मुखरित हो उठीं ॥ १५ ॥ वे बाण उसके कवचको छेदकर सबके देखते-देखते पृथिवीमें घुस गये । जैसे वल्मीक (बाँबी) में साँप घुसता है ॥ १६ ॥ कृतवर्माके बाणोंसे घायल नलकूबर जब मूर्छित हो गया, तब उसका सारथी हेममाली नलकूबरको रणभूमिसे हटाकर एकान्तमें ले गया ॥ १७ ॥ तदनन्तर कुबेरके मंत्री घंटानाद तथा पार्श्वमौलि युद्धभूमिमें उतरे । अपनी विकराल बाणवर्षासे वे यादवोंकी उद्धृत सेनाका संहार करने लगे ॥ १८ ॥ स्वर्णपुंख तथा तीक्ष्ण मुखवाले और मनके समान द्रुतगामी बाणोंसे दसों दिशाओंसे प्रकाश करते हुए वे दोनों कुबेरके मंत्री यादवोंकी सेनाको ध्वस्त करने लगे ॥ १९ ॥ उसी समय महावीर अर्जुनने मंत्रियोंके बाणके समान ही बाण चलाये । वे दोनों बाण परस्पर टकरा गये और जनसे चिनगारियाँ उड़ने लगीं ॥ २० ॥ हे राजन् ! वे चिनगारियाँ जुगुप्सुके समान चमकने लगीं । उन बिजली जैसे चमकीले बाणोंसे अर्जुनने कुबेरके मंत्रियोंके बाणसमूहको काट दिया ॥ २१ ॥ उसके बाद उन बिजली जैसे चमकीले बाणोंसे अर्जुनने कुबेरके मंत्रियोंके बाणसमूहको काट दिया ॥ २२ ॥ अर्जुनने अपनी बाणवर्षासे उन दोनोंको बाणोंके पींजड़ेमें कैद कर दिया । ऐसी स्थितिमें उन्हें मृत समझकर हाहाकार करते हुए सभी यक्ष शीघ्र रणभूमिसे भाग खड़े हुए । उसी समय रणांगणमें भूतोंके करोड़ों झुंड वहाँ आ धमके ॥ २३ ॥ २४ ॥ करोड़ों डाकिनियाँ हाथियोंको इधर-उधर

यातुधानाश्चर्वयंतः शिरांसि रणमंडले । वेतालाश्च कपालेन पिवंतो रुधिरं बहु ॥२७॥
 विनायकाश्च नृत्यंतः प्रेता गायंत एव हि । कूष्माण्डाश्च तथोन्मादाः शिरांसि जगृहुर्मृधे ॥२८॥
 शिवस्य मुंडमालार्थं वीराणां स्वर्गगामिनाम् । तथा मातृगणा ब्रह्मराक्षसा भैरवा मृधे ॥२९॥
 शिरांसि कंदुकानीव क्षेपयंतो सुहृर्मुहुः । हसंतः प्रहसंतश्च साङ्गहासं सभाकुलाः ॥३०॥
 पिशाचा विकलास्याश्च कूर्दतः केऽपि कुत्सितम् । पिशाच्यः क्षतजं तूष्णं पाययंत्यः शिशून्मृधे ॥३१॥
 मारोदीरिति वादिन्यो नेत्राण्यपि ददात्र उत । इत्थं गणबलं दृष्ट्वा बलदेवानुजो बली ॥३२॥
 गदो गदां समादाय जगर्ज घनवद्बली । लक्षभारभृता मौर्व्या गदया तद्वलं महत् ॥३३॥
 पोथयामास हि गदो वज्रेणैव यथा गिरीन् । कूष्माण्डोन्मादवेतालाः पिशाचा ब्रह्मराक्षसाः ॥३४॥
 निपेतुर्मूर्छिता भूमौ तद्गदाभिन्नमस्तकाः । डाकिनीभिन्नदंताश्च प्रथमा भिन्नकंधराः ॥३५॥
 यातुधानांश्छिन्नमुखान्श्चकार समरे गदः । गदया मर्दिताः प्रेता दुद्रुवुस्ते दिशो दश ॥३६॥
 वाराहदंष्ट्राया भग्ना लये दैत्या यथा नृप । पलायिते भूतगणे वीरभद्रः समागतः ॥३७॥
 गदं तताड गदया बलदेवानुजं बली । गदोपरि गदां नीत्वा गदः स्वांग्राहिणोद्गदाम् ॥३८॥
 तयोर्युद्धमभूद्भोरं गदाभ्यां मैथिलेश्वर । विस्फुल्लिगान् क्षरंत्यो द्वे गदे चूर्णावभूवतुः ॥३९॥
 मल्लयुद्धं तयोरासीन्नोदयंतं परस्परम् । भुजैश्च जानुभिः पादैः पातयंतो गिरीन् बहून् ॥४०॥
 करवीरं समुत्पाटय वीरभद्रो गिरिं बलात् । अङ्गहासं तदा कुर्वन् गदोपरि समाक्षिपत् ॥४१॥
 गदो गिरिं संगृहीत्वा तस्योपरि समाक्षिपत् । गृहीत्वाऽथ गदं वीरं वीरभद्रो बलाद्बली ॥४२॥
 चिक्षेप चौजसा राजन्नाकाशे लक्षयोजनम् । गदोऽपि पतितो भूमौ किञ्चिद्ब्रथाकुलमानसः ॥४३॥

फैंकती हुई मनुष्यों, घोड़ों, हाथियों और रथोंको चवाती हुई विचरने लगी ॥ २५ ॥ एक-एक मनुष्यके पीछे एक-एक तथा दसके पीछे दस-दस डाकिनियां लगकर खट्वांगोंसे मनुष्योंका वध करने लगीं ॥ २६ ॥ बहुतेरी राक्षसियां रणभूमिमें मृतकोंका सिर चवाने लगीं । वेताल मनुष्योंकी खोपड़ियोंमें रक्त भर-भरके पीने लगे ॥२७॥ उस समय रणभूमिमें विनायक नाचते थे, प्रेत गा रहे थे, उन्माद तथा कूष्माण्ड शिवजीकी मालाके लिए मृतकोंके मुण्डोंका संग्रह कर रहे थे । मातृगण, ब्रह्मराक्षस और भैरव बारम्बार मृतकोंके सिर गेंदकी तरह उछालते और अट्टहास करते, हुए खिलखिलाकर हँसने लगते थे ॥ २८-३० ॥ भयंकर आकृतिके पिशाच बेतरह उछल-कूद कर रहे थे और पिशाचिनियां अपने-अपने बच्चोंको गरम-गरम रक्त पिला रही थीं ॥ ३१ ॥ 'रोओ मत बेटे ! मैं तुमको और नेत्र दूंगी ।' ऐसा कहती हुई पिशाचिनियां उन बच्चोंको रुधिर पिला रही थीं । इस प्रकार गणोंका बल देखकर बलदेवका छोटा भाई गद गदा लेकर भीषण गर्जन करने और अपनी लाख भारकी गदासे शत्रुसेनाको मारने लगा । उस समय गद शिवगणोंको इस तरह मार रहा था, जैसे इन्द्र पर्वतोंको मारते थे । कूष्माण्ड, उन्माद, वेताल, पिशाच और ब्रह्मराक्षस गदकी गदासे मस्तक फट जानेके कारण घरावायी हो गये । जिनके दाँत टूट गये थे, वे डाकिनियां तथा जिनके कन्धे भिन्न हो गये थे, वे प्रमथ मूर्छित हो-होकर धरतीपर गिर गये ॥ ३२-३५ ॥ उस समरमें गदने राक्षसोंके मुँह तोड़ दिये । गदकी गदासे मर्दित प्रेत दसों दिशाओंमें वैसे ही भाग गये ॥ ३६ ॥ जैसे प्रलयकालमें वराह भगवान्के दाँतसे लहू-लुहान होकर दैत्य भागे थे । इस तरह भूतोंके भाग जानेपर वीरभद्र रणभूमिमें आये ॥ ३७ ॥ उन्होंने बलदेवके लघु भ्राता गदको एक गदा मारी । तत्काल गदने उस गदाकी मारको अपनी गदापर झेल लिया और वृमाकर अपनी गदाका प्रहार वीरभद्रपर कर दिया ॥ ३८ ॥ हे मिथिलेश ! तब उन दोनोंमें घोर गदायुद्ध हुआ । दोनों गदायें परस्परकी टक्करसे चिनगारियां उगलती हुई चूर-चूर हो गयीं ॥ ३९ ॥ अब गद और वीरभद्र-में परस्पर ललकारते हुए मल्लयुद्ध होने लगा । वे दोनों अपनी भुजाओं और पैरोंसे पर्वतोंको गिराते हुए लड़ने लगे ॥ ४० ॥ तभी वीरभद्रने करवीर पर्वतको उठाकर गदके ऊपर फेंका और बहुत जोरसे ठठाकर हँसा ॥ ४१ ॥ किन्तु गदने उसको बीचमें पकड़कर वीरभद्रके ही ऊपर फेंक दिया । तब वीरभद्रने गदको पकड़कर

गृहीत्वा वीरभद्राख्यं भ्रामयित्वा महाबलः । ओजसा प्राक्षिपच्छीघ्रमाकाशे लक्षयोजनम् ॥४४॥
 वीरभद्रस्तु पतितः कैलासशिखरोपरि । गदाप्रहारव्यथितो मूर्छितो घटिकाद्वयम् ॥४५॥
 कार्तिकेयस्तदा प्राप्तः शक्तिमुद्यम्य वेगवान् । अनिरुद्धाय सांवाय शक्तिं चिक्षेप सत्वरम् ॥४६॥
 अनिरुद्धरथं भित्त्वा सावं सांवरथं पुनः । गजान् रथान्सहस्रं च वीरलक्षं मृधांगणे ॥४७॥
 भित्त्वा नदंती स्फूर्जती चपलेव दिशो दश । विवेश भूमौ फूत्कारं कुर्वती पन्नगीव सा ॥४८॥
 तदा क्रुद्धो महाबाहुः सांघो जाम्बवतीसुतः । कृत्वाऽथ सिंजिनीघोषं निपंगाद्वाणमाददे ॥४९॥
 एकोऽपि सद्बहिस्तूणादृशरूपी बभूव ह । चापे शतं कर्षणे च सहस्रं रूपमादधे ॥५०॥
 मोक्षणे लक्षरूपाणि कोटिरूपाणि कोटिषु । अनेकरूपी विशिखः शिखिनं शिखिवाहनम् ॥५१॥
 भित्त्वा बिभेद वीराणां कोटिशः कोटिशो रणे । कार्तिकेये च भिन्नांगे किञ्चिद्व्याकुलमानसे ॥

गणेश्वरस्तदा प्राप्तो मूषकस्थो गजाननः ॥५२॥

गोमूत्रपत्रमृगनामिविचित्रकुंभं श्रीकुंकुमाकलितसुंदरवक्रतुंडम् ।
 सिंदूरपूरितकपोलमनोहराभं कर्पूरधूलिधवलीकृतकर्णवर्णम् ॥५३॥
 व्यालोलकर्णहतमत्तमधुव्रतैस्तैः श्रीगंडजातमदिरामदविह्वलांगैः ।
 संगीततालकुसुमाकरगीतरागैः संसेवितं गणपतिं कृतभालचंद्रम् ॥५४॥
 बालार्कवर्णममलांगदहेमहारग्रैवेयमौलिकिरणैः परितः स्फुरंतम् ।
 आसुस्थमेकदशनं गजभव्यमूर्तिं पाशांकुशांबुजकुठारचयं दधानम् ॥५५॥
 प्राशुं चतुर्भुजमतीव मृधे प्रवृत्तं काञ्चित्प्रगृह्य च करेण धृतांकुशेन ।
 समर्दयंतमुरुधारपरश्वधेन श्रीभार्गवेन्द्रमिव शस्त्रभृतः समस्तान् ॥५६॥

पुरी ताकतसे आकाशमें लाख योजन ऊँचे फेंक दिया । आकाशसे लौटकर धरतीपर गिरा तो गद कुछ व्याकुल हो गया था ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ अबसर पाकर गदने भी वीरभद्रको उठाकर लाख योजन ऊपर आकाशमें फेंक दिया ॥ ४४ ॥ आकाशसे लौटकर वीरभद्र कैलास पर्वतपर गिरा । गदाका प्रहार उसपर पहले ही बहुत हो चुका था । अतएव वह दो घड़ीके लिए मूर्छित हो गया ॥ ४५ ॥ उसी समय अपनी शक्ति लिये हुए कार्तिकेय रणभूमिमें आ गये । आते ही उन्होंने अनिरुद्ध तथा साम्बपर आनी शक्तिसे प्रहार किया ॥ ४६ ॥ उससे उन्होंने अनिरुद्धके रथको चूर करके साम्ब तथा साम्बके रथको ध्वस्त कर दिया । साथ ही हजार हाथी, हजार रथ और एक लाख सैनिकोंको भेद और छेदकर विजलीकी भाँति चमकती, दसों दिशाओंमें प्रकाश फैलाती और सर्पिणीके समान फुफकारती हुई वह शक्ति धरतीमें समा गयी ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ तब अत्यन्त क्रुद्ध होकर जाम्बवतीतनय साम्बने अपने धनुषकी प्रत्यश्चाको टंकारते हुए तरकससे बाण निकाला ॥ ४९ ॥ उनके तरकससे निकलते ही वह अकेला बाण एकसे दस हो गया । जब वह धनुषपर चढ़ा तो दसका सौ हो गया । जब चढ़ाकर खींचा गया तो सौसे हजार हो गया ॥ ५० ॥ जब वह धनुषसे छूटा तो हजारका लाख बाण हो गया । लक्ष्यपर पहुँचकर लाखमें करोड़ बाण हो गया । उस अनेकरूपधारी बाणने कार्तिकेयके वाहन भोर तथा स्वयं स्वामिकार्तिकेयको छेदकर करोड़ों वीरोंको छेद डाला ॥ ५१ ॥ जब कार्तिकेयका शरीर छिद जानेके कारण मन व्याकुल हो गया तो गजानन गणेशजी ब्रह्मेपर चढ़कर युद्ध करने आये ॥ ५२ ॥ गोमूत्र, पत्र तथा कस्तूरीसे उनका मस्तक चित्रित था । उनका मुख केसरसे रंगा था । उनका कपोल सिन्दूरसे रंगा था । कर्पूरचूर्णसे उनके कान रंगे थे ॥ ५३ ॥ चंचल कानोंकी मारसे मतवाले भ्रमरों तथा कपोलोंकी मदिराके मदसे विह्वल अंगोंवाले, संगीत, ताल और वासन्ती रागसे सेवित एवं मस्तकपर चन्द्रमाको धारण किये हुए गणेशजी रणांगणमें दिखायी दिये ॥ ५४ ॥ उदयकालीन सूर्यके समान उनका रक्त वर्ण था । वे निर्मल स्वर्णहार, बाजूबंद, कंकण, किरिट और मुकुट धारण किये थे । वे चारों ओरसे देदीप्यमान, मूषकपर सवार,

वीरेभवाजिरथसंघवलं निपात्य सावं प्रगृह्य सरथं प्रधानात्क्षिपंतम् ।

तं वीक्ष्य विस्मितमनाः सगणोऽथ कार्णिणः पुत्रं सुबुद्धिमनिरुद्धमुवाचसम्यक् ॥५७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे श्रीनारदबहुलाध्वसंवादे यक्षयुद्धवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी यक्षदेश तथा कुबेरपर विजय)

प्रद्युम्न उवाच

श्रीकृष्णस्य कला साक्षाद्गणेशोऽयं महाबलः । जेतुं न शक्यो दिविजैर्मनुष्यैस्तु कुतो भुवि ॥ १ ॥

वर्तते यस्य निकटे तस्य नास्ति पराजयः । श्रीकृष्णेन वरो दत्तः पुराऽस्मै शंकरालये ॥ २ ॥

यद्ययं वर्तते चात्र तदा न स्याज्जयश्च नः । शत्रुपक्षगतोऽयं वै श्रीकृष्णस्य वरोजितः ॥ ३ ॥

तस्माच्च चंडमार्जारो भूत्वा तं युद्धतो बलात् । विद्रावय महाबुद्धे फूत्कारैश्च दिशो दश ॥ ४ ॥

यावद्बलं विजेष्यामि तावद्विद्रावय त्वरम् ।

श्रीनारद उवाच

अथानिरुद्धो भगवांश्चंडमार्जाररूपधृक् ॥ ५ ॥

अलक्षितो गणेशेन न ज्ञातो विष्णुमायया । फूत्कारमुत्कटं कुर्वन् संपदातास्तुसंमुखे ॥ ६ ॥

विदारयन्मुखं राजन्सततं नखरैः खरैः । विशेषेण सहैवास्तुर्दृष्ट्वाऽऽशु भयविह्वलः ॥ ७ ॥

दुद्राव त्वरितं राजन् कंषितो रणमंडलात् । तमन्वगच्छत्कुपितो मार्जारः स्थूलरूपधृक् ॥ ८ ॥

मूपकं स्वमपोवाह गणेशोऽपि मुहुर्मुहुः । नाययौ स्वं रणं चास्तुश्चंडमार्जारपीडितः ॥ ९ ॥

सप्तद्वेषान्सप्तसिंधून् दिशास्तु विदिशास्तु च । धावन् वै सप्तलोकेषु न लेभे शर्म मैथिल ॥ १० ॥

एकदन्तधारी गजकी आकृति, पाश, अंकुश, कमल और कुठारोंका समूह धारण किये थे ॥ ५५ ॥ उनका ऊँचा डोल-डोल था, चार भुजायें थीं और वे सब प्रकारसे युद्धमें प्रवृत्त थे । वे किसीको अपनी सूँड़में लपेटकर उसका मर्दन करते थे । किसीको परशुरामकी तरह फरसेसे काट रहे थे ॥ ५६ ॥ वीर सैनिकों, हाथियों, घोड़ों तथा रथों समेत सारी सेनाको घराशायाँ करके रथसहित साम्बको पकड़कर फेंकते हुए गणेशजीको देखकर यादव वीरों समेत प्रद्युम्न बड़े आश्चर्यमें पड़ गये । वैसी स्थितिमें भली भाँति विचार करके वे परम बुद्धिमान् अनिरुद्धसे बोले ॥ ५७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीयां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

प्रद्युम्न बोले—ये गणेशजी साक्षात् श्रीकृष्णकी कला हैं । ये महाबली हैं । इनको देवता भी नहीं जीत सकते, तब मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ॥ १ ॥ ये जिसके पास रहते हैं, उसकी पराजय नहीं होती । क्योंकि कैलास पर्वतपर शंकरजीके धाममें श्रीकृष्णने इनको ऐसा वरदान दिया था ॥ २ ॥ यदि ये यहाँ खड़े भी रहेंगे तो हमारी विजय नहीं होगी । क्योंकि इन्हें श्रीकृष्णका वर प्राप्त है और इस समय ये शत्रुपक्षकी ओर खड़े हैं ॥ ३ ॥ अतएव तुम एक प्रचंड विलावका रूप धारण करके इस महायुद्धमें लड़ते हुए गणेशजीके चूहेको भगा दो । अपनी फुफकारसे उसको बराबर भगाते रहो ॥ ४ ॥ जबतक मैं शत्रुसेनाको जीत न लूँ, तबतक तुम इनके मूपकको बराबर भगाते रहो । श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! प्रद्युम्नके कथनानुसार भगवान् अनिरुद्ध प्रचंड मार्जार (दिल्ली) का रूप धारण कर लिया ॥ ५ ॥ गणेशजीने उस विलावको देखा नहीं और विष्णुकी मायासे उसको जाना भी नहीं, किन्तु वह सहसा उनके मूषकके समक्ष जा पहुँचा ॥ ६ ॥ वह विलाव चूहेका मुख विदीर्ण करके अपने तीक्ष्ण नखोंसे उसे मारने लगा । उसको देखकर गणेशजीका मूषक विशिष्ट रीतिसे भयाकुल हो गया ॥ ७ ॥ तब हे राजन् ! कांपता हुआ वह रणांगणसे तुरन्त निकल भागा और उसके पीछे वह क्रुद्ध विलाव भी दौड़ा ॥ ८ ॥ यद्यपि गणेशजी मूषकको बार-बार रणमें प्रेरित करते रहे,

यत्र यत्र गतश्चाखुर्गणेशेन समन्वितः । तत्र तत्र गतो राजन् मार्जारश्चंडविक्रमः ॥११॥
 एवं समूषके याते गणेशे विदिशोत्तरम् । विस्मितेषु सपक्षेषु गणेषु प्रमथेषु च ॥१२॥
 पुष्पकस्थः कुबेरोऽसौ मायां चक्रेऽथ गौहकीम् । गृहीत्वा स्वधनुर्दिव्यं नमस्कृत्य महेश्वरम् ॥१३॥
 समंत्रं कवचं धृत्वा बाणसंधं समादधे । तदैव छादितं व्योम मेघैः सांवर्तकैरिव ॥१४॥
 तडित्स्वनैर्महाभीमैस्तमोऽभूत्स्तनयित्तुभिः । विंदवो हस्तिसदृशा निपेतुः सोपला मृधे । १५॥
 धाराभिरतिघोराभिर्ववृषुर्वारिदास्ततः । क्षणेन सिंघवः सर्वे प्लावयंतो धरातलम् ॥१६॥
 पर्वतैर्जीवसहितैर्दृश्यन्ते रणमंडले । प्राकृताः प्रलयं मत्वा यादवा भयविह्वलाः ॥१७॥
 त्यक्त्वा शस्त्राणि तेऽथोचुः श्रीकृष्णेति मुहुर्मुहुः । ज्ञात्वा तां गौहकीं मायां प्रद्युम्नो भगवान्हरिः १८॥
 सत्त्वात्मिकां च स्वां विद्यां सर्वमायोपमर्दिनीम् । जप्त्वा कृत्वा कामबीजं बाणमध्ये निधाय तत् ॥१९॥
 मुखे च प्रणवं धृत्वा पुंसे श्रीबीजमेव च । आकृष्य कर्णपर्यन्तं कृष्णं स्मृत्वा चतुर्भुजम् ॥२०॥
 चिक्षेप विशिखं चापादोर्दंडाभ्यां तडित्स्वनात् । कोदंडमुक्तो विशिखो द्योतयन्मंडलं दिशाम् ॥२१॥
 जघान गौहकीं मायामंधकारं यथा रविः । भयभीतो राजराजो पुष्पकस्थो रणांगणात् ॥२२॥
 पलायमानो यक्षैश्च कंपितः स्वपुरीं ययौ । प्रद्युम्नस्योपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ॥२३॥
 जहसुर्यादवाः सर्वे जयारावसमाकुलाः । तदाऽतिहर्षितो राजन् राजराजः कृतांजलिः ॥२४॥
 बलिं नीत्वा ययौ शीघ्रं प्रद्युम्नस्यापि संमुखे । गर्जेद्राणां द्विलक्षं च द्विशुंडादंडशालिनाम् ॥२५॥

किन्तु उस प्रचंड बिलावसे पीडित होनेके कारण वह रणभूमिमें लौटकर नहीं जाया ॥ १॥ वह मूषक सातों द्वीप, सातों समुद्र, सभी दिशाओं, विदिशाओं और सातों लोकोंमें भागता फिरा, किन्तु उसको कहीं भी चैन नहीं मिला ॥ १०॥ गणेशजीको अपनी पीठपर बैठाये हुए वह मूषक जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ वह प्रचंड बिलाव उसके पीछे लगा रहा ॥ ११॥ इस प्रकार जब गणेशजीका मूषक भाग गया और गणेशजीको भी अनेक दिशाओंका चक्कर खिलाया तो उनके सभी गण और अपने पक्षवाले प्रमथ बड़े आश्चर्यमें पड़ गये ॥ १२॥ तब अपने पुष्पक विमानपर बैठकर स्वयं कुबेर रणांगणमें आये और आते ही उन्होंने यक्षोंकी मायाका विस्तार किया । तदनुसार अपना धनुष लेकर उन्होंने शिवजीको नमस्कार करके मंत्रोच्चारणपूर्वक कवच पहन तथा मंत्र पढ़कर बाण छोड़ा । जिससे उसी समय प्रलयकालीन बादल छा गये और सारा आकाश उनसे भर गया ॥ १३॥ १४॥ बिजलीके भीषण गर्जनके साथ बड़े भयानक मेघोंके कारण घोर अन्धकार फैल गया । उसी समय हाथीकी सूँड़ जैसी मोटी जलधाराओंके साथ रणभूमिमें ओले बरसने लगे ॥ १५॥ उन बड़ी मोटी जलधाराओंसे घनघोर जल बरसने लगा । जिससे एक ही क्षणमें सातों समुद्र एकत्र होकर सारी पृथ्वीको डुबाने लगे ॥ १६॥ समस्त जीवोंके साथ पर्वतगण रणभूमिमें उपस्थित दिखायी देने लगे । साधारण लोगोंने तो प्रलयकालको सम्मुख देखा और सभी यादव भयसे विकल हो उठे ॥ १७॥ उन्होंने अपने सभी शस्त्रास्त्र त्याग दिये और बार-बार श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण कहने लगे । उसको यक्षोंकी माया समझकर भगवान् प्रद्युम्नने अपनी सत्त्वात्मिका तथा सब मायाओंको विनष्ट करनेवाली, कामबीज विद्याका जप करके उसे अपने बाणमें निहित किया ॥ १८॥ १९॥ बाणके मुखपर ॐ श्रीं लिखकर चतुर्भुज श्रीकृष्णका ध्यान करके उस बाणको कानतक खींचा ॥ २०॥ तब जिसमें बिजली जैसी ध्वनि थी, उस धनुषसे दोनों भुजाओंके सहारे वह बाण छोड़ा । धनुषसे छूटे उस बाणने सभी दिशाओंको प्रकाशित करते हुए यक्षोंकी माया वैसे ही नष्ट कर दी, जैसे सूर्य अन्धकारको नष्ट कर देते हैं । यह देखकर पुष्पक विमानमें बैठे कुबेर भयभीत होकर युद्धभूमिसं निकल भागे ॥ २१॥ २२॥ भयसे कांपते हुए कुबेर यक्षोंके साथ भागकर अपनी पुरीको चले गये । इधर प्रद्युम्नके ऊपर देवता पुष्प बरसाने लगे ॥ २३॥ इससे सब यादव प्रसन्न हो गये । वे हँसने और जयजयकार करने लगे । उसी समय अत्यन्त प्रसन्न कुबेर हाथ जोड़कर वहाँ आ उपस्थित हुए ॥ २४॥ वे भेंट लेकर शीघ्र प्रद्युम्नके पास गये । दो सूँड़वाले दो लाख हाथी, चार-चार दाँतावाले और सदा मद चूआनेवाले

दद्मि श्रुतुर्मिथुक्तानामद्रीन्स्पर्धयतां मदैः । दशलक्षं रथानां च मुक्तातोरणशालिनाम् ॥२६॥
 शताश्वयोजितानां च रौक्माणां सूर्यवर्चसाम् । दशार्बुदं तथा राजन्हयानां चंद्रवर्चसाम् ॥२७॥
 शिविकानां चतुर्लक्षं माणिक्यैरग्रवर्चसाम् । पंजरस्थायिनां राजञ्छादूलानां द्विलक्षकम् ॥२८॥
 चित्रकाणां मृगाणां च गवयानां तथैव च । मृगयासारमेयानां कोटिकोटिविदेहराट् ॥२९॥
 शुक्रानां सारिकाणां च कलकंठप्रवादिनाम् । हंसानां स्वर्णवर्णानामन्येषां चित्रपक्षिणाम् ॥३०॥
 पंजरस्थायिनां राजल्लक्षं लक्षं नृपेश्वर । विमानं विष्णुदत्ताख्यं मुक्तादामविलंबितम् ॥३१॥
 अष्टयोजनमुच्चांगं नवयोजनविस्तृतम् । लक्षकुम्भध्वजोपेतं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥३२॥
 कामगं स्वर्णशिखरं सहस्रादित्यसुप्रभम् । सहस्रं कुलवृक्षाणां कामधेनुशतं तथा ॥३३॥
 चिंतामणीनां च शतं शतं दिव्याश्मनां तथा । यत्स्पर्शेनापि लोहस्तु हेमत्वं याति मैथिल ॥३४॥
 छत्राणां चामराणां च हेमसिंहासनं शतम् । तथाहि दिव्यपद्मानां मालाकिंजल्किनीं शुभाम् ॥३५॥
 पीयूषस्य शतं द्रोणं फलानि विविधानि च । खचिद्रत्नसुवर्णानां भूषणानां तु बाससाम् ॥३६॥
 दिव्यानां कंवलानां च कोटिशः पात्रसंचयम् । अमोघानां च शस्त्राणां कोटिसौवर्णशालिनाम् ॥३७॥
 गजैर्नरैर्भारवाहैः प्रेरिता निधयो नव । दत्त्वा बलिं राजराजः प्रद्युम्नाय महात्मने ॥३८॥
 दक्षिणीकृत्य तं नत्वा प्राहेदं हर्षपूरितः

कुवेर उवाच

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ॥३९॥

अनादये सर्वविदे निर्गुणाय महात्मने । प्रधानपुरुषेशाय प्रत्यग्धाम्ने नमो नमः ॥४०॥
 स्वयंज्योतिःस्वरूपाय श्यामलांगाय ते नमः । नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ॥४१॥
 प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः । मदनाय च माराय कंदर्पाय नमो नमः ॥४२॥

पर्वताकार दो लाख हाथी तथा मोतियोंके बन्दनवारयुक्त दस लाख रथ उन्होंने दिये ॥ २५ ॥ २६ ॥
 जिनमें सौ-सौ घोड़े जुते थे, जो सुवर्णके बने थे और सूर्यके समान जिनका तेज था, ऐसे भी अनेक रथ
 दिये । चन्द्रमाके समान जिनका श्वेत वर्ण था, ऐसे दस अरब घोड़े दिये ॥ २७ ॥ कुवेरने चार लाख मणिजटित
 पालकियां दीं और पिंजड़ेमें बन्द दो लाख सिंह दिये ॥ २८ ॥ हे विदेहराज ! कुवेरने एक करोड़ चीते,
 एक करोड़ मृग, एक करोड़ नीलगाय और एक करोड़ शिकारी कुत्ते दिये ॥ २९ ॥ पिंजड़ेमें रहकर मनोहर बोल
 बोलनेवाले एक लाख तोते, एक लाख मैना, एक लाख सुवर्णवर्णके हंस तथा पिंजड़ेमें स्थित अनेक प्रकारके
 लाखों पक्षी दिये । तदनन्तर विष्णुभगवान्का दिया हुआ ऐसा विमान दिया, जिसमें मोतियोंकी झालर तथा
 चंदोवे लटकें हों ॥ ३० ॥ ३१ ॥ वह विमान आठयोजन ऊंचा, नौ योजन विस्तृत और एक लाख मृगहरे कलशोंसे
 युक्त था । वह विश्वकर्माका बनाया हुआ था ॥ ३२ ॥ उसमें सोनेके शिखर थे, हजार सूर्य जैसा उसका तेज
 था, वह आरोहीकी इच्छाके अनुसार चलता था, उसमें हजार प्रकारके वृक्ष थे और सौ कामधेनु गायें उसमें
 थीं ॥ ३३ ॥ उस विमानमें सौ चिन्तामणि और सौ ही ऐसे पारस पत्थर थे, जिनका स्पर्श होते ही लोहा सोना
 बन जाता था ॥ ३४ ॥ छत्र तथा चमर युक्त सौ मृगहरे सिंहासन और कभी न कुम्हलानेवाली दिव्य कमलोंकी
 किंजल्किनी माला भी उसमें थी ॥ ३५ ॥ उसके साथ कुवेरने अमृतके सौ घट भी दिये । एक करोड़ बड़ा
 सोनेके गहने तथा वस्त्र दिये ॥ ३६ ॥ करोड़ों सुन्दर कम्बल, करोड़ों पात्र, अमोघ शस्त्रास्त्र तथा एक करोड़
 मोहरोसे भरे थाल दिये ॥ ३७ ॥ बोझा ढोनेवाले मनुष्यों द्वारा हाथियोंपर लदवाकर कुवेरने महात्मा प्रद्युम्नको
 नवों निधियोंकी भेंट दी ॥ ३८ ॥ तदनन्तर कुवेरने प्रद्युम्नको प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया और अत्यनन्दित
 होकर कहा । कुवेर बोले—आप परम पुरुष भगवान् तथा महात्मा हैं । मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ३९ ॥
 आप अनादि हैं, सर्वज्ञ हैं, निर्गुण हैं और महात्मा हैं, आप प्रधान पुरुषके भी ईश्वर और प्रत्यग्धामा हैं, ऐसे
 आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४० ॥ आप स्वयं ज्योतिस्वरूप, श्याम वपुवाले वासुदेव तथा संकर्षण

दर्पकाय च कामाय पंचबाणाय ते नमः । अनङ्गाय नमस्तुभ्यं नमस्ते शम्बरारये ॥४३॥
 हे मन्मथ नमस्तुभ्यं नमस्ते मीनकेतन । मनोभवाय देवाय नमस्ते कुसुमेपवे ॥४४॥
 अनन्यज नमस्तेऽस्तु रतिभर्त्रे नमो नमः । नमस्ते पुष्पधनुषे मकरध्वज ते नमः ॥४५॥
 स्मराय प्रभवे नित्यं जगद्विजयकारिणे । नमो रुक्मवतीभर्त्रे सुन्दरीपतये नमः ॥४६॥

इदं करिष्यामि करोमि भूमन्ममेदमस्तीति तवेदमानुवन् ।

अहं सुखी दुःखयुतः सुहृज्जनो लोको ह्यहङ्कारविमोहितोऽखिलः ॥४७॥

प्रधानकालाशयदेहजैर्गुणैः कुर्वन् विकर्माणि जनो निबद्धयते ।

काचेऽर्भकं सैकत एव जीवनं गुणे च सर्पं प्रतनोति सोऽक्षिभिः ॥४८॥

कृतं मया हेलनमद्य मौढ्यतस्त्वन्मायया मोहितचेतसा प्रभो ।

न मन्यसे बालकृतं पितेव हि माभूत्युनर्मे मतिरीदृशी मनाक् ॥४९॥

सदा भवेच्चरणारविन्दयोर्मक्तिं परां यां च विदुर्गरीयसीम् ।

ज्ञानं च वैराग्ययुतं शिवास्पदं देहि प्रशस्तं निजसाधुसंगमम् ॥५०॥

श्रीनारद उवाच

प्रद्युम्नस्य शुभं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत् । संकटे तस्य सततं सहायः स्याद्भरिः स्वयम् ॥५१॥
 इत्युक्तवन्तं यक्षेशं प्रद्युम्नो भगवान्हरिः । तथाऽस्तूक्त्वा ददौ राजन्पद्मरागशिरोमणिम् ५२॥
 मामैष्टेत्यभयं दत्त्वा लीलाछत्रं सचामरम् । सिंहासनं मणिमयं प्रादाच्छ्रीयादवेश्वरः ॥५३॥
 कार्ष्णिं प्रदक्षिणीकृत्य राजराजो धनेश्वरः । जितं श्रुत्वा राजराजं प्रद्युम्नेन महात्मना ॥५४॥
 न केऽपि युयुधुस्तेन राजानश्च बलिं ददुः । अथ कार्ष्णिर्महाबाहुर्नादयन्दुन्दुभीन्बहून् ॥५५॥

हैं । मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ४१ ॥ आप ही प्रद्युम्न, अग्निरुद्ध और सात्वतोंके स्वामी हैं । आपको नमस्कार है । आप ही मदन, मार और कन्दर्प हैं, आपको नमस्कार है ॥ ४२ ॥ आप ही दर्पक, काम तथा पंचबाण हैं । आपको नमस्कार है । आप ही अनङ्ग और शम्बर दैत्यके शत्रु हैं, आपको नमस्कार है ॥ ४३ ॥ हे मन्मथ ! आपको नमस्कार है । आप ही मीनकेतन, मनोभव और कुसुमधर हैं । आपको नमस्कार है ॥ ४४ ॥ आप अनन्यज, रतिके पति और मकरध्वज हैं, आपको नमस्कार हैं ॥ ४५ ॥ आप स्मर हैं, नित्य जगत्को विजय करनेवाले हैं, रुक्मवतीके स्वामी हैं और सुन्दरीके भर्ता हैं । आपको नमस्कार है ॥ ४६ ॥ हे भूमन् ! मैं यह कल्ला, यह करता हूँ, यह मेरा है, यह तुम्हारा है, मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ और ये मेरे सुहृद् हैं, ऐसा कहनेवाले सब लोग अहङ्कारसे मोहित हैं ॥ ४७ ॥ माया, काल, प्रकृति, अन्तःकरण और देह, इनकेद्वारा उत्पन्न विषय, कर्म तथा इन्द्रियोंसे कुकर्म करता हुआ मनुष्य बंधता है । जैसे लोगोंको कांचपर बालक, बालुकामें जल और रस्सीमें सर्प दिखायी देता है ॥ ४८ ॥ हे प्रभो ! मूर्खतावश मैंने आपको बड़ी अवहेलना की है । क्योंकि मैं आपकी मायासे मोहित हो गया था । किन्तु जैसे पिता पुत्रके अपराधको क्षमा कर देता है, वैसे ही आप अपराध क्षमा कर देते हैं । भविष्यमें कभी मेरी ऐसी बुद्धि न हो ॥ ४९ ॥ आपके चरणकमलोंमें मेरी परा भक्ति बनी रहे, मुझे वैराग्ययुक्त तथा कल्याणकारी ज्ञान प्राप्त हो । इसके साथ ही आप मुझे उत्तम साधुसंग प्रदान करिए ॥ ५० ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! प्रद्युम्नके इस शुभ स्तोत्रको प्रातःकाल उठकर जो प्राणी पढ़ता है तो संकटकालमें स्वयं श्रीकृष्णभगवान् उसकी सहायता करते हैं ॥ ५१ ॥ ऐसा कहते हुए यक्षराज कुबेरको प्रद्युम्न भगवान्ने तथास्तु कहा । यह स्वीकारात्मक वचन कहकर प्रद्युम्नेने कुबेरको पद्मरागमणिकी एक शिरोमणि प्रदान की ॥ ५२ ॥ 'आप किसी प्रकारका भय न करें' ऐसा अभय देकर यादवेश्वर प्रद्युम्नने कुबेरको लीलाछत्र, चमर और मणिजटित सिंहासन दिया ॥ ५३ ॥ तदनन्तर राजराज कुबेर श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नकी परिक्रमा करके चले गये । महात्मा प्रद्युम्नसे कुबेरको पराजितं सुनकर फिर किसी राजाने उनसे युद्ध नहीं किया । सबने उन्हें भेंट दे दी । इसके बाद वे नगाड़े बजवाते हुए अपनी विशाल वाहिनीके साथ

समस्तवाहिनीयुक्तः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ । भौमासुरसुतो नीलो धर्षितस्तस्य तेजसा ॥५६॥
 सद्यस्तस्मै बलिं प्रादात्प्रद्युम्नाय महात्मने । प्राग्ज्योतिषपुरद्वारि द्विविदो नाम वानरः ॥५७॥
 पुरा प्रद्युम्नबाणेन ताडितो यो महाबलः । समुत्थाय रुषाविष्टो दशनैर्नखरैः खरैः ॥५८॥
 विदार्य वीरानश्वांश्च भ्रूंगैः प्रजगर्ज ह । लांगूलेन रथान्बद्ध्वा प्राक्षिपल्लवणांभसि ॥५९॥
 गृहीत्वा स गजान्दोभ्यां विचिक्षेपां वरे बलात् । शत्रुं ज्ञात्वा कपिं कार्ष्णिः प्रतिशार्ङ्गे शरं दधे ॥६०॥
 नीत्वा शरस्तं सहसा भ्रामयित्वा वरे बलात् । पूर्ववत्पातयामास किष्किंधायां महाकपिम् ॥६१॥
 पुनरागतवान्बाणः प्रद्युम्नस्थेषुधौ स्फुरन् ॥६२॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसन्वादे यक्षदेशविजयो नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥



अथ षड्विंशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी किंपुरुषखण्डपर विजय)

श्रीनारद उवाच

अथ कार्ष्णिः परान्देशान्दिव्यद्रुमलताकुलान् । सहस्रपत्रवद्भिश्च सरोभिः शोभितान् ययौ ॥ १ ॥
 अक्षौहिणीशतयुतः प्रद्युम्नश्चण्डविक्रमः । यक्षैर्दिष्टेन मार्गेण खंडं किंपुरुषं ययौ ॥ २ ॥
 रङ्गवल्लीपुरं यत्र हेमकूटगिरेरधः । तस्य किंपुरुषा ऊचुः शंवरारेश्च शृण्वतः ॥ ३ ॥

किंपुरुषा ऊचुः

अहोऽतिधन्या मथुरापुरी वरा बभूव यस्यां परमेश्वरो हरिः ।
 अहोऽतिधन्यं सततं यदोः कुलं जातो हि यस्मिन्नखिलांडपालकः ॥ ४ ॥
 धन्यं च तच्छूरसुतस्य मन्दिरं गोलोकनाथेन मनोहरं कृतम् ।
 धन्यं परं माथुरमंडलं सुरैः सुदुर्लभं यत्र चचार माधवः ॥ ५ ॥

प्राग्ज्योतिषपुर गये । वहाँ भौमासुरका पुत्र नील राज करता था । वह प्रद्युम्नके तेजसे प्रभावित हो गया ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ अतएव उसने शीघ्र उन्हें भेंट दे दी । प्राग्ज्योतिषपुरके द्वारपर महाबली द्विविदनामका वानर रहता था ॥ ५७ ॥ पूर्वकालमें प्रद्युम्नने अपने बाणसे उसे मारा था । इस समय वह क्रुद्ध होकर दांतों और तीखे नखोंसे यादववीरों तथा घोड़ोंको चीरने तथा अपनी पूँछमें लपेट-लपेटकर लवणसमुद्रमें फेंकने लगा । उसके साथ ही उसने घोर गर्जन किया ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ उसने अपने हाथोंसे हाथियोंको पकड़कर आकाशमें फेंक दिया । तब प्रद्युम्नने उस बन्दरको शत्रु जानकर शार्ङ्गके सदृश धनुषपर बाण चढ़ाया ॥ ६० ॥ उस बाणने द्विविद वानरकी उठाकर आकाशमें कई बार घुमाया और वेगके साथ किष्किन्धापर फेंक दिया ॥ ६१ ॥ इतना काम करके वह बाण फिर प्रद्युम्नके तरकसमें लौट आया ॥ ६२ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'-भाषाटीकायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! इसके बाद श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्न ऐसे दूसरे देशोंको गये, जहाँ दिव्य वृक्ष तथा लतायें थीं और सहस्रदल कमल फूले हुए थे ॥ १ ॥ सौ अक्षौहिणी सेना साथ लेकर प्रचण्ड पराक्रमी प्रद्युम्न यक्षोंके बताये मार्गसे किंपुरुष खंडकी ओर चले ॥ २ ॥ हेमकूट पर्वतकी तलेटीमें बसा रंगवल्लीपुर नामका एक नगर था । वहाँके किंपुरुष प्रद्युम्नके आगमनका समाचार सुनकर बोले ॥ ३ ॥ किंपुरुषोंने कहा—अहो ! मथुरापुरी अतिधन्य है, जहाँ परमेश्वर श्रीहरिका जन्म हुआ है । अहो ! यदुकुल भी अति धन्य है, जिसमें अखिल ब्रह्माण्डके पालक भगवान् कृष्ण जायमान हुए हैं ॥ ४ ॥ शूरसुत वसुदेवका महल भी धन्य है, जिसको गोलोकनाथ श्रीकृष्णने सुन्दर बनाया है । सर्वाधिक धन्य माथुर मण्डल है, जो देवताओंको भी दुर्लभ

महावनं धन्यतमं मनोहरं पितुर्गृहाद्यत्र गतो हरिः शिशुः ।
 चचार कृष्णः शिशुना बलेन हि यशोदया दुग्धमुखः सुलालितः ॥ ६ ॥
 वृन्दावनं पुण्यतमं परात्परश्रीकृष्णपादांबुजरेणुराजितम् ।
 गाः पालयन् यत्र चचार बालो गोपालबालैः सबलः स्वयं हरिः ॥ ७ ॥
 यो दानलीलां किल मानलीलां श्रीरासलीलां व्रजसुन्दरीभिः ।
 वृन्दावने यत्र चचार कृष्णो यस्यापि गायन्ति यशस्त्रिलोकाः ॥ ८ ॥
 अहोऽतिधन्या वृषभानुनन्दिनी लीलावती सा निजलोकशालिनी ।
 चचार कृष्णेन कलिंदनन्दिनीतटे मिलिन्दध्वनिसंकुले वने ॥ ९ ॥
 अहोऽतिधन्याऽस्ति कलिन्दनन्दिनी श्रीकृष्णवामांससमुद्भवा या ।
 तटे मिलिन्दध्वनिसंकुले वटे तत्स्पर्शनाद्याति नरः कृतार्थताम् ॥ १० ॥
 समुद्भवो यो हरिवक्षसो गिरिर्गोविर्दनो नाम गिरीन्द्रराजराट् ।
 विराजते स व्रजमण्डले परो यद्दर्शनाज्जन्म पुनर्न विद्यते ॥ ११ ॥
 अहोऽतिधन्या यदुमण्डलीभिर्विराजते भूमितले मनोहरा ।
 वैकुण्ठलीलाधिकृता कुशस्थली यथा तडिद्भिर्जलदावलिर्दिवि ॥ १२ ॥
 यत्रैव साक्षात्पुरुषः परेश्वरो धृत्वा चतुर्व्यूहमलं विराजते ।
 यस्तुप्रसेनाय ददौ नृपेशतां कृष्णाय तस्मै हरये नमो नमः ॥ १३ ॥
 प्रणोदितस्तेन नृपेण धीमता जगद्विजेतुं मकरध्वजो महान् ।
 कृत्वाऽथ तद्दर्शनमद्य दुर्लभं वयं कृतार्था हि भवेम सर्वतः ॥ १४ ॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं हरिर्नृपयशो विशदैश्वरित्रैरुद्यत्त्रिलोकममलं विशदीचकार ।
 पूर्णैर्दुरश्मिमिलितैस्तरलैः स्फुरद्भिः प्रोद्यद्भिरुद्भज इवामलसिंधुदुग्धम् ॥ १५ ॥

रहता है और जहाँ साक्षात् लक्ष्मीपति विचरते रहते हैं ॥१५॥ महावन भी अतीव धन्य और मनोहर है । जहाँ पिताके घरसे बालक श्रीकृष्ण बलदेवजीके साथ गये । वहाँ गोपबालकोंके साथ खेले और यशोदाने दूध पिलाकर उन्हें पाला ॥६॥ परम पुनीत वृन्दावन धन्यतम है । क्योंकि वह परात्पर परमेश्वर श्रीकृष्णके चरणारविन्दकी धूलिसे शोभायमान है और वहाँ गोपबालकों तथा बलदेवके साथ श्रीकृष्ण गोवें चराते हुए विचरे ॥ ७ ॥ और व्रजगोपियोंके साथ दानलीला, मानलीला तथा रासलीला की । जिनका यश तीनों लोक गाते हैं ॥ ८ ॥ अहो ! अतीव धन्य वृषभानुनन्दिनी एवं लीलावती राधा हैं, जो भगवान्‌के निजी लोक (गोलोक) की निवासिनी हैं । जिन्होंने श्रीकृष्णके साथ भ्रमरावलीकी ध्वनिसे संकुल वनमें कालिन्दीके तटपर विहार किया ॥ ९ ॥ अहो ! कालिन्दी (यमुना) भी बड़ी धन्य है, जो श्रीकृष्णके वामांगसे उत्पन्न हुई है । वहाँ ही भ्रमरोंकी ध्वनिसे मुखरित वंशीवट है, जिसके स्पर्शमात्रसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है ॥ १० ॥ जो भगवान्‌के वक्षस्थलसे उत्पन्न हुआ है, वह गोवर्धन पर्वत पर्वतोंके राजाओंका राजा भी है और व्रजमण्डलमें विराजमान है । जिसका दर्शन कर लेनेसे मनुष्यको फिर जन्म नहीं लेना पड़ता ॥ ११ ॥ अहो ! अतिशय धन्य द्वारकापुरी है । क्योंकि मनोहर वैकुण्ठलीलासे अधिकृत होकर वह भूतलमें यादवोंकी मण्डलीसे इस प्रकार शोभित होती है, जैसे आकाशमें बिजलीसे भेषवृन्द शोभित होता है ॥ १२ ॥ जहाँ साक्षात् परेश्वर पुरुष चतुर्व्यूह रूप धारण करके अतिशय शोभित होते हैं । जिन्होंने उग्रसेनको राजाओंका राजा बना दिया, उन श्रीकृष्ण भगवान्‌को हमारा नमस्कार है—नमस्कार है ॥ १३ ॥ उन्हीं बुद्धिमान् राजा उग्रसेनने समस्त जगत्‌को जीतनेके लिए मकरध्वजस्वरूप प्रद्युम्नको भेजा है, जिनका दुर्लभ दर्शन प्राप्त करके आज हम सब लोग सर्वथा कृतार्थ हो

इत्थं यशः स्वममलं नृप शंवरारिः श्रुत्वाऽतिहर्षिततनुः प्रददौ धनानि ।

केयूरहारनवरत्नमनोहराणि तेभ्यः किरीटमणिकुण्डलकंकणानि ॥१६॥

रङ्गवल्लीपुराधीशः सुबाहुश्चन्द्रवंशजः । नत्वा बलिं ददौ सोऽपि प्रद्युम्नाय महात्मने ॥१७॥

तस्मै प्रसन्नो भगवान् प्रद्युम्नो मीनकेतनः । दत्त्वा चूडामणिं दिव्यं पप्रच्छेदं महामनाः ॥१८॥

श्रीप्रद्युम्न उवाच

रङ्गवल्लीपुरस्यापि नाम केन प्रकाशितम् । एतद्ब्रूहि सुबाहो मे श्रुतं पूर्वं त्वया किल ॥१९॥

सुबाहुरुवाच

देवासुरैः पुरा राजन्मथितः क्षीरसागरः । विनिर्गतानि मथनाद्गतानि च चतुर्दश ॥२०॥

निःसृतं कलशं तस्मात्सुधापूर्णं मनोहरम् । तं ददर्श हरिः साक्षान्नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः ॥२१॥

तन्नेत्रहर्षबिन्दुश्च कलशे निपपात ह । तस्माद्बृक्षः समुद्भूतस्तुलसीति प्रकथ्यते ॥२२॥

रङ्गवल्लीति तन्नाम चकार मधुसूदनः । अत्र किंपुरुषे खण्डे हेमकूटगिरेरधः ॥२३॥

तस्याश्च रङ्गवल्याः कौ स्थापनां स चकार ह । रङ्गवल्लीमहावृक्षः सदाऽत्रैव विराजते ॥२४॥

तन्नाम्ना प्रसिद्धमभूद्रंगवल्लीपुरं त्विदम् । अत्र नित्यं हि हनुमानाष्टिषेणेन रागिणा ॥२५॥

दर्शनार्थं समायाति महात्मा रामपूजकः । इति श्रुत्वा शंवरारी रङ्गवल्लीं मनोहराम् ॥२६॥

श्रीनारद उवाच

दृष्ट्वा प्रदक्षिणीकृत्य देशानन्याञ्जगाम ह । हेमकूटतटीभूतं वनं प्राप्तं भयङ्करम् ॥२७॥

झिझीझंकारसंयुक्तं सिंहचित्रकनादितम् । वन्यैः करीद्रैः संयुक्तं शिवोलूकरुतावृतम् ॥२८॥

कीचकाश्वत्थमन्दारवटभूर्जसमाकुलम् । कृष्णाहरीतकीवल्लीबदरैः सघनं वनम् ॥२९॥

तस्माद्विनिर्गतः सर्पो दक्षयोजनलंबितः । अग्रसद्गजवृन्दानि फूत्कारं कारयन्मुहुः ॥३०॥

जार्ग्ये ॥१४॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! इस प्रकार प्रद्युम्न अपने यश तथा उज्ज्वल चरित्रोंसे उन्नत होते हुए स्वतः उज्ज्वल त्रिलोकोको और भी उज्ज्वल करने लगे, जैसे पूर्णिमाके पूर्ण चन्द्रकी किरणोंसे मिलकर उछती हुई प्रकाशमयी तरंगोंसे निर्मल समुद्रका दुग्ध जैसा जल और भी स्वेत हो जाता है ॥ १५ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार अपने निर्मल यशको सुनकर प्रसन्न शम्बरारि प्रद्युम्नने वहाँवालोंको पुष्कल धन तथा हार, बाजूबन्द, नवरत्न, मनोहर किरीट, मणिजटित कुण्डल और कंकण दिये ॥ १६ ॥ तदनन्तर रंगवल्लीपुरके नरेश चन्द्रवंशी सुबाहुने प्रद्युम्नको प्रणाम करके भेंट दी ॥ १७ ॥ उस राजापर प्रसन्न भगवान् प्रद्युम्नने दिव्य चूडामणि देकर यह बात पूछी । प्रद्युम्न बोले—हे राजा सुबाहु ! मुझे यह बताइए कि इस पुरका रंगवल्लीपुर नाम किसने प्रसिद्ध किया है ? इस विषयमें आपने किसीसे कुछ अवश्य सुना होगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ सुबाहुने कहा—हे राजन् ! पूर्वकालमें देवताओं और दैत्योंने मिलकर समुद्रका मंथन किया था । तब समुद्रसे चौदह रत्न निकले ॥ २० ॥ फिर उसमेंसे अमृतभरा एक मनोहर कलश निकला । तब पुष्करेक्षण विष्णु-भगवान्ने उसे देखा ॥ २१ ॥ सहसा उनके नेत्रसे एक बूँद हर्षका आँसू निकलकर उस कलशमें गिर पड़ा । उसी आँसूसे एक वृक्ष उत्पन्न हो गया, जिसे लोग तुलसी कहते हैं ॥ २२ ॥ भगवान् मधुसूदनने उसका नाम रंगवल्ली रख दिया । सो यहाँ किंपुरुष खण्डमें इस हेमकूट पर्वतके नीचे उस रंगवल्लीको उन्हीं महाप्रभुने भूमि-पर स्थापित कर दिया । रंगवल्ली बहुत बड़ा वृक्ष है । वह सदा यहीं रहता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ उसीके नामपर इस स्थानका रंगवल्लीपुर नाम पड़ा है । यहाँ सदा रामपूजक हनुमान्जी आष्टिषेण गन्धर्वके साथ आते हैं । श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! इस प्रकार शम्बरारि प्रद्युम्न रंगवल्लीपुरविषयक कथानक सुनकर उस वृक्षको देखने गये । उसका दर्शन-पूजन करके वे अन्य देशोंकी यात्रापर चल पड़े । कुछ दूर जानेपर हेमकूटकी तलैटीमें उन्होंने एक भीषण वन देखा । उसमें झिझियों (झींगुरों) का झंकार हो रहा था । सिंह-चीते गर्जन कर रहे थे । हाथी घूम रहे थे । गीदड़ तथा उल्लू रो रहे थे ॥ २५-२८ ॥ छेदवाले बाँस, पीपल, बकायन, बरगद, भोज-

हाहाकारे तदा जाते सेनायां मैथिलेश्वर । प्रचण्डगरलैर्वर्तैर्भस्मीभूते दिशांतरे ॥३१॥
 भानुः सुभानुः स्वर्भानुः प्रभानुर्भानुमांस्तथा । चंद्रभानुर्धृद्वानुरतिभानुस्तथाऽष्टमः ॥३२॥
 श्रीभानुः प्रतिभानुश्च सत्यभामात्मजा दश । एते जघ्नुः शरैस्तीक्ष्णैः सर्पं रौद्रं मदोत्कटम् ३३॥
 बाणैः संभिन्नसर्वांगः पतितो धरणीतले । सर्परूपं विहायाशु गंधर्वोऽभूत्स्फुरद्द्युतिः ॥३४॥
 नत्वा श्रीकृष्णपुत्रांस्तान् द्योतयन् मंडलं दिशाम् । पुष्पैर्वर्षत्सु देवेषु विमानेन दिवं ययौ ॥३५॥

बहुलाश्व उवाच

गंधर्वोऽयं तु कः पूर्वं केन पापेन सर्पताम् । प्राप्तः कथं वद मुने त्वं परावरवित्तमः ॥३६॥

श्रीनारद उवाच

आष्टिषेणस्य यो भ्राता सुमतिर्नाम सुन्दरः । रामायणं हनुमता पठितुं स समागतः ॥३७॥
 हेमकूटे हनुमतः कुर्वतो रामसेवनम् । प्रातःकालात्समारभ्य घटिकाश्च चतुर्दश ॥३८॥
 सलक्ष्मणं रामचंद्रं ध्यायतो जानकीपतिम् । फूत्कारैः सर्पवचस्य ध्यानभंगं चकार ह ॥३९॥
 तदा क्रुद्धो महावीरो हनुमान् वानरेश्वरः । शापं ददौ सुमतये त्वं सर्पो भव दुर्मते ॥४०॥
 तदैव तस्य चरणौ नत्वा ग्राह कृताञ्जलिः । हे देव पाहि पाहीति दीनं मां शरणं गतम् ॥४१॥
 अथ प्रसन्नो भगवान्सुमतिं ग्राह धर्मवित् । द्वापरांते शरैस्तीक्ष्णैर्हरिपुत्रधनुश्च्युतैः ॥

भिन्नदेहः स्वां प्रकृतिं यास्यसि त्वं न संशयः ॥४२॥

गंधर्वः सुमतिर्नाम विमुक्तोऽभूद्विदेहराट् । सतां शापोऽपि वरचद्वरो मोक्षार्थदः किमु ॥४३॥
 अथ कार्ष्णिर्महाबाहुश्चैत्रदेशान्मनोहरान् । वसन्तमाधवीश्वदैः शोभितान्स जगाम ह ॥४४॥

पत्र, छोटी हड़, बेर और मोथोंके आधिक्यसे वह वन और भी सघन हो गया था ॥ २९ ॥ सहसा उस वनमें दस योजन लम्बा एक सर्प निकला । वह बारम्बार फुफकारता हुआ हाथियोंको निगलने लगा ॥३०॥ हे मिथिलेश ! यह देखकर यादवी सेनामें हाहाकार मच गया और उस सर्पके प्रचण्ड विषभरे पवनसे सभी दिशाओं और दिशान्तर भस्म होने लगे ॥ ३१ ॥ तब भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान्, चन्द्रभानु, बृहद्भानु, अतिभानु, श्रीभानु और प्रतिभानु ये दसों सत्यभामाके पुत्र उस भयंकर सर्पको तीक्ष्ण बाणोंसे मारने लगे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उन बाणोंकी मारसे उस सर्पके अंग छिन्न-भिन्न हो गये और वह तत्काल सर्पदेह त्यागकर देदीप्यमान कलेवरका गन्धर्व हो गया ॥ ३४ ॥ उसने श्रीकृष्णके भानु-सुभानु आदि पुत्रोंको प्रणाम किया और दसों दिशाओंमें प्रकाश फैलाता हुआ दिव्य विमानमें बैठकर स्वर्गको चला गया । उस समय देवता उसके ऊपर फूल बरसा रहे थे ॥ ३५ ॥ यह कथा सुनकर राजा बहुलाश्व बोले—हे देवर्ष ! वह गन्धर्व पिछले जन्ममें कौन था ? आप तो भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालका हाल जानते हैं, सो कहिए ॥ ३६ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! आष्टिषेण गन्धर्वका एक भाई सुमति था । वह बहुत सुन्दर था । एक बार वह रामायण पढ़नेके लिए हनुमान्जीके पास गया ॥ ३७ ॥ हेमकूट पर्वतपर हनुमान्जी प्रातःकालसे दोपहरतक चौबह घड़ी श्रीरामजीकी सेवा किया करते थे ॥ ३८ ॥ उतने समयतक हनुमान्जी लक्ष्मण समेत सीतापति रामका ध्यान करते थे । उसी समय सुमति गन्धर्वने साँपकी तरह फुफकार करके उनका ध्यान भंग कर दिया ॥ ३९ ॥ इससे महावीर हनुमान्जी रूठ हो गये और सुमतिको शाप देते हुए कहा—अरे दुर्बुद्धे ! तू सर्प हो जा ॥ ४० ॥ शाप सुनकर सुमति हनुमान्जीके चरणोंपर गिर पड़ा और हाथ जोड़कर कहने लगा—हे देव ! मेरी रक्षा करिए—रक्षा करिए । मैं एक दीन हूँ और आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ४१ ॥ इससे प्रसन्न होकर हनुमान्जीने कहा—द्वापरके अन्तमें श्रीकृष्णके पुत्रोंके धनुषसे छूटे तीखे-तीखे बाणोंसे कटकर जब तुम्हारा शरीर गिर जायगा, तब तुमको पुनः गन्धर्वशरीर प्राप्त हो जायगा ॥४२॥ सो हे विदेहराज ! इस प्रकार सुमति गन्धर्व शापमुक्त हो गया । सन्तोंका शाप भी वरदानके समान ही होता है । तब फिर वह वर यदि मुक्तिदायक हो जाय तो क्या आश्चर्य है ॥४३॥ तदनन्तर कृष्णपुत्र प्रद्युम्न चैत्र देशको गये, जो

सहस्रदलपद्मानां षट्पदध्वनिशालिनाम् । पतन्ति रेणवो यत्र सरःस्वावीरचूर्णवत् ॥४५॥
 एलालवंगलतिकाः क्षुण्णाः सैन्यांग्रिभिः पथि । तेन भृङ्गावली रेजे करिकर्णग्रताडिता ॥४६॥
 यत्र वै पुरुषा राजन्नागायुतसमा बले । वलीपलितदौर्गन्ध्यस्वेदक्लमविवर्जिताः ॥४७॥
 त्रेतायुगसमः कालो वर्तते यत्र नित्यशः । आयुश्चायुतवर्षाणां दिव्यौषधिनदीगुणैः ॥४८॥
 पीयूषतुल्यं तोयं च हेमभूमिविराजते । मुक्ताविद्रुमवैडूर्यरत्नोत्पत्तिश्च यत्र वै ॥४९॥
 सुन्दर्यः प्रमदा रामा नित्ययौवनभूषिताः । स्फुरंत्युपवनेश्वारात्सौदामिन्यो घनेष्विव ॥५०॥
 यत्र वै नगरी रम्या वसंततिलका शुभा । शृंगारतिलको नाम राजा यत्र महाबलः ॥५१॥
 जैत्रान् वीरान् समाहूय गजमारुह्य दंशितः । योद्धुं विनिर्ययौ यश्च प्रद्युम्नस्यापि संमुखे ॥५२॥
 सांवः सुमित्रः पुरुजिच्छतजिच्च सहस्रजित् । विजयश्चित्रकेतुश्च वसुमान्द्रविडः क्रतुः ॥५३॥
 जांववत्याः सुता ह्येते चक्रुर्नाराचदुर्दिनम् । पलायितेषु चैतेषु बाणैर्भिन्नेषु मैथिल ॥५४॥
 बाणांधकारे संजाते महान्कोलाहलो ह्यभूत् । तदा शृंगारतिलको षजारूढो महाबलः ॥५५॥
 त्रिशूलेन तदा साम्बं वृदि विव्याध रोषतः । अन्यान्संपातयामास शरैः कोदंडनिर्गतैः ॥५६॥
 एकाकी विचरन् युद्धे वने वैश्वानरो यथा । तदा गदः समागत्य तद्रजं सुमदोत्कटम् ॥५७॥
 शूडादंडे संगृहीत्वा पातयामास भूतले । दूरे प्रपतितः शीघ्रं शृंगारतिलको नृपः ॥५८॥
 सद्यो भयातुरो भूत्वा युद्धे बद्धांजलिः स्वतः । तुरंगाणामर्बुदं च स्थानां लक्षमेव च ॥५९॥
 गजानामयुतं राजा प्रद्युम्नाय बलिं ददौ । इत्थं किंपुरुषं खंडं जित्वा कार्ष्णिर्महाबलः ॥६०॥
 निषादददर्शितैर्मार्गैर्हरिवर्षं ततो ययौ ॥६१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्सण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे किंपुरुषखंडविजयो नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

वसन्त ऋतु तथा माघवी लताओंसे सुशोभित था ॥४४॥ जिनपर भ्रमरोंका गुंजार होता रहता था, ऐसे सहस्र-
 दल कमलोंकी रज सरोवरोंमें अबीरके समान बरसती रहती थी ॥ ४५ ॥ वहाँ इलायची तथा लवंगकी
 लतायें यादवी सेनाके पैरोंसे रौंद गयीं और हाथियोंके कानोंसे ताडित भ्रमरोंकी पंक्ति सुशोभित होने लगी
 ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! वहाँके पुरुषोंमें दस हजार हाथियोंका बल रहता है, उनके बाल कभी सफेद नहीं होते,
 उनके शरीरमें न कभी झुरियां पड़ती हैं और न दुर्गन्ध आती है ॥ ४७ ॥ वहाँपर नित्य त्रेतायुग बना रहता
 है, दिव्य औषधियों तथा नदियोंके गुणसे वहाँके मनुष्योंकी आयु दस-दस हजार वर्षकी होती है ॥ ४८ ॥
 वहाँका जल अमृत तुल्य होता है, वहाँकी भूमि स्वर्णमयी है और मोती, मृगे और वैदूर्यमणिकी उत्पत्ति
 होती है ॥ ४९ ॥ वहाँकी स्त्रियां बहुत सुन्दरी होती हैं । उनका यौवन सदा बना रहता है । वे शृंगार करके
 उपवनोंमें वैसे ही घूमा करती हैं, जैसे बादलोंमें बिजली घूमती है ॥५०॥ वहाँ ही वसन्ततिलका नगरी है और
 उसमें महाबली राजा शृंगारतिलक निवास करता है ॥ ५१ ॥ वह विजयशील वीरोंको बुला कवच पहिन तथा
 हाथीपर चढ़कर प्रद्युम्नके समक्ष युद्ध करने आया ॥ ५२ ॥ वहाँपर साम्ब, सुमित्र, पुरुजित्, शतजित्,
 सहस्रजित्, विजय, चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविण तथा क्रतु, इन सभी जाम्बवतीके पुत्रोंने अपनी बाणवषसि दुर्दिन
 उपस्थित कर दिया । हे मिथिलेश ! इनके बाणोंकी मारसे धायल होकर शत्रुसेनाके सब सैनिक भाग खड़े
 हुए ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ जब बाणोंकी बौछारसे अँधेरा छा गया, तब बड़ा कोलाहल मचा । तभी हाथीपर सवार
 महाबली राजा शृंगारतिलकने बड़े क्रोधपूर्वक त्रिशूल लेकर साम्बकी छातीपर मारा । शेष जाम्बवतीके पुत्रों-
 को घनुषसे छूटे बाणोंसे मार-मारकर उसने धरतीपर गिरा दिया ॥५५॥५६॥ रणभूमिमें वह अकेला वीर इस
 प्रकार विचर रहा था, जैसे वनमें दवाग्नि विचरे । तभी सहसा गदने आकर उसके मतवाले हाथीकी सूँड़
 पकड़कर पटक दिया, जिससे राजा शृंगारतिलक दूर जा गिरा ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ तदनन्तर भयभीत भावसे
 हाथ जोड़कर वह प्रद्युम्नके समक्ष आकर खड़ा हो गया और दस करोड़ घोड़े, एक लाख रथ और दस

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी हरिवर्षखंड तथा दशार्णदेशपर विजय)

श्रीनारद उवाच

हरिवर्षं नाम खंडं सर्वसंपत्तिसंयुतम् । तस्य सीमागिरिः साक्षान्निषधो नाम मैथिल ॥ १ ॥
 वीरकोदंडटंकारघोषैर्व्याप्तवनांतरात् । उड्डीतास्तु महागृध्राः क्रोशमात्रवपुर्धराः ॥ २ ॥
 तीक्ष्णतुंडाः सगरुडाः सर्वे दीर्घायुषो नृप । अग्रसन्सैनिकान्नागान्दह्यांस्तेऽपि बुभुक्षिताः ॥ ३ ॥
 आकाशे पक्षिभिर्व्याप्ते जाते पक्षप्रभञ्जने । सेनायामंधकारेण हाहाकारो महानभूत् ॥ ४ ॥
 तदा कार्णिर्महाबाहुस्ताक्षर्यमखं समादधे । तद्वाणाभिर्गतः साक्षाद्वैनतेनयः खगेश्वरः ॥ ५ ॥
 सेनायामंधकारेण व्याप्तायां पतगेश्वरः । कांश्चित्तुंडप्रहारेण कांश्चित्पक्षैः स्फुरत्प्रभैः ॥ ६ ॥
 गृध्रान्कुलिगान्गरुडो पातयामास भूतले । भग्नदर्पाश्छिन्नपक्षा भक्षिताः पक्षिणश्च ते ॥ ७ ॥
 भयातुरा दुद्रुवुस्ते ताक्षर्येणापि दिशो दश । ततः कार्णिर्महाबाहुर्दशार्णान् विषयान् ययौ ॥ ८ ॥
 दशार्णदेशाधिपतिः शुभांगः सूर्यवंशजः । नागायुतसमो युद्धे निष्कौशांबीपुरी पतिः ॥ ९ ॥
 वेदव्यासमुखाच्छ्रुत्वा प्रद्युम्नं चंडपौरुषम् । दशार्णं तां नदीं दीर्घां समुत्तीर्य समाययौ ॥ १० ॥
 कृताञ्जलिः शुभांगोऽसौ किरीटेन नताननः । ददौ बलिं सुरत्नानां प्रद्युम्नाय महात्मने ॥ ११ ॥
 प्रद्युम्नो भगवान् साक्षात्सर्वगः सर्वदर्शनः । पप्रच्छेदं शुभांगं तं लोकसंग्रहकाम्यया ॥ १२ ॥

प्रद्युम्न उवाच

दशार्णोऽयं कथं देशः केन नाम्ना बभूव ह । एतन्मे ब्रूहि हे राजनिष्कौशांबीपुरीपते ॥ १३ ॥

शुभांग उवाच

हिरण्यकशिपुं हत्वा नृसिंहो भगवान्पुरा । प्रह्लादेन त्विहागत्य हरिवर्षे स्थितोऽभवत् ॥ १४ ॥

हजार हाथी प्रद्युम्नको भेंटमें दिये ॥ ५९ ॥ ६० ॥ बड़े ही बलवान् प्रद्युम्न इस प्रकार किंपुरुषखंड जीतकर निषादोंके बताये मार्गसे हरिवर्षखंड जीतने चले ॥ ६१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् । हरिवर्षखंड सभी सम्पदाओंसे सम्पन्न था और निषध पर्वत उसकी सीमापर था ॥ १ ॥ वहाँ वीरोंके धनुषटंकारसे उद्विग्न होकर वनोंसे कोस-कोस भरके लम्बे-चौड़े गृध्र निकलकर उड़ने लगे ॥ २ ॥ हे राजन् । उनकी चोंचें बड़ी तीखी थीं । वे गरुड़के समान दीर्घायु और बहुत दिनोंके भुखे थे । अतएव वे तत्काल यादवी सेनाके हाथियोंको निगलने लगे ॥ ३ ॥ इस प्रकार तनिक ही देरमें सारा आकाश उन गृध्रोंसे भर गया । उनके पंखोंके पवनसे उड़ी धूलके कारण चारों ओर अन्धकार छा गया । जिससे बड़ा कोलाहल मचा ॥ ४ ॥ तब महाबाहु प्रद्युम्नने गरुडाखको हाथमें लिया । उस बाणका प्रयोग करनेपर उसमेंसे गरुड़जी प्रकट हो गये ॥ ५ ॥ जब कि उन गृध्रोंके कारण सेनापर अन्धकार छा गया तो गरुड़ने कितने गृध्रोंको अपने चंचुप्रहारसे और बहुतांकी अपने देदीप्यमान पंखोंकी मारसे धराशायी कर दिया ॥ ६ ॥ इस प्रकार जितने भी गृध्र-कुलिगादि पंछी थे, उनको गरुड़ने धरतीपर गिरा दिया । तब दर्प चूर होने और पंख नष्ट हो जानेपर वे सभी पक्षी भयभीत होकर दसों दिशाओंमें भाग गये । तदनन्तर महाबाहु प्रद्युम्न दशार्ण देशकी ओर अग्रसर हुए ॥ ७ ॥ ८ ॥ सूर्यवंशमें उत्पन्न दशार्णदेशका नरेश शुभाङ्ग अपनेमें दस हजार हाथियोंका बल रखता था । वह निष्कौशाम्बी नगरीमें रहता था ॥ ९ ॥ वेदव्यासके मुखसे प्रद्युम्नके पराक्रमका हाल सुनकर शुभाङ्ग विशाल दशार्ण नदी पार करके आया ॥ १० ॥ उसने हाथ जोड़ और अपना किरीट झुकाकर अभिवादन करनेके बाद महात्मा प्रद्युम्नको रत्नोंकी भेंट दी ॥ ११ ॥ जिनकी सर्वत्र गति थी और जो सर्वद्रष्टा महात्मा थे, उन प्रद्युम्नने लोकसंग्रहकी भावनासे

प्रह्लादं भगवान्प्राह नृसिंहो भक्तवत्सलः ।

नृसिंह उवाच

शांतस्य तव भक्तस्य मया पुत्र पिता हतः । तस्मान्न घातयिष्यामि वंशं ते हि महामते ॥१५॥

शुभांग उवाच

इति प्रवदतोऽक्षिभ्यामानंदजलविदवः । पतिताः कौ च तै राजन् सरोऽभून्मंगलायनम् ॥१६॥

तदा प्राप्तवरो राजन् प्रह्लादो हर्षविह्वलः । नृसिंहं प्राह धर्मात्मा नत्वा भूत्वा कृतांजलिः ॥१७॥

प्रह्लाद उवाच

मातुः पितुर्मया सेवा न कृता सात्वतांपते । ऋणात्तयोः कथं मुच्ये वदैतत्परमेश्वर ॥१८॥

नृसिंह उवाच

मन्त्रेजलसंभृते तीर्थे वै मंगलायने । स्नानं कुरु महाभाग मुच्यसे दशभिर्ऋणैः ॥१९॥

मातुः पितुश्च भार्यायाः सुतानां गुरुदेवयोः । विप्राणां च प्रपन्नानामृषीणां पितृणामृणम् ॥२०॥

यः स्नास्यति महातीर्थे सर्वहेलनतत्परः । ऋणैश्च दशभिः सोऽपि मुच्यते नात्र संशयः ॥२१॥

शुभांग उवाच

दशार्णमोचने तीर्थे स्नात्वा काया धवोऽनृणी । भूत्वाऽद्यापि समायाति स्नातुं तन्निषधाद्दिरेः ॥२२॥

दशार्णमोचने तीर्थे दशार्णो देश उच्यते । तत्स्रोतःसु समुद्भूता दशार्णेयं नदी स्मृता ॥२३॥

श्रीनारद उवाच

तच्छ्रुत्वा भगवान्कार्णिकः सर्वैः परिचरैः सह । दशार्णमोचने तीर्थे दानं स्नानं चकार ह ॥२४॥

दशार्णमोचनस्यापि कथां यः शृणुयाच्चप । ऋणैश्च दशभिः सोऽपि मुच्यते मुक्तिभागभवेत् ॥२५॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीविश्वजित्संढे नारदबहुलाश्वसंवादे दशार्णदेशविजयो नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

राजा शुभाङ्गसे पूछा ॥ १२ ॥ प्रद्युम्न बोले—हे निष्कौशाम्बीके स्वामी ! इस देशका दशार्ण नाम कैसे पड़ा ? किसके नामपर इसकी प्रसिद्धि हुई ? यह सब आप मुझे बताइए ॥ १३ ॥ राजा शुभाङ्ग बोले—प्राचीन कालमें हिरण्यकशिपुको मारनेके बाद नृसिंहभगवान् प्रह्लादको लेकर हरिवर्षखंडमें आ गये और यहीं रहने लगे । तब भक्तवत्सल नृसिंहभगवान् प्रह्लादसे बोले ॥ १४ ॥ नृसिंहने कहा—हे पुत्र ! तुम मेरे शान्त भक्त हो । तुम्हारे पिताको मैंने ही मारा है । अतएव हे महामते ! भविष्यमें मैं तुम्हारे किसी वंशजको नहीं मारूँगा ॥ १५ ॥ राजा शुभांग बोले—हे प्रभो ! ऐसा कहते हुए भगवान् नृसिंहकी आँखोंसे कुछ आनन्दके आँसुओंकी बूँदें चू पड़ीं । उन्हीं बूँदोंसे धरतीपर एक मंगलायन सरोवर उत्पन्न हो गया ॥ १६ ॥ बादमें जब प्रह्लादको वरदान मिल गया, तब वे प्रसन्न हो और हाथ जोड़ तथा प्रणाम करके बोले ॥ १७ ॥ प्रह्लादने कहा—हे भक्तोंके भगवान् ! मैंने माता-पिताकी कुछ भी सेवा नहीं की । तब हे परमेश्वर ! मैं उनके ऋणसे कैसे छूटूँगा, सो बताइए ॥ १८ ॥ नृसिंहभगवान् बोले—हे वत्स ! तुम मेरे नेत्रजलसे उत्पन्न इस मंगलायन तीर्थमें स्नान करो तो हे महाभाग ! तुम इन दस ऋणोंसे छूट जाओगे—॥ १९ ॥ मातृऋण, पितृऋण, स्त्रीऋण, पुत्रऋण, गुरुऋण, देवऋण, विप्रऋण, ऋषिऋण, प्रपन्न (शरणागत) ऋण और पितरऋण, इन दसों ऋणोंसे मुक्त हो जाओगे । जिसने उपर्युक्त लोगोंकी अवज्ञा की हो, वह भी मंगलायन तीर्थमें स्नान करनेसे अवश्य ऋणमुक्त हो जाता है ॥ २० ॥ २१ ॥ राजा शुभांग बोले—दशार्णमोचन तीर्थमें स्नान करके प्रह्लाद ऋणमुक्त हो गये । तथापि वे अब भी निषधपर्वतसे इस तीर्थमें स्नान करने आते हैं ॥ २२ ॥ इस दशार्ण तीर्थके कारण ही इस देशका दशार्ण नाम पड़ गया । उस तीर्थके स्रोतोंसे यह नदी निकली है, अतएव इसका दशार्ण नाम है ॥ २३ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! यह आख्यान सुनकर अपने परिजनोंके साथ प्रद्युम्नने दशार्ण मोचन तीर्थमें स्नान-दान किया ॥ २४ ॥ इस दशार्णमोचन तीर्थकी कथा सुननेवाला भी दस ऋणोंसे

अथ अष्टाविंशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी उत्तरकुरुखंडपर विजय)

श्रीनारद उवाच

अथ कार्ष्णिर्महाबाहुः सुमेरोरुत्तरान्कुरुन् । ययौ शृंगवतः पार्श्वे विचित्रानृद्धिसंवृतान् ॥ १ ॥
 भद्रां गंगां ततः स्नात्वा वाराहीं नगरीं ययौ । कुरुखंडाधिपस्तस्यां चक्रवर्ती गुणाकरः ॥ २ ॥
 महासंभृतसंभारो देवर्षिगणसंवृतः । अश्वमेधं समारेमे दशमं स गुणाकरः ॥ ३ ॥
 तेनोत्सृष्टं हयं श्वेतं श्यामकर्णं मनोहरम् । तस्य पुत्रो वीरधन्वा रक्षितुं निर्गतोऽभवत् ॥ ४ ॥
 अक्षौहिणीभिर्दशभिर्मंडितश्चंडविक्रमः । विचचार महावीरो वीक्ष्यमाणस्तुरंगमम् ॥ ५ ॥
 वीरश्चंद्रश्च सेनश्च चित्रगुर्वेगवानृपः । आमः शंकुर्वसुः श्रीमान्कुंतो नाग्नजितेः सुताः ॥ ६ ॥
 सर्वतस्तं हयं शुभ्रं गृहीत्वा हर्षपूरिताः । कस्योत्सृष्टं वदंतस्ते कार्ष्णिसेन्यं समाययुः ॥ ७ ॥
 प्रद्युम्नस्तद्भालपत्रं पठित्वा विस्मितोऽभवत् । सर्वे विसिस्मुर्यदवो गृहीतपरमायुधाः ॥ ८ ॥
 तदैव सेना संग्राप्ता विचिन्वन्ती हयं नृप । दृष्ट्वा रजो यदुबलाद्दूरे तस्थौ सुविस्मिता ॥ ९ ॥

गुणाकरे राजनि चंडविक्रमे न दस्यवः स्युः कुरुखंडमंडले ।

गवां न कालो न हि चक्रवातकः कुतो रजः प्राप्तमहोर्ज्जमंडलम् ॥ १० ॥

एवं वदन्ती परवाहिनी स्वतः कोदंडघोषं दरदस्वनं परम् ।

करींद्रचीत्कारतुरंगहेषणं वादित्रमिश्रं समुपाशृणोत्ततः ॥ ११ ॥

तदोद्धवः कृष्णसुतप्रणोदितो बलं समेत्याशु स वीरधन्वनः ।

प्रणम्य तं ग्राह रथस्थितं नृपं गुणाकरस्यौरसमर्कतेजसम् ॥ १२ ॥

उग्रसेनः क्षितीशेन्द्रो द्वारकेशो यदूत्तमः । जंबूद्वीपनृपाञ्जित्वा राजद्वयं करिष्यति ॥ १३ ॥

छूटकर मुक्तिका अधिकारी बन जाता है ॥ २५ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा' भाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! वहाँसे चलकर प्रद्युम्न सुमेरु पर्वतके उत्तरी भागमें स्थित उत्तर-कुरु प्रदेशमें गये, जो शृंगवान् पर्वतके पास था और विचित्र सम्पदाओंसे भरपूर था ॥ १ ॥ वहाँ भद्रा गंगा नदीमें स्नान करके वाराही नगरीको गये, जहाँ कुरुखंडका चक्रवर्ती राजा गुणाकर रहता था ॥ २ ॥ उसने प्रचुर सामग्री जुटाकर बहुतेरे देवर्षियोंके साथ दसवाँ अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया था ॥ ३ ॥ उसने श्यामकर्ण घोड़ा छोड़ा और उसकी रक्षाके लिए उसका पुत्र वीरधन्वा चला ॥ ४ ॥ प्रचंड पराक्रमी वह महावीर दस अक्षौहिणी सेना लेकर चला और घोड़ेको देखता हुआ पृथ्वीपर विचरने लगा ॥ ५ ॥ तभी वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्रगुह, वेगवान्, आम, शंकु, वसु, श्रीमान् और कुन्त, नाग्नजित्की इन दस पुत्रोंने उस शुभ्र घोड़ेको सब ओरसे घेरकर पकड़ लिया और 'यह घोड़ा किसने छोड़ा है' यह कहते हुए उसे लेकर अपनी सेनामें चले आये ॥ ६ ॥ ७ ॥ वहाँ घोड़ेके मस्तकपर बँधा पत्र पढ़कर प्रद्युम्न तथा अन्यान्य लोग आश्चर्यमें पड़ गये और अपने शस्त्रास्त्र सम्हालने लगे ॥ ८ ॥ हे राजन् ! उसी समय घोड़ेको खोजती हुई वीरधन्वाकी सेना आ गयी, किन्तु यादव-सैनिकोंको हलचलसे उठती हुई धूलको देखकर विस्मित वह सेना दूर ही रुक गयी ॥ ९ ॥ प्रचंड पराक्रमी राजा गुणाकरके राज्यमें चोर नहीं हैं। गौओंके चरागाहसे लौटनेका भी समय नहीं है। बवंडर भी नहीं चल रहा है। तब सूर्यमण्डलको ढाँक लेनेवाली यह धूल कहाँसे आयी ? ॥ १० ॥ दूसरी सेनाके लोग ऐसा कह ही रहे थे कि क्षत्रियोंमें घनुषका टंकार, शंखनाद, हाथियोंका चिंघाड़, घोड़ोंकी हिनहिनाहट और विभिन्न वाद्योंके शब्द सुनायी देने लगे ॥ ११ ॥ तब प्रद्युम्नके द्वारा भेजे हुए उद्धव वीरधन्वाकी सेनामें गये और वहाँ रथमें बैठे सूर्यके सदृश तेजस्वी राजा गुणाकरके पुत्र वीरधन्वाको प्रणाम करके बोले—॥ १२ ॥ हे राजन् ! राजाओंके राजा

तेन प्रणोदितो वीरः प्रद्युम्नो धन्विनां वरः । जित्वा तं भारतं खंडं तथा किंपुरुषं नृपः ॥१४॥
हरिवर्षं ततो जित्वा कुरुखंडं समागतः । प्रदास्यति बलिं सोऽपि प्रद्युम्नाय महात्मने ॥१५॥
अशौहिणीदशयुतो धनदेनापि पूजितः । उपायनं त्वया देयं प्रद्युम्नाय महात्मने ॥१६॥
तेन नीतं यज्ञपशुमाहर्तुं कः क्षमः क्षितौ । श्रीकृष्णचन्द्रो भगवान्सहायस्तस्य विद्यते ॥१७॥
शुभं स्यादानमानाभ्यां न चेद्युद्धं भविष्यति ।

वीरधन्वोवाच

गुणाकरो नृपेशो यः शक्रेणापि प्रपूजितः ॥१८॥

न दास्यति बलिं सोऽपि प्रद्युम्नाय महात्मने । शृंगवत्पर्वते रम्ये वाराहो विद्यते हरिः ॥१९॥
यस्य सेवां सदा भूमिः करोति परमादरात् । तस्य क्षेत्रे तपस्तेपे ध्यात्वा देवं गुणाकरः ॥२०॥
वर्षाणामयुते पूर्णे हरिर्वाराहरूपधृक् । संतुष्टो नृपतिं भक्तं वरं ब्रूहीत्युवाच ह ॥२१॥
राजोवाच हरिं नत्वा रोमांची प्रेमविह्वलः । भगवंस्त्वामृते देवोऽसुरोऽन्योऽपि नरोऽथवा ॥२२॥
मां जेता न भवेद्भूमावीप्सितोऽयं वरो मम । तथाऽस्तु चोक्त्वा भगवांस्तत्रैवांतरधीयत ॥२३॥
तस्मात्तस्य यज्ञः शीघ्रं कर्तव्यं मोचनं स्वतः । न चेद्भवद्भिश्च कलिं करिष्यामि न संशयः ॥२४॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त उद्धवस्तस्मात्स्वां सेनामेत्य भूपते । शशंस सर्वं यद्भूतं यदूनां सदसि त्वरम् ॥२५॥
श्रुतकर्मा वृषो वीरः सुबाहुर्भद्र एकलः । शान्तिर्दर्शः पूर्णमासः सोमको वर एव च ॥२६॥
कालिन्दीनंदना ह्येते प्रद्युम्नस्य प्रपश्यतः । अशौहिणीभिर्दशभिर्वृता योद्धुं समागताः ॥२७॥
उत्तरैः कुरुभिः सार्द्धं यदूनां चण्डविक्रमैः । बभूव तुमुलं युद्धमब्धीनामब्धिभिर्यथा ॥२८॥
स्फुरद्भिर्निशितैः शस्त्रै रेजिरे वीरपुङ्गवाः । क्षणमात्रेण रुधिरप्रभवा रौद्ररूपिणी ॥२९॥

उपसेन द्वारका नगरीके स्वामी और सभी यादवोंमें श्रेष्ठ हैं । वे जम्बूद्वीपके सब राजाओंको जीतकर राजसूय यज्ञ करेंगे ॥ १३ ॥ उनके भेजे हुए सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर प्रद्युम्न भरतखंड, किंपुरुषखंड तथा हरिवर्षखंडको जीतकर कुरुखंडमें आये हुए हैं । सो कुरुखंडके राजा भी उनको भेंट देंगे ॥ १४ ॥ १५ ॥ क्योंकि प्रद्युम्नके साथ दस अशौहिणी सेना है और स्वयं कुबेरने उनका सत्कार किया है । अतएव महात्मा प्रद्युम्नको आपको भी भेंट देनी चाहिए ॥ १६ ॥ प्रद्युम्न जिस घोड़ेको लाये हैं, उसको पकड़नेकी शक्ति किसमें है ? क्योंकि उनके सहायक स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं ॥ १७ ॥ उनका दान-मान करनेसे आपका कल्याण होगा । यदि आप उनका सत्कार न करेंगे तो युद्ध होगा । तब वीरधन्वा बोला—राजा गुणाकरकी तो इन्द्र भी पूजा करते हैं ॥ १८ ॥ अतएव वे प्रद्युम्नको भेंट नहीं देंगे । पास ही शृंगवान् पर्वतपर वाराहभगवान् विराजते हैं ॥ १९ ॥ यह धरती सदा उनकी सेवा करती है । उसी क्षेत्रमें महाराज गुणाकरने भगवान्का ध्यान करके तप किया था ॥ २० ॥ जब तप करते-करते दस हजार वर्ष बीत गये, तब वाराहका रूप धारण करके भगवान् उनके समक्ष प्रकट हुए और बहुत प्रसन्न होकर उन्होंने राजा गुणाकरसे वर मांगनेके लिए कहा ॥ २१ ॥ तब रोमांचित तथा प्रेमसे विह्वल होकर राजा गुणाकरने कहा—हे भगवन् । आपके सिवाय दूसरा कोई मनुष्य हो या देवता, वह भूमंडलपर मुझे न जीत सके । यही मेरा इच्छित वर है । तब 'तथाऽस्तु' कहकर वाराहभगवान् अन्तर्धान हो गये ॥ २२ ॥ २३ ॥ अतएव मेरे राजा गुणाकरके घोड़ेको आप शीघ्र छोड़ दें । यदि न छोड़ेंगे तो मैं युद्ध करूँगा ॥ २४ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् । यह सुनकर उद्धव अपनी सेनामें लौट आये और यादवोंकी सेनामें सबके समक्ष सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २५ ॥ सो सुनकर श्रुतकर्मा, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, एकल, शान्ति, दर्श, पूर्णमास और लघुसेवक, ये कालिन्दीके दस पुत्र दस अशौहिणी सेना लेकर युद्धके लिए अग्रसर हुए ॥ २६ ॥ २७ ॥ तब प्रचण्ड पराक्रमी उत्तरकुरुवासियों तथा यादवोंमें भयानक युद्ध हुआ । उस समय ऐसा लगा कि जैसे सातों समुद्र लड़ रहे हों ॥ २८ ॥ देदीप्यमान तथा तीखे शस्त्रोंके युद्धसे उन वीरोंकी असाधारण

नदी बभूव राजेन्द्र शतयोजनविस्तृता । विदुद्रुवुस्तदा शेषा उत्तराः कुरवो जनाः ॥३०॥
 शरत्काले यथा प्राप्ते मेघसंधा इतस्ततः । पूर्णमासो महावीरः कालिंदीनन्दनो बली ॥३१॥
 चूर्णयामास बाणौघैः स्यन्दनं वीरधन्वनः । वीरधन्वाऽपि विरथो धनुष्टङ्कारयन्मुहुः ॥३२॥
 जघान बाणविशत्या पूर्णमासं महाबलम् । पूर्णमासः स्वबाणेन मध्यतस्तान्द्रिधाऽकरोत् ॥३३॥
 वीरधन्वाऽथ चिच्छेद धनुर्ज्यां तस्य नादिनीम् । बाणेनैकेन राजेन्द्र कुवाक्येनेव मित्रताम् ॥३४॥
 लक्षभारमयीं गुर्वीं गदामादाय सत्वरम् । जघान वीरधन्वानं पूर्णमासो महाबलः ॥३५॥
 गदाप्रहारव्यथितो वीरधन्वा मदोत्कटः । परिधेण जघानाशु पूर्णमासं हरेः सुतम् ॥३६॥
 पूर्णमासः समुत्थाय पवनं नाम पर्वतम् । समुत्पाद्य स्थितो भूत्वा हस्ताभ्यां श्रीहरेः सुतः ३७॥

आमयित्वाऽथ चिक्षेप वाराह्यां पुरि वेगतः ॥३८॥

वीरधन्वा प्रपतितो गुणाकरक्रतुस्थले । मूर्च्छितो भगवेगोऽभूदुद्रमन् रुधिरं मुखात् ॥३९॥
 हाहाकारो महानासीद्वाराह्यां पुरि दुःखतः । देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभयस्तदा ॥४०॥
 पूर्णमासोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे । यज्ञादुत्थाय नृपतिः पुत्रं दृष्ट्वा च मूर्च्छितम् ॥४१॥
 गृहीत्वा दिव्यकोदण्डं युद्धं कर्तुं मनो दधे । होता धर्मविदां श्रेष्ठो मुनीन्द्रः सर्ववित्कविः ॥

गंतुमभ्युत्थितं वीक्ष्य वामदेवस्तमब्रवीत् ॥४२॥

वामदेव उवाच

राजस्त्वं हि न जानासि परिपूर्णतमं हरिम् । सुराणां महदर्थाय जातं यदुकुले स्वयम् ॥

शुभो भारवताराय भक्तानां रक्षणाय च ॥४३॥

भूत्वा यदुकुले साक्षाद्द्वारकायां विराजते । तेन कृष्णेन पुत्रोऽयं प्रद्युम्नो यादवेश्वरः ॥

उग्रसेनमस्वार्थाय जगज्जेतुं प्रणोदितः ॥४४॥

शोभा हुई । क्षणभरके ही युद्धमें बड़ी भीषण तथा सौ योजन विस्तृत रुधिरकी नदी बह चली । यह देखकर सभी उत्तर कुरुवाले भाग गये ॥२९॥३०॥ जैसे शरद ऋतु आनेपर मेघ भाग जाते हैं, वैसे ही वे लोग भी इधर-उधर भाग गये । उसी समय कालिन्दीके पुत्र महाबलवान् पूर्णमासने अगणित बाण बरसाकर वीरधन्वाका रथ चूर्ण कर दिया । किन्तु रथहीन होते हुए भी वीरधन्वाने बारम्बार धनुषट्कार करके पूर्णमासको बीस बाण मारे, किन्तु बाणोंके आनेके पहले ही पूर्णमासने उन बाणोंके दो-दो टुकड़े कर दिये ॥ ३१-३३ ॥ तब वीरधन्वाने पूर्णमासकी गर्जन करनेवाली प्रत्यंचा काट दी, जैसे कुवाक्यसे मित्रता कट जाती है ॥ ३४ ॥ तब महाबली पूर्णमासने लाख भारकी भारी गदा लेकर वीरधन्वाको मारी ॥ ३५ ॥ किन्तु गदाकी मारसे व्यथित होते हुए भी मदमत्त वीरधन्वाने परम बलवान् पूर्णमासको परिधसे मारा ॥ ३६ ॥ तत्काल पूर्णमास पवन नामके पर्वतको हाथोंसे उखाड़कर खड़ा हो गया ॥ ३७ ॥ बादमें उसे वेगसे घुमाकर वाराही पुरीपर फेंक दिया । उस पर्वतके साथ ही वीरधन्वा भी उड़कर राजा गुणाकरके यज्ञमंडपमें जा गिरा । उसका वेग नष्ट हो गया था । वह गिरते ही मुखसे रुधिरका वमन करता हुआ मूर्च्छित हो गया ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ इस घटनासे वाराही पुरीमें हाहाकार मच गया । किन्तु यादवी सेनामें मनुष्यों तथा देवताओंके नगाड़े बजने लगे ॥ ४० ॥ श्रीकृष्णके पुत्र पूर्णमासपर देवता पुष्प बरसावे लगे । उधर राजा गुणाकरने जब पुत्रको मूर्च्छित देखा तो यज्ञमण्डपसे उठ और धनुष लेकर स्वयं रणभूमिमें जानेका विचार किया । तभी होता, धर्मके तत्त्वज्ञोंमें श्रेष्ठ, मुनीन्द्र, सर्वज्ञ और विद्वान् महर्षि वामदेव राजाको जानेके लिए उद्यत देखकर बोले ॥४१॥ ॥४२॥ वामदेवने कहा—हे राजन् ! आप यह नहीं जानते कि परिपूर्णतम परमेश्वर श्रीकृष्ण देवताओंका बहुत बड़ा अभिप्राय पूर्ण करनेके लिए यदुकुलमें जायमान हुए हैं । उनका मुख्य उद्देश्य है पृथिवीका भार उतारना और भक्तोंकी रक्षा करना ॥ ४३ ॥ यदुकुलमें जन्म लेकर वे द्वारकामें रहते हैं । उन्हीं श्रीकृष्णने अपने पुत्र प्रद्युम्नको यादवेश्वर उग्रसेनका राजसूय यज्ञ सम्पन्न करने और जगत्को जीतनेके लिए भेजा

गुणाकर उवाच

परिपूर्णतमस्यापि श्रीकृष्णस्य महात्मनः । लक्षणं वद मे ब्रह्मंस्त्वं परावरचित्तमः ॥४५॥

वामदेव उवाच

यस्मिन्सर्वाणि तेजांसि विलीयन्ते स्वतेजसि । तं वदन्ति परं साक्षात्परिपूर्णतमं हरिम् ॥४६॥

अंशंशोऽंशस्तथावेशः कलापूर्णः प्रकथ्यते ।

व्यासाद्यैश्च स्मृतः षष्ठः परिपूर्णतमः स्वयम् ॥४७॥

परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो नान्य एव हि । एककार्यार्थमागत्य कोटिकार्यं चकार ह ॥४८॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा कृष्णस्य माहात्म्यं बलिं नीत्वा गुणाकरः ।

वरं विसृज्य प्रद्युम्नदर्शनार्थं समाययौ ॥४९॥

कार्णिं प्रदक्षिणीकृत्य नत्वा दत्त्वा बलिं ततः । अश्रुपूर्णमुखो भूत्वा ग्राह गद्गदया गिरा ॥५०॥

गुणाकर उवाच

अद्य मे सफलं जन्म कुलं मेऽद्य दिने शुभम् । अद्य क्रतुक्रियाः सर्वाः सफलास्तव दर्शनात् ॥५१॥

त्वदंग्निभक्तिः परमार्थलक्षणा सदा भवेत्सज्जनसंगमात्परा ।

त्वमेव साक्षान्निजभक्तवत्सलः परेश भूमन् परिपाहि पाहि ॥५२॥

प्रद्युम्न उवाच

ज्ञानवैराग्यसंयुक्ता भक्तिस्ते प्रेमलक्षणा ।

मद्भक्त संगमो भूयाच्छ्रीः स्याद्भागवतां त्विह ॥५३॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा भगवान् कार्णिः प्रसन्नो भक्तवत्सलः । ददौ तस्मै नृपतये हयमेधतुरंगमम् ॥५४॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे उत्तरकुलखंडविजयो नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

हे ॥ ४४ ॥ तब राजा गुणाकरने कहा । गुणाकर बोले—हे भगवन् । परिपूर्णतम परमेश्वर महात्मा श्रीकृष्णका लक्षण मुझको बताइए । क्योंकि आप भूत-भविष्यके ज्ञाता हैं ॥ ४५ ॥ महर्षि वामदेव बोले—हे राजन् । जिसके तेजमें सभी तेज समा जायें, उसे परिपूर्णतम ईश्वर कहते हैं ॥ ४६ ॥ कुछ अवतार अंश, कुछ अंशांश, कुछ आवेश, कुछ अवतार कला, कुछ पूर्णावतार और छठे प्रकारका अवतार साक्षात् परिपूर्णतम ईश्वरका होता है । यह व्यास आदि मुनियोंने कहा है ॥ ४७ ॥ अतएव परिपूर्णतम तो साक्षात् श्रीकृष्ण ही हैं—अन्य कोई अवतार नहीं है । उन्होंने एक कामके लिए यहाँ आकर करोड़ों कार्य किये ॥ ४८ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् । इस प्रकार श्रीकृष्णकी महिमा सुनकर राजा गुणाकर वैराग्य और भेंट लेकर प्रद्युम्नका दर्शन करने आये ॥ ४९ ॥ समझ पहुँचे तो उन्होंने प्रद्युम्नकी परिक्रमा की और प्रणाम करके भेंट दी । फिर आँसुओंसे मुख भरकर गद्गद वाणीमें बोले । गुणाकरने कहा—हे प्रभो ! आज मेरा जन्म सफल हुआ और मेरा कुल पवित्र हो गया । आपके दर्शनमे मेरा यज्ञ और मेरी समस्त क्रियायें सफल हो गयीं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ आपके भक्तोंके सत्संगसे मुझे सदाके लिए आपकी परमार्थलक्षणा भक्ति प्राप्त हो जाय । हे परेश ! आप नित्य भक्तवत्सल हैं । सो हे भगवन् ! आप मेरी रक्षा करिए—रक्षा करिए ॥ ५२ ॥ प्रद्युम्न बोले—हे राजन् ! ज्ञान-वैराग्य युक्त प्रेमलक्षणा भक्ति तुम्हें प्राप्त होगी । मेरे भक्तोंका संग भी तुम्हें सुलभ होगा और भगवद्भक्तोंमें तुम्हें प्रमुखता प्राप्त होगी ॥ ५३ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! ऐसा कहकर श्रीकृष्णतनय भक्तवत्सल प्रद्युम्नने प्रसन्न मनसे राजा गुणाकरको उनका अश्वमेधीय अश्व लौटा दिया ॥ ५४ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी हिरण्मयखंडपर विजय)

श्रीनारद उवाच

प्रद्युम्नोऽथ महाबाहुर्जित्वाऽऽरादुत्तरान्कुरुन् । हिरण्मयं नाम खंडं जेतुं कार्ष्णिर्जगाम ह ॥ १ ॥
 यत्र सीमागिरिर्दीर्घः स्रोतो नामस्फुरद्द्युतिः । तत्र कूर्मो हरिः साक्षादर्यमा यस्य देशिकः ॥ २ ॥
 पुष्पमालानदीतीरे नाम्ना चित्रवनं महत् । सपुष्पफलभाराढ्यं कन्दमूलनिधिः स्वतः ॥ ३ ॥
 वानराः संति तत्रापि वंशजा नलनीलयोः । न्यस्ताः श्रीरामचन्द्रेण त्रेतायां मैथिलेश्वर ॥ ४ ॥
 सैन्यघोषं च तं श्रुत्वा युद्धकामा विनिर्गताः । प्रद्युम्नसैन्ये चोत्पेतुर्ग्रभंगैः क्रोधमूर्च्छिताः ॥ ५ ॥
 नखैर्दतैश्च लांगूलैर्गजानश्चान्नराक्षप । लांगूलैश्च रथान्बध्वा चिक्षिपुश्चांबरं बलात् ॥ ६ ॥
 विजयध्वजनाथस्य विजयश्चार्जुनस्य च । रथं बद्ध्वाऽथ लांगूले केचिदुत्पेतुरंबरं ॥ ७ ॥
 कपिध्वजध्वजे साक्षात्कर्पोद्रो भगवान्प्रभुः । क्रोधाढ्यः फाल्गुनसखः समग्रं सर्वतो दिशम् ॥ ८ ॥
 लांगूलेन च तान्बद्ध्वा पातयामास भूतले । तदा प्रहर्षिताः सर्वे ज्ञात्वा श्रीरामकिंकराः ॥ ९ ॥
 नेमुस्तं सर्वतो राजन् कृताञ्जलिपुटाः शनैः । केचिदालिंगनं चक्रुः केचिदुत्पेतुरोजसा ॥ १० ॥
 केचिच्चुचुर्बुर्लांगूलं केचित्पादं च वानराः । तानालिङ्ग्य महावीराः स्पृष्ट्वा सत्पाणिना पुनः ॥ ११ ॥
 दत्त्वाऽऽशिषं तत्कुशलं पप्रच्छार्थाञ्जनीसुतः । नत्वा तं वानराः सर्वे जग्मुश्चित्रवनं नृप ॥ १२ ॥
 हनुमानर्जुनस्यापि ध्वजे ह्यंतरधीयत । मकराख्यात्ततो देशात्प्रद्युम्नो मीनकेतनः ॥ १३ ॥
 ययौ वृष्णिवरैः सार्द्धं दुन्दुभीन् वादयन्मुहुः । मकरस्य गिरेः पार्श्वे दुन्दुभिध्वनिमिस्ततः ॥ १४ ॥
 मधुभक्ष्या मधुकराः कोटिशः प्रोत्थिताः किल । तैर्दशितं बलं सर्वं हस्तिचीत्कारसंयुतम् ॥ १५ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! इस प्रकार महाबाहु प्रद्युम्न उत्तरकुखंडपर विजय प्राप्त करके हिरण्मयखंड जीतनेके लिए आगे बढ़े ॥ १ ॥ हिरण्मयखंडमें स्रोत नामका एक सीमापर्वत है । वह बड़ा ही दीप्तिमान् पर्वत है । वहाँ साक्षात् भगवान् कूर्मरूपसे विराजते हैं । अर्यमा नामके पितर उनके पुजारी हैं ॥ २ ॥ पुष्पमाला नदीके तटपर एक बड़ा-सा चित्रवन है । वहाँ फूलों और फलोंका आधिक्य है और कन्द-मूलोंका तो खजाना ही है ॥ ३ ॥ वहाँ नल-नीलके वंशज बहुतेरे वानर रहते हैं । हे मिथिलेश ! त्रेतायुगमें रामचन्द्रजीने उनको वहीं रख दिया था ॥ ४ ॥ वे वानर यादवी सेनाका घोष सुनकर युद्धके लिये बाहर निकल आये और अपनी भीहूँ टेढ़ी करके क्रोध प्रदर्शित करते हुए प्रद्युम्नकी सेनापर दूट पड़े ॥ ५ ॥ हे राजन् ! वे नखों, दांतों और पूँछोंसे घोड़े, हाथी तथा मनुष्योंपर प्रहार करने लगे और अपनी पूँछोंसे रथोंको बाँध-बाँधकर आकाशमें फेंकने लगे ॥ ६ ॥ विजयध्वजके नाथ अर्जुनका रथ ले और पूँछमें लपेटकर कुछ वानर आकाशमें उड़ गये ॥ ७ ॥ अर्जुनकी ध्वजामें तो साक्षात् हनुमान्जी विराजमान थे । वे सर्वसमर्थ थे । उन वानरोंकी दुष्टतासे हनुमान्जी खीझ गये । सो सब दिशाओंके वानरोंको अपनी पूँछमें लपेटकर उन्होंने पृथिवीपर पटक दिया । जब उन्होंने रामके किंकर हनुमान्जीको पहचान लिया, तब सब एकत्र हो और अपने-अपने हाथ जोड़कर हनुमान्जीको प्रणाम करने लगे । कुछ वानर उनसे गले मिले और मारे खुशीके उछलने लगे ॥ ८-१० ॥ उनमेंसे कोई वानर उनकी पूँछ चूमने लगा और कोई पैर चूमने लगा । उनमेंसे कुछ महावीर वानर उनकी छातीसे लगा तथा हाथ पकड़कर कुशल पूछने लगे ॥ ११ ॥ तब हनुमान्जीने उन्हें आशीर्वाद देकर उनका कुशल-स्नेह पूछा । बादमें हनुमान्जीको प्रणाम करके वे सभी वानर चित्रवनको चले गये ॥ १२ ॥ उनके जाते ही हनुमान्जी अर्जुनकी ध्वजामें अन्तर्धान हो गये । तदनन्तर उस मकर देशसे मकरध्वज प्रद्युम्न प्रमुख यादवोंको अपने साथ लेकर बारम्बार नगाड़े बजवाते हुए मकरपर्वतके पार्श्वभागमें जा पहुँचे । वहाँ नगाड़ोंकी ध्वनि सुनी तो मधु खानेवाले करोड़ों भ्रमर

तदा कार्ष्णिर्महाबाहुः पवनाखं समादधे । तद्वातताडिता राजन्गतास्तेऽपि दिशो दश ॥१६॥
 तत्र देशे जना राजन् सर्वे वै मकराननाः । ततस्तु डिडिमो देशस्तत्र हस्तिमुखा जनाः ॥१७॥
 एवं देशास्ततः पर्यस्त्रिशृङ्गविषयान्गतः । कार्ष्णिर्ददर्श तत्रापि मनुष्या शृङ्गधारिणः ॥१८॥
 त्रिशृङ्गस्य गिरेः पार्श्वे नगरीं स्वर्णचर्चिकाम् । हेमसौधमयीं दिव्यां रत्नप्राकारमंडिताम् ॥१९॥
 हिरण्यवर्णैः पुरुषैः स्त्रीजनैश्च तडिद्भुभिः । नागैश्च नागकन्याभिः पुरीं भोगवतीमिव ॥२०॥
 चन्द्रकांतानदीतीरे शोभितां मंगलालयाम् । कार्ष्णिः समाययौ राजन् यथा शक्रोऽमरावतीम् ॥२१॥
 तत्र राजा महावीरो नाम्ना देवसखो बली । स मनुमुखाद्वलं श्रुत्वा बलिं नीत्वा हिरण्यमयम् ॥२२॥
 प्रद्युम्नं पूजयामास भक्त्या परमया पुनः । तं पप्रच्छ महाबाहुः प्रद्युम्नो भगवान्हरिः ॥२३॥
 चन्द्रवत्ते कथं शोभा सर्वेषां च वदाशु मे ।

देवसख उवाच

अर्यम्णा पितृपतिना कूर्मरूपस्य मापतेः ॥२४॥

अंघ्रीप्रक्षालितौ तेन वारिणाऽभून्महानदी । धेतपर्वतशृङ्गाच्चावतरन्ती यदूत्तम ॥२५॥
 प्रमेधाख्यो मनुसुतो गोपालो गुरुणा कृतः । जघान कपिलां रात्रावसितां सिंहशंकया ॥२६॥
 वसिष्ठेन तदा शप्तः शूद्रत्वं समुपागतः । कुष्ठेन पीडिततनुः पर्यटंस्तीर्थमाचरन् ॥२७॥
 अस्यां नद्यां यदा स्नातो गलत्कुष्ठान्मनोः सुतः । मुक्तोऽभूच्चन्द्रवत्तस्य देहशोभा बभूव ह ॥२८॥
 चन्द्रकांता नदी चेयं प्रसिद्धाऽभूद्धिरण्यमे । तस्यां मुक्तो यतः स्नात्वा गलत्कुष्ठान्मनोः सुतः २९
 ततः स्नानं च कर्तारो वयं सर्वे नृपोत्तम । रूपेण चन्द्रतुल्याः कौ भवामोऽत्र न संशयः ॥३०॥

उत्तेजित हो उठे और उन्होंने सारी सेनाको खूब काटा । उनसे अस्त होकर हाथी चिघाड़ने लगे ॥ १३-१५ ॥ हे राजन् ! उस समय सर्वसमर्थ प्रद्युम्नने पवनाख का प्रयोग किया । तब वायुके झोंकोंसे ताडित भ्रमर दसों दिशाओंमें उड़ गये ॥ १६ ॥ हे राजन् ! उस देशके सब मनुष्य मगर जैसे मुखवाले थे । वहाँसे चलकर प्रद्युम्न डिडिम देशको गये । वहाँके सब मनुष्योंका मुख हाथीके मुख जैसा था ॥ १७ ॥ इस प्रकार अनेक देशोंकी देखते हुए वे त्रिशृङ्ग पर्वतके देशोंमें गये । वहाँ प्रद्युम्नने शृङ्गधारी मनुष्योंको देखा ॥ १८ ॥ त्रिशृङ्ग पर्वतके पास उन्होंने सुवर्णके महलों और रत्नोंके परकोटेसे शोभित स्वर्णचर्चिका नगरी देखी ॥ १९ ॥ वह नगरी चन्द्रकान्ता नदीके तटपर बसी थी और उसमें सब प्रकारके कल्याणोंका निवास था । प्रद्युम्न उस नगरीमें उसी प्रकार गये, जैसे इन्द्र अपनी अमरावती नगरीमें जाते हैं ॥ २० ॥ स्वर्णवर्णके पुरुषों और बिद्युद्बर्णकी महिलाओंसे वह नगरी वैसी ही लगती थी, जैसे नागों तथा नागकन्याओंसे भरी भोगवती पुरी लगती है ॥ २१ ॥ वहाँका महाबली राजा देवसखा था । मेरे (श्रीनारदके) मुखसे स्वर्णचर्चिका नगरीमें यादवी सेनाके आगमनकी बात सुनकर राजा देवसखा प्रद्युम्न स्वर्णमय भेंट लेकर प्रद्युम्नके समक्ष आया ॥ २२ ॥ उसने बड़ी भक्तिसे उनका पूजन किया । तदनन्तर प्रद्युम्नने राजा देवसखासे पूछा ॥ २३ ॥ हे राजन् ! आप सब लोगोंकी चन्द्रमाके समान शोभा क्यों है ? यह रहस्य आप मुझे शीघ्र बताइए । देवसखाने कहा—हे यदूत्तम । एक बार पितरोंके पति अर्यमाने कूर्मरूपधारी विष्णुभगवान्के दोनों पैर धोये । उसी जलसे एक महानदी उत्पन्न हो गयी । वह श्वेतपर्वतके शिखरसे उतरती है ॥ २४ ॥ २५ ॥ प्राचीन कालमें प्रमेधा नामका एक मनुपुत्र था । उसको उसके गुरुने गौओंकी रखवालीके कामपर लगा रखा था । एक रोज रातके समय गौओंके बाड़ेमें एक सिंह घुस आया । जिससे गौवें चिन्नाने लगीं । तब तलवार लेकर वह सिंहको मारने गया । सो रातके अंधेरेमें सिंह तो दीखा नहीं, बल्कि सिंहके धोखेमें उसने एक काली कपिला गौ मार डाली । तब गुरु वसिष्ठने शाप दे दिया । जिससे वह राजा शूद्र और कोढ़ी हो गया । तब वह विभिन्न तीर्थोंमें विचरने लगा ॥ २६ ॥ २७ ॥ इस नदीमें स्नान करनेसे वह मनुपुत्र शापसे मुक्त होकर चन्द्रमाके जैसा सुन्दर हो गया ॥ २८ ॥ तभीसे यह नदी चन्द्रकान्ता नामसे इस हिरण्य खण्डमें विख्यात हो गयी । क्योंकि इसमें स्नान

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा महाबाहुः प्रद्युम्नो यादवैः सह । चन्द्रकांतां नदीं स्नात्वा ददौ दानान्यनेकशः॥३१॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादेहिरण्यखंडविजयो नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी मानवदेशपर विजय)

श्रीनारद उवाच

एवं हिरण्मयं खंडं जित्वा कार्ष्णिर्महाबलः । जगाम रम्यकं खंडं देवलोकमिव स्फुरन् ॥ १ ॥
तस्य सीमागिरिः साक्षान्नीलो नाम नगाधिराट् । तत्रोचरे कालदेशे नगरी भीमनादिनी ॥ २ ॥
कालनेमिसुतस्तत्र कलंको नाम राक्षसः । त्रेतायुगे रामचन्द्राद्भीतो युद्धात्पलायितः ॥ ३ ॥
लंकापुत्र्या इहागत्य वासकृद्राक्षसैः सह । रक्षसामयुतेनासौ युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ ४ ॥
खरारूढः कृष्णवर्णो यदूनां बलमाययौ । यदूनां राक्षसानां च घोरं युद्धं बभूव ह ॥ ५ ॥
प्रघोषो गात्रवान् सिंहो बलः प्रबल ऊर्ध्वगः । सह ओजो महाशक्तिरपराजित एव च ॥ ६ ॥
लक्ष्मणानंदना ह्येते श्रीकृष्णस्य सुताः शुभाः । सर्वेषामग्रतः प्राप्ता बाणैस्तीक्ष्णैः स्फुरत्प्रभैः ॥ ७ ॥
राक्षसानां बलं जघ्नुर्वायुवेगैर्यथा घनम् । बाणौघैश्छिन्नमिन्नांगा राक्षसा रणदुर्मदाः ॥ ८ ॥
त्रिशूलानां मुद्गराणां वर्षां चक्रुर्मदोत्कटाः । कलंकस्तु तदा प्राप्तश्चर्यन्वारणान् रथान् ॥ ९ ॥
ह्याचरान्सशस्त्रास्त्रान्मुखे चिक्षेप सत्वरम् । गजान्पादेषु चोत्थीय सनीडान् रत्नकंबलान् ॥ १० ॥
घंटानादसमायुक्तान्प्राक्षिपच्चांबरे बलात् । प्रघोषः श्रीहरेः पुत्रः कर्पीद्राह्मं समादधे ॥ ११ ॥
तद्व्याणनिर्गतः साक्षाद्वायुपुत्रो महाबलः । वातस्तूलमिवाकाशे चिक्षेप शतयोजनम् ॥ १२ ॥

करनेसे मनुपुत्र गलितकृष्ट रोगसे मुक्त हो गया था ॥ २९ ॥ हम सब नित्य इस नदीमें स्नान करते हैं । इसीसे हम सबका रूप चन्द्रमाके सदृश है । इसमें संशय नहीं है ॥ ३० ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् । देवसत्त्वाके वचन सुनकर महाबाहु प्रद्युम्नने सभी यादवोंके साथ उस चन्द्रकान्ता नदीमें स्नान करके नाना प्रकारके वान दिये ॥ ३१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! इस प्रकार हिरण्मय खंडको जीतकर श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्न देव-लोक सदृश देदीप्यमान रम्यक खण्डको गये ॥ १ ॥ रम्यक खण्डका सीमापर्वत नीलगिरि है। जो सब पहाड़ोंका राजा माना जाता है। उसके उत्तर ओर भीमनादिनी नगरी बसी हुई है ॥ २ ॥ कालनेर्मित्यका पुत्र कर्लंक राक्षस था। त्रेतायुगमें रामचन्द्रके भयसे वह यहाँ भाग आया था ॥ ३ ॥ वह बहुतेरे राक्षसोंके साथ लंकासे भागकर आया और वहीं बस गया। अब दस हजार राक्षसोंको लेकर उसने प्रद्युम्नसे लड़नेका निश्चय किया ॥ ४ ॥ गधेपर सवार होकर वह काला-कलूटा कर्लंक यादवोंके समक्ष जा डटा। तब यादवों तथा राक्षसोंमें घोर युद्ध होने लगा ॥ ५ ॥ प्रघोष, गात्रवाच्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वंग, सह, ओज, महाशक्ति और अपराजित श्रीकृष्णकी पत्नी लक्ष्मणासे उत्पन्न ये दस पुत्र बड़े तीक्ष्ण तथा तेजस्वी बाण लेकर सबके आगे आये ॥ ६ ॥ ७ ॥ रणांगणमें आते ही उन्होंने राक्षसोंका वैसे ही संहार आरम्भ कर दिया, जैसे पवन बादलका सफाया करता है। उन रणदुर्मंद राक्षसोंके अंग-प्रत्यंग यादव वीरोंके बाणप्रहारसे छिन्न-भिन्न हो गये ॥ ८ ॥ सफाया करता है। उन रणदुर्मंद राक्षसोंके अंग-प्रत्यंग यादव वीरोंके बाणप्रहारसे छिन्न-भिन्न हो गये ॥ ९ ॥ वे मदोत्कट राक्षस भी त्रिशूलों और सुद्धारोंकी वर्षा करने लगे। उसी समय राक्षसराज कर्लंक हाथियोंको चबाता हुआ वहाँ आ पहुँचा ॥ १० ॥ वह घोड़ों और शस्त्रास्त्र समेत मनुष्योंको उठा-उठाकर मुखमें डाल लेता था। वह हाथियोंके पैर पकड़कर घंटा, रत्न और झूलके कम्बल सहित आकाशमें फेंकने लगा। उसकी यह करनी देखकर श्रीकृष्णके पुत्र प्रघोषने कपीन्द्राक्ष चला दिया ॥ १० ॥ ११ ॥ सहसा उस बाणसे पवनपुत्र महाबली

हनुमंतं तदा ज्ञात्वा कलंको राक्षसेश्वरः । लक्षभारमयीं गुर्वीं गदां चिक्षेप नादयन् ॥१३॥
 उत्पपात कपिवेंगाद्गदा भूमौ पपात ह । उत्पतन् वानराधीशो भ्रूभंगं कारयन्मुहुः ॥१४॥
 मुष्टिना घातयित्वा तं किरीटं तस्य चाददे । कलंकोऽपि तदा तस्मै त्रिशूलं स्वं समाददे ॥१५॥
 उत्पतन्स कपिवेंगात् पृष्ठिदेशं पपात ह । हनुमांस्तं तदा दोर्म्यां पातयित्वा महीतले ॥१६॥
 वैदूर्यपर्वतं नीत्वा तस्योपरि समाक्षिपत् । गिरिपातेन चूर्णांगो मर्दितः पंचतां ययौ ॥१७॥
 तदा जयजयारावः शंखध्वनियुतोऽभवत् । हनुमान् भगवान् साक्षात्तत्रैवांतरधीयत् ॥१८॥
 प्रद्युम्नस्योपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे । अथ कार्णिर्महाबाहुः स्वसैन्यपरिवारितः ॥१९॥
 मनोहरां स्वर्णमयीं मानवीं नगरीं ययौ । नैःश्रेयसवनं तत्र कल्पवृक्षलतावृतम् ॥२०॥
 हरिचंदनमंदारपारिजातोपशोभितम् । संतानामोदसंमिश्रवायुभिः सुरभीकृतम् ॥२१॥
 केतकीचंपकलताकुटजैः परिसेवितम् । माधवीनां लताजालैः पुष्पितैः सफलैर्वृतम् ॥२२॥
 नदद्विहंगालिकुलैर्वैकुण्ठमिव सुंदरम् । योजनानां पंचशतं लंबितं चारुधिं गिरिम् ॥२३॥
 अधोऽधः शोभितं राजञ्छतयोजनविस्तृतम् । पुंस्कोकिलैः कोकिलैश्च मयूरैः सारसैः शुकैः ॥२४॥
 चक्रवाकैश्चकौरैश्च हंसैर्दात्युद्भूजितम् । सर्वर्तुपुष्पशोभाढ्यमाक्षिपन्नंदनं वनम् ॥२५॥
 मृगशावा रमंते वै शार्दूलैः सह मैथिल । नकुलाः फणिभिः सार्द्धं यत्र वैरविवर्जिताः ॥२६॥
 अयुतं सरसां यत्र भ्रमरध्वनिसंयुतम् । सहस्रपत्रैः कमलैः शतपत्रैः स्फुरत्प्रभैः ॥२७॥
 इतस्ततो वर्तमानमानंदमिव मूर्तिमत् । तद्वनं सुंदरं दृष्ट्वा निर्गताभगरीजनान् ॥

पप्रच्छ वाञ्छितं साक्षात्प्रद्युम्नः सर्ववित्कविः ॥२८॥

हनुमानजी प्रकट हो गये । उन्होंने राक्षसराज कलंकको उठाकर सौ योजन दूर फेंक दिया, जैसे बाघ रुईको फेंक देता है ॥ १२ ॥ राक्षसेश्वर कलंकने हनुमान्जीको पहचाना तो लाख भारकी भारी गदासे उनपर प्रहार किया और गर्जन करने लगा ॥ १३ ॥ किन्तु गदा अपने ऊपर पड़नेके पहले ही हनुमान्जी अपनी भृकुटी धुमाते हुए ऊपर उछल गये, जिससे वह गदा धरतीपर जा गिरी ॥ १४ ॥ तभी हनुमान्जीने उसे एक घूँसा मारकर उसका मुकट किरीट-उतार लिया । तब कलंकने अपना त्रिशूल सम्हाला ॥ १५ ॥ सहसा हनुमान्जी उछलकर उसकी पीठपर चढ़ गये और अपनी भुजाओंसे पकड़कर उसको पृथिवीपर पटक दिया ॥ १६ ॥ बादमें उन्होंने एक वैदूर्यमणिका पर्वत उठाकर उसके ऊपर दे मारा । जिससे उसका सारा शरीर चूर होगया और उसके प्राण निकल गये ॥ १७ ॥ उस समय शंखनादके साथ जयजयकार होने लगा और हनुमान्जी वहाँ ही अन्तर्धान हो गये ॥ १८ ॥ प्रद्युम्नके ऊपर देवता फूल बरसाने लगे । तब महाबाहु प्रद्युम्न अपनी सेनाके साथ बड़ी मनोहर तथा स्वर्णमयी मनुपुरीको गये । उस पुरीमें निःश्रेयस नामका एक उपवन था, जो कल्पवृक्षकी लताओंसे सदा ढँका रहता था ॥ १९ ॥ २० ॥ हरिचन्दन, मंदार, पारिजात तथा सन्तानादि कल्पवृक्षजातीय वृक्षोंकी सुगन्धिसे वह उपवन नित्य आमोदित रहता था ॥ २१ ॥ केतकी, चम्पा और कुटजसे सुशोभित एवं फली-फूली माधवीलताओंकी झुरमुटसे वह घिरा रहता था ॥ २२ ॥ उस उपवनमें कलरव करते हुए पक्षियोंकी मीठी वोलसे वैकुण्ठके समान सुन्दर और पाँच सौ योजन लम्बा-चौड़ा अरुधिनामका एक पर्वत था ॥ २३ ॥ उस पर्वतका निचला भाग सौ योजन विस्तृत था । पुंस्कोकिल, कोकिल, मयूर, सारस, शुक, मोर, चकोर, चक्रवा-चकई, हंस और पपीहा बोल रहे थे । सब ऋतुओंके फलों और फूलोंसे वह उपवन नन्दनवनकी शोभाकी भी तुच्छ बना रहा था ॥ २४ ॥ २५ ॥ हे मिथिलेश ! वहाँपर मृगोंके बच्चे सिंहों और नेवले सर्पोंके साथ खेलते थे । उनमें पारस्परिक वैरभाव तनिक भी नहीं रह गया था ॥ २६ ॥ वहाँ दस हजार सरोवर थे, जिनमें सौ सौ और हजार-हजार दलके कमल खिले हुए थे और उनपर भ्रमर गुंजार कर रहे थे ॥ २७ ॥ मूर्तिमान् आनन्दस्वरूप उस उपवनको देखकर सर्वज्ञ और ज्ञानी प्रद्युम्न वहाँके नागरिकोंसे इच्छित जानकारी प्राप्त करनेके लिए पूछ-ताछ करने लगे । उन्होंने कहा—हे

श्रीप्रद्युम्न उवाच

कस्येयं नगरी रम्या कस्येदं वनमद्भुतम् । वदतांशु सविस्तारं हे लोकाः पुण्यशासनाः ॥२८॥

जना ऊचुः

वैवस्वतो मनुर्नाम यो ह्येवं वर्तते नृप । मानवे च गिरौ रम्ये मत्स्यं नारायणं हरिम् ॥३०॥

वर्तमानं सदा नत्वा करोति विपुलं तपः । तस्येयं नगरी रम्या तस्य नैःश्रेयसं वनम् ॥३१॥

वैकुण्ठाच्च समानीता भूमिश्चायं गिरिस्तथा । यूयं सर्वेऽपि राजानस्तस्य वंशमवाः क्षितौ ॥

सूर्यवंशांतरे राजश्चन्द्रवंशांतरे हि भोः ॥३२॥

श्रीनारद उवाच

क्षत्रियाणां च सर्वेषां वृद्धं तं प्रपितामहम् । श्राद्धदेवं मनुं ज्ञात्वा विस्मितोऽभूद्धरेः सुतः ॥३३॥

श्रुत्वा वचस्तदा सद्यो भ्रातृभिर्यदुभिर्वृतः । मानवाद्रिं समारुह्य श्राद्धदेवं ददर्श ह ॥३४॥

शतसूर्यप्रभं कांत्या द्योतयंतं दिशो दश । महायोगमयं साक्षाद्राजेंद्रं शान्तरूपिणम् ॥३५॥

वेदव्यासशुकाद्यैश्च वसिष्ठधिषणादिभिः । परस्परं महाराज शृण्वन्तं श्रीहरेर्यशः ॥३६॥

ननाम कार्णिर्यदुभिः सहैव तं कृताञ्जलिस्तत्र समास्थितोऽभवत् ।

मनुः समुत्थाय हरेः प्रभावविद्वत्पासनं गद्गदया गिराञ्जवीत् ॥३७॥

मनुरुवाच

नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च । प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥३८॥

अनादिरात्मा पुरुषस्त्वमेव त्वं निर्गुणोऽसि प्रकृतेः परस्त्वम् ।

सदा वशीकृत्य बलात्प्रधानं गुणैः सृजस्यत्सि च पासि विश्वम् ॥३९॥

ततो विवेकं स विहाय सर्वतो मत्वाऽखिलं चात्र मनोमयं जगत् ।

मायापरं निर्गुणमादिपूरुषं सर्वज्ञमाद्यं पुरुषं सनातनम् ॥४०॥

जागर्ति योऽस्मिञ्छयनं गते सति नायं जनो वेद सतः परं तम् ।

पश्यंतमाद्यं पुरुषं हि यज्जनो न पश्यति स्वच्छमलं च तं भजे ॥४१॥

पवित्र मनुष्यो ! यह मनोहारिणी नगरी किसकी है और यह अद्भुत उपवन किसका है ? सो विस्तारके साथ बताइए ॥ २८ ॥ २९ ॥ नागरिक बोले—वैवस्वत मनु नामके एक राजा हैं । जो रमणीक मानव पर्वतपर रहकर मत्स्यरूपधारी भगवान्का नमस्कार-पूजन करके विपुल तप करते हैं । यह रम्य नगरी उन्हींकी है और यह नैःश्रेयसवन भी उनका ही है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ यह भूमि और यह पर्वत वैकुण्ठसे यहाँ लाया गया है । इस पृथिवीपर जितने भी राजे हैं, सूर्य या चन्द्रवंशी होनेके नाते वे सब उन्हींके वंशज हैं ॥ ३२ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! समस्त क्षत्रियोंके वृद्ध प्रपितामह श्राद्धदेव मनुको जानकर श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्न बहुत विस्मित हुए ॥ ३३ ॥ नागरिकोंकी बात सुनकर प्रद्युम्न अपने सभी भ्राताओं तथा यादवोंके साथ मानव पर्वतपर गये और वहाँ श्राद्धदेव मनुका दर्शन किया ॥ ३४ ॥ सैकड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी और अपनी कान्तिसे दसों दिशाओंको प्रकाशमान करनेवाले, महायोगमय, शान्तिस्वरूप राजेन्द्र श्राद्धदेव मनु वेदव्यास, शुक्रदेव, वसिष्ठ और बृहस्पति आदि मुनियोंसे श्रीहरिका यश सुन रहे थे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ उसी समय यादवोंके साथ प्रद्युम्नने उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनके समक्ष बैठ गये । तब श्रीकृष्णका प्रभाव जाननेवाले मनुने उनको आसन देकर कहा । मनु बोले—आप वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और भक्तोंके प्रभु हैं । आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ आप अनादि, आत्मा, पुरुष, निर्गुण और मायातीत हैं । आप अपने बलसे मायाको वशमें करके गुणोंसे जगत्की उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं ॥ ३९ ॥ इसीसे मैं अविवेकी जन समस्त मनोमय जगत्को त्यागकर मायासे परे निर्गुण, आदि पुरुष, सर्वज्ञ, आद्य, सनातन पुरुषको भजता हूँ ॥ ४० ॥ जब यह जगत् सोता है, तब आप जागते हैं । तथापि यह लोक

यथा नभोऽग्निः पवनो न सज्जते घटे न काष्ठे न रजोभिरावृतैः ।
 तथा भवान्सर्वगुणैश्च निर्मलो वर्णैर्यथा स्यात्स्फटिको महोज्ज्वलः ॥४२॥
 व्यंग्येन वा लक्षणाया च वाक्यथैरर्थं पदं स्फोटपरायणैः परम् ।
 न ज्ञायते यद्वनिनोत्तमेन सद्वाक्येन तद्ब्रह्म कुतस्तु लौकिकैः ॥४३॥
 वदन्ति केचिद्भुवि कर्मकर्तृ यत्कालं च केचित्परयोगमेव तत् ।
 केचिद्विचारं प्रवदन्ति यच्च तद्ब्रह्मेति वेदांतविदो वदन्ति ॥४४॥
 यं न स्पृशंतीह गुणा न कालजा ज्ञानेन्द्रियं चित्तमनो न बुद्धयः ।
 महन्न वेदो वदतीति तत्परं विशंति सर्वेऽनलविस्फुलिंगवत् ॥४५॥
 हिरण्यगर्भं परमात्मतत्त्वं यद्वासुदेवं प्रवदन्ति संतः ।
 एवंविधं त्वां पुरुषोत्तमोत्तमं मत्वा सदाऽहं विचराम्यसंगः ॥४६॥

श्रीनारद उवाच

मनोर्वाक्यं तदा श्रुत्वा प्रद्युम्नो भगवान्हरिः । मन्दस्मितो मनुं प्राह गीर्भिः संमोहयन्निव ॥४७॥

प्रद्युम्न उवाच

त्वं नो गुरुः क्षत्रियाणामादिराजः पितामहः । मत्पूजनीयो वृद्धोऽसि श्लाघ्यो धर्मधुरंधरः ॥४८॥
 वः प्रजाश्च वयं राजन् रक्ष्याः पाल्याश्च सर्वतः । भवता तप्यते दिव्यं तपस्तेन जगत्सुखम् ॥४९॥
 मृग्यस्त्वत्सदृशः साधुः परमात्मा हरिः स्वयम् । नृणामंतस्तमोहारी साधुरेव न भास्करः ॥५०॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा भगवान् काष्णिरनुज्ञाप्य प्रणम्य तम् । परिक्रम्य मनुं राजन् स्वयं भूमौ जगाम ह ॥५१॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे मानवदेशविजयो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

आपको नहीं जानता । क्योंकि आप इससे परे हैं । आप सदा इस जगत्को देखते हैं, किन्तु जगत् आपको नहीं देखता । सर्वथा स्वच्छ आप परम पुरुषका मैं भजन करता हूँ ॥ ४१ ॥ जैसे आकाश घटसे, रजसे, वायुसे, काष्ठसे और अग्निसे लिप्त नहीं होता, वैसे ही निर्मल आप गुणों तथा विषयोंसे लिप्त नहीं होते । जैसे स्फटिकमणि किसी रंगसे लिप्त नहीं होता ॥ ४२ ॥ जो व्यंग्यसे, लक्षणासे, वचनकी चतुराईसे और स्फोटपरायण मनुष्योंके द्वारा परमार्थपद नहीं जाना जा सकता, जो सद्वाक्यसे और उत्तम ध्वनिसे जो ब्रह्म नहीं जाना जाता, वह लौकिक बातोंसे कैसे जाना जाय ॥ ४३ ॥ कुछ लोग जगत्में कर्मको, कोई कर्ताको, कुछ लोग कालको, कुछ योगको और कुछ लोग विचारको ब्रह्म कहते हैं वेदान्ती लोग उसीको ब्रह्म कहते हैं ॥ ४४ ॥ जिसको कालके गुण स्पर्श नहीं करते और ज्ञानेन्द्रिय, चित्त, मन, बुद्धि, अहंकार तथा महत्तत्त्व जिसको नहीं जानते, उसको वेद जानते हैं । अन्तमें सब कुछ आगमें चिनगारीके समान जहाँ समा जाते हैं, ॥ ४५ ॥ सन्तजन जिसको हिरण्यगर्भ, आत्मतत्त्व तथा वासुदेव कहते हैं, ऐसे आप पुरुषोत्तमको जानकर मैं असंग भावसे विचरता हूँ ॥ ४६ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् । आदित्यदेव मनुके वचन सुनकर प्रद्युम्नभगवान् अपनी वाणीसे उनको मोहते हुए कहने लगे ॥ ४७ ॥ प्रद्युम्नने कहा—हे भगवन् । आप तो हम क्षत्रियोंके गुरु हैं । आप आदिराजा, सबके पितामह, मेरे पूजनीय, वृद्ध, सराहनीय और धर्मके धुरन्धर ॥ ४८ ॥ हे राजन् । हमलोग तो आपकी सन्तान हैं और सब तरहसे पालनीय तथा रक्षणीय हैं । आप जो तप करते हैं, उससे संसारको सुख मिलता है ॥ ४९ ॥ आप सरीखे साधु तो खोजने योग्य होते हैं । आप स्वयं परमात्मा हैं । मनुष्यके अन्तरालमें रहनेवाले अन्धकार आप ही हर्तते हैं, सूर्य नहीं ॥ ५० ॥ नारदजी बोले—हे राजन् । ऐसा कहकर भगवान् प्रद्युम्नने मनुकी परिक्रमा की, अनुमति माँगी और प्रणाम करके

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नकी मन्मथदेशपर विजय)

श्रीनारद उवाच

इत्थं तु रम्यकं खंडं जित्वा कार्ष्णिर्महाबलः । सुमेरोः पूर्वदिग्भागे केतुमालं जगाम ह ॥ १ ॥
 तस्य सीमागिरिः साक्षान्माल्यवानाम मैथिल । चतुर्नाम्नी यत्र गङ्गा महापातकनाशिनी ॥ २ ॥
 गिरेर्माल्यवतः पार्श्वे पुरी मन्मथशालिनी । रत्नप्राकारसौधैश्च देवधानीव शोभिता ॥ ३ ॥
 यत्र वै पुरुषा राजन्कामदेवसमप्रभाः । शारदेन्दीवरश्यामाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः ॥ ४ ॥
 पीतांबरधरा नार्यः पुष्पहारमनोहराः । क्रीडन्ति कन्दुकैर्यत्र कामिन्यो नवयौवनाः ॥ ५ ॥
 यद्देहामोदपवनो मत्तालिकुलनादितः । गंधीकरोति भूभागं समन्ताच्छतयोजनम् ॥ ६ ॥
 तत्पुरीवासिनो लोका निर्गतास्ते बहुश्रुताः । जगुर्यशः श्रीगुरारेः प्रद्युम्नस्यापि शृण्वतः ॥ ७ ॥

केतुमालवासिन ऊचुः

आसीत्तु शेषशयनो जगदाक्षिहारी साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वर आदिदेवः ।
 यः प्रार्थितः सुरवरैर्भुवनावनाय तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय ॥ ८ ॥
 जातो गतः पितृगृहात्पितरौ विमोक्ष्य नंदालयं शिशुतनुः स तु नंदपत्न्या ।
 संलालितः सघृणया बहुमङ्गलश्रीः प्राणप्रहारमकरोत्किल पूतनायाः ॥ ९ ॥
 बालो बभञ्ज शकटं शयनं प्रकुर्वन्दैत्यं निपात्य महदद्भुतकं च पृष्ठे ।
 मात्रे प्रदक्ष्य निजरूपमलंकृतोऽभूद्गर्णेण संकथितसुंदरभाग्यलक्ष्मीः ॥ १० ॥
 संलालितो व्रजजनैर्नवनीतचौरः श्यामो मनोहरवपुर्मृदुलः स बालः ।
 भित्त्वा जघास दधिपात्रमतीव दध्नो वृक्षौ बभञ्ज जननीलघुदामबद्धः ॥ ११ ॥

करके उस पर्वतसे भूमिपर उत्तर आये ॥ ५१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! इस प्रकार रम्यक खण्डको जीतकर श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्न सुमेरुकी पूर्व दिशामें विद्यमान केतुमाल खण्डको गये ॥ १ ॥ हे मिथिलेश ! केतुमालका सीमापर्वत माल्यवान् गिरि है, जहाँ महापातकनाशिनी चतुर्नाम्नी गंगा बहती है ॥ २ ॥ माल्यवान्के बगलमें मन्मथशालिनी पुरी है । उसका परकोटा रत्नोंसे बना हुआ है और उसमें विविध मणियोंसे बने महल हैं । इससे देवधानी इन्द्रपुरी जैसी उसकी शोभा होती है ॥ ३ ॥ वहाँके सभी पुरुष कामदेवके समान सुन्दर होते हैं । शरत्कालीन कमल जैसे उनके शरीर और कमलदल सदृश उनके नेत्र होते हैं ॥ ४ ॥ वहाँकी सभी स्त्रियाँ पीताम्बर तथा पुष्पहार पहनती हैं । नवयौवना नारियाँ गेंद खेलती हैं ॥ ५ ॥ उनके शरीरकी सुगन्धिसे मस्त भौरे गुंजार करते हैं और वह सुगन्धि सौ योजन तक फैलकर सारे प्रदेशको सुगन्धित किये रहती है ॥ ६ ॥ उस नगरीके बहुश्रुत निवासी घरोंसे निकलकर भगवान् श्रीकृष्णके विमल यश गा रहे थे । प्रद्युम्नने भी उसे सुना ॥ ७ ॥ केतुमाल-निवासी लोग कह रहे थे—शेषशायी विष्णुभगवान् देवताओंके प्रार्थना करनेपर संसारका कष्ट हरनेके लिए साक्षात् प्रधान पुरुष, ईश्वर एवं आदिदेव अखिल भुवनके रक्षार्थ अवतरे, उन पुरुषोत्तम कृष्ण भगवान्को नमस्कार है ॥ ८ ॥ जो जन्मके साथ ही माता-पिताको बन्धनमुक्त करके पिताके घरसे नन्दके घर गये । उस समय वे शिशुरूपमें थे । सो नन्दरानीने बड़े प्रेमसे उनका लालन-पालन किया । वे मंगलधाम थे । उन्होंने ही पूतनाको मारा था ॥ ९ ॥ उसी बाल्यावस्थामें शयन करते हुए शकट (छकड़ा) तोड़ डाला । अद्भुत दैत्य वृणावर्तकी पीठपर चढ़कर उसके प्राण ले लिये । बादमें उन्होंने माता यशोदाको अपना निजी रूप दिखाया । महायुनि गर्बने उनके लिए सुन्दर भाग्यलक्ष्मीकी भविष्यवाणी की ॥ १० ॥ नवनीतके चौर श्रीकृष्णको व्रजवासियोंने

वृन्दावने स विचरन् सह वत्सगोपैर्वत्सासुरं च विनिपात्य कपित्थवृक्षैः ।
 सद्यो विगृह्य खरतुण्डपुटे च दोभ्यां दैत्यं ददार स वक्त्रं तृणवत्तटिन्याम् ॥१२॥
 संधारयंश्च शिशुभिर्वहुवत्ससंधान् वेणुं कृष्णमदनमोहनवेषभृद्यः ।
 गोपानघासुरमुखे प्रहिताञ्जुगोप गोगोपवत्सपवपुः स चकार सद्यः ॥१३॥
 क्षेत्रज्ञ आत्मपुरुषो भगवाननन्तः पूर्णः प्रधानपुरुषेश्वर आदिदेवः ।
 धृत्वा वपुः स विहरन्ब्रजबालकेषु संमोहयन्विधिमजो विचचार कृष्णः ॥१४॥
 चिक्षेप धेनुकमसौ बलिनं बलेन ताले प्रगृह्य सहसा फणिकालियाख्यम् ।
 बभ्राम बह्मिपिवद्भुजं प्रलंबं सद्यो जघान स बली दृढमुष्टिना च ॥१५॥
 संचारयन्ब्रजवधूर्मधुरं कृष्णं यो वेणुं वने ब्रजवधूनिजगीतकीर्तिः ।
 दिव्यांवराणि स जहार वरांगनानां विप्रांगनाभिरमितः कृतभक्तभोजः ॥१६॥
 देवे च वर्षति पशून्कृपया रिरक्षुर्गोवर्द्धनं प्रकृतबाल इवोच्छिलींघ्रम् ।
 विभ्रद्विरिं स गजराडिव कंजमेकहस्ते शचीपतिवचोभिरतः स्तुतोऽभूत् ॥१७॥
 नंदं जुगोप वरुणात्स्वजनाय लोकं दिव्यं परं च तमसो दिवि दर्शयित्वा ।
 श्रीरासमण्डलगतो ब्रजसुन्दरीणां रेमे पुलिंदतटनीपुलिनेऽङ्गनाभिः ॥१८॥
 मानं हरन्मदनयौवनमानिनीनामंतर्दधे ब्रजवधूनिजगीतकीर्तिः ।
 स्रग्वी मनोहरवपुर्विरहातुराणां साक्षाद्भिरमदनमोहन आविरासीत् ॥१९॥
 वृन्दावने शत्रुराजवरांगनाभिर्विष्णुर्विभूतिभिरिवद्युभिरादिदेवः ।
 रेमे स्तुतः सुरवरैः स च रासरंगे केयूरकुण्डलकिरीटविटंकवेषः ॥२०॥

बहुत प्यार किया । अत्यन्त कोमल और मनोहर बालरूपधारी श्रीकृष्ण जब दधिपात्र फोड़कर दही खा गये तो माताने उनको ऊखलसे बाँध दिया । छोटी-सी रस्सीसे बंधे ही बंधे उन्होंने जमलाजुंन वृक्ष उखाड़ डाले ॥ ११ ॥ वृन्दावनमें बछड़ों और गोपबालकोंके साथ विचरते समय उन्होंने वत्सासुरको मारकर उसीके शवसे कैथेके वृक्ष उखाड़े । तदनन्तर यमुनातटपर तीखी चोंचवाले बकासुरको तिनकेकी तरह चीर डाला ॥ १२ ॥ गोपबालकोंके साथ बछड़ोंके झुंड घेरते और वंशी बजाते हुए उन्होंने परम मोहक रूप धारण किया । अवासुरके मुखमें समाये हुए गोपबालकोंकी रक्षा की । बादमें ब्रह्माजी उन सभी गोपबालकों और बछड़ोंको चुरा ले गये तो भगवान् स्वयं गोपबालक तथा गाय-बछड़े बन गये ॥ १३ ॥ इस प्रकार क्षेत्रज्ञ, आत्मपुरुष भगवान्, अनन्त, पूर्ण, प्रधान पुरुषेश्वर और आदिदेव भगवानने मानव रूप धारण करके विहार करते हुए ब्रह्मा तथा गोपबालकोंको मोहमें डालकर उनके साथ ब्रजमें विचरे ॥ १४ ॥ बादमें उन्होंने बलवान् धेनुकासुरको उठाकर तालके वृक्षपर दे मारा । कालिया नागको दण्ड देकर उसके प्रत्येक फणपर नृत्य किया । फिर उन्होंने दवानलका गान किया । उसके बाद बड़े भाई बलदेवके साथ जाकर अपने जोरदार धूसेसे प्रलम्बासुरका वध किया ॥ १५ ॥ वनमें गौ चराते समय ब्रजवालाओंको मोह लेनेवाली वंशी बजायी और ब्रजकी ललनाओंने उनकी कीर्ति गायी । बादमें उन्होंने गोपियोंके वस्त्र चुराये और ब्राह्मणियोंका दिया हुआ भात खाया ॥ १६ ॥ जब इन्द्रने घनघोर वर्षा की, तब कृपा करके पशुओंकी रक्षाके लिए एक साधारण बालककी तरह ससूचे गोवर्धन पर्वतको कठफुल्लेकी तरह उठा लिया और सात दिनों तक केवल एक हाथसे उसको वैसे ही उठाये रखा, जैसे कोई हाथी कमलका फूल उठाये रहे । तब हार मानकर इन्द्रने उनकी स्तुति की ॥ १७ ॥ वरुणके पाशमें बंधे नन्दजीको बचाकर सभी ब्रजवासियोंको मायातीत वैकुण्ठधाम दिखाया । तदनन्तर यमुनातटपर रासमण्डल रचाकर सुन्दरी गोपियोंके साथ रमण किया ॥ १८ ॥ कामदेवके आवेगसे जिन ब्रजवधूतियोंको अपने यौवनका अभिमान हो गया था, उनका अभिमान चूर करते हुए वे वहाँ ही अन्तर्धान हो गये । तब व्याकुल ब्रजवालाओंने गोपीगीत गाया । जब वे बहुत ही विरहातुर हो गयीं, तब परम मनोहर

नंदं विमोक्ष्य फणिने प्रददौ च मोक्षं दिव्यं मणिं स च जहार ह शंखचूडात् ।
 गोपस्तुतो वृषभरूपधरं ह्यरिष्टं भूमौ निपात्य निजघान करेण मृद्धे ॥२१॥
 कंसः परं भयमवाप च तेन केशी संप्रेषितः सघनमेघवपुः प्रचंडः ।
 उत्सृज्य तं च तरसा पुनरापतंतं श्रीबाहुना मुखगतेन जघान कृष्णः ॥२२॥
 यो नारदेन बहुवर्णितभाग्यलक्ष्मीर्व्योमासुरो व्यसुरकारि परेण येन ।
 अक्रूरवर्णितमहोदय आदिदेवो गोपीजनातिविरहातुरचित्तचौरः ॥२३॥
 स्वाफन्कये हितकराय निजं स्वरूपमंतर्दधे जलचये स च दर्शयित्वा ।
 स ग्राप तत्र मथुरोपवनं परेशो गोपालकैश्च सबलो मथुरां ददर्श ॥२४॥
 स्वैरं चरन्मधुपुरे रजकं निकृत्य कृष्णः प्रदाय च वरानथ वायकाय ।
 मालाकृतं समनुकंप्य चकार कुब्जामृज्जीं धनुश्च सहसा नमयन्बभञ्ज ॥२५॥
 द्वारि द्विपञ्च विनिहत्य नरेंद्र मल्लौ हत्वा प्रगृह्य विनिपात्य स रङ्गभूमौ ।
 कंसं हरिस्तु पितरावथ मोचयित्वा बंधान्नृपं पुरि चकार महोग्रसेनम् ॥२६॥
 नंदं प्रसाद्य बहुदानकरो यदुस्तानाहूय तर्प्य सुधनैश्च निवेदयित्वा ।
 विद्यामधीत्य स ददौ प्रभृतं ह्यपत्यं कृत्वा वधं दनुजपञ्चजनस्य कृष्णः ॥२७॥
 गोपीजनान्समनुगृह्य स चोद्धवेनाक्रूरेण हास्तिनपुरे त्वथ पांडुपुत्रान् ।
 कृष्णो विजित्य बलिनं च जरासुतं च भस्मीचकार मुचुकुन्ददृशाऽऽत्मकालम् ॥२८॥
 निर्माय चाद्भुतपुरं स्थितयेऽत्र कृष्णो निन्ये च कुण्डिनपुरात्किल भीष्मकन्याम् ।
 पुत्रेण शंवरमरिं निजघान चादाद्राज्ञे मणिं युधि विजित्य स ऋभराजम् ॥२९॥

स्वरूप तथा वनमाला धारण करके उनके समक्ष प्रकट हो गये ॥ १९ ॥ वृन्दावनमें व्रजकी श्रेष्ठतम सुन्दरियोंके साथ वे वैसे ही रमे, जैसे अपनी विभूतियोंके साथ आदिदेव श्रीविष्णु रमे थे । देवता भी जिनकी स्तुति करते थे, उन भगवान् ने रासरंगमें केयूर (बाजूबन्द), कुण्डल और किरीटसे मनोहर श्रृंगार करके रमण किया ॥ २० ॥ उसके बाद उन्होंने नन्दको सर्पसे छुड़ाया और उस सर्पको मोक्ष प्रदान किया । फिर शंख-चूडसे दिव्य मणि छीनी । इसपर गोपोंने उनकी स्तुति की । तदनन्तर बैलरूपधारी अरिष्टासुरकी सींग पकड़कर धरतीपर पटक दिया ॥ २१ ॥ कंसने उन भगवान् से अत्यन्त भयभीत होकर सघन मेघ सरीखे तुन्दिल तथा प्रचण्ड केशी दैत्यको भेजा । उस भीषण दैत्यको बड़े वेगसे अपनी ओर आते देखकर भगवान् ने उसके मुखमें अपना हाथ डालकर मार डाला ॥ २२ ॥ जिसका श्रीनारदजीने बहुत सुन्दर ढंगसे वर्णन किया है, बहुत पराक्रमसम्पन्न तथा भाग्यलक्ष्मीसे युक्त उस व्योमासुरको उन्होंने मार डाला । अक्रूर द्वारा वर्णित महोदय जिनका था, वे भगवान् कृष्ण विरहातुर गोपीजनोंके चित्तचोर थे ॥ २३ ॥ अपने हितकारी अक्रूरको जलके भीतर दर्शन देकर अपना स्वरूप छिपा लिया । उसके बाद मथुरा पहुँचे और वहाँके एक उपवनमें टिके । फिर बलदेव तथा गोपालोंको साथ लेकर मथुराका अवलोकन करने चले ॥ २४ ॥ वहाँ इच्छानुसार विचरते समय कंसके घोड़ीको मार डाला और दरजीको वरदान दिया । फिर सुदामा मालीपर अनुकम्पा करके कुब्जाको सीधी किया और सहसा धनुषको झुकाकर तोड़ डाला ॥ २५ ॥ हे राजन् ! द्वारपर खड़े कुबलयापीड तथा मुष्टिक-चाणूरप्रभृति बावन पहलवानोंको मारकर भगवान् कृष्णने कंसको रंगभूमिमें पटक दिया और उसके ऊपर चढ़ बैठे । उसे मारकर पिता-माता वसुदेव-देवकीकी बन्धनमुक्त करके उग्रसेनको राज्य दिया ॥ २६ ॥ उसके बाद नन्दजीको बहुत-सा धन देकर प्रसन्न किया और बहुतेरे यादवोंको ले जाकर मथुरामें बसाया । तदनन्तर उन्होंने विद्याध्ययन किया और पंचजन दैत्यको मारकर गुरुके मरे हुए पुत्रको वापस लाये ॥ २७ ॥ फिर उद्धवको भेजकर उन्होंने गोपीजनोंपर कृपा की । अक्रूरको हस्तिनापुर भेजकर पाण्डवोंको राजी करके बली जरासंधको परास्त किया । फिर अपने लिए कालस्वरूप काल्यवनको मुचुकुन्दकी दृष्टिसे भस्म कराया

भामापतिः स च शिरःशतधन्वनस्तु हत्वा ह्युवाह सवितुश्च सुतां परेशः ।
 आवन्त्यराजतनुजां स जहार कृष्णः सत्यां स्वयंवरगृहे वृषभान्दमित्वा ॥३०॥
 कैकेयराजतनुजां स जहार भद्रां श्रीलक्ष्मणामखिलभद्रपतेः सुतां च ।
 भौमं विजित्य सबलं युधि शस्त्रसंघैर्निन्ये च षोडशसहस्रवरांगनाश्च ॥३१॥
 भामेच्छया सुरतरुं च सभां सुधर्मां शक्रं विजित्य स जहार कलत्रमित्रः ।
 योरुक्मिणं च निजघान बलेन गोष्ठ्यां बाणस्य बाहुनिचयं शतधाच्छिनत्सः ॥३२॥
 तेनोग्रसेनक्रतवेऽथ जगद्विजेतुं संप्रेषितो निजसुतः किल शंबरारिः ।
 योऽत्रागतो भुवि विजित्य नृपान्समस्तान् श्रीकेतुमालपतये च नमोऽस्तु तस्मै ॥३३॥

श्रीनारद उवाच

प्रसन्नः श्रीहरिः कार्णिः कुंडले कटकानि च । हीरान् मणीन् गजानश्चान् ददौ तेभ्यो महामनाः ॥३४॥
 पुर्यां मन्मथशालिन्यां व्यतिसंवत्सरो महान् । प्रद्युम्नाय बलिं प्रादानमस्कृत्य प्रजापतिः ॥३५॥
 अथ कार्णिर्महाबाहुर्दिव्यं कामवनं ययौ । जनैरगम्यं गम्यं च प्रजापतिदुहितृभिः ॥३६॥
 सुंदरं मन्मथाक्रीडं वृतं कामाक्ष्यतेजसा । नारीणां यत्र पतति व्यसुर्गर्भो न वत्सरम् ॥३७॥
 तदा परात्कामवनाद्विनिर्गतः श्रीपुष्पधन्वा नृप पंचसायकः ।
 पीतांबरः श्यामतनुर्मनोहरस्ततान कोदंडगुणध्वनिं स्मरः ॥३८॥
 यद्वाणतो यादवपुंगवाः स्वतः ससैनिकाः साश्वगजाः पदातिभिः ।
 निपेतुरारात्किल कामविह्वलास्तद्वाणवेगस्य न वर्णनं भवेत् ॥३९॥

॥ २८ ॥ उसके बाद समुद्रमें अद्भुत नगरीका निर्माण कराया । वहाँ कुण्डिनपुरसे भीष्मककी पुत्रीको हर लाये और अपने पुत्र प्रद्युम्नके द्वारा शम्बरसुरका वध कराया । उसके बाद ऋक्षराज जाम्बवान्को परास्त करके जाम्बवतीसे विवाह किया और स्यमन्तक मणि लाकर उग्रसेनको दी ॥ २९ ॥ तदनन्तर सत्यभामाके पति श्रीकृष्णने शतधन्वाका सिर काटकर सूर्यतनया कालिन्दीके साथ विवाह किया । फिर सात बेलोंका दमन करके अवन्तीके नरेशकी पुत्री सत्याको हर लाये ॥ ३० ॥ फिर कैकेयराजकी पुत्री भद्रा तथा अखिल-भद्रकी कन्या लक्ष्मणाको हर लाये । उसके बाद रणभूमिमें सेनासमेत भौमासुरको शस्त्रोंसे परास्त करके उसके यहूति सोलह हजार सुन्दरियोंको लाये ॥ ३१ ॥ बादमें सत्यभामाकी इच्छासे इन्द्रको जीतकर स्वर्गसे कल्पवृक्ष तथा सुधर्मा सभाको ले आये । उन्होंने गोष्ठीसे बलदेवके हाथों रुक्मीका वध कराया और बाणासुरकी हजार भुजाओंके सौ-सौ टुकड़े कर डाले ॥ ३२ ॥ उन्हीं भगवान् कृष्णने उग्रसेनका यज्ञ सम्पन्न करने और जगत्को जीतनेके लिए अपने पुत्र शम्बरारि प्रद्युम्नको भेजा है । प्रद्युम्न पृथ्वीके बहुतेरे राजाओं-को जीतकर केतुमाल वर्षमें आये हुए हैं । उनको हम प्रणाम करते हैं ॥ ३३ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् । उनकी बातोंसे श्रीकृष्णपुत्र प्रद्युम्न बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें कुण्डल, कंकण, हीरे, मणि, मोती, घोड़े और हाथी दिये ॥ ३४ ॥ उस मन्मथशालिनीपुरीमें प्रद्युम्नका पूरा साल वीत गया । तब प्रजापतिने नमस्कार करके प्रद्युम्नको भेंट दी ॥ ३५ ॥ तदनन्तर महाबाहु प्रद्युम्न दिव्य कामवनमें गये । जो कामवन प्रजापति-की कन्याओंके लिए गम्य था, किन्तु अन्य लोगोंके लिए अगम्य ॥ ३६ ॥ वह कामवन कामदेवके शस्त्रास्त्रोंसे भरा हुआ था । वहाँ पहुँची हुई स्त्रियोंका गर्भ निर्जीव होकर गिर पड़ता था और बादमें सालभरतक उनको पुनः गर्भाधान नहीं होता था ॥ ३७ ॥ तदनन्तर उस कामवनसे पुष्पधन्वा, पंचसायक, श्यामसुन्दर, पीताम्बर-धारी तथा मनोहर कामदेवने निकलकर अपने घनुषका टंकार किया ॥ ३८ ॥ बादमें कामदेवके बाणसे बाह्य होकर सभी यादव, उनके हाथी-घोड़े और पैदल सैनिक धरतीपर गिर गये । क्योंकि वे सब कामातुर हो उठे थे । कामदेवके बाणोंकी शक्तिका सही-सही वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ३९ ॥ तदनन्तर जगदीश-

अथाशु कार्णिर्जगदीश्वरेश्वरः प्रलीनतां प्राप जले जलं यथा ।

सद्यो विसिस्मुर्यदवः ससैनिका विज्ञाय पूर्णं नृप रुक्मिणीसुतम् ॥४०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे मन्मथदेश विजयो नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

(हृष्ट दैत्यके वधकी कथा)

श्रीनारद उवाच

अथ कार्णिर्महाबाहुः केतुमालं विजित्य सः । भद्राश्वं प्रययौ धन्वी खंडं योगसमृद्धिमत् ॥ १ ॥

यस्य सीमागिरिः साक्षाद्राजते गन्धमादनः । सीतानाम्नी यत्र गंगा वहन्ती पापनाशिनी ॥ २ ॥

वेदक्षेत्रे महातीर्थे सर्वपापप्रमोचने । ह्यग्रीवो महाबाहुयत्र संनिहितो हरिः ॥ ३ ॥

भद्रश्रवा धर्मसुतस्तस्य सेवां करोति हि । गंगातीरस्य पुलिने प्रद्युम्नस्य महात्मनः ॥

बभूवुः शिविरव्यूहा हेमांबरमनोहराः ॥ ४ ॥

भद्रश्रवा धर्मसुतो महात्मा भद्राश्वदेशाधिपतिर्महौजाः ।

प्रदक्षिणीकृत्य ननाम भक्त्या दत्त्वा बलिं कृष्णसुताय चाह ॥ ५ ॥

भद्रश्रवा उवाच

त्वं साक्षाद्भगवान्पूर्णः परिपूर्णतमः स्वयम् । साधूनां रक्षणार्थाय जगज्जेतुं विनिर्गतः ॥ ६ ॥

भगवच्छंबरो नाम दैत्यः पूर्वं जितस्त्वया । तस्य भ्राता महादुष्टः कनीयानुत्कचः स्मृतः ॥ ७ ॥

गोकुले कृष्णचंद्रेण मारितः शकटस्थितः । तस्य भ्राता महादुष्टो ज्येष्ठोऽस्ति शकुनिर्बली ॥ ८ ॥

जेतुं योग्यस्त्वया देव नान्यैरपि कदाचन ।

श्रीप्रद्युम्न उवाच

कस्य वंशे समुद्भूतः शकुनिर्नाम दैत्यराट् ॥ ९ ॥

कस्मिन्पुरे स्थितिस्तस्य बलं किं वद धर्मज ।

रेश्वर प्रद्युम्न कामदेवमें वैसे ही विलीन हो गये, जैसे जल जलमें मिल जाता है । उनकी यह दशा देख सभी यादव प्रद्युम्नको पूर्ण परमेश्वर जानकर बहुत विस्मित हुए ॥ ४० ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् । तदनन्तर श्रीकृष्णसुत महाबाहु प्रद्युम्न केतुमाल खंडको जीतकर योगकी समृद्धियोंसे सम्पन्न भद्राश्वखंड गये ॥ १ ॥ जिसकी सीमाका पर्वत गन्धमादनपर्वत था । वहाँ सीता नामकी पापनाशिनी गंगा बहती है ॥ २ ॥ सब प्रकारके पापोंका नाशक वेदक्षेत्र वहाँ ही था । महाबाहु ह्यग्रीवभगवान् वहाँ नित्य विराजते हैं ॥ ३ ॥ धर्मपुत्र भद्रश्रवा उनकी सेवा करता है । वहाँ ही गंगाजीके किनारे महात्मा प्रद्युम्नका सुनहले वस्त्रोंसे निर्मित शिविर लगा ॥ ४ ॥ धर्मपुत्र, भद्राश्वदेशके स्वामी तथा महातेजस्वी भद्रश्रवाने प्रद्युम्नको प्रदक्षिणा और प्रणाम करके बड़ी भक्तिके साथ भेंट दी और कहा ॥ ५ ॥ भद्रश्रवा बोला—हे प्रभो ! आप पूर्ण परिपूर्णतम साक्षात् भगवान् हैं । सज्जनोंकी रक्षा तथा जगत्को जीतनेके लिए आप निकले हुए हैं ॥ ६ ॥ हे भगवन् । पूर्वकालमें आप शम्बर नामके दैत्यको जीत चुके हैं । उसीका छोटा भाई उत्कच बड़ा दुष्ट दानव है ॥ ७ ॥ गोकुलमें भगवान् श्रीकृष्णने जिस शकटासुरको मारा था, उसका बड़ा भाई शकुनि भी बड़ा बलवान् और बड़ा दुष्ट है ॥ ८ ॥ हे देव ! उसे एकमात्र आप ही जीत सकते हैं—दूसरा कोई नहीं जीत सकता । प्रद्युम्न बोले—हे धर्मपुत्र । वह दैत्यराज शकुनि किस वंशमें उत्पन्न

भद्रश्रवा उवाच

कश्यपस्य मुनेर्दित्यामादिदैत्यौ बभूवतुः ॥१०॥

हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्तथा । हिरण्याक्षस्य तस्यापि बभूवुर्नव पुत्रकाः ॥११॥
 शकुनिः शंभरो हृष्टो भूतसन्तापनो वृकः । कालनाभो महानाभो हरिश्मश्रुस्तथोत्कचः ॥१२॥
 देवकूटाक्षिणे हि जठरस्य गिरेरधः । पुरी चन्द्रावती नाम दैत्यानां दुर्गमंडिता ॥१३॥
 शकुनिस्तत्र वसति भ्रातृभिः षड्भिरावृतः । यदा यदा हि मुनयो यज्ञारम्भं प्रकुर्वते ॥१४॥
 तदा तदा हि तेनापि भंगोऽकारि यदूत्तम । यस्माच्च संति शक्राद्या उद्विग्नाः सात्वतांपते ॥१५॥
 जेतुं योग्यस्त्वया देव देवध्रुदैत्यपुंगवः । त्वया जितं जगत्सर्वं भक्तानां शान्तिकारणात् ॥१६॥
 प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्यं चतुर्व्यूहाय ते नमः । गोविप्रसुरसाधूनां छंदसां पतये नमः ॥१७॥

श्रीनारद उवाच

एवं संप्रार्थितः साक्षात्प्रद्युम्नो भगवान् हरिः । देवाय भद्रश्रवसे मामैष्टेत्यभयं ददौ ॥१८॥
 अथ कार्ष्णिर्महाबाहुः स्वसैन्यपरिवारितः । पुरीं चंद्रावतीं गंतुं प्रस्थानमकरोत्तदा ॥१९॥
 मन्मुखाच्छकुनिः श्रुत्वा प्रागच्छंतं यदूत्तमम् । दैत्यानां सदसि प्राह शूलमुद्यम्य दैत्यराट् ॥२०॥

शकुनिरुवाच

दिष्टया दिष्टया हि शत्रुर्मे प्रद्युम्नोऽत्र समागतः । जेतुं योग्यो मया दैत्या भ्रातृमय्यस्ति प्रागृणम् ॥२१॥
 भ्राता मे शंभरो नाम येन पूर्वं च मारितः । तस्मात्तं घातयिष्यामि प्रद्युम्नं यदुभिः सह ॥२२॥
 तस्माद्यात बलं तस्य विध्वस्तं कुरुतासुराः । पश्चात्पुरंदराधीशं घातयिष्यामि निर्जरान् ॥२३॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य दैत्यो हृष्टो महाबलः । आययौ संमुखे योद्धुं दैत्यकोटिसमावृतः ॥२४॥
 प्रद्युम्नो भगवान्साक्षात्प्रीलामानुषविग्रहः । महत्याः सर्वसेनाया गृध्रव्यूहं चकार ह ॥२५॥

हुआ है ? वह कहाँ रहता है और उसमें कितना बल है ? भद्रश्रवाने कहा—महामुनि कश्यपकी पत्नी दितिसे दो आदिदैत्य जनमे । जिनमें हिरण्यकशिपु ज्येष्ठ और हिरण्याक्ष छोटा था । उन दोनोंमेंसे हिरण्याक्षके नौ पुत्र हुए ॥ ९-११ ॥ उनके नाम ये—शकुनि, शंभर, हृष्ट, भूतसन्तापन, वृक, कालनाभ, महानाभ, हरिश्मश्रु तथा उत्कच ॥ १२ ॥ देवकूट पर्वतके दाहिनि ओर जठर पर्वतके नीचे दैत्योंकी चन्द्रावती पुरी है । उसमें दुर्ग भी है ॥ १३ ॥ अपने भाइयोंके साथ शकुनी वहीं रहता है । जब जब मुनिलोग यज्ञ आरम्भ करते हैं, तब तब हे भक्त वत्सल ! वह दैत्य यज्ञ भंग कर देता है । इन्द्रादि देवता भी उससे उद्विग्न रहते हैं ॥ १४॥ १५॥ हे देव ! देवताओंके शत्रु उस दैत्यको आप अवश्य जीतें । क्योंकि भक्तोंकी शान्ति प्रदान करनेके लिए ही आपने सारे संसारको जीता है ॥ १६ ॥ हे प्रद्युम्न ! आपको नमस्कार है । हे चतुर्व्यूह ! आपको नमस्कार है । गोओं, ब्राह्मणों, देवताओं और साधुओंके आप स्वामी हैं । आपको नमस्कार है ॥ १७ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! जब भद्रश्रवाने इस प्रकार प्रार्थना की, तब साक्षात् प्रद्युम्नभगवान्ने भद्रश्रवाको अभयदान देते हुए कहा—‘हे देव ! आप किसी प्रकारका भय न करें’ ॥ १८ ॥ इसके बाद महाबाहु प्रद्युम्नने अपनी सेना लेकर चन्द्रावती पुरीको प्रस्थान किया ॥ १९ ॥ मेरे (नारदके) मुखसे दैत्यराज शकुनिने प्रद्युम्नके आगमनकी बात सुनी तो दैत्योंकी सभामें त्रिभूल उठाकर कहा ॥ २० ॥ शकुनि बोला—हे दैत्य वीरो ! बड़ा अच्छा हुआ, जो मेरा शत्रु प्रद्युम्न यहीं आ रहा है । जैसे भी हो, मुझे उसको जीतना ही है । क्योंकि मेरे ऊपर मेरे भाई (शंभर) का ऋण है ॥ २१ ॥ पूर्वकालमें मेरे भाईको उसीने मारा था । अतएव समस्त यादवोंके साथ प्रद्युम्नको मैं मार डालूँगा ॥ २२ ॥ इससे आपलोग जाइए और उसकी सेनाको नष्ट कर डालिए । उसके बाद मैं देवताओं समेत इन्द्रको भी मारूँगा ॥ २३ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! शकुनिकी बात सुनकर महाबली दैत्यराज हृष्ट एक करोड़ दैत्योंकी सेना लेकर प्रद्युम्नके सम्मुख जा पहुँचा ॥ २४ ॥ तब लीलामानव-

गृध्रचंचौ वर्तमानोऽनिरुद्धो धन्विनां वरः । ग्रीवायामर्जुनः पृष्ठे सांचो जांबवतीसुतः ॥२६॥
 पादयोरुभयो राजन्नास्थितौ दीप्तिमद्गदौ । कार्ष्णिः साक्षात्तदुदरे पुच्छे भानुर्हरेः सुतः ॥२७॥
 बभूव तुमुलं युद्धं सीतागंगातटे नृप । दैत्यानां यदुभिः सार्द्धमन्वहीनामन्धिर्मिर्यथा ॥२८॥
 बाणैस्त्रिशलैर्मुसलैर्मुद्गरैस्तोमरष्टिभिः । ववृषुर्दानवाः सर्वे धाराभिरिव वारिदाः ॥२९॥
 रुरोध सूर्यं चाकाशं सैन्यपादरजो भृशम् । राजन्स्वबाणं च यथा वारिदाः प्रावृड्भवाः ॥३०॥
 वृको हर्षोऽनिलो गृध्रो वर्द्धनोऽन्नाद एव च । महाशः पवनो वह्निः क्षुदिश्च दशमः स्मृतः ॥३१॥
 मित्रविदात्मजा ह्येते युयुधुर्दानवैः सह । बाणांधकारे संजाते वृको नाम हरेः सुतः ॥३२॥
 सर्वेषामग्रतः प्राप्नो धनुर्धकारयन्मुहुः । दैत्यान्विभेद बाणौघैः कुवाक्यैर्मित्रतामिव ॥३३॥
 गजान् रथान् हयान् वीरान्पातयामास भूतले । निपेतुश्छिन्नकवचाश्छिन्नचापा रणांगणे ॥३४॥
 वृकबाणैर्भिन्नपादा वृक्षा वातहता इव । अधोमुखा ऊर्ध्वमुखा बाणौघैश्छिन्नबाहवः ॥३५॥
 रेजू रणांगणे राजन् भांडव्यूहा इवाहताः । द्विधाभूता गजा बाणैः पतिता रणमंडले ॥३६॥
 विरेजुश्छुरिकाविद्धाः कूर्मांडशकला इव । तदैव हृष्टः संप्राप्तः सिंहारुढो महाबलः ॥३७॥
 बिभेद कवचं तस्य सिंजिनीं दशभिः शरैः । चतुर्भिश्चतुरो बाहान्द्राम्यां स्रूतं ध्वजं तथा ॥३८॥
 त्रिभी रथं च बाणानां विंशत्या दनुजाधिपः । छिन्नधन्वा वृको भूत्वा हताश्वो हतसारथिः ॥३९॥
 अन्यं रथं समारुढो धनुर्जग्राह रोषतः । तावत्तस्य धनुर्हृष्टश्चिच्छेद समरेऽसुरः ॥४०॥
 तदा गदां समादाय वृको यादवपुंगवः । तताड मूर्ध्नि पंचास्यं दैत्यं पृष्ठस्थितं पुनः ॥४१॥
 मृगेंद्रः क्रोधसंपूर्णः समुत्पत्य रणांगणे । अनेकान्पातयामास नखैर्दतैः करैरपि ॥४२॥
 हुंकारं भीषणं कृत्वा ललज्जिह्वः स्फुरत्सटः । वृकं संपातयामास रंभादंडं गजो यथा ॥४३॥

देहधारी प्रद्युम्न भगवानने अपनी सारी सेनाका गृध्रव्यूह रचा ॥ २५ ॥ उस गृध्रके चंचुस्थानपर अनिरुद्ध, उसकी गर्दनपर अर्जुन और पीठपर जाम्बवतीसुत साम्ब खड़े हुए ॥ २६ ॥ उसके दोनों पैरोंकी जगह दीप्तिमान् और गद खड़े हुए । उस गृध्रके पेटकी जगह स्वयं प्रद्युम्न और पूँछकी जगह श्रीकृष्णके पुत्र भानु खड़े हुए ॥ २७ ॥ हे राजन् ! इसके बाद सीतागंगाके तटपर दैत्यों तथा यादवोंमें वैसे ही घोर युद्ध हुआ, जैसे एक समुद्रका दूसरे समुद्रसे युद्ध होता हो ॥ २८ ॥ उसमें बाण, त्रिशूल, मुसल, मुद्गर आदि शस्त्रास्त्रोंकी ऐसी वर्षा होने लगी, जैसे मेघसे जलकी बूँदें बरसती हैं ॥ २९ ॥ हे राजन् ! सैनिकोंके पैरोंकी धूलसे सूर्य और आकाश दोनों ऐसे ढँक गये, जैसे वर्षाके बादल आकाश तथा सूर्यको ढाँक लेते हैं ॥ ३० ॥ वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्धन, अन्नाद, महाश, पावन, वह्नि और क्षुदि, मित्रविदाके ये दसों पुत्र दैत्योंसे खूब लड़े । अविरल बाणवर्षासे जब घोर अन्धकार छा गया, तब श्रीकृष्णका पुत्र वृक सबसे आगे आया और धनुषका टंकार करता हुआ बाणोंसे दैत्योंको इस तरह बीँघने लगा, जैसे कुवाक्योंसे मित्रता बिध जाती है ॥ ३१-३३ ॥ वह वीर हाथियों रथों, घोड़ों और वीर सैनिकोंको मार-मारकर धरतीपर गिराने लगा । तब जिन सैनिकोंके कवच तथा धनुष कट गये थे, वे वीर रणमें घराशायी हो गये ॥ ३४ ॥ वीर वृकके बाणोंसे जिनके हाथ-पैर कट गये थे, वे वीर नीचेको मुल्ल करके गिर गये, जैसे जड़ कट जानेपर वृक्ष गिर जाते हैं ॥ ३५ ॥ उस रणांगणमें फूटे बर्तनोंकी तरह घायल योद्धा पड़े हुए थे । उस रणमें बाणोंकी मारसे दो-दो टुकड़े होकर पड़े हाथी छुरीसे कटे कोंहड़ेके टुकड़ों जैसे दीखने लगे । तभी हृष्ट नामका दैत्य सिंहपर चढ़कर रणभूमिमें आया ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ आते ही उसने दस बाणोंसे वृकके धनुषकी प्रत्यंचा, चार बाणोंसे चारों घोड़े, दो बाणोंसे सारथी तथा तीन बाणोंसे ध्वजा काट डाली ॥ ३८ ॥ उसने बीस बाणोंसे वृकका रथ भी काट डाला । इस प्रकार वृकके धनुष, बाण, रथ, घोड़े, कवच तथा सारथी सब कट गये तो वह विरथ हो गया ॥ ३९ ॥ तब दूसरे रथपर बैठकर क्रुद्ध वृकने दूसरा धनुष सम्हाला । किन्तु वृकने हृष्ट दैत्यका वह धनुष भी काट डाला ॥ ४० ॥ तब यादवश्रेष्ठ वृकने अपने पीछे खड़े पाँच मुखवाले हृष्ट दैत्यको गदासे मारा ॥ ४१ ॥ तभी हृष्टके सिंहने क्रोधसे उल्ल-उल्लकर अपने नखों, दाँतों और

गृहीत्वा तु वृको दोर्म्यां पातयित्वा महीतले । तस्योपरि नदंस्तस्थौ मल्लो मल्लं यथा नृप ॥४४॥
 उत्पतंतं पुनः सिंहं चर्वयंतं तनुं बलात् । तताड मुष्टिना तं वै मित्रविंदात्मजो बली ॥४५॥
 तस्य मुष्टिप्रहारेण केसरी पंचतां गतः । तदा क्रुद्धो हृष्टदैत्यः शूलं चिक्षेप सत्वरम् ॥४६॥
 शूलं स्फुरन्महोल्काभं चिच्छेद त्वसिना वृकः । तीक्ष्णया तुंडया राजन्फणिनं गरुडो यथा ॥४७॥
 हृष्टोऽपि स्वमसिं नीत्वा नादयन् स्वं महाबलम् । जघान तं वृकं मूर्ध्नि कंपयन् वसुधातलम् ॥४८॥
 खड्गकोशे ततः खड्गमुपधार्य वृको बली । कंधरे स्वेन खड्गेन तं तताड स्फुरच्छुचम् ॥४९॥
 खड्गच्छिन्नं शिरस्तस्य दैत्यस्य पतितं भुवि । रेजे कमंडलुमिव सकिरीटं सकुंडलम् ॥५०॥
 हृष्टे मृते तदा दैत्याः शेषा सर्वे पलायिताः । भयातुरा महाराज ययुश्चंद्रावतीं पुरीम् ॥५१॥
 देवदुंदुभयो नेदुर्नरदुंदुभयस्तदा । श्रीवृकस्योपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ॥५२॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसम्वादे हृष्टदैत्यवधो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥



अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

(भूतसंतापन दैत्यका वध)

श्रीनारद उवाच

हृष्टं निपतितं श्रुत्वा शकुनिः कोधमूर्छितः । आतृन्संप्रेषयामास देवानां भयकारकान् ॥ १ ॥
 भूतसंतापनो नाम गजमारुह्य निर्गतः । वृकः खरं समारुह्य कालनाभोऽथ सूकरम् ॥ २ ॥
 महानाभो मत्तपुष्टं हरिश्मश्रुस्तिमिगिलम् । वैजयंतं रथं जैत्रं मयदैत्यविनिर्मितम् ॥ ३ ॥
 पंचयोजनविस्तीर्णं सहस्राश्वनियोजितम् । मायामयं कामगं च पताकाशतसंबृतम् ॥ ४ ॥

और पंजोसे मारकर बहुतेरे वीरोंको गिरा दिया ॥ ४२ ॥ भीषण हुंकार करके जीम लपलपाते हुए उस सिंहेने वृकको भी वैसे ही गिरा दिया, जैसे कोई हाथी केलेके खंभेको गिरा दे ॥ ४३ ॥ किन्तु तुरन्त उठकर वृकने दोनों हाथोंसे पकड़कर सिंहको गिरा दिया और घोर गर्जन करके उसके ऊपर वैसे ही चढ़ बैठा, जैसे कोई पहलवान दूसरे पहलवानको पटककर चढ़ बैठता है ॥ ४४ ॥ किन्तु फिर उठकर बलपूर्वक शरीरको चबाते हुए सिंहको मित्रविन्दाके पुत्र वृकने बड़े जोरसे एक घूँसा मारा । उस घूँसेकी मारसे सिंह मर गया । तब हृष्ट दैत्यने कुपित होकर शीघ्र अपना त्रिशूल चलाया ॥ ४५ ॥ बड़ी मशालके समान चमकते हुए उस त्रिशूलको वीर वृकने अपनी तेज तलवारसे काट डाला, जैसे गरुड़ सर्पको तीखी चोंचसे काट डालते हैं ॥ ४५-४७ ॥ तब हृष्ट दैत्यने तलवार लेकर बहुत जोरसे गर्जन किया और वृकके मस्तकपर चला दी ॥ ४८ ॥ तब बलवान् वृकने उस प्रहारको अपनी तलवारकी म्यानपर रोककर एक तेज धारवाली तलवार हृष्टकी गर्दनपर चलायी ॥ ४९ ॥ इस प्रहारसे उसका सिर कटकर धरतीपर आ गिरा । किरीट और कुंडलपुच्छ हृष्ट दैत्यका सिर कमंडलुकी भाँति क्षोभित हुआ ॥ ५० ॥ इस प्रकार हृष्टके मर जानेपर शेष दैत्य भयभीत होकर चन्द्रावती पुरीको भाग गये ॥ ५१ ॥ तब देवताओं तथा मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं और देवता प्रसन्न होकर वृकपर पुष्पवर्षा करने लगे ॥ ५२ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् । हृष्ट दैत्यके मरणका समाचार सुनकर अतीव क्रुद्ध शकुनिने देव-ताओंको भी भयभीत करनेवाले भाइयोंको भेजा ॥ १ ॥ तदनुसार भूतसन्तापन दैत्य हाथीपर, वृकदैत्य गधे-पर और कालनाभ दैत्य सुखरपर चढ़कर रणभूमिको चला ॥ २ ॥ महानाभ दैत्य मत्त एवं पुष्ट हाथीपर, हरिश्मश्रु दैत्य मगरपर और वैजयन्त दैत्य मयदानवके हाथों बने रथपर बैठकर चला ॥ ३ ॥ उस रथमें हजार घोड़े जुते थे, पाँच योजन उसका विस्तार था, उसमें सौ पताकायें लगी थीं, वह रथ मायामय था और रथीकी

सहस्रकलशाढ्यं च मुक्तादामविलंबितम् । रत्नभूषणभूषाढ्यं शतचंद्रसमोज्ज्वलम् ॥ ५ ॥
 सहस्रचक्रसंयुक्तं घंटाकारविभूषणम् । आरुह्य शक्रुनिः पश्चाद्योद्दुक्कामो विनिर्ययौ ॥ ६ ॥
 अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिर्दैत्यानां मैथिलेश्वर । धनुःस्वनैर्वीरशब्दैरश्वहेपारथस्वनैः ॥ ७ ॥
 चीत्कारैर्हस्तिनामाशामण्डलं तु जगर्ज ह । दैत्यसेनाप्रगाणेन चक्रपे मण्डलं भुवः ॥ ८ ॥
 निपेतुर्गिरयोऽनेका विचेलुः सिंधवो नृप । निपातितार्गला देवैर्बभूवाश्वमरावती ॥ ९ ॥
 तत्सैन्यं भीषणं दृष्ट्वा प्रद्युम्नो धन्विनां वरः । बली धैर्यधरः कार्णिणः प्राहेदं यदुपुंगवान् ॥ १० ॥

प्रद्युम्न उवाच

इदं शरीरं भुवि पांचभौतिकं फेनोपमं कर्मगुणादिनिर्मितम् ।
 गतागतं कालवशं कदापि बुधा न शोचन्ति यथार्भकैः कृतम् ॥ ११ ॥
 गच्छन्ति चोर्ध्वं किल सात्त्विका जना मध्ये च तिष्ठन्ति हि राजसा नराः ।
 अधः प्रगच्छन्ति हि तामसाः परे मुहुर्मुहुस्ते विचरन्ति कर्मभिः ॥ १२ ॥
 विमेत्ययं वा किल सर्वतो यथा नेत्रभ्रमेणाचलतीव भूर्वृथा ।
 तथा च सर्वं मनसा कृतं जगत्काचेऽर्भकं ह्यर्भक आवृत्तो यथा ॥ १३ ॥
 यथा सुखं मंडलवर्तिनां चलं तथाऽस्ति पातालनिवासिनामपि ।
 ताऽमराणां क्रतुभिः कृतं स्मरेत्सर्वं त्यजेत्तृणवत्परो जनः ॥ १४ ॥
 ऋतोगुणा देहगुणाः स्वभावा अहर्दिनं याति यथा तथा जनाः ।
 दृश्यं च यद्यन्न हि किञ्चिदस्ति यथा व्रजे गच्छति पांथसंगमम् ॥ १५ ॥
 दृष्टं यथा वस्तु यदोल्कया तथा परे गते किं ह्युभयप्रयोजनम् ।
 विधाय मार्गं विचरेच्छिवस्य पश्यन्हि सर्वत्र हरिं परेश्वरम् ॥ १६ ॥

इच्छाके अनुसार चलता था ॥ ४ ॥ उसमें हजार कलश लगे थे, वह मोतियोंकी मालासे अलंकृत था, रत्नोंके आभूषणोंसे आभूषित होनेके कारण वह चन्द्रमा जैसा उज्ज्वल दीखता था ॥ ५ ॥ उसमें हजार पहिये थे और बहुतेरे घंटोंका निनाद हो रहा था । उस रथपर सवार होकर दैत्यराज शक्रुनि लड़नेके लिए चला ॥ ६ ॥ हे मैथिलेश्वर ! दैत्योंकी बारह अक्षौहिणी सेना लेकर वह आया । धनुषका टंकार, वीरोंका सिंहगर्जन, घोड़ोंकी हिनहिनाहट, रथोंकी षड्घड़ाहट और हाथियोंके चिंघाड़से दसों दिशाये झंकृत हो उठीं । उस दैत्यसेनाके प्रयाणसे सारा भूमंडल कांप उठा ॥ ७ ॥ ८ ॥ इससे अनेक पर्वत गिर पड़े, समुद्र विचलित हो उठे और देवताओंने अमरावती पुरीके बेवड़े ढाल दिये ॥ ९ ॥ उस भीषण सेनाको देखकर धनुर्धरोंमें अग्रणी तथा महाबली प्रद्युम्नने धीर-धीर यादवोंसे कहा ॥ १० ॥ प्रद्युम्न बोले— यह शरीर पंचतत्त्वका बना हुआ है, जलफेनके समान यह क्षणभंगुर है, कर्म तथा गुणसे इसका निर्माण हुआ है, यह आने-जानेवाला है, सदा कालके वशीभूत रहता है और यह शरीर बालकोंके खिलौने जैसा है । इसीसे बुद्धिमान् लोग इसके विषयमें सोच नहीं करते ॥ ११ ॥ सात्त्विक मनुष्य स्वर्ग जाते हैं, रजोगुणी मध्यमें रहते हैं और तमोगुणी लोग पातालको जाते हैं । ऐसे लोग अपने कर्मोंसे बार-बार धरतीपर आया-जाया करते हैं ॥ १२ ॥ जैसे नेत्रके धूमनेसे धरती व्यर्थ धूमती दीखती है, वैसे ही यह संसार मनःकल्पित है । इसको सब ओरसे भय है । अतएव जगत् सदा भयभीत रहता है, जैसे बालक दर्पणमें स्थित अपने रूपसे डरने लगता है ॥ १३ ॥ जैसे चक्रवर्ती राजाओंका सुख अस्थायी होता है, वही हाल पातालवासियोंका है । वैसे ही देवताओंके प्रीत्यर्थ किये जानेवाले यज्ञ-यागादिसे प्राप्त फलका सुख भी क्षणिक होता है । इसीसे भगवत्परायण भक्त जगत्के सुखोंको लृणवत् समझकर त्याग देते हैं ॥ १४ ॥ जैसे ऋतु तथा देहके गुण अनित्य होनेके कारण नित्य जगत्के सुखोंको लृणवत् समझकर त्याग देते हैं ॥ १४ ॥ जैसे ऋतु तथा देहके गुण अनित्य होनेके कारण नित्य आते-जाते रहते हैं, वैसे ही लोग आते-जाते हैं । जैसे पथिकको मार्गमें साथी मिलते हैं और बिछुड़ जाते हैं, वैसे ही संसारमें जो कुछ भी दृश्य है, वह सब अनित्य है—मिथ्या है ॥ १५ ॥ जो भो वस्तु दीखती है, वह

यथेदुरेको जलपात्रवृन्दगो यथाऽग्निरेको विदितः समिचये ।
 तथा परात्मा भगवाननेकवत्सोऽन्तर्बहिः स्यात्सुकृतेषु देहिषु ॥१७॥
 यो ज्ञाननिष्ठोऽतिविरागमाश्रितः श्रीकृष्णभक्तस्त्वनपेक्षकोऽपि यः ।
 तपोवनं वाऽपि गृहं गृहं वनं स्पृशन्ति तं ते त्रिगुणा न सर्वतः ॥१८॥
 ततो यतिस्त्वध्यगमत्परात्परं सुखी सदानन्दमयस्तु बालवत् ।
 देहेन पश्यत्युत सर्वकारणं धृतं च वासो मदिरामदांधवत् ॥१९॥
 ह्ययोदये सर्वतमो विलीयते प्रदृश्यते वस्तु गृहे यथा जनैः ।
 ज्ञानोदयेऽज्ञानतमः प्रलीयते संभ्राजते ब्रह्म परं तनौ तथा ॥२०॥
 यथेन्द्रियाणां च पृथक् च वर्त्मभिर्नोन्नीयतेऽर्थस्त्रिगुणाश्रयः परः ।
 एकं ह्यनंतस्य परस्य धाम तत्तथा मुनीनां किल शास्त्रवर्त्मभिः ॥२१॥
 परं पदं केऽपि वदन्ति वैष्णवं के वापि वैकुण्ठपरं परेशम् ।
 शान्तिं च यत्केऽपि तमः परं बृहत् कैवल्यमेके प्रवदन्ति धामके ॥२२॥
 यदक्षरं केऽपि दिशं वदन्ति के गोलोकमाद्यं प्रवदन्त्यथापरे ।
 केचिन्निकुञ्जं निजलीलयावृतं प्राप्नोति कृष्णस्य पदं च तन्मुनिः ॥२३॥

श्रीनारद उवाच

इति काण्वैवंचः श्रुत्वा सर्वे यादवपुङ्गवाः । शस्त्राणि जगृहुर्हृष्टा तज्ज्ञाने धैर्यवर्द्धने ॥२४॥
 बभूव तुमुलं युद्धं दैत्यानां यदुभिः सह । सीतागङ्गातटे चाब्धौ रक्षसां कपिभिर्यथा ॥२५॥
 गन्धिनो रथिभिस्तत्र पत्तिभिः पत्तयो नृप । अश्ववाहैरश्ववाहा युयुधुश्च गजा गजैः ॥२६॥

त्रिजलोकी चमकके समान क्षणिक है । अतएव दृश्य प्रपंचसे हटकर परम पुरुषको खोजो । उसके प्राप्त हो जानेपर तो दोनों लोकोंका कोई प्रयोजन ही नहीं रह जाता । अतएव अपने कल्याणका मार्ग बनाकर सर्वत्र परमेश्वरको देखते हुए विचरो ॥ १६ ॥ जैसे एक ही चन्द्रमा अनेक जलभरे घड़ोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारका दिशाया देता है, वैसे ही भगवान् एक होते हुए भी विभिन्न देहधारियोंमें भिन्न-भिन्न रूपमें दृष्टिगोचर होते हैं । जैसा एक अग्नि सौ उपलोंमें सौ रूपसे दीखता है, वैसे ही एक भगवान् सब प्राणियोंमें अनेक रूपसे दीखते हैं ॥ १७ ॥ जो ज्ञाननिष्ठ हो, वैराग्यवान् हो, श्रीकृष्णका भक्त हो और जिसको कोई कामना न हो, वह चाहे तपोवनमें रहे या घरको ही तपोवन बना ले, उसको सत्त्व-रज-तम ये तीनों गुण स्पर्श नहीं करते ॥ १८ ॥ नचवे अर्थमें संन्यासी ही परात्पर ब्रह्मको प्राप्त होता है । वह सदा बालककी तरह आनन्दमय रहता है । वह अपनी देहिक चक्षुसे नय प्रपंचोंको देखता भी है, किन्तु मदिरासे मदान्ध पुरुषकी भाँति उसे अपनी खबर नहीं रहता, जैसे मत्त मनुष्यको अपने वस्त्रकी भी सुधि नहीं रहती ॥ १९ ॥ जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार दूर हो जाता है और घरकी सभी वस्तुयें दृष्टिगोचर होने लगती हैं, वैसे ही ज्ञानका उदय होनेपर अज्ञानरूपी अन्धकार नष्ट होकर ब्रह्मका प्रकाश प्राप्त हो जाता है ॥ २० ॥ इन्द्रियोंके पृथक्-पृथक् ज्ञानसे त्रिगुणाश्रयी अर्थ पृथक्-पृथक् दीखता है । जैसे हाथसे गरम-ठंडा, जिह्वासे खट्टा-मीठा, आँखोंसे नीला-पीला, नाकसे सुगन्ध-दुर्गन्ध आदि । उसी तरह मुनियोंके बताये मार्गके अनुसार एक ही ब्रह्म अनेक तरहसे कहा-सुना जाता है ॥ २१ ॥ उसी ब्रह्मको कुछ लोग वैष्णव परम पद कहते हैं, कुछ लोग उसे वैकुण्ठ कहते हैं, कुछ शान्तस्वरूप कहते हैं, कुछ लोग उसे मायातीत ब्रह्म कहते हैं और कुछ उसे कैवल्यधाम कहते हैं ॥ २२ ॥ कुछ लोग उसे अक्षर (अविनाशी), कुछ लोग आद्य ईश्वर, कुछ निकुंजलीलावृत गोलोकवासी और कुछ लोग श्रीकृष्ण कहते हैं । अन्तमें मुनिजन उसी पदको प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! श्रीकृष्णसुत प्रद्युम्नके इन धैर्यवर्धक वाक्योंको सुनकर सभी प्रमुख यादवोंने प्रसन्नतापूर्वक शस्त्र ग्रहण कर लिये ॥ २४ ॥ तब उन दैत्यों और यादवोंमें सीतागंगाके तटपर घोर युद्ध हुआ । जैसा कि वानरों और राक्षसोंका युद्ध लंकामें

केचित्करींद्रा उन्मत्ता महामात्यैः प्रणोदिताः । गिरींद्रा इव दृश्यन्ते मुक्तानां मेघडंबरैः ॥२७॥
 गुण्डादण्डैश्च फूत्कारैः सचीत्कारैः समृद्धलैः । पातयंतो रथानश्चान् वीरान् राजन् रणांगणे ॥२८॥
 गुण्डादण्डैः संगृहीत्वा रथान्साश्वान्ससारथीन् । निपात्य भूमावुत्थाप्य चिक्षिपुश्चांबरे बलात् ॥२९॥
 कांश्चिन्ममर्दुः पादाभ्यां संविदार्य करैर्दृढैः । सक्षताश्च गजा राजन्प्रधावंतो रणाङ्गणे ॥३०॥
 सपक्षास्तुरगा राजन्नश्चवाहप्रणोदिताः । उल्लंघयन्तोऽथ रथान् गजकुम्भान्तरे गताः ॥३१॥
 केचिदश्वैर्महावीराः शक्तिहस्ता मदोत्कटाः । जघ्नुर्गजस्थानृपतीन्मृगेंद्रा इव यूथपान् ॥३२॥
 अश्वारूढाः केऽपि सेनां संविदार्य विनिर्गताः । खड्गवेगैः पद्मवनं लीलाभिर्यावो यथा ॥३३॥
 केचित्परस्परं साश्वैरुत्पतन्तो रणाङ्गणे । खड्गैर्जघ्नुर्यथा क्रुध्यं चंचुभिः पक्षिणोऽम्बरे ॥३४॥
 केचित्खड्गैः परशुभिः केचिच्चक्रैः पदातयः । चिच्छिदुर्निशितैर्भल्लैः फलानीव शिरांसि च ॥३५॥
 संग्रामजिद्वृद्धत्सेनः शूरः प्रहरणो विजित् । जयः सुभद्रो वामश्च सत्यकोऽश्वयुरेव हि ॥३६॥
 भद्रायाश्च सुता ह्येते श्रीकृष्णस्यौरसाः शुभाः । सर्वेषामग्रतः प्राप्ता युयुधुदैत्यपुङ्गवैः ॥३७॥
 भूतसन्तापनो नाम गजारूढो महासुरः । यदुसैन्ये महाराज चक्रे नाराचदुर्दिनम् ॥३८॥
 बाणांधकारे च कृते भूतसन्तापनेन वै । संग्रामजित्पदा प्राप्ताः श्रीकृष्णस्य सुतो बली ॥३९॥
 विन्याध बाणशतकैर्भूतसन्तापनं रणे । प्रलयार्णवसंघोषभीमसंघट्टनादिनीम् ॥४०॥
 धनुर्ज्यां तस्य चिच्छेद भूतसन्तापनो बली । संग्रामजिद्वनुश्चान्यद्गृहीत्वा स्वं तडित्प्रभम् ॥४१॥
 सज्जं कृत्वा विधानेन शतं बाणान्समादधे । ते बाणास्तद्वनुर्ज्यां च कवचं लोहनिर्मितम् ॥४२॥
 मित्वा छित्वा तनुं तस्य गजं मित्वाऽवनिं गताः । बाणप्रहारव्यथितः किंचिद्वथाकुलमानसः ॥४३॥

समुद्रके तटपर हुआ था ॥ २५ ॥ रथियोंसे रथी, पैदल सैनिकोंसे पैदल सैनिक, घुड़सवारोंसे घुड़सवार और हाथियोंसे हाथी लड़ने लगे ॥ २६ ॥ कुछ उन्मत्त हाथी महावर्तोंसे प्रेरित होकर मेघयुक्त पर्वतोंकी भाँति दीख रहे थे ॥ २७ ॥ हे राजन् । वे हाथी अपनी सूँड़ोंकी फुंकारसे, चीत्कारसे और सिक्कड़ोंकी खनखनाहटसे रथों, घोड़ों तथा सैनिकोंको मार-मारकर गिराने लगे ॥ २८ ॥ उन हाथियोंने अश्वों और सारथियों समेत रथियोंकी उठाकर भूमिपर पटका और फिर जोरसे उठाकर आकाशमें फेंक दिया ॥ २९ ॥ उन्होंने कुछ सैनिकोंको अपनी सूँड़ोंसे पकड़कर चीरा और अपने दोनों पैरोंसे मसल दिया । उनमेंसे कुछ घायल हाथी रणांगणमें दौड़ने लगे ॥ ३० ॥ हे नृप । कुछ उड़नेवाले घोड़े सवारोंकी प्रेरणासे रथोंको लाँचकर हाथियोंके मस्तकपर चढ़ गये ॥ ३१ ॥ कुछ बर्छीधारी घुड़सवार मदमत्त हाथियोंपर बैठे हुए राजाओंको इस तरह मारने लगे, जैसे सिंह हिरन अथवा हाथियोंको मारते हैं ॥ ३२ ॥ कुछ घुड़सवार वेगके साथ तलवारसे सेनाको काटते हुए बाहर निकल गये, जैसे वायु कमलवनको चीरकर निकल जाता है ॥ ३३ ॥ कुछ घुड़सवार उछल-उछलकर तलवारोंसे एक दूसरेको काट रहे थे । जैसे मांसाहारी पक्षी आकाशमें मांसके लिए परस्पर मार-काट करते हैं ॥ ३४ ॥ कुछ पैदल सैनिक तलवार, फरसा, चक्र तथा तीक्ष्ण भालेसे दूसरे सैनिकोंके सिर फलकी तरह काट रहे थे ॥ ३५ ॥ संग्रामजित्, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, विजित्, जय, सुभद्र, वाम, सत्यक और अश्वयु ये दस श्रीकृष्ण तथा भद्राके औरस पुत्र दैत्योंसे लड़नेके लिए आगे आये और आते ही वे वहाँके बड़े-बड़े दैत्योंसे लड़ने लगे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ उसी समय भूतसन्तापन नामका दैत्य हाथीपर चढ़कर आया, आते ही उसने अपनी विकराल बाणवर्षासे यादवोंकी सेनामें दुर्दिन (बरसातका दिन) उपस्थित कर दिया ॥ ३८ ॥ इस प्रकार भूतसन्तापन द्वारा दुर्दिन उपस्थित कर दिये जानेपर श्रीकृष्णका बलवान् पुत्र संग्रामजित् रणभूमिमें आया ॥ ३९ ॥ रणमें पहुँचते ही संग्रामजित्ने भूतसन्तापनको सौ बाण मारे । तभी प्रलयकालीन समुद्रसदृश गर्जन करनेवाली संग्रामजित्की प्रत्यंघाकी भूतसन्तापनने काट दी । तत्काल संग्रामजित्ने बिजलीके समान चमकीला दूसरा धनुष ले लिया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ उसे विधिवत् चढ़ाकर संग्रामजित्ने भूतसन्तापनपर फिर सौ बाण छोड़े । भूतसन्तापनके धनुषकी प्रत्यंघा, लौहकवच तथा उसके शरीरको छेद और उसके हाथीको सेवकर वे बाण धरतीमें समा गये ।

गजं स्वं नोदयामास भूतसन्तापनो बली । कालांतकसमं नागं दृष्ट्वा संग्रामजिह्वली ॥४४॥
 गृहीत्वा स्वमसि दिव्यं संजघान रणांगणे । तस्य खड्गग्रहारेण शुण्डादंडो द्विधाऽभवत् ॥४५॥
 चीत्कारमुत्कटं कुर्वन् मदं संसावयन्कटात् । भूतसन्तापनं त्यक्त्वा भुवनं कंपयन् गजः ॥४६॥
 निपातयन्महावीरानघंटानादैर्नदन्मुहुः । न बलात्स्तम्भितो दैत्यैः पुरीं चंद्रावतीं ययौ ॥४७॥
 कोलाहलो महानासीद्ब्रजबेवं गजे च्युते । भूतसन्तापनश्चक्रं श्रीकृष्णस्य सुताय वै ॥४८॥
 चिक्षेप निशितं शीघ्रं ग्रीष्ममार्तडवत्स्फुरत् । तदागतं भ्रमद्दृष्ट्वा चक्रं भद्रात्मजो बली ॥४९॥
 स्वचक्रेण महाराज लीलया शतधाऽच्छिनत् । जठरस्य गिरेः शृङ्गं समुत्पाद्य महासुरः ॥५०॥
 चिक्षेप कृष्णपुत्राय नादयन् व्योममण्डलम् । संग्रामजिच्च तच्छृङ्गं गृहीत्वा भुजयोर्वलात् ॥५१॥
 तताड तेन राजेंद्र भूतसन्तापनं रणे । भूतसन्तापनो दैत्यः सम्पूर्णं जठरं गिरिम् ॥५२॥
 गृहीत्वा सङ्गरे तस्थानुद्धतो दैत्यपुङ्गवः । अनेन घातयिष्यामि त्वां रणे प्रवदन्मुखात् ॥५३॥
 देवकूटं समुत्पाद्य गिरिं च श्रीहरेः सुतः । अनेन घातयिष्यामि त्वां रणे प्रवदन्मुखात् ॥५४॥
 तस्थौ तत्सम्मुखे राजंस्तदद्भुतमिवामवत् । क्षिपन्तं पर्वतं दैत्यं भूतसन्तापनं नृप ॥५५॥
 तताड गिरिणा स्वेन रणे संग्रामजिह्वली । जठरो देवकूटश्च द्वौ गिरी दैत्यमस्तके ॥५६॥
 पतितौ भूरभाराढ्यौ वज्रसंघर्षनादिनौ ॥५७॥

भूतसन्तापनस्ताभ्यां पतितः पञ्चतां गतः । तज्ज्योतिः संग्रामजिति लीनं जातं विदेहराट् ॥५८॥
 श्रीसंग्रामजितः सैन्ये नेदुर्दुभयस्तदा । भद्रात्मजोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ॥५९॥
 इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे भूतसन्तापनदैत्यवधो नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

इस प्रहारसे महाबली भूतसन्तापन कुछ व्याकुल हो गया ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ तथापि भूतसन्तापनने अपने हाथीको आगे बढ़नेके लिए प्रेरित किया । कालान्तकके समान भीषण उस हाथीको देखकर बलवान् संग्रामजित्ने अपनी तीक्ष्ण धारवाली तलवार मारी । उस प्रहारसे कटकर हाथीकी सूँढ़के दो टुकड़े हो गये ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ तब वह भयानक चीत्कार करता, गंडस्थलसे मद बहाता, वारम्बार घंटे बजाता, राहमें पड़नेवाले योद्धाओंको गिरा-गिराकर रौंदता तथा घरतीको कँपाता हुआ भूतसन्तापनको वहीं छोड़कर भागा । लोगोंने उसको रोकनेकी चेष्टा की, फिर भी नहीं रुका और सीधे चन्द्रावती पुरीको चला गया ॥४६॥४७॥ उस हाथीके इस प्रकार भागनेसे बड़ा कोलाहल मचा । उसी समय भूतसन्तापनने श्रीकृष्णके पुत्र संग्रामजित्पर बड़ा तीक्ष्ण और ग्रीष्मकालीन सूर्य जैसा तेजस्वी चक्र चला दिया । उस घूमते हुए चक्रको अपनी ओर आते देख भद्राके पुत्र संग्रामजित्ने अपने चक्रसे बीचमें ही सौ टुकड़े करके गिरा दिया । तब उस महान् असुरने जठर गिरिका एक विशाल शिखर उखाड़ लिया ॥४८-५०॥ और समस्त आकाशमण्डलको निनादित करते हुए उसने पर्वतशिखरको संग्रामजित्के ऊपर फेंका । किन्तु उसको उन्होंने अपनी भुजाओंपर रोक लिया और उसीसे भूतसन्तापनपर प्रहार कर दिया । तब भूतसन्तापन पूरा जठरपर्वत उखाड़कर रणभूमिमें खड़ा होगया और बोला—इसी पर्वतसे रणमें मैं तुम्हें मार डालूँगा ॥ ५१-५३ ॥ उसी समय श्रीकृष्णके पुत्र संग्रामजित्ने देवकूट पर्वतको उखाड़कर उस दैत्यसे कहा—इसी पहाड़से मैं तुम्हें मार डालूँगा । ऐसा कहकर वे उसके समक्ष खड़े हो गये । उनका यह साहस देखकर लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ । जैसे ही भूतसन्तापन पर्वतको फेंकनेके लिए उद्यत हुआ, तैसे ही बलवान् संग्रामजित्ने अपना देवकूट पर्वत उसके ऊपर पटक दिया । इस प्रकार जठर और देवकूट दोनों पहाड़ उस दैत्यके मस्तकपर गिरे ॥ ५४-५६ ॥ बहुत अधिक भारके कारण वे दोनों पर्वत वज्रपातके समान तड़तड़ाकर गिरे ॥ ५७ ॥ उन पहाड़ोंकी मारसे मरकर भूतसन्तापन घरतीपर गिर पड़ा और उसके शरीरसे निकली ज्योति संग्रामजित्में लीन हो गयी ॥ ५८ ॥ तत्काल संग्रामजित्की सेनामें

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

(वृक दैत्यके वधकी कथा)

श्रीनारद उवाच

संग्रामजिन्महायुद्धे भूतसन्तापने मृते । हाहाकारी महानासीदैत्यसेनासु मैथिल ॥ १ ॥
 शकुनिर्वृकः कालनाभो महानाभस्तथैव च । हरिश्मश्रुश्च पञ्चैते सम्प्राप्ता रणमंडले ॥ २ ॥
 कार्णिगः शकुनिनाऽयुद्धदनिरुद्धो वृकेण वै । कालनाभेन सांवस्तु महानाभेन दीप्तिमान् ॥ ३ ॥
 हरिश्मश्रुसुरेणापि भानुः कृष्णसुतो बली । सर्वेषामग्रतः प्राप्तोऽनिरुद्धो धन्विनां वरः ॥ ४ ॥
 विभेद बाणैर्दैत्याश्च वज्रैर्णेद्रो यथा गिरीन् । अनिरुद्धशरैर्दैत्याश्छिन्नपादांसजानवः ॥ ५ ॥
 निपेतुर्मूर्च्छिता भूमौ वृक्षा वातहता इव । अनिरुद्धशरैस्तीक्ष्णैः संछिन्ना मेघडंबराः ॥ ६ ॥
 छिन्नकुम्भा भिन्नशुंडाः पतिता रणमंडले । रुग्णदन्ताश्छिन्नकक्षाः शैला वज्रहता इव ॥ ७ ॥
 द्विधाभूता गजाः पेतुः स्फुरत्काश्मीरकंचलाः । करिणां भिन्नकुम्भानां मुक्ता रेजुः स्फुरत्प्रभाः ॥ ८ ॥
 बाणांधकारे राजेन्द्र रात्रौ तारागणा इव । प्रधर्षिताः केऽपि वीरा अनिरुद्धशरान्विताः ॥ ९ ॥
 निपेतुर्मूर्च्छिता भूमौ तदद्भुतमिवाभवत् । केचित्कौरथिनः पेतुस्तेषां शून्या रथाः स्थिताः १० ॥
 कपित्थस्य फलानीव हस्तिकोष्ठगतानि च । क्षणमात्रेण राजेन्द्र दैत्यानां वाहिनीषु च ॥ ११ ॥
 नदी बभूव संग्रामे भीषणा भतजस्रवात् । द्विपग्राहा चोष्ट्रखरकबंधास्यादिकच्छपा ॥ १२ ॥
 शिशुमाररथा केशशैवाला भुजसर्पिणी । करमीना मौलिरत्नहारकुण्डलशर्करा ॥ १३ ॥
 शस्त्रशक्तिच्छत्रशङ्खा चामरध्वजसैकता । रथाङ्गवर्तसंयुक्ता सेनाद्वयतटावृता ॥ १४ ॥
 शतयोजनविस्तीर्णा बभौ वैतरणी यथा । प्रमथा भैरवा भूता वेताला योगिनीगणाः ॥ १५ ॥

विजयसूचक नगाड़े बजने लगे और देवता उनके ऊपर पुष्पवर्षा करने लगे ॥ ५९ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्सण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां त्रयविंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! जब संग्रामजित्के युद्धमें भूतसन्तापन मरा तो सारी दैत्यसेनामें महान् हाहाकार मच गया ॥ १ ॥ तब शकुनि, वृक, कालनाभ, महानाभ तथा हरिश्मश्रु ये पांचों दैत्यवीर रणांगणमें आये ॥ २ ॥ वहाँ पहुँचते ही प्रद्युम्न और शकुनिमें, वृक और अनिरुद्धमें, कालनाभ और साम्बमें, महानाभ और दीप्तिमान्में और हरिश्मश्रु तथा भानुमें द्वन्द्वयुद्ध छिड़ गया । उनमें सर्वप्रथम धनुर्धरोंमें प्रमुख अनिरुद्ध आये ॥ ३ ॥ ४ ॥ वे अपने बाणोंसे दैत्योंको इस तरह बँधने लगे, जैसे इन्द्रने पर्वतोंको बँधा था । अनिरुद्धके बाणोंसे दैत्योंके पैर, कंधे और छुटने कट गये ॥ ५ ॥ जिससे वे सब मूर्छित हो-होकर वैसे ही गिर पड़े, जैसे वायुके प्रबल झोंकेसे वृक्ष गिर जाते हैं । अनिरुद्धके तीखे बाणोंसे मेघके समान भारी हाथी इन्द्रके वज्रसे मारे गये पर्वतोंके समान झूलुण्ठित हो गये । उनके मस्तक विदीर्ण हो गये, सँड़ कट गयी, दाँत दूट गये और होदा दूर जा गिरा ॥ ६ ॥ ७ ॥ जिनपर कश्मीरी कम्बलकी झूल लटक रही थी, वे हाथी दो-दो टुकड़े होकर गिर पड़े । उनके फटे हुए मस्तकोंसे बिखरे मोती इस प्रकार झलकने लगे ॥ ८ ॥ जैसे उस बाणवर्षाके अन्धकारमें आकाशके तारे चमक रहे हों । कितने ही दैत्यवीर अनिरुद्धके नाणोंसे धराशायी हो गये ॥ ९ ॥ बहुतेरे मूर्छित होकर भूमिमें लोट गये । इससे लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ । कितने ही रथी धरतीपर गिर पड़े और उनके रथ वैसे ही सूने हो गये, जैसे हाथीके पेटमें पहुँचे हुए कैथेके फल । हे नरेन्द्र ! क्षणमात्रमें दैत्योंकी सेनामें रुधिरकी बड़ी भयंकर नदी बह चली । जिसमें हाथी ग्राह तथा ऊँट-गाधे आदि पशुओंके घड़ और मुख कछुएके समान थे ॥ १०-१२ ॥ उस रक्तेकी नदीमें रथ शिशुमार, केश सेवार, भुजाये सर्प, कटे हाथ मछली तथा मुकुट-हार-कुण्डल-कंकण उस नदीके पत्थर थे ॥ १३ ॥ शस्त्र शक्ति, छत्र शंख, ध्वजा बालू, रथके पहिये भ्रमर और उभयपक्षकी सेनायें उस नदीके तट थीं ॥ १४ ॥ सो योजन विस्तृत

अट्टहासं प्रकुर्वतो नृत्यंतो रणमण्डले । पिबन्तो रुधिरं शशवत्कपालेन नृपेश्वर ॥१६॥
 हरस्य मुण्डमालार्थं जगृहुस्ते शिरांसि च । सिंहारूढा भद्रकाली डाकिनीशतसंवृता ॥१७॥
 भक्षयन्ती रणे दैत्यानट्टहासं चकार ह । विद्याधर्यस्त्वंवरस्था गन्धर्व्योऽप्सरसस्तथा ॥१८॥
 क्षात्रधर्मस्थितान् वीरान् वव्रिरे देवरूपिणः । परस्परं कलिभूत्वा तासां पत्यर्थमंबरे ॥१९॥
 ममानुरूपो नायं व इति विह्वलचेतसाम् । केचिद्वीरा धर्मपरा रणरङ्गाच्च चालिताः ॥२०॥
 ययुर्विष्णुपदं दिव्यं मित्वा मार्तण्डमण्डलम् । अनिरुद्धं रिपुं दृष्ट्वा केचिदैत्याः पलायिताः ॥२१॥
 केचित्स्वं स्वं रणं त्यक्त्वा दुद्रुवुस्ते दिशो दश । तदा वृको महादैत्यः खरारूढो भयङ्करः ॥२२॥
 आजगाम नदन् युद्धे धनुश्चक्रारयन्मुहुः । अनिरुद्धस्यापि चायं सिंजिनीसहितं धनुः ॥२३॥
 चिच्छेद दशभिर्वाणैर्वृकोऽपि रणदुर्मदः । छिन्नधन्वाऽनिरुद्धस्तु द्वितीयं धनुराददे ॥२४॥
 चिच्छेद दशभिर्वाणैर्वृकचापं महाबलः । वृकस्त्रिशूलमुद्यम्य रुषा प्रस्फुरिताधरः ॥२५॥
 ललज्जिह्वः प्रत्युवाचानिरुद्धं धन्विनां वरम् ।

वृकदैत्य उवाच

अद्यैव त्वां हनिष्यामि क्षत्रियं स्वस्थविक्रमम् । त्वया सेना हता मेऽद्य पश्य विक्रममद्भुतम् २६॥

अनिरुद्ध उवाच

ये वदन्ति मुखेनेह ते कुर्वन्ति न किञ्चन । अद्यैव त्वां हनिष्यामि पश्य मे विक्रमं परम् ॥२७॥
 न चेत्त्वां घातयिष्यामि शृणुताच्छपथं मम । विप्रगोभ्रूणबालानां इत्या मे स्यात्सदैव हि ॥२८॥

श्रीनारद उवाच

वृकोऽपि क्षपथं कृत्वा खरारूढो महाबलः । जघान तं त्रिशूलेनानिरुद्धं धन्विनां वरम् ॥२९॥

वह रुधिरनदी वेत्ररणीके समान दृष्टिगोचर हुई । प्रमथ, भैरव, भूत, वेताल और योगिनीगण अट्टहास करते और नाचते हुए रणभूमिमें रुधिरको खोपड़ियोंमें भर-भरकर पी रहे थे ॥ १५ ॥ १६ ॥ साथ ही शिवजीकी मुण्डमालाके निमित्त मुंडोंका संचय भी करते चलते थे । सैकड़ों डाकिनियोंसे घिरी तथा सिंहपर सवार भद्र-काली रणांगणमें दैत्योंको भक्षण करती हुई अट्टहास कर रही थीं । उधर विमानोंपर बैठी हुई विद्याधरियाँ, गन्धर्वियाँ और अप्सरायें क्षात्रधर्मपरायण देवस्वरूप वीरोंको वरने और अपने मनका पति प्राप्त करनेके लिए परस्पर लड़ने लगीं ॥ १७-१९ ॥ उनमेंसे कोई कहती कि यह वर तो मेरे अनुरूप नहीं है, किन्तु तेरे योग्य है और यह मेरे अनुरूप है । ऐसा कहकर छीना-झपटी करते-करते वे विह्वल हो गयीं । बहुतेरे धर्मात्मा वीर रणभूमिसे नहीं हटे । मरणोपरान्त वे सूर्यमंडल भेदकर दिव्य विष्णुपदको प्राप्त हो गये । अनिरुद्धको शत्रुरूपमें सम्मुख उपस्थित देखकर बहुतेरे दैत्य रणांगणसे भाग गये ॥ २० ॥ २१ ॥ बहुतसे दैत्य अपना-अपना चालू युद्ध त्यागकर दसों दिशाओंमें भाग चले । तब बड़ा भयानक वृक नामका दैत्य गधेपर चढ़कर गर्जन-तर्जन करता हुआ आया । वह बारम्बार धनुष टंकार रहा था । सो रणमें आते ही उस रणदुर्मद दैत्यने अनिरुद्धका प्रत्यक्षा समेत धनुष अपने दस बाणोंसे काट डाला । इस प्रकार धनुष कट जानेपर अनिरुद्धने दूसरा धनुष ले लिया ॥ २२-२४ ॥ और अपने दस बाणोंसे उन्होंने वृक दैत्यका धनुष काट दिया । तत्काल वृकने धनुष त्यागकर त्रिशूल ले लिया । उस समय उसकी जीभ लपलपा रही थी और होंठ फड़क रहे थे । उसने सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर अनिरुद्धसे कहा । वृक दैत्य बोला—स्वस्थ तथा पराक्रमसम्पन्न तुमको मैं आज मार डालूँगा । क्योंकि तुमने मेरी सेनाका वध किया है । अब मेरा अद्भुत पराक्रम देखो ॥ २५ ॥ २६ ॥ अनिरुद्ध बोले—जो लोग मुखसे बोलते हैं, वे कुछ नहीं करते । मैं अभी तुमको मार डालूँगा । तुम मेरा परम पराक्रम देखो ॥ २७ ॥ यदि मैं तुम्हें न मारूँ तो मेरी जो क्षपथ है, उसे सुनो । यदि तुमको न मारूँ तो ब्राह्मण, गौ, बालक तथा भ्रूण (गर्भस्थ शिशु) इनकी हत्याका पाप मुझको लगे ॥ २८ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! इसी प्रकार उस वृकने भी क्षपथ ली और गधेपर सवार होकर धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धको त्रिशूलसे मारा ॥ २९ ॥ किन्तु

तच्छूलं वामहस्तेन गृहीत्वा कार्ष्णिनन्दनः । तताड सहसा राजन् वृकदैत्यं महाबलम् ॥३०॥
तदाऽसुरः कोपपूर्णो मुक्त्वाऽथ महतीं गदाम् । चूर्णयामास सहसा चानिरुद्धरथं बलात् ॥३१॥
प्राच्युम्निः शितधारेण खड्गेनारिभुजद्वयम् । चिच्छेद मिदुरेणाशु शैलपक्षौ यथा वृषा ॥३२॥

तदाऽभिन्नभुजो दैत्यः पद्मथामाकंपयन्भुवम् ॥३३॥

विस्तीर्णं वदनं कृत्वा ललज्जिह्वं भयङ्करम् । करालदंष्ट्रः प्रपिबन्नाकाशं दैत्यपुङ्गवः ॥३४॥
तिमिं तिमिगिल इव प्राग्रसत्कार्ष्णिनन्दनम् । दैत्योदरे कृष्णपौत्रः श्रीकृष्णस्यानुकंपया ॥३५॥
न ममार महाराज कार्ष्णिमीनोदरे यथा । वृकोदरे यथा कृष्णो यथा गोपा ह्यघोदरे ॥३६॥
बकोदरे यथा कृष्णो यथा वृत्रोदरे वृषा । हाहाकारे तदा जाते यदुसैन्ये विदेहराट् ॥३७॥
गदो गदां समादाय बलदेवानुजो बली । तताड मस्तके दैत्यं वृकं नाम महाबलम् ॥३८॥
तदा हतशिरा दैत्यो रेजे क्षतजर्विंदुभिः । गरिकैर्जलधाराभिर्यथा विंध्याचलो नृप ॥३९॥
फाण्गुनः स्वमसिं नीत्वा तत्पादौ चांजसाऽहरत् । छिन्नाग्निः स पपातोव्यां छिन्नपक्षो यथा गिरिः ॥
अनिरुद्धस्तदुदरं मित्वा खड्गेन निर्गतः । जहार तच्छिरश्चायं यथा वज्रेण वृत्रहा ॥४१॥

तदा जयजयारावो यदुसैन्ये बभूव ह ।

देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभयस्तथा ॥४२॥

अनिरुद्धोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ।

कथितं ह्यद्भुतं चैतत्किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४३॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे वृकदैत्यवधो नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

उस त्रिशूलको अनिरुद्धने बायें हाथसे पकड़ लिया और उसीसे वृकपर प्रहार कर दिया ॥ ३० ॥
इससे अतीव क्रुद्ध होकर वृकने अपनी गदासे अनिरुद्धके रथको चूर्ण कर डाला ॥ ३१ ॥ तब प्रद्युम्नके पुत्र
अनिरुद्धने अपनी तेज धारवाली तलवारसे वृकासुरकी दोनों भुजायें काट डालीं । जैसे पूर्वकालमें इन्द्रने अपने
वज्रसे पर्वतोंके पंख काटे थे ॥ ३२ ॥ इस प्रकार भुजां कट जानेसे वह दैत्य पैरोंसे धरतीको कंपाता, मुंह
फेलाकर अपनी भयंकर जीभ लपलपाता और कराल दांत दिखाता हुआ वह दैत्य ऐसा भयंकर दिखायी पड़ा
कि जैसे सारा आकाश पी जायगा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तभी उसने अनिरुद्धको लील लिया, जैसे तिमि (हेलमछली)
को तिमिगिल निगल जाय । इस प्रकार उस दैत्यके पेटमें पहुँचकर भी अनिरुद्ध श्रीकृष्णकी कृपासे
मरे नहीं । जैसे उनके पिता प्रद्युम्न मगरके उदरमें तथा अघासुरके पेटमें ग्वालबालके साथ श्रीकृष्ण नहीं
मरे थे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हे विदेहराज ! जैसे बकासुरके उदरमें श्रीकृष्ण और वृत्रासुरके पेटमें इन्द्र नहीं मरे थे,
वैसे ही वृकदैत्यके उदरमें अनिरुद्ध नहीं मरे ; किन्तु इस अप्रत्याशित घटनासे यादवोंकी सेनामें बड़ा
हाहाकार मचा ॥ ३७ ॥ उसी समय बलदेवजीके छोटे भाई गदने महाबली वृकासुरके मस्तकपर अपनी
गदाका प्रहार किया ॥ ३८ ॥ इससे उसका मस्तक फट गया और गिरते हुए रक्तकी धारासे वह वैसे ही शोभित
हुआ, जैसे गेरुमिश्रित जलधारासे विन्ध्याचलकी शोभा होती है ॥ ३९ ॥ तभी अर्जुनने अपनी तलवारसे अना-
यास उसके पैर काट डाले । पैर कट जानेसे वह जमीनपर गिर पड़ा, जैसे कटे पंखका कोई पर्वत गिर
पड़े ॥ ४० ॥ उसी समय अनिरुद्ध उसका उदर फाड़कर बाहर त्रिकल आये और अपनी तलवारसे उसका
सिर काट लिया, जैसे इन्द्रने अपने वज्रसे किसीका सिर काटा हो ॥ ४१ ॥ यह देखकर यादवोंकी सेनामें जय-
जयकार होने लगा और देवताओं तथा मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं ॥ ४२ ॥ देवता अनिरुद्धके ऊपर फूल
बरसाने लगे । हे मिथिलेश ! यह अद्भुत कथा मैंने आपको सुनायी । अब और क्या सुनना चाहते हैं ?
॥ ४३ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

(कालनाभ दैत्यका वध)

बहुलाश्व उवाच

अहो अत्यद्भुतं युद्धं मुने प्राद्युम्निना कृतम् । वृके हते महादैत्ये किं बभूव रणे पुनः ॥ १ ॥

श्रीनारद उवाच

वृकदैत्यं हतं वीक्ष्य कालनाभो महासुरः । क्रोडारूढो रणं प्रागादनुष्टङ्कारयन्मुहुः ॥ २ ॥

अक्रूरं बाणविश्रुत्या गदं च दशभिः शरैः । अर्जुनं दशभिर्बाणैर्युयुधानं च पञ्चभिः ॥ ३ ॥

दशभिः कृतवर्माणं कार्णिं बाणशतेन वै । अनिरुद्धं च विश्रुत्या दीप्तिमंतं च पञ्चभिः ॥ ४ ॥

सांबं च शतबाणैश्च विव्याध समरेऽसुरः । तद्बाणैर्व्याकुला वीरा बभूवुर्घटिकाद्वयम् ॥ ५ ॥

इयाश्च पञ्चतां प्राप्ताश्चूर्णीभूता रणाङ्गणे । तद्वस्तलाघवं दृष्ट्वा प्रसन्नो रुक्मिणीसुतः ॥ ६ ॥

कालनाभं साधुपदैः पूजयामास सङ्गरे । प्रद्युम्नः स्वं धनुर्नीत्वा बाणमेकं समादधे ॥ ७ ॥

कोदण्डमुक्तो विशिखस्तत्क्रोडं दीर्घरूपिणम् । समुन्नीय भ्रामयित्वा स्वर्लोके लक्षयोजनम् ॥ ८ ॥

आकाशत्यातयामास समुद्रे भीमनादिनि । प्रद्युम्नो भगवान्साक्षाद्द्वितीयं बाणमादधे ॥ ९ ॥

सोऽपि बाणः समुन्नीय कालनाभं महाबलम् । भ्रामयन्प्रातयामास चन्द्रावत्यां बलात्पुरि ॥ १० ॥

कालनाभः प्रपतितः किञ्चिद्व्याकुलमानसः । गृहीत्वाऽथ गदां गुर्वीं लक्षभारविनिर्मिताम् ॥ ११ ॥

रणं प्राप्तो यदुबलं पोथयामास दैत्यराट् । गजान् रथान्दह्यान् वीरान् गदया वज्रकल्पया ॥ १२ ॥

पातयामास वेगेन महावातो यथा तरुन् । काञ्चित्कराभ्यां प्रोन्नीय चिक्षेप गगने बलात् ॥ १३ ॥

अंबराक्षे निपेतुः कौ राजन् वर्षोपला इव । तदा गदां समादाय सांबो जांबवतीसुतः ॥ १४ ॥

तताड मूर्ध्नि तं दैत्यं कालनाभं महासुरम् । तयोर्युद्धमभूद्धोरं गदाभ्यां रणमण्डले ॥ १५ ॥

इतनी कथा सुनकर राजा बहुलाश्व बोले—हे महामुनि नारदजी ! प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्धने बड़ा अद्भुत युद्ध किया । अब यह बताइए कि वृकासुरके मर जानेपर युद्धभूमिमें क्या हुआ ॥ १ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! वृक दैत्यके मरणका समाचार सुनकर महादैत्य कालनाभ गधेपर चढ़कर घनुषका टंकार करता हुआ युद्धस्थलीमें आया ॥ २ ॥ वहाँ पहुँचते ही उसने बीस बाण अक्रूरको, दस बाण गदको, दस बाण अर्जुनको और पाँच बाण युयुधान (सात्यकि) को मारा ॥ ३ ॥ इसी प्रकार उसने दस बाण कृतवर्माको, सौ बाण प्रद्युम्नको, बीस बाण अनिरुद्धको और पाँच बाण दीप्तिमान्को मारे ॥ ४ ॥ संग्राम करते हुए उसने सौ बाण साम्बका मारे । उन बाणोंकी मारसे सभी यादववीर दो घड़ीके लिए अधीर हो उठे ॥ ५ ॥ उनके घोड़े मर गये और रथ चूर-चूर हो गये । उसका हस्तलाघव देखकर प्रसन्न रुक्मिणीसुत प्रद्युम्नने रणभूमिमें उत्तम वाक्योंसे कालनाभकी बहुत सराहना की । उसके बाद प्रद्युम्नने अपना घनुष लेकर उसपर एक बाण चढ़ाया ॥ ६ ॥ ७ ॥ उनके घनुषसे छूटा हुआ बाण उसके दीर्घकाय गधेको उठाकर घुमाते हुए आकाशमें एक लाख योजन ऊपर ले गया ॥ ८ ॥ वहाँसे उस गधेको उसने भयंकर गर्जन करनेवाले समुद्रमें डाल दिया । इसके बाद प्रद्युम्नने दूसरा बाण लिया ॥ ९ ॥ उस बाणने कालनाभको उठा तथा घुमा-घुमाकर बड़े वेगसे चन्द्रावती पुरीमें फेंक दिया ॥ १० ॥ वहाँ वह जमीनपर जा गिरा । जिससे कुछ क्षणके लिए व्याकुल हो गया, किन्तु तनिक ही देर बाद वह लाख भारकी गदा लेकर फिर रणांगणमें आ धमका । उस वज्र-सरीखी गदासे वह पैदल सैनिकों, घोड़ों और हाथियोंको मार-मारकर वैसे ही धरतीपर गिराने लगा, जैसे तीव्र वेगकी वायु वृक्षोंको गिरा देती है । वीर कालनाभ किसी-किसीको तो हाथोंसे ही उठा-उठाकर आकाशमें फेंकने लगा ॥ ११-१३ ॥ आकाशसे वे लोग वर्षाके ओलोंकी भाँति धरतीपर गिरने लगे । तब गदा लेकर जाम्ब-सुत साम्ब रणांगणमें आये ॥ १४ ॥ आते ही उन्होंने कालनाभके सिरपर एक गदा मारी, जिससे रण-

विस्फुलिगान्क्षरन्त्यौ द्वे गदे चूर्णीवभूवतुः । अन्ये गदे समादाय तस्थतुः सङ्गरे च तौ ॥१६॥
 कालनाभस्तदा ग्राह सांबं जांबवतीसुतम् । एकेनापि प्रहारेण हन्मि त्वां नात्र संशयः ॥१७॥
 पूर्वं प्रहारं कुरु मे इति सांबोऽवदद्रणे । कालनाभोऽथ गदया सांबमूर्ध्नि तताड ह ॥१८॥
 गदोपरि गदां नीत्वा सांबो जांबवतीसुतः । जघान गदया दैत्यं कालनाभमुरःस्थले ॥१९॥
 गदया भिन्नहृदय उद्रमन् रुधिरं मुखात् । व्यसुः पपात भूपृष्ठे वज्राहत इवाचलः ॥२०॥
 अभूजयजयारावः साधुवादः सतां नृप । देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभयस्तथा ॥२१॥
 सांबसेनोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे । विद्याधर्यश्च गंधर्वा ननृतुश्च जगुर्मुदा ॥२२॥
 इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीविश्वजित्खण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे कालनाभदैत्यवधो नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

(महानाभ दैत्यका वध)

श्रीनारद उवाच

कालनाभेऽथ पतिते महान् कोलाहलोऽभवत् । उष्ट्रारूढो महानाभो दैत्यः प्राप्तो रणाङ्गणे ॥ १ ॥
 मुखादग्निं समसृजन्मायावी दैत्यपुङ्गवः । तेनाग्निना भूमिवृक्षा जज्वलुश्च दिशो दश ॥ २ ॥
 वीराणां कंचुकोष्णीषकटिबन्धाङ्गरक्षकाः । प्रजज्वलुर्महाराज मुञ्जपुष्पप्रतुलवत् ॥ ३ ॥
 समुद्रपट्टनभवैः पीतारुणसितासितैः । हरितैश्चित्रवर्णैश्च सूक्ष्मैः काश्मीरजैरपि ॥ ४ ॥
 हेमरत्नखचद्भिश्च कम्बलैः सहिता गजाः । प्रजज्वलुर्मृधे राजन् वृक्षैः शैला इवाग्निना ॥ ५ ॥
 शिखा रत्नैश्चामरैश्च हारैर्हैमैः परिच्छदैः । उत्पतन्तो हया युद्धे मृगा इव दवाग्निना ॥ ६ ॥
 सैन्यं भयातुरं दृष्ट्वा दीप्तिमान् कृष्णनन्दनः । मायावह्निप्रशांत्यर्थं पर्जन्यास्त्रं समादधे ॥ ७ ॥

भूमिमें उन दोनोंका भीषण गदायुद्ध हुआ ॥ १५ ॥ अन्तमें चिनगारियां छोड़ती हुई वे दोनों गदायें चूर होकर दूर जा पड़ीं । उसके बाद वे दोनों वीर फिर गदा ले-लेकर रणभूमिमें खड़े हो गये ॥ १६ ॥ तब कालनाभने आम्बवतीतनय साम्बसे कहा—मैं इस गदाके एक ही प्रहारसे तुम्हें मार डालूँगा । इसमें सन्देह नहीं है ॥ १७ ॥ साम्ब बोले—अच्छा, पहले तू ही मेरे ऊपर प्रहार कर । तब कालनाभने साम्बके सिरपर अपनी गदाका प्रहार किया ॥ १८ ॥ उस प्रहारको साम्बने अपनी गदापर रोक लिया और फिर कालनाभकी छातीपर गदा मारी ॥ १९ ॥ इस प्रहारसे उसकी छाती फट गयी और मुखसे रुधिर फँकता हुआ वह मरकर धरतीपर गिर गया, जैसे इन्द्रके वज्रसे मारा हुआ पर्वत गिर पड़ता है ॥ २० ॥ यह देखकर सबजनोंके मुखसे जय-जयकार तथा धन्य-धन्यका निनाद उच्चरित होने लगा । देवताओं तथा मनुष्योंकी दुःखभियां बजने लगीं ॥ २१ ॥ साम्बकी सेनापर देवता फूल बरसाने लगे । विद्याधरियां नाचने लगीं और गन्धर्व गाने लगे ॥ २२ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

नारदजी बोले—हे राजन् । कालनाभके मरनेपर बड़ा कोलाहल मचा । तब महानाभ दैत्य ऊँटपर चढ़कर रणांगणमें आया ॥ १ ॥ वह मायावी दैत्य मुखसे अग्नि निकालता हुआ आया था । उस अग्निसे भूमिके वृक्ष और दसों दिशाएँ जलने लगीं ॥ २ ॥ सैनिकोंके कुरते, साफे, दुपट्टे तथा अंगरखे मूँजके पुष्प तथा रुईकी भाँति जलने लगे ॥ ३ ॥ समुद्री पाटसे बने रेशमी, पीले, लाल, सफेद और हरे काश्मीरी कम्बल, सुनहले तथा रत्नजटित झूलोवाले हाथी इस प्रकार जलने लगे, जैसे वृक्षों समेत पर्वत दवाग्निसे जलने लगते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ रत्नमयी कलंगी, चमर, सुनहले हार और जीन समेत जलते हुए घोड़े उछलने-कूदने लगे, जैसे दावानलसे झुलसते हुए मृग उछलते हैं ॥ ६ ॥ जब श्रीकृष्णके पुत्र दीप्तिमान्ने अपनी सेनाको अग्नि-

बाणाद्विनिर्गता मेघाः सांवर्तकगणा इव । ववृर्जलधाराभिर्नन्दन्तो भैरवं स्वम् ॥ ८ ॥
 आसारेण महाराज प्रावृट्कालोऽभवत्क्षितौ । पुंस्कोकिलाः कोकिलाश्च मयूराः सारसादयः ॥ ९ ॥
 मंजूकाः प्रजगुर्गीर्भिरिन्द्रगोपाश्च रेजिरे । इन्द्रचापेन दामिन्या मैथिलेन्द्र बभौ नमः ॥ १० ॥
 इत्थं शान्तिं गते बह्वौ महानाभो महासुरः । प्राहिणोन्निशितं शूलं रुषा दीप्तिमते त्वरम् ॥ ११ ॥
 शूलं सर्पमिवायातं दीप्तिमान् रोहिणीसुतः । चिच्छेद त्वसिना युद्धे फणिनं गरुडो यथा ॥ १२ ॥
 दशतं चोद्धृतं चोष्टं महानाभस्य वाहनम् । दीप्तिमान्स्वेन खड्गेन संजघान रणाङ्गणे ॥ १३ ॥
 द्विधाभूतः पपातोव्यां खड्गसंछिन्नकंधरः । जगाम पञ्चतामुष्ट्रो महानाभस्य पश्यतः ॥ १४ ॥
 महानाभो महादैत्यो गजमारुह्य वेगतः । शूलहस्तः पुनः प्रागान्नादयन्व्योममण्डलम् ॥ १५ ॥
 दीप्तिमानश्चमारुह्य सैन्धवं चंचलासितम् । तडित्प्रभेण खड्गेन बभौ श्रीकृष्णनन्दनः ॥ १६ ॥
 तुरंगं पाष्णिघातेन प्रोत्पतन् धरणीतलात् । आरूढो गजकुंभातं गिरिशृंगं यथा हरिः ॥ १७ ॥
 खड्गेन शितधारेण दीप्तिमान्कृष्णनन्दनः । महानाभस्य सहसा शिरः कायादपाहरत् ॥ १८ ॥

बाणवर्षं प्रकुर्वती सेनां तस्य दुरात्मनः ।

जघान दीप्तिमान् सिंहो गजयूथं यथाऽसिना ॥ १९ ॥

केचित्खड्गेनाभिहताः शेषा दैत्याः पलायिताः । देवा दीप्तिमतो मूर्ध्नि पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ॥ २० ॥
 जगुः किन्नरगंधर्वा ननुतुश्चाप्सरोगणाः । ऋषयो मुनयो देवास्तुष्टुवुः श्रीहरेः सुतम् ॥ २१ ॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे महानाभवधो नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

भयसे पीडित देखा तो उस मायामय अग्निकी शान्तिके लिए मेघास्त्रका प्रयोग किया ॥ ७ ॥ उस अस्त्रसे निकले सांवर्तकगणके मेघ भयंकर गर्जन करते हुए मूसलधार जल बरसाने लगे ॥ ८ ॥ जलधारा पड़नेसे वर्षाश्रुतुकी छटा छा गयी, जिससे कोयल तथा पपीहे बोलने लगे, मोर कुहुकने और सारस बोलने लगे ॥ ९ ॥ मेढक टरने लगे, गोपबहूटियाँ रेंगने लगीं और इन्द्रघनुष तथा बिजलीकी चमकसे गगनमण्डल शोभित हो उठा ॥ १० ॥ इस प्रकार जब अग्नि शान्त हो गयी, तब महानाभ असुरने रोहिणीके पुत्र दीप्तिमान्पर अपनी तीक्ष्ण त्रिशूल चलाया ॥ ११ ॥ उस त्रिशूलको सर्पके समान आते देखकर दीप्तिमान्ने बीचमें ही अपनी तलवारसे वैसे ही काट डाला, जैसे गरुड सर्पको काट डालते हैं ॥ १२ ॥ अपने मुखसे काटनेके लिए उद्यत महानाभके ऊँटको दीप्तिमान्ने अपनी तलवारसे मारा ॥ १३ ॥ जिससे वह कटकर दो टुकड़े हो गया । तलवारसे उसकी गर्दन कट गयी थी । अतएव वह महानाभके देखते-देखते मर गया ॥ १४ ॥ तब दैत्य महानाभ हाथीपर चढ़ और त्रिशूल लेकर अपने गर्जनसे आकाशको मुखरित करता हुआ फिर रणमें आ गया ॥ १५ ॥ उस समय दीप्तिमान् एक सिन्धुदेशीय काले घोड़ेपर सवार हो और बिजली जैसी तलवार लेकर बड़ी शोभाको प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ उसी समय दीप्तिमान्ने एड़ी लगाकर घोड़ेको उछाला तो वह महानाभके हाथीके माथेपर चढ़ गया, जैसे सिंह पर्वतपर चढ़ जाता है ॥ १७ ॥ तभी श्रीकृष्णके पुत्र दीप्तिमान्ने अपनी तीक्ष्ण धारवाली तलवारसे महानाभका सिर काटकर घड़से अलग कर दिया ॥ १८ ॥ तदनन्तर दुरात्मा महानाभकी सेनाको बाणवर्षा करते देख दीप्तिमान् उसे तलवारसे इस तरह मारने लगे, जैसे सिंह हाथियोंके झुण्डको मारता है ॥ १९ ॥ उसके कितने ही सैनिक दीप्तिमान्की तलवारसे कट गये । बाकी दैत्य भाग गये । तब देवता दीप्तिमान्पर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ २० ॥ किन्नर तथा गंधर्व गाने लगे और अप्सरायें नाचने लगीं । सभी ऋषि, मुनि और देवता श्रीकृष्णके पुत्र दीप्तिमान्की स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

(श्रीकृष्णतनय भानुके हाथों हरिश्मश्रु दैत्यका वध)

श्रीनारद उवाच

महानाभं मृतं श्रुत्वा सेनां वीक्ष्य पलायिताम् । दैत्यस्तिमिगिलारूढो हरिश्मश्रुः समाययौ ॥ १ ॥
हरिश्मश्रुस्तदा दैत्यो रुषा प्रस्फुरिताधरः । उवाच परुषं वाक्यं यादवानां च शृण्वताम् ॥ २ ॥

हरिश्मश्रुवाच

यूयं सर्वेपि मे शक्त्या मनुष्याः स्वल्पविक्रमाः । शस्त्रैर्जयंतो दीना वै पौरुषं किं भवादृशे ॥ ३ ॥
भवतां बलवान् कोऽपि विना शस्त्रं मया सह । करोतु मल्लयुद्धं वै पौरुषं येन दृश्यते ॥ ४ ॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं दैत्यवचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तत्प्रोद्धतं वपुः । सर्वे बभूवुस्ते तूष्णीं प्रशंसन्तः परस्परम् ॥ ५ ॥
सर्वेषां पश्यतां भानुः सत्यभामात्मजो बली । त्यक्त्वा शस्त्राणि सहसा तस्थौ कृष्णं स्मरन् ॥ ६ ॥
तिमिगिलात्समुत्तीर्य हरिश्मश्रुर्महाबलः । तस्थौ तत्संमुखे राजन् भुजमास्फोट्य यत्नतः ॥ ७ ॥
भुजाभ्यां च भुजौ बद्ध्वा नोदनां चक्रतुर्बलात् । दंतैर्गजाविव वने प्रहरन्तौ परस्परम् ॥ ८ ॥
नोदयामास तं भानुं स दैत्यः शतयोजनम् । भुजाभ्यां राजराजेन्द्र सिंहः सिंहमिवौजसा ॥ ९ ॥
ततः पुनः कृष्णसुतो हरिश्मश्रुं महासुरम् । नोदयामास सहसा सहस्रं योजनं बलात् ॥ १० ॥
कंधरे स्वभुजां कृत्वा कटौ च विनिधाय तम् । भानुं जानौ संगृहीत्वा पातयामास दैत्यराट् ॥ ११ ॥
भानुस्तं पृष्ठदेशेऽपि सन्निधाय भुजौजसा । गृहीत्वा जंघयोर्दैत्यं पातयामास भूतले ॥ १२ ॥
अथ तौ पुनरुत्थाय भुजावास्फोट्य तस्थतुः । त्वरं तौ बलिनौ राजन्सुपर्णफणिनाविव ॥ १३ ॥
दैत्यो भुजौजसा नीत्वा भानुं श्रीकृष्णनन्दनम् । चिक्षेप धृत्वा चरणावाकाशे लक्षयोजनम् ॥ १४ ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् । महानाभका मरण तथा उसकी सेनाको पलायित सुनकर हरिश्मश्रु दैत्य तिमिगिल (ह्वेल मछलीको खा जानेवाले महामत्स्य) पर सवार होकर रणांगणमें आया ॥ १ ॥
मारे क्रोधके जिसके होंठ कांप रहे थे, वह हरिश्मश्रु दैत्य यादवोंको ललकारकर कठोर वचन बोला ॥ २ ॥
हरिश्मश्रुने कहा—तुम सब मनुष्य मेरी शक्तिके समक्ष तुच्छ बलवाले हो । तुम सब दीन हो । तुम लोग अपने शस्त्रोंके बलपर जीतते हो । तुममें पराक्रम ही कितना है ॥ ३ ॥ तुममें कोई ऐसा पराक्रमी है, जो बिना शस्त्रके मुझसे मल्लयुद्ध कर सके, जिससे तुम्हारे पुरुषार्थका पता लग पाये ॥ ४ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् । उस दैत्यका वचन सुन तथा उसकी लम्बी-चौड़ी काया देखकर सभी यादव उसकी सराहना करते हुए चुप हो गये ॥ ५ ॥ तब सभी लोगोंके देखते-देखते सत्यभामाका पुत्र महाबली भानु सब शस्त्रास्त्रोंको त्यागकर भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करता हुआ युद्धभूमिमें खड़ा हो गया ॥ ६ ॥ महाबली हरिश्मश्रु भी तिमिगिलसे उतरकर अपनी भुजा फटकारता हुआ भानुके सम्मुख आया ॥ ७ ॥ तब भुजाओंसे भुजायें मिलाकर भानु उसके साथ वैसे ही लड़ने लगे, जैसे हाथी दाँतोंसे लड़ते हैं । वे दोनों परस्पर कठोर प्रहार कर रहे थे ॥ ८ ॥ एक बार तो हरिश्मश्रु भानुको अपनी दोनों भुजाओंसे सी योजन दूरतक वैसे ही ढकेल ले गया, जैसे कोई सिंह दूसरे सिंहको अपने पराक्रमसे ढकेल ले जाय ॥ ९ ॥ उसके बाद श्रीकृष्णके पुत्र भानु भी महान् असुर हरिश्मश्रुको सहसा हजार योजनतक ढकेल ले गये ॥ १० ॥ तभी भानुके कंधेपर अपना हाथ रखकर हरिश्मश्रुने उनको अपनी कमरपर रखा और घुटना पकड़कर गिरा दिया ॥ ११ ॥ भानुने भी उसे अपनी पीठपर रख तथा घुटना पकड़कर धरतीपर पटक दिया ॥ १२ ॥ इसके बाद वे दोनों फिर उठ खड़े हुए और वैसे ही भुजायें फटकारकर लड़ने लगे, जैसे गरुड़ और सर्प लड़ रहे हों ॥ १३ ॥ सहसा उस दैत्यने अपनी दोनों भुजाओंसे भानुके दोनों पैर पकड़कर आकाशमें एक लाख योजन दूर फेंक दिया ॥ १४ ॥

आकाशात्पतितो भानुः किञ्चिद्व्याकुलमानसः । प्रह्लाद इव शैलंगाद्रक्षितः कृपया हरेः ॥१५॥
हरिश्मश्रुं संगृहीत्वा दीर्घश्मश्रौ हरेः सुतः । भ्रामयित्वाऽथ चिक्षेप व्योम्नि तं लक्ष्योजनम् ॥१६॥
आकाशात्पतितः सोऽपि किञ्चिद्व्याकुलमानसः । मुखे कृत्वा स्वकं कूर्चं मुष्टिना तं तताड ह ॥१७॥
मुष्टामुष्टि रणं राजन् बभूव घटिकाद्वयम् । निष्पिष्टांगो हरिश्मश्रुर्ग्रावाणं भानुमूर्द्धनि ॥१८॥
चिक्षेप च महावेगाद्रक्ताक्षः क्रोधमूर्च्छितः । भानुर्द्रुमं संगृहीत्वा प्राक्षिपत्तस्य मस्तके ॥१९॥
सोऽपि द्रुमं संगृहीत्वा प्राहिणोद्भानुमूर्द्धनि । हरिश्मश्रुर्महादैत्यो रक्ताक्षः क्रोधमूर्च्छितः ॥२०॥
गजं गृहीत्वा शुण्डायां तेन भानुं तताड ह । भानुश्चान्यं गजं नीत्वा गृहीत्वा तद्गजं करे ॥२१॥
हरिश्मश्रुं महादैत्यं गजेनाभ्यहनद्दृढम् । चीत्कारमथ कुर्वतं गजं नीत्वा निपात्य तम् ॥२२॥
तस्य दन्तौ समुत्पाद्य ताभ्यां भानुं तताड ह । भानुमाकाशवागाह कूर्चं मृत्युः किलास्य च ॥२३॥
वरेण शिवदत्तेन प्रोज्झितोऽयं महासुरः । इति श्रुत्वा वचो भानुर्धावन् क्रोधप्रपूरितः ॥२४॥
संगृहीत्वा भुजाभ्यां तं पादयोः प्रणदन्मुहुः । भ्रामयित्वा महाराज सर्वेषां पश्यतां सताम् ॥२५॥
पातयामास भूपृष्ठे कमण्डलुमिवार्भकः । मुखात्कूर्चं समुन्नीय समुत्पाद्य करौजसा ॥२६॥
तताड मुष्टिना मूर्ध्नि हरिश्मश्रुं महासुरम् । तदा मृत्युं गते दैत्ये हरिश्मश्रौ नृपेश्वर ॥२७॥
देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभयस्तथा । अभूजयजयारावो ननृतुर्देवनायकाः ॥२८॥
प्रसन्ना दिविजा राजन्पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे । इत्थं श्रीकृष्णपुत्राणां विक्रमः परमाद्भुतः ॥२९॥
मया ते कथितः पुण्यः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥३०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे हरिश्मश्रुदैत्यवधो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

जब भानु नीचे गिरे तो कुछ व्याकुल हो गये, किन्तु प्रह्लादकी तरह भगवान् ने भानुकी रक्षा की ॥ १५ ॥
तब श्रीकृष्णके पुत्र भानुने उस दैत्यकी बड़ी लम्बी मूँछें पकड़कर आकाशमें कई चक्कर घुमाया और उसे एक लाख योजन दूर फेंक दिया ॥ १६ ॥ जब वह आकाशसे नीचे गिरा तो कुछ व्याकुल हो गया । किन्तु तुरन्त मूँछें सम्हालकर उसने भानुको एक मुक्का मारा ॥ १७ ॥ हे राजन् ! इसके बाद दो घड़ी तक उन दोनोंमें मुष्टामुष्टि युद्ध हुआ, जिससे हरिश्मश्रुके सभी अंग पिस गये । तब उसने भानुके सिरपर बड़े वेगसे एक पत्थर दे मारा ॥ १८ ॥ उस समय उसके नेत्र एकदम लाल थे और वह मारे क्रोधके मूर्च्छित जैसा था । तभी भानुने एक वृक्ष उखाड़कर उस दैत्यके मस्तकपर पटक दिया ॥ १९ ॥ तब उस दैत्यने भी एक वृक्ष लेकर भानुको मारा । महादैत्य हरिश्मश्रुके नेत्र लाल थे और क्रोधसे वह बावला हो रहा था ॥ २० ॥ सहसा उस दैत्यने एक हाथीकी सूँड़ पकड़कर उठाया और उसे भानुपर फेंक दिया । किन्तु भानुने उस हाथीको हाथसे रोक लिया और दूसरे हाथीको उठाकर उस दैत्यपर फेंका ॥ २१ ॥ भानुने जब हरिश्मश्रुको हाथीसे मारा तो हाथी चिंघाड़ने लगा । उसी समय उसने उस हाथीके दाँत उखाड़कर उन्हीं दाँतोंसे भानुको मारा । उसी समय आकाशवाणी हुई, जिसने भानुसे कहा कि इस दैत्यकी मृत्यु इसकी मूँछमें है ॥ २२ ॥ २३ ॥ शिवजीके वरदानसे यह दैत्य इतना प्रबल बना हुआ है । यह सुनकर भानु क्रोधसे तमतमा तथा उठे ॥ २४ ॥ उन्होंने तुरन्त उस दैत्यको दोनों भुजाओंसे खींचा और पैर पकड़कर कई चक्कर घुमाया पृथ्वीपर पटक दिया । जैसे कोई बालक कमंडल पटक दे । बादमें भानुने उसकी मूँछ पकड़कर बड़ी जोरसे उखाड़ लिया और उसके सिरपर एक बड़ा भयानक घूसा मारा । हे राजन् ! इस प्रहारसे हरिश्मश्रु दैत्य मरकर गिर पड़ा ॥ २५-२७ ॥ तत्काल देवताओं तथा मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ वजने लगीं, सब ओर भानुकी जयजयकार होने लगी और बड़े-बड़े देवता हर्षसे नाचने लगे ॥ २८ ॥ बहुतेरे प्रसन्न लोग होकर भानुपर फूल बरसाने लगे । श्रीकृष्णके पुत्र भानुका पराक्रम बड़ा अद्भुत था ॥ २९ ॥ उसका मैंने वर्णन किया । अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ? ॥ ३० ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अथ अष्टत्रिंशोऽध्यायः

(महान् दैत्य शकुनिका युद्धवर्णन)

बहुलाश्व उवाच

हरिश्मश्वदिकान् भ्रातृन् मृतान् ज्ञात्वा महासुरः । शकुनिः किं चकाराग्रे वद तन्मुनिसत्तम ॥ १ ॥

श्रीनारद उवाच

हरिश्मश्वौ हते राजन् शकुनिः क्रोधमूर्च्छितः । रणाङ्गणे प्राह दैत्यान् भ्रातृशोकपरिप्लुतः ॥ २ ॥

शकुनिरुवाच

हे पौलोमकालकेयाः सर्वे शृणुत मद्रचः । अहो दैवबलं येन किञ्च भूयाद्विपर्ययः ॥ ३ ॥

कालनाभेन मे भ्रात्रा समुद्रमथने यमः । जितः पूर्वं सोऽपि दैवान्मनुष्यैरिह मारितः ॥ ४ ॥

शंबरः सूर्यजित्साक्षात्कारिणा शिशुना जितः । उत्कचः शक्रजेताऽपि महाबल महाबलः ॥ ५ ॥

सोऽपि बालेन कृष्णेन मारितो नारदाच्छ्रुतम् । समुद्रमथने पूर्वमसुराणां च पश्यताम् ॥ ६ ॥

वह्निर्जितो हि येनापि हृष्टः सोऽपि निपातितः । यस्याग्रे वरुणः पूर्वं युद्धभीतः पलायितः ॥ ७ ॥

भूतसंतापनः सोऽपि मारितस्तुच्छविक्रमैः ।

येन पूर्वं महायुद्धे विक्रमैस्तोषितः शिवः ॥ ८ ॥

स वृको वृष्णिभिस्तुच्छैर्मारितः सङ्गरेऽत्र वै । महानाभेन मे भ्रात्रा दिवि वायुर्विनिर्जितः ॥ ९ ॥

मानुषैर्यादवैरत्र मारितः सोऽपि सांप्रतम् । हा दैव येन स्वर्लोके जितः शक्रसुतो बली ॥ १० ॥

निपातितः सोऽपि चात्र हरिश्मश्वश्च मानवैः । तस्मादयादवीं पृथ्वीं करिष्ये शपथो मम ॥ ११ ॥

जरासन्धेन शाल्वेन दन्तवक्रेण धीमता । शिशुपालेन मित्रेण युष्मामिः सहितो ह्यहम् ॥ १२ ॥

सुतलाञ्च समाहूतैर्दानवैश्चण्डविक्रमैः । देवान् जेतुं गमिष्यामि बाणासुरसमन्वितः ॥ १३ ॥

काष्ण्यादीनुद्भटान्सर्वान्वृष्णीञ्जित्वा दुरात्मनः । सस्त्रीकानमरान्वद्वा क्षिपे मेरुगुहामुखे ॥ १४ ॥

राजा बहुलाश्व बोले—हे महामुनि नारद ! हरिश्मश्व आदि भ्राताओंका मरण सुनकर दैत्यराज शकुनिने क्या किया, सो बताइए ॥ १ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! जब हरिश्मश्व मर गया, तब शकुनिको बड़ा क्रोध आया । मृत भ्राताओं शोकमें निमग्न शकुनिने दैत्योंके सम्मुख कहा—॥ २ ॥ हे पौलोम और कालकेय वीरो ! आर सब लोग मेरी बात सुनें । अहो ! दैवका बल बड़ा प्रबल होता है । वह क्या नहीं कर सकता ॥ ३ ॥ मेरे जिस भ्राता कालनाभने समुद्रमन्थनके समय यमराजको जीत लिया था, वह आज दैवात् मनुष्यके हाथों मारा गया ॥ ४ ॥ सूर्यको जीतनेवाले शम्बरसुरको श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नने जीत लिया । इन्द्रको जीतनेवाले महाबली उत्कचको बालक कृष्णने मार डाला । ऐसा मैंने नारदजीके मुखसे सुना है । समुद्रमन्थनके समय देवताओंके देखते-देखते जिस हृष्टने अग्निको जीत लिया था, वह भी मार डाला गया । एक समय जिसके सामनेसे वरुणदेव भाग गये थे, उस भूतसन्तापनको इन तुच्छ पराक्रमी मनुष्योंने मार डाला । पूर्वकालके महायुद्धमें जिसने अपने पराक्रमसे साक्षात् शंकरजीको प्रसन्न कर लिया था ॥ ५-८ ॥ उस वीर वृकको इन तुच्छ यादवोंने मार डाला । मेरे भ्राता महानाभने स्वर्गमें जाकर था ॥ ९ ॥ सो इन मानव यादवोंने अभी उसे भी मार डाला । हाय दैव ! जिस वीरने स्वर्गमें जाकर इन्द्रके पुत्र बलवान् जयन्तको जीत लिया था ॥ १० ॥ उस वीर हरिश्मश्वको भी यहाँ इन मनुष्योंने मार डाला । अतएव आज मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस पृथिवीको यादवोंसे शून्य कर दूँगा ॥ ११ ॥ जरासन्ध, शाल्व, बुद्धिमान् दन्तवक्र, मित्र शिशुपाल तथा आप सब वीरों और सुतललोकसे बुलाये गये परम पराक्रमी दानवों तथा बाणासुरको साथ लेकर मैं देवताओंको जीतने जाऊँगा ॥ १२ ॥ १३ ॥ प्रद्युम्न आदि उद्भट वीरों और दुरात्मा यादवोंको जीत तथा स्त्रियों समेत समस्त देवताओंको बाँधकर मैं सुमेरु पर्वतकी

गोविप्रसुरसाधूंश्च छन्दांसि च तपस्विनः । यज्ञं श्राद्धं तितिक्षूंश्च नानातीर्थकरान्पुनः ॥१५॥
 हनिष्यामि न सन्देहश्चरिष्यामि सुखं ततः । धन्यः कंसो महावीर्यो देवानां विजयी बली ॥१६॥
 न विद्यते भूमितले मित्रं मे परमः सुहृत् ।

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा शकुनिर्युद्धे दानवेन्द्रो महाबलः ॥१७॥

आययौ सहसा दैत्यः प्रद्युम्नस्यापि संमुखे । महाधनुः समादाय लक्षभारसमं दृढम् ॥१८॥
 मयेन निर्मितं तज्ज्याटंकारं स चकार ह । धनुंष्टङ्कारशब्देन दिग्गजा बधिरीकृताः ॥१९॥
 निपेतुर्गिरयोऽनेका विचेलुः सिंधवो नृप । ननाद सर्वं ब्रह्माण्डं चकपे मण्डलं ध्रुवः ॥२०॥
 वीरोपरि गता वीरा ज्याघोषेणातिविह्वलाः । रणद्विदुद्रुवुर्नागा उत्पतन्तो हया मृधे ॥२१॥
 एवं पलायिताः सर्वे ह्यकस्मान्नयविह्वलाः । तदा गदादयो वीरा आजग्मुः स्यंदने स्थिताः ॥२२॥
 धनुष्टंकारयन्तस्ते महाबलपराक्रमाः । शकुनिर्दशभिर्बाणैर्विव्याधार्जुनमाहवे ॥२३॥
 गांडीवी सरथस्तस्माच्चतुष्क्रोशे पपात ह । गदं च बाणविंशत्या शकुनिर्युद्धदुर्मदः ॥२४॥
 चिक्षेप सरथं राजन्नादयन् व्योममण्डलम् । चत्वारिंशच्छरैर्वीरोऽनिरुद्धं धन्विनां वरम् ॥२५॥
 विव्याध सरथं राजन्नादयन् व्योममण्डलम् । साम्बो रथोऽनिरुद्धस्य षोडशक्रोशमास्थितः ॥२६॥
 साध्वं च शितबाणैश्च तताड शकुनिर्मृधे । सांबोऽपि सरथो राजन्बरे समरांगणात् ॥२७॥
 द्वात्रिंशद्योजनं मार्गं निपपात विदेहराट् । कार्णिं समागतं दृष्ट्वा शकुनिः क्रोधपूरितः ॥२८॥
 सहसा बाणपटलैः संजघान रणांगणे । प्रद्युम्नस्य रथो राजन्सम्भ्रमन्घटिकाद्वयम् ॥२९॥
 शतक्रोशे पपातोव्यां कमण्डलुरिवाहतः । सर्वे विसिस्मूः शकुनेर्बलं दृष्ट्वाऽथ यादवाः ॥३०॥
 जघ्नुर्नानाविधैः शस्त्रैर्दैत्यमर्द्रिं यथा गजाः । गदोऽर्जुनोऽनिरुद्धस्तु सांबो जांबवतीसुतः ॥३१॥

कन्दरामें डाल हूंगा ॥ १४ ॥ उसके बाद गो, ब्राह्मण, देवता, साधु, वेद, तपस्वी, यज्ञ, श्राद्ध, तितिक्षु तथा अनेकानेक तीर्थ करनेवालोंको मारकर मैं सन्देह रहित होकर सुखसे विचरूंगा । कंस धन्य था, देवताओंका विजयी था और असाधारण बलवान् था ॥ १५ ॥ १६ ॥ उसके समान प्रिय मेरा कोई मित्र नहीं है । नारदजी बोले—ऐसा कहकर दानवेन्द्र तथा महाबली शकुनि सहसा रणभूमिमें प्रद्युम्नके सम्मुख जा पहुँचा । इसके बाद लाख भारका विशाल धनुष लेकर उसकी मयनिर्मित प्रत्यंचा चढ़ाकर भीषण टंकार किया । जिससे सब दिग्गजोंके कान बहरे हो गये ॥ १७—१९ ॥ उस टंकारसे कितने पहाड़ ढह गये, समुद्र विचलित हो गये, सारा ब्रह्मांड झकृत हो उठा और सारा भूमण्डल कांपने लगा ॥ २० ॥ वीर शकुनीके धनुषटंकारसे ही वीरोंके ऊपर वीर गिरने लगे, इत्यंशके टंकारसे विह्वल हाथी युद्धक्षेत्रसे भाग गये और घोड़े डरकर उछल-कूद मचाने लगे ॥ २१ ॥ इस प्रकार अचानक रणांगणमें भगदड़ मच गयी और वहाँके सभी लोग भयसे विह्वल हो उठे । तब गद आदि यादववीर रथपर चढ़कर आये ॥ २२ ॥ महाबली और महापराक्रमी यादव जोरोंसे अपने-अपने धनुषका टंकार कर रहे थे । उसी समय शकुनिने अर्जुनको दस बाण मारे ॥ २३ ॥ उसकी इस मारसे रथसमेत अर्जुन चार कोस दूर जा गिरे । बादमें युद्धदुर्मद शकुनिने बीस बाण गवकी मारे ॥ २४ ॥ यह प्रहार करके शकुनिने रथसहित गदको आकाशमण्डलमें फेंक दिया और जोरोंसे गर्जन करने लगा । इसी प्रकार धनुर्वीरोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धको सोलह कोस दूर फेंक दिया ॥ २५ ॥ २६ ॥ फिर उसने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे साम्बको भी मारा । उसकी मारसे साम्ब भी रणभूमिसे आकाशमें बत्तीस योजन दूर चले गये । सहसा रणभूमिमें प्रद्युम्नको फिर उपस्थित देखकर शकुनि मारे क्रोधके तमतमा उठा ॥ २७ ॥ २८ ॥ तभी बाणोंके विशाल समूहसे उसने प्रद्युम्नको मारा । इससे प्रद्युम्नका रथ दो घड़ी आकाशमें घूमता हुआ सौ योजन दूर पृथिवीपर जा गिरा । शकुनिका ऐसा भीषण पराक्रम देखकर सब यादव बड़े विस्मयमें पड़ गये ॥ २९ ॥ ३० ॥ अब सभी यादव विविध प्रकारके शस्त्रोंसे शकुनिको मारने लगे, जैसे हाथी पर्वतोंपर

धनुष्टङ्कारयन्तस्ते पुनर्युद्धं समागताः । अथ कार्ष्णिर्महाबाहुर्वायुवेगे रथे स्थितः ॥३२॥
 धनुष्टङ्कारयन् राजन् प्राप्तोऽभूद्रणमण्डले । प्रलयार्णवसंघट्टभीमसंघर्षनादिनीम् ॥३३॥
 धनुर्ज्यां शकुनेः कार्ष्णिश्चिच्छेद दशभिः शरैः । सहस्रैश्च सहस्राश्वानूरथं च विशिखैः शतैः ॥३४॥
 सारथिं बाणविशत्या पातयामास भूतले । ततो रथं समुत्थाप्य हयैरन्यैर्नियोजितम् ॥३५॥
 अन्यं स्रुतं रथे कृत्वा रथमारुह्य दैत्यराट् । संदधे सिंजिनीं राजन् कोदण्डे चंडविक्रमे ॥३६॥
 शतं बाणान्समाकृष्य निषंगात्पृष्ठतो गतान् । चापे निधाय कर्णात्माकृष्य प्राह मन्मथम् ॥३७॥

शकुनिरुवाच

सर्वेषां घातयिष्यामि शत्रुमुख्यं मदोत्कटम् । पश्चात्सेनां हनिष्यामि यदूनां स्वस्थतेजसाम् ॥३८॥

प्रद्युम्न उवाच

सदा वयः कालबलेन देहिनां प्रयाति छायेव सुखे मुहुर्मुहुः ।

तथा च दुःखं च सुखं गतागतं घनावलिर्वायुबलेन खे यथा ॥३९॥

कृतां कृषिं सिंचति यां हि सर्वतश्छिनत्ति दात्रेण यथा कृषीवलः ।

तथा हि कालः स्वकृतां जनावलिं दुरत्ययः पाति गुणैर्विलुपति ॥४०॥

इदं करिष्यामि करोमि भूयो ममेदमस्तीति तदेवमाब्रुवन् ।

अहं सुखी दुःखयुतः सुहृज्जनो लोकस्त्वहंकारविमोहितोऽसुर ॥४१॥

धन्यस्त्वं राजशार्दूल मुनीन् वाग्भिर्विडम्बयन् । स्वभावो दुस्त्यजो नृणां पृथग्भूतस्त्रिभिर्गुणैः ॥४२॥

श्रीनारद उवाच

एवं ब्रुवाणावन्योन्यं प्रद्युम्नशकुनी मृधे । युयुधाते मैथिलेन्द्र शक्रवृत्राविव स्थितौ ॥४३॥

इति तौ धनुषो मुक्तान् विशिखान्स्तर्यरपिमवत् । चिच्छेद कार्ष्णिर्बाणेन कुवाक्येनेव मित्रताम् ॥४४॥

प्रहार करते हैं । तभी गद, अर्जुन, साम्ब और अनिरुद्ध अपना-अपना धनुष टंकारते हुए फिर युद्धभूमिमें आ गये, तदनन्तर प्रद्युम्न वायुके समान वेगवाले रथपर बैठकर अपने धनुषका टंकार करते हुए रणांगणमें आये । वहाँ पहुँचते ही प्रलयकालीन सभुद्रकी भाँति गर्जन करनेवाली शकुनिके धनुषकी प्रत्यंचाको प्रद्युम्नने दस बाणोंसे काट डाला । इसी प्रकार उन्होंने हजार बाणोंसे शकुनिके हजार धोड़ों और सौ तीखे बाणोंसे उसके रथको चूर्ण कर दिया ॥ ३१-३४ ॥ बीस बाण मारकर उन्होंने उसके सारथीको भी समाप्त कर दिया । तब दूसरे रथमें दूसरे घोड़े जोत तथा दूसरे सारथीको लेकर दैत्यराज शकुनिने उस रथमें बैठकर अपने प्रचंड धनुषपर प्रत्यंचा चढ़ायी ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ उसके बाद अपने तरकससे सौ बाण निकालकर धनुषपर चढ़ाया और कानतक उसकी डोरी खींचकर प्रद्युम्नसे बोला— ॥ ३७ ॥ अपने सब शत्रुओंमें मुख्य शत्रु तुमको मारकर मैं तुम्हारी सारी यादवी सेनाको मार डालूँगा ॥ ३८ ॥ प्रद्युम्न बोले—हे दैत्यराज ! सदा ही प्राणीको अवस्था कालके बलसे सुखमें छायाकी तरह पहुँचती है । जैसे वायुके बलसे आकाशमें मेघोंका दल आता-जाता रहता है, वैसे ही काल स्वरचित प्राणियोंके सुख-दुःखको बुलाता और खदेड़ता रहता है । वही उनकी रक्षा करता है और वही विनाश भी कर देता है ॥ ३९ ॥ जैसे किसान खेती करके उसे चारों ओरसे सींचता है और फसल पक जानेपर हंसुयेसे काटता है । उसी तरह काल अपने तीनों गुणोंसे निर्मित लोगोंको एक बार बढ़ाता है और बादमें उसे नष्ट कर देता है ॥ ४० ॥ मैं यह करूँगा, यह कर रहा हूँ, मेरे यह है, यह होगा । लोग कहते हैं कि मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ, यह मित्र है, वह शत्रु है आदि । हे असुर ! इस प्रकार यह लोक अहंकारसे मोहित है ॥ ४१ ॥ शकुनि बोला—हे राजशार्दूल ! आप धन्य हैं । आप अपनी बाणोंसे यह लोक अहंकारसे मोहित है ॥ ४१ ॥ शकुनि बोला—हे राजशार्दूल ! आप धन्य हैं । आप अपनी बाणोंसे युद्ध कर रहे हैं ॥ ४२ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! प्रद्युम्न तथा शकुनि परस्पर यह कहते हुए ऐसा युद्ध करने लगे, जैसा इन्द्र और वृत्रासुरमें हुआ था ॥ ४३ ॥ इस प्रकार वे दोनों धनुषसे छूटे हुए सूर्यकी किरणों जैसे

लक्षभारमयीं गुर्वीं गृहीत्वा महतीं गदाम् । जघान मूर्ध्नि प्रद्युम्नं शकुनिर्युद्धदुर्मदः ॥४५॥
 प्रद्युम्नो भगवान्साक्षाद्गदया वज्रकल्पया । काचपात्रं यथा दण्डस्तद्गदां शतधाऽकरोत् ॥४६॥
 अथ दैत्यो रुषाविष्टस्त्रिशूलं च स्फुरद्गुचा । प्रद्युम्नस्याहनन्मूर्ध्नि शब्दमुच्चैः समुचरन् ॥४७॥
 त्रिशूलेन हरेः पुत्रस्त्रिशूलं शतधाऽच्छिनत् । कुतं तीक्ष्णं शकुनये प्राहिणोदुक्मिणीसुतः ॥४८॥
 कुतेन विद्धहृदयः किञ्चिद्व्याकुलमानसः । परिधेण हरेः पुत्रं संतताड रणांगणे ॥४९॥
 यमदण्डं ततो नीत्वा रुक्मिणीनन्दनो बली । चूर्णीचकार दैत्यस्य परिधं परमाद्भुतम् ॥५०॥
 चचालाश्चाश्च सहसा यमदण्डेन वेगतः । सारथिं स्यन्दनं दिव्यं पातयामास भूतले ॥५१॥
 स्रुते मृत्युं गते साश्च चूर्णीभूते रथे नृप । परिधे च महादैत्यः खड्गं जग्राह रोषतः ॥५२॥
 प्रद्युम्नोऽपि महावीरो यमदण्डेन मैथिल । द्विधा चकार तत्खड्गं पद्मगं गरुडो यथा ॥५३॥
 यमदण्डेन तं दैत्यं स्कन्धे काष्णिस्तताड ह । तस्याघातेन शकुनिः सद्यो मूर्च्छामवाप ह ॥५४॥
 दैत्यसेनां विशेषाशु श्रीकृष्णः क्रोधमूर्च्छितः । निपातयन् महावीरान्वनं वैश्वानरो यथा ॥५५॥
 गजांस्तुरंगांश्च रथान्दैत्यांस्तानाततायिनः । पातयामास यमवद्यमदण्डेन माधवः ॥५६॥

छिन्नपादारिच्छन्नमुखाश्छिन्नाङ्गारिच्छन्नबाहवः ।

दैतेया दनुजा युद्धे मूर्च्छिता निधनं गताः ॥५७॥

यमरूपधरं दृष्ट्वा प्रद्युम्नं भीमविक्रमम् ।

त्यक्त्वा स्वं स्वं रणं केचिद्दुद्रुवुस्ते दिशो दश ॥५८॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीविश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे शकुनियुद्धवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

तेजस्वी बाणोंको छोड़ने लगे । प्रद्युम्न शकुनिके बाणोंको उसी तरह काटने लगे, जैसे कुवाक्य मित्रताको नष्ट कर देते हैं ॥ ४४ ॥ तभी युद्धदुर्मद शकुनि लाख भारकी भारी गदा लेकर प्रद्युम्नके मस्तकपर मारी ॥ ४५ ॥ तब साक्षात् प्रद्युम्न भगवान्ने अपनी वज्रसरीखी गदासे शकुनिकी गदाको शीशेके पात्रकी तरह तोड़कर सौ टुकड़े कर दिये ॥ ४६ ॥ तब दैत्यपति शकुनिने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने चमचमाते हुए त्रिशूलसे प्रद्युम्नके सिरपर प्रहार किया और बहुत जोरसे गर्जन करने लगा ॥ ४७ ॥ किन्तु प्रद्युम्नने अपने त्रिशूलसे शकुनिके त्रिशूलको काटकर सौ टुकड़े कर दिये और एक भाला लेकर शकुनिको मारा ॥ ४८ ॥ उस भालेकी मारसे शकुनिकी छाती फट गयी, जिससे कुछ व्याकुल होकर शकुनिने अपने परिधसे प्रद्युम्नपर प्रहार किया ॥ ४९ ॥ तब रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नने यमदण्ड लेकर उसीसे शकुनिके परिधको चूर कर दिया ॥ ५० ॥ उन्होंने उस यमदण्डसे ही दैत्य शकुनिके चंचल घोड़ों, सारथी तथा दिव्य रथको भी चूर-चूर कर डाला ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार अश्वसहित सारथी, रथ तथा परिधके टूट जानेपर उस दैत्यने बड़े क्रोधके साथ हाथमें तलवार सम्हाली ॥ ५२ ॥ महावीर प्रद्युम्नने अपने यमदण्डसे उसके खड्गको काटकर दो टुकड़े कर दिये, जैसे गरुड़ सर्पको काट देते हैं ॥ ५३ ॥ उसी यमदण्डसे प्रद्युम्नने शकुनिके कन्धेपर प्रहार किया । उसकी मारसे शकुनि तत्काल मूर्च्छित होकर गिर पड़ा ॥ ५४ ॥ उसी समय क्रुद्ध भगवान् श्रीकृष्ण दैत्यसेनामें प्रविष्ट होकर बड़े बड़े वीरोंको वैसे ही मार-मारकर गिराने लगे, जैसे आग वनको जलाकर नष्ट कर देती है ॥ ५५ ॥ सैनिक क्षेत्रके हाथियों, घोड़ों, रथों और आततायी दैत्योंको श्रीकृष्ण अपने यमदण्डसे यमराजकी तरह मार-मारकर गिराने लगे ॥ ५६ ॥ उस यमदण्डकी मारसे बहुतोंके पैर, हाथ, सिर और भुजायें फट गयीं और बहुतेरे दैतेय और दनुज मूर्च्छित हो-होकर मर गये ॥ ५७ ॥ यमरूपधारी एवं भीषण पराक्रमी प्रद्युम्नको देखकर कुछ दैत्य रणभूमि त्यागकर दसों दिशाओंमें भाग गये ॥ ५८ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः

(रणभूमिमें भगवान् कृष्णका आगमन)

श्रीनारद उवाच

शकुनिः पुनरुत्थाय स्वबलं वीक्ष्य पोथितम् । जग्राह स महाराज लक्षभारसमं धनुः ॥ १ ॥

निधाय बाणं निशितं क्रोदण्डे चण्डविक्रमे । कार्णिं प्राह रणे राजञ्छकुनिर्दैत्यराड्वली ॥ २ ॥

शकुनिरुवाच

कर्म प्रधानं जगतीतले महत्कर्मैव साक्षाद्गुरुरीश्वरः प्रभुः ।

उच्चावचत्वं भवतीह कर्मणा तेनैव राजन् विजयः पराजयः ॥ ३ ॥

गवांसहस्रेषु यथा हि वत्सकः स्वमातरं विंदति पश्यतां सतीम् ।

तथा हि येनापि कृतं शुभाशुभं नरेषु तिष्ठत्सु तमेव गच्छति ॥ ४ ॥

ततो विजेष्यामि दृढेन कर्मणा रिपुं भवन्तं शपथः कृतो मया ।

सद्यः कुरु त्वं प्रतिकारमेव तद्येनापि न स्याद्भुवि ते पराजयः ॥ ५ ॥

श्रीप्रद्युम्न उवाच

कर्म प्रधानं यदि मन्यसे भवान् कालं विना तर्हि फलं न विद्यते ।

कृते च पाके यदि विघ्नता क्वचित् सदा बलिष्ठं समयं विदुः परे ॥ ६ ॥

पाकप्रकारे सति पाकसाधनं कदापि कर्तारमृते न जायते ।

बदन्ति कर्तारमतः परं परे न कर्म कालं शृणु दैत्यपुंगव ॥ ७ ॥

योगं विदुः केपि यदा ह्ययोगतः कथं भवेत्कौ किल पाकसाधनम् ।

सर्वं हि वा योगमृते वृथा भवेत्काले तथा कर्मणि कर्तरि स्थिते ॥ ८ ॥

योगं तथा कर्मणि कर्तरि स्थिते काले विधिः सांख्यमृते वृथा भवेत् ।

पाकप्रकाराद्यविचारकृद्यदा न तर्हि पाकस्य यथा प्रसाधनम् ॥ ९ ॥

योगकर्मविधिकारकसंख्यैर्ब्रह्मपुरुषमृते न हि किञ्चित् ।

तं नमामि परिपूर्णतमांशं येन विश्वमखिलं विदितं खे ॥ १० ॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! शकुनिने जब अपनी सेनाकी मरी हुई देखा तो लाख भारका धनुष हाथमें लिया ॥ १ ॥ उस प्रचंड धनुषपर तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर दैत्यराज शकुनिने श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्न-से कहा ॥ २ ॥ शकुनि बोला—हे राजन् ! इस संसारमें कर्म ही मुख्य है । कर्म ही साक्षात् गुरु, ईश्वर और प्रभु है । कर्मसे ही उच्च और नीच पद प्राप्त होता है और कर्मसे ही जीत और हार होती है ॥ ३ ॥ जैसे हजारों गौओंके बीच बछड़ा अपनी माताको खोज लेता है । उसी प्रकार जिसने जो शुभाशुभ कर्म किये हैं, अन्य हजारों लोगोंके रहते हुए भी वह कर्म अपने कर्ताको ही प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ सो मैंने प्रतिज्ञा की है कि अपने दृढ़ कर्मसे अपने शत्रु प्रद्युम्नको जीतूंगा । अब तुम भी उसका ऐसा प्रतिकार करो कि जिससे संसारमें तुम्हारी पराजय न हो ॥ ५ ॥ प्रद्युम्न बोले—हे दैत्यराज ! यदि आप कर्मको ही प्रधान मानते हों तो कर्मका फल तो समयपर ही प्राप्त होता है । यदि कर्म करनेपर भी कोई विघ्न आ जाय तो बहुतेरे विद्वान् कालको ही बलवान् कहते हैं ॥ ६ ॥ हे दैत्यपुंगव ! फलनेके समयपर ही फल होता है, किन्तु वह किसी कर्ताके बिना नहीं होता । अतः बहुतसे लोग कर्ताकी ही प्रशंसा करते हैं और उसीको प्रधान मानते हैं । वे कर्मको मुख्य नहीं मानते ॥ ७ ॥ कुछ लोग योग (उद्योग) को प्रधान मानते हैं । उनका कहना है कि उद्योगके बिना संसारमें कोई कार्य नहीं सिद्ध होता । काल कर्मके बशमें रहता है, किन्तु उद्योगके बिना फलकी सिद्धि नहीं होती ॥ ८ ॥ ९ ॥ इसी प्रकार योग, कर्म, विधि, कारक तथा सांख्यके रहते हुए भी ब्रह्मपुरुषके बिना कोई

शकुनिरुवाच

हे प्रद्युम्न महाबाहो त्वं साक्षाज्ज्ञानशेवधिः । तव दर्शनमात्रेण नरो याति कृतार्थताम् ॥११॥
ये त्वत्संगं समासाद्य वार्तां कुर्वन्ति नित्यशः । तेषां तु महिमानं हि वक्तुं नालं चतुर्मुखः ॥१२॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा शकुनिर्दैत्यो मायावी दैत्यराड्वली । शिक्षितं मयदैत्येन रौरवास्त्रं समादधे ॥१३॥
महोरगा दन्दशूका वृश्चिकाश्च विपोत्कटाः । कोटिशो गरुडा बाणाचीलकंठाः कलापिनः ॥१४॥
तैर्दशितं बलं सर्वं फूत्कारैर्मत्ततां गतम् । वीक्ष्य कार्ष्णिर्महाबुद्धिर्गरुडास्त्रं समादधे ॥१५॥
कोटिशो गरुडा बाणाचीलकंठाः कलापिनः । अन्ये च पक्षिणो भीमा निर्गतास्तस्य पश्यतः ॥१६॥
अग्रसचुरगान्युद्धे दन्दशूकान्सवृश्चिकान् । तीक्ष्णतुंडा बृहत्पक्षाः क्षणात्तेऽदृश्यतां गताः ॥१७॥
दैत्योऽपि राक्षसीं मायां गांधर्वीं गौह्वकीं पुनः । पैशाचीं संदधे राजञ्छकुनिर्युद्धदुर्मदः ॥१८॥
तद्बाणनिर्गता भूतास्तथा प्रेताश्च कोटिशः । अंगारान्मुमुचुस्ते वै करालाः कृष्णरूपिणः ॥१९॥
ज्ञात्वाऽथ तामसीं मायां पैशाचीं मीनकेतनः । सत्त्वास्त्रं संदधे बाणे युद्धकांक्षी हरेः सुतः ॥२०॥

तस्माद्विनिर्गता राजन् कोटिशो विष्णुपार्षदाः ।

जघ्नुः पिशाचीं तां मायां पञ्चगीं गरुडो यथा ॥२१॥

मायां दैत्योऽपि मायावी गौह्वकीं संदधे पुनः । संभूताः कोटिशो मेघा गर्जतो भीमरूपिणः ॥२२॥
विष्ठां मूत्रं च रुधिरं मेदोमज्जास्थिवर्षिणः । ज्ञात्वाऽथ गौह्वकीं मायां प्रद्युम्नो भगवान्हरिः ॥२३॥
तन्नाशार्थं महाराज कोलास्त्रं संदधे त्विषौ । तद्बाणाद्यश्चवाराहो निर्गतो घर्घरस्वनः ॥२४॥
सटा विधूय वेगेन दंष्ट्रया तीक्ष्णया घनान् । विदारयन्रणे रेजे वेणून्मत्तगजो यथा ॥२५॥

उपाय सफल नहीं हो सकता । अतएव उन परिपूर्णतम परम पुरुष भगवान्को नमस्कार है, जिन्होंने समस्त विश्वको रचना की है ॥ १० ॥ तब शकुनिने कहा—हे महाबाहो ! हे प्रद्युम्न ! आप ज्ञानके साक्षात् निधि हैं । आपका दर्शन करनेमात्रसे मनुष्य कृतार्थ हो जाते हैं ॥ ११ ॥ जो नित्य आपके साथ बात करते हैं, उनकी महिमाका बखान करनेकी सामर्थ्य ब्रह्माजीमें भी नहीं है ॥ १२ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! ऐसा कहकर मायावी दैत्यराज शकुनिने मयदानवसे सीखे रौरवास्त्रको चलाया ॥ १३ ॥ उसके चलते ही करोड़ों बड़े बड़े भीषण सर्प, गोजर और बड़े विषेले बिच्छू निकल पड़े ॥ १४ ॥ उनके द्वारा इसी और फुंकारोंकी मारी हुई सारी सेना मतवाली हो गयी । सेनाकी विकट स्थिति देखकर महाबुद्धिमान् प्रद्युम्नने गरुडास्त्र चलाया ॥ १५ ॥ उसके देखते-देखते उस बाणसे करोड़ों गरुड़, मोर, नीलकण्ठ तथा अन्यान्य भयंकर पक्षी निकल पड़े ॥ १६ ॥ उन्होंने उन सर्पों, गोजरों और बिच्छुओंको खा लिया और बड़ी तीखी चोंचों तथा बड़े बड़े पंखोंवाले वे पक्षी भी क्षणभरमें गायब हो गये ॥ १७ ॥ तब वह रणदुर्मद दैत्य शकुनि पिशाचों, गन्धर्वों, राक्षसों और यक्षोंकी मायाका विस्तार करने लगा ॥ १८ ॥ उसके बाणोंसे करोड़ों काले-काले भूत-प्रेत निकलकर मुंहसे अंगारे उगलने लगे ॥ १९ ॥ उसकी उस तामसी तथा पिशाची मायाका विस्तार देखकर युद्धकांक्षी श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नने अपने बाणपर सत्त्वास्त्रका संधान किया ॥ २० ॥ उस सत्त्वास्त्रसे करोड़ों विष्णुपार्षद निकल पड़े और वे उस पिशाची मायाको वैसे ही नष्ट करने लगे, जैसे गरुड़ सर्पिणियोंको नष्ट करते हैं ॥ २१ ॥ तब शकुनि दैत्यने गृह्यकोंकी मायाका विस्तार किया, जिससे बड़े भयानक करोड़ों मेघ गर्जन करते हुए उमड़ पड़े ॥ २२ ॥ वे विष्ठा, मूत्र, रुधिर, मेद, मज्जा तथा हड्डियोंकी वर्षा करने लगे । उस गौह्विकी मायाका मर्म समझकर प्रद्युम्नभगवान्ने उनका विनाश करनेके लिए बाणपर शूकरास्त्रका संधान किया । उस बाणसे घर्घर शब्द करते हुए यज्ञवाराह भगवान् निकल आये ॥ २३ ॥ २४ ॥ वे अपनी गर्दनके बाल त्रिखेरकर अपने तीक्ष्ण दाँतोंसे उन मेघोंकी विदीर्ण करते हुए ऐसे शोभित हुए, जैसे बाँसोंको विदीर्ण करता हुआ मत्त गजराज शोभित होता है ॥ २५ ॥

दैत्योऽथ मायां गान्धर्वीं चकार रणमण्डले । युद्धं न दृश्यते तद्वद्धे मसौधानि कोटिशः ॥२६॥
 वस्त्रालंकारयुक्तानि बभूवुः पश्यतां सताम् । विद्याधर्यश्च गन्धर्वा गायन्तो नृत्यतत्पराः ॥२७॥
 मृदंगतालवादित्रैर्मोहनैः रागमिश्रितैः । हावभावकटाक्षैश्च तोषयन्त्यो जनान्नुप ॥२८॥
 मोहिन्यः सुन्दरी रामाः श्यामाः कमललोचनाः । तासां लावण्यरागाभ्यां मोहं यातेषु वृष्णिषु ॥२९॥
 गान्धर्वीं मोहिनीं मायां ज्ञात्वा कार्ष्णिर्महाबलः । संदधे तत्प्रहारार्थं ज्ञानास्त्रं रणमण्डले ॥३०॥
 ज्ञानोदये तदा जाते मोहनाशो नृपेश्वर । नाशं गतायां मायायां शकुनिः क्रोधमूर्च्छितः ३१॥
 राक्षसीं संदधे मायां मायावी दैत्यपुंगवः । सपक्षैः पर्वतैः राजन् क्षणात्तच्छादितं नभः ॥३२॥
 महाधकारोऽभूत्पृथ्व्यां पराद्धं च घनैरिव । दग्धवृक्षशिलास्थीनि कबन्धरुधिराणि च ॥३३॥
 गदापरिधनिस्त्रिशस्रमुसलादीनि सर्वतः । अंबराद्धभ्रष्टः शैला मेघा इव विदेहराट् ॥३४॥
 रक्षोगणाः शूलहस्ताश्छिन्धिन्ध्रिं प्रीधीति वादिनः । यातुधानाश्च शतशो भक्षयन्तो द्विपान्हयान् ॥३५॥
 सिंहव्याघ्रवराहाश्च दृश्यन्ते रणमण्डले । मर्दयन्तो नखैर्नागांश्चर्बयन्तो वपूषि वै ॥३६॥
 पलायमानं स्वबलं दृष्ट्वा कार्ष्णिर्महाबलः । जेतुं तां राक्षसीं मायां नृसिंहास्त्रं समादधे ॥३७॥
 आविर्भूतो हरिः साक्षान्नृसिंहो रौद्ररूपधृक् । स्फुरत्सटो ललज्जिह्वो नखलांगूलभूषितः ॥३८॥
 चलद्बालो भीषणास्यो हुङ्कारेणातिभीषणः । सिंहनादं च कुर्वन् वै संस्थितो रणमण्डले ॥३९॥
 ननाद तेन ब्रह्मांडं सप्तलोकैर्विलैः सह । विचेलुर्दिग्गजास्तारा राजदूभूखंडमण्डलम् ॥४०॥
 गृहीत्वा ह्यंबरे शैलान्सवृक्षान्नखरः खरैः । पातयामास भूपृष्ठे दैत्यानां च प्रपश्यताम् ॥४१॥
 रक्षोगणान्संगृहीत्वा पातयामास वेगतः । यातुधानगणान्पद्भ्यां स ममर्द हरिर्मृधे ॥४२॥
 सिंहान्व्याघ्रान्वराहांश्च संविदार्य नखैः खरैः । चिक्षेप गगने विष्णुस्तत्रैवातर्दधे पुनः ॥४३॥

इसके बाद उस दैत्यने गान्धर्वी मायाका सृजन किया, जिससे युद्ध अदृश्य हो गया और करोड़ों स्वर्णमहल दिखाई देने लगे ॥ २६ ॥ उन महलोंमें विविध वस्त्र और अलंकार विद्यमान थे, विद्याधरियां नाच रही थीं और गन्धर्व गा रहे थे ॥ २७ ॥ मनोमोहक रागोंमें मृदंग, ताल तथा नाना प्रकारके बाजे बज रहे थे । अप्सरायें हाव-भाव तथा कटाक्षोंसे दर्शकोंको सन्तुष्ट कर रही थीं ॥२८॥ उन मोहिनी, सुन्दरी, रामा, श्यामा और कमलनयनी अप्सराओंके लावण्यरागसे जब सब यादव मोहित हो गये ॥२९॥ तब उनकी गान्धर्वी मायाका मर्म समझकर महाबली प्रद्युम्नने उसके निवारणार्थ रणांगणमें ज्ञानास्त्रका संधान किया ॥ ३० ॥ हे राजन् ! उसका प्रयोग करते ही लोगोंके मोहका नाश हो गया । इस प्रकार मायाके नष्ट होनेपर दैत्यराज शकुनि मारे क्रोधके पागल हो गया ॥३१॥ उसके बाद उस मायावी दानवने राक्षसी मायाका विस्तार किया । जिससे अगणित पंखवाले पर्वतोंसे सारा गगनमण्डल आच्छादित हो गया ॥ ३२ ॥ समस्त पृथिवीपर घोर अन्धकार छा गया । तब जले हुए वृक्ष, कबन्ध (घड़), रुधिर, शिलाखंड और हड्डियोंकी वर्षा होने लगी । हे विदेहराज ! परिध, निस्त्रिश (तलवार) और मुसल चारों ओरसे बरसने और मेघोंके समान बड़े-बड़े पहाड़ आकाशमें उड़ने लगे ॥ ३३-३५ ॥ हाथोंमें त्रिशूल लिये राक्षसोंके झुंड 'काट डालो' 'मार डालो' ऐसा कहते हुए सैकड़ों हाथियों और मनुष्योंको नोचने-खाने लगे ॥ ३६ ॥ ऐसी स्थितिमें अपनी सेनाको भागती देख महाबली प्रद्युम्नने उस राक्षसी मायाको जीतनेके लिए नृसिंहास्त्रका संधान किया ॥ ३७ ॥ इससे रौद्ररूपधारी साक्षात् नृसिंहभगवान् प्रकट हो गये । उनकी गर्दनके बाल बिखरे हुए थे, जीभ लपलपा रही थी, नख और पूंछ भी शोभित हो रही थी ॥ ३८ ॥ उस समय उनकी पूंछ हिल रही थी । मुख बड़ा भयानक दीख रहा था । वे बार-बार हुंकार करके सिंहनाद कर रहे थे ॥ ३९ ॥ तभी उन्होंने भीषण गर्जन किया । जिससे सप्तलोकोंके साथ सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा । सभी दिग्गज विचलित हो गये । तारे और भूखण्ड चलायमान हो गये ॥ ४० ॥ दैत्योंके देखते-देखते नृसिंहभगवान् वृक्षोंसमेत पर्वतोंको अपने तीखे नखोंसे छिन्न-भिन्न करके पृथिवीपर फेंकने लगे ॥ ४१ ॥ राक्षसोंको पकड़-पकड़कर वे अपने

नाशं गतायां मायायां राक्षस्यां रुक्मिणीसुतः । शंखं दध्मौ विजयदं मौलेन्द्रं च रणांगणे ॥४४॥
 अभूजयजयारावो दुन्दुभिध्वनिमिश्रितः । प्रद्युम्नस्योपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ॥४५॥
 स्वमायायां निर्गतायां शकुनिदैत्यपुंगवः । सरथः सैनिकैः साद्वं तत्रैवांतर्हितोऽभवत् ॥४६॥
 मायां चकार दैतेयीं मयदैत्यप्रदर्शिताम् । हस्तिशुण्डासमां धारां वर्षतोऽतितडित्स्वनाः ॥४७॥
 सांवर्त्तकगणा मेघा आजग्मुः पश्यतां सताम् । क्षणात्सर्वे समुद्रास्ते चण्डवातेन वेपिताः ॥४८॥
 क्षुमिता उर्मिसंघर्षावर्तैः प्लावितभूरुजाः । भूमण्डलं सपदि तत्प्लावितं चात्मभिः समम् ॥४९॥
 दृष्ट्वाऽथ यादवाः सर्वे प्रापुस्तत्र भयं बहु । वदन्तो रामकृष्णेति विस्मृतस्वपराक्रमाः ॥५०॥
 क्षणमात्रेण राजेंद्र तूष्णींभूताः पराजिताः । तदा कार्णिर्महाबाहुः कोदण्डे चण्डविक्रमे ॥

बाणं निधाय सहसा श्रीकृष्णास्त्रं समादधे ॥५१॥

नवार्ककोटिद्युतिमन्महन्महो वीरं जयन्मैथिल वै दिशो दश ।
 समागतं तत्र कुशस्थलीपुरः स्वयं परं स्वार्थमिवात्मवाञ्छितम् ॥५२॥
 तस्मिन्परे तेजसि नूतनांबुदच्छविं सुवर्णांबुजरेणुवाससम् ।
 भृंगावलीकूजितकुन्तलावलिं स्रजं दधानं नववैजयन्तीम् ॥५३॥
 श्रीवत्सरत्नोत्तमचारुवक्षसं चतुर्भुजं पद्मविशालवीक्षणम् ।
 स्फुरत्किरीटं वरहारनूपुरं लसन्नवार्कद्युतिहेमकुण्डलम् ॥५४॥
 विलोक्य देवं यदवोऽतिहर्षिताः परं प्रणेमुः कृतहस्तसंपुटाः ।
 प्रचक्रिरे मैथिल पुष्पवर्षिणोऽमरा जयारावमतीव सर्वतः ॥५५॥
 स दैत्यशकुनेः सज्जं कोदण्डं प्राच्छिनद्रुपा । शार्ङ्गमुक्तेन तच्छार्ङ्गं बाणेनैकेन लीलया ॥५६॥

नक्षोंसे फाड़ने और यातुघानोंको पेरोंसे रौंदने लगे ॥ ४२ ॥ उन्होंने उन सिंहों, व्याघ्रों और सुअरोंको अपने पैने नक्षोंसे चीर-चीरकर आकाशमें उछाल दिया और अन्तर्धान हो गये ॥ ४३ ॥ इस प्रकार जब उस राक्षसी मायाका अन्त हो गया, तब वीर प्रद्युम्नने अपना विजयदायक मौलेन्द्र शंख बजाया ॥ ४४ ॥ उस समय सब ओरसे जयजयकार होने लगा । दुन्दुभियां वजने लगीं और देवता प्रद्युम्नपर फूल बरसाने लगे ॥ ४५ ॥ इस तरह अपनी मायाके नष्ट हो जानेपर दैत्यप्रवर शकुनि अपने रथों और सैनिकोंके साथ वहाँ हो अन्तर्धान हो गया ॥ ४६ ॥ तब उसने मयदानवकी बतायी दैतेयी मायाका विस्तार किया । जिससे हाथीकी सूँड़ सरीखी मोटी जलधारा बरसाते और बिजली तड़काते हुए सांवर्त्तक मेघ छा गये । सब लोगोंके देखते-देखते प्रचण्ड पवनके झोंकोंसे सब समुद्र उमड़ पड़े ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ वे सब क्षुब्ध थे । जिससे पृथिवीके सभी वृक्ष झूब गये और सबके साथ अखिल भूमण्डल झूब गया ॥ ४९ ॥ यह देखकर सभी यादव भयभीत हो गये । वे बार-बार राम-श्रीकृष्ण कहते हुए अपना सब पराक्रम भूल गये ॥ ५० ॥ हे राजेन्द्र ! एक क्षणके लिए जब सब चुप हो गये और हार गये । तब महाबाहु प्रद्युम्नने अपने प्रचण्ड अनुषपर बाण चढ़ाकर श्रीकृष्णास्त्रका प्रयोग किया ॥ ५१ ॥ हे मैथिल ! करोड़ों नवीन सूर्योंके समान कान्तिमान्, दसों दिशाओंके वीरोंको जीतनेवाला, अपने अभिलषित अर्थकी तरह वहाँ द्वारकाकी ओरका तेज आ गया ॥ ५२ ॥ उस तेजमें नवीन मेघ जैसी छविवाले, स्वर्णकमलके मकरन्दके रंगका पीताम्बर ओढ़े, भ्रमरोंके क्षुण्डसे गुंजारती हुई अलकावली धारण किये, देदीप्यमान किरीट, कुंडल, हार और नूपुरोंकी दीप्तिसे देदीप्यमान वैजयन्ती माला धारण किये, वक्षस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न धारण किये, चार भुजधारी, कमलसरीखे विशाल नयन, नवीन सूर्य जैसी कान्तिवाले तथा स्वर्णमुकुट धारण किये श्रीकृष्ण प्रकट हो गये ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ भगवान् कृष्णको देखकर यादव बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने हाथ जोड़कर उनको नमस्कार किया और चारों ओरसे जयजयकार करते हुए फूल बरसाने लगे ॥ ५५ ॥ वहाँ पहुँचते ही श्रीकृष्णने

स छिन्नधन्वा शकुनिस्त्यक्त्वा युद्धं प्रधपितः । हेतिसंहतिमानेतुं ययौ चन्द्रावतीं पुरीम् ॥५७॥
 इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसम्वादे श्रीकृष्णागमनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

(रणभूमिमें गरुड़का आगमन)

श्रीनारद उवाच

दैत्ये गतेऽथ शकुनौ भगवान्कमलेक्षणः । काष्ण्यादियादवान्सर्वानाहूयेत्थमुवाच ह ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

दैत्योऽयं शकुनिः पूर्वं सुमेरोः पार्श्वं उत्तरे । चतुर्युगं वर्जितान्नस्तपसाऽतोषयच्छिवम् ॥ २ ॥
 चतुर्युगे व्यतीते तु साक्षाद्देवो महेश्वरः । प्रसन्नो दर्शनं दत्त्वा वरं ब्रूहीत्युवाच ह ॥ ३ ॥
 नत्वाऽथ शकुनिर्दैत्यः कृताञ्जलिपुटः शनैः । हृष्टरोमाऽश्रुपूर्णाक्षः प्राह गद्गदया गिरा ॥ ४ ॥
 मृतः सन्भूमिसंस्पर्शाद्भूयात्संजीवितः प्रभो । आकाशे मे मृतिर्देव मा भूयाद्वटिकाद्वयम् ॥ ५ ॥
 दैत्येनोक्तो हरः साक्षाद्दत्त्वा तस्मै वरद्वयम् । पंजरस्थं शुकं दत्त्वा प्राह दैत्यं नताननम् ॥ ६ ॥
 जीवकण्यं शुकं चैनं रक्ष दैत्य सदाऽनघ । अस्मिन्मृते च ज्ञातव्यं निधनं स्वं त्वयाऽसुर ॥ ७ ॥
 इति दत्त्वा वरं तस्मै रुद्रश्चांतरधीयत । तस्मात्तस्य वधो दुर्गे भविष्यति शुके मृते ॥ ८ ॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा वीरसदसि भगवान्देवकीसुतः । सुपर्णं शीघ्रमाहूय प्राह प्रहसिताननः ॥ ९ ॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु ताक्ष्यं महाबुद्धे गच्छ चन्द्रावतीं पुरीम् । शतयोजनविस्तीर्णां दैत्यसेनासमाकुलाम् ॥ १० ॥
 प्रासादैर्गगनस्पर्शैर्हं मरत्नमनोहरैः । विचित्रोपवनारामैः शोभितां दैत्यपुंगवैः ॥ ११ ॥
 दुर्गे दुर्गे द्वारदेशे रक्षितां दैत्यपुंगवैः । तां द्रष्टुं गरुडो राजन्स्वप्नरूपं दधार ह ॥ १२ ॥

शार्ङ्गधनुषके एक ही बाणसे शकुनिके धनुषको काट डाला ॥ ५६ ॥ इस प्रकार धनुष कट जानेसे भयभीत शकुनि रणभूमि त्यागकर नवीन शस्त्रास्त्र लेनेके लिए चन्द्रावती पुरीको चला गया ॥ ५७ ॥ इति श्रीगर्ग-संहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटोकायामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

नारदजी बोले—हे राजन् ! जब रणांगणसे शकुनि चला गया। तब भगवान् श्रीकृष्णने प्रद्युम्न आदि सब यादवोंको बुलाकर कहा ॥ १ ॥ भगवान् बोले—पूर्वकालमें इस शकुनि दैत्यने सुमेरुपर्वतके उत्तरी भागमें अन्न-जल त्यागकर चार युग तक तप करके शिवजीको प्रसन्न किया ॥ २ ॥ जब चारयुग बीत गया, तब साक्षात् शंकरभगवान् उसके समक्ष प्रकट हो गये और कहा कि वर माँग ॥ ३ ॥ तब शकुनिने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। उस समय उसके रोयें खड़े हो गये और आँखोंमें आँसू भर आये। तब गद्गद वाणीमें उसने कहा—॥ ४ ॥ भगवन् ! यदि मैं मरूँ तो भूमिका स्पर्श होते ही फिर जीवित हो जाऊँ। आकाशमें भी मैं दो घड़ीतक न मरूँ ॥ ५ ॥ शकुनि दैत्यके ऐसा कहनेपर शिवजीने उसे दोनों वर दे दिये और पिंजड़ेमें एक तोता देकर कहा—॥ ६ ॥ अपने प्राणोंके सहस्र इस तोतेकी सदा रक्षा करना। इसके मर जानेपर तुम अपनी मृत्यु समझना ॥ ७ ॥ ऐसा वरदान देकर शंकरजी तत्काल अन्तर्धान हो गये। सो किलेके भीतर विद्यमान तोतेके मर जानेपर ही इसका वध हो सकेगा ॥ ८ ॥ नारदजी बोले—हे राजन् ! उस वीरसभामें देवकीनन्दन भगवान्कृष्ण गरुड़को बुलाकर हँसते हुए बोले ॥ ९ ॥ भगवान्ने कहा—हे ताक्ष्य ! हे महाबुद्धे ! तुम शीघ्र चन्द्रावतीपुरी जाओ। उस पुरीका विस्तार सौ योजन है और उसमें दैत्योंकी सेना भरी हुई है ॥ १० ॥ उसमें बड़े ऊँचे-ऊँचे गगन-

अलक्षितो दैत्यवृद्धैः पश्यन्प्रासादतोलिकाः । तेषूत्पतन्नुत्पतंश्च शकुनेर्मदिरे गतः ॥१३॥
 प्रेक्षञ्चुकं दैत्यजीवं क्षणं तत्र स्थितोऽभवत् । युद्धार्थं दंशितं तत्र शकुनिं दैत्यपुंगवम् ॥१४॥
 नानाशस्त्रधरं वीरं क्रोधपूरितमानसम् । गृहीत्वा तं परिकरे प्राह राजन्मदालसा ॥१५॥

मदालसोवाच

राजन्सर्वेऽपि सुहृदोऽनुकूला भ्रातरस्तव । मारिताः संगरे भर्त्ताः प्रोद्धटा दैत्यपुंगवाः ॥१६॥
 मा याहि योद्धुं यदुभिरागतो भगवान्हरिः । देहि तस्मै बलिं सद्यो येन श्रेयो ह्यवाप्स्यसि ॥१७॥

शकुनिरुवाच

हनिष्यामि यदूनसैन्यैर्मै हता भ्रातरो बलात् । मृत्युर्मे नास्ति भूमध्ये शिवस्यापि वरेण मे ॥१८॥
 उपद्वीपे चंद्रनाम्नि मतंगे पर्वते शुभे । मे जीवरूपी तु शुको वर्तते सांप्रतं प्रिये ॥१९॥
 शंखचूडेन संपन्नं रक्षितोऽहनिशं शुकः । एतत्कोऽपि न जानाति कथं मृत्युश्च मे भवेत् ॥२०॥

श्रीनारद उवाच

शुकवार्तां ततः श्रुत्वा गरुडो दिव्यवाहनः । उपद्वीपं तु चंद्राख्यं गंतुं तस्मान्मनो दधे ॥२१॥
 उत्पतन् गरुडो वेगात्समुद्रस्य तटे गतः । द्वीपं विचिन्वंदचंद्राख्यमाकाशे विचरन् खगः ॥२२॥
 शतयोजनविस्तीर्णं समुद्रे भीमनादिनि । पक्षिराट् सिंहलं प्राप लतावृंदमनोहरम् ॥२३॥
 तत्र पप्रच्छ गरुडः किं नामास्य जनान्प्रति । सिंहलोऽयमिति श्रुत्वा गरुडः प्रोत्पतन् खगः ॥२४॥
 लंकां प्राप्तो महावेगात्त्रिकूटशिखरे नृप । लंकां प्राप्य ततो वेगात्पांचजन्यं जगाम ह ॥२५॥
 पांचजन्याब्धिनिकटे क्षुधितः पक्षिराट् बली । प्रसह्य भीनान् जग्राह तीक्ष्णया तुंडया भृशम् ॥२६॥
 तत्र चैको महाभक्रो लंबितो योजनद्वयम् । प्रचंडवेगो गरुडस्तीक्ष्णया तुंडया च तम् ॥२७॥

शुम्बी स्वर्णमहल है। बड़े-बड़े बाग हैं और प्रमुख दैत्य उस पुरीकी शोभा बढ़ाते हैं ॥ ११ ॥ उस पुरीके प्रत्येक दुर्गकी श्रेष्ठ दैत्य रक्षा करते हैं। वस, भगवान्‌के निर्देशानुसार चन्द्रावती पुरीको देखनेके लिए गरुडजीने बहुत सूक्ष्म रूप धारण कर लिया ॥ १२ ॥ उस पुरीमें पहुँचकर वहाँके दैत्योंकी आँखोंसे बचते हुए ऊँचे-ऊँचे गहलोंको देखते-देखते शकुनिके प्रासादमें जा पहुँचे ॥ १३ ॥ वहाँ उस दैत्यके जीवस्वरूप तोतेको खोजते हुए क्षणभरके लिए वहाँ ही रुक गये। बादमें युद्धके लिए तैयार शकुनिको देखा ॥ १४ ॥ वह वीर विविध शस्त्रास्त्र धारण किये हुए था। क्रोधसे उसका हृदय भरा हुआ था। उसी समय उसको रानी मदालसा उसे पास बँठाकर बोली ॥ १५ ॥ हे राजन्। आपके सभी सगे-सम्बन्धी, अनुवर्ती भ्राता और बड़े-बड़े उद्धट दैत्य इस युद्ध मारे गये ॥ १६ ॥ अब आप युद्ध करनेके लिए न जायें। क्योंकि अब वहाँ स्वयं भगवान् आ गये हैं। अतएव आप शीघ्र उन्हें भेंट अर्पण कर दें। जिससे आपका कल्याण हो ॥ १७ ॥ शकुनिने कहा—मैं सेनासमेत सभी यादवोंका मार डालूँगा। क्योंकि उन्होंने बरबस मेरे भ्राताओंको मार डाला है। शिवजीने मुझे वरदान दिया है। अतएव भूमिपर मेरा मरण न होगा ॥ १८ ॥ हे प्रिये। चन्द्र नामका एक उपद्वीप है। वहाँ मतंग पर्वत है। उसी पर्वतपर मेरा जीवरूपी तोता रहता है ॥ १९ ॥ शंखचूड संपन्न रात-दिन उसकी रखवाली करता है। इस बातको कोई नहीं जानता कि मेरी मृत्यु कैसे होगी ॥ २० ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन्। तोतेसम्बन्धी बात सुनकर दिव्यवाहन गरुडने चन्द्र नामके उपद्वीपको जानेका निश्चय किया ॥ २१ ॥ तदनुसार बड़े वेगसे उड़कर गरुड समुद्रके तटपर गये और वहाँसे चन्द्रद्वीपको देखनेके लिए आकाशमें उड़ने लगे ॥ २२ ॥ सौ योजन विस्तृत और भयंकर गर्जन करते हुए समुद्रमें देखते-देखते वे लताओंसे मनोहर सिंहल द्वीपमें जा पहुँचे ॥ २३ ॥ वहाँके निवासियोंसे उन्होंने पूछा कि इस द्वीपका क्या नाम है? लोगोंने कहा—यह सिंहल है। सो सुनकर गरुड फिर आकाशमें उड़ गये ॥ २४ ॥ बड़े वेगसे उड़ते हुए वे लंकाके त्रिकूट पर्वतपर जा पहुँचे। लंकासे वे पांचजन्य द्वीप गये ॥ २५ ॥ पांचजन्य समुद्रपर पहुँचे तो उन्हें सुख लगी। तब अपनी तीखी चोंचसे मछलियोंको पकड़-पकड़कर खाने लगे ॥ २६ ॥ तभी एक महानक्र

बलेन गरुडस्तस्य चकाराकर्षणं तटे । तयोराकर्षणं राजन्मिथोऽभूद्वटिकाद्वयम् ॥२८॥
 प्रचंडवेगो गरुडस्तीक्ष्णया तुंडया च तम् । तताड पृष्ठे धृष्टांगं दंडेन यमराज्यथा ॥२९॥
 नक्ररूपं विहायाशु सोऽभूद्विद्याधरो महान् । नत्वा श्रीगरुडं साक्षात्प्राह प्रहसिताननः ॥३०॥

विद्याधर उवाच

अहं विद्याधरः पूर्वं नाम्ना वै हेमकुंडलः । आकाशगंगायां स्नातुं गतो दिविजमंडले ॥३१॥
 तत्र स्नानं प्रकुर्वतं ककुत्थं मुनिसत्तमम् । पादे गृहीत्वा हास्येन जलांतर्गतवानहम् ॥३२॥
 मां शशाप ककुत्थोऽपि त्वं नक्रो भव दुर्मते । मया प्रसादितः शीघ्रं प्रसन्नः सन् वरं ददौ ॥३३॥
 तार्क्ष्यतुंडप्रहारेण नक्रत्वात्त्वं विमुच्यसे । तस्य शापादद्य मुक्तः कृपया तव सुव्रत ॥३४॥

श्रीनारद उवाच

इत्युत्वा च गते स्वर्गे विद्याध्रे हेमकुंडले । उड्डितो गरुडस्तस्मात्पक्षाभ्यां व्योममंडले ॥३५॥
 हरिणाख्यं चोपद्वीपं प्राप्तवान् वेगतः खगः । अपांतरतमास्तत्र करोति विपुलं तपः ॥३६॥
 तस्याश्रमे खगेशस्य पक्षचंद्रं पपात ह । तं दृष्ट्वा प्राह गरुडमपांतरतमा मुनिः ॥३७॥
 पक्षं निधाय मे मूर्ध्नि गच्छ पक्षिन्यथासुखम् । पक्षं नीत्वा गतस्तर्क्ष्यो धृत्वा तन्मस्तके च तम् ॥३८॥
 तत्समानान्पक्षचन्द्राननेकान्स चदर्श ह । प्राहातिविस्मितं तार्क्ष्यमपांतरमा मुनिः ॥३९॥
 यदा यदा हि श्रीकृष्णावतारोऽभूत्तदा तदा । पक्षोऽपि गरुडस्यात्र पतत्येकः सदा खग ॥४०॥

कल्पे कल्पे कृष्णचंद्रावतारः पक्षः पक्षो मूर्ध्नि मे सोऽपि सोऽपि ।

आनंत्याद्वाऽऽद्यन्तवन्तं वदन्ति पक्षिन्मूर्ध्ना नौमि कृष्णाय तस्मै ॥४१॥

श्रीनारद उवाच

तच्छ्रुत्वा विस्मितस्तार्क्ष्यो नत्वा तं मुनिपुंगवम् । द्वीपं रमणकं प्रागादुत्पतन् व्योममंडलात् ॥४२॥

जो दो योजन लम्बा था, वह गरुडके पैर पकड़कर जलमें खींचने लगा । गरुड भी बड़े बलपूर्वक उसको किनारेकी ओर खींचने लगे । हे राजन् ! उन दोनोंकी खींचतानी दो घड़ीतक चली ॥ २७ ॥ २८ ॥ सहसा प्रचण्ड वेगवाले गरुडने उस महानक्रकी पीठके ऊपर जोरसे अपनी पैनी चौंच मारी । जैसे यमराज अपने यमदण्डसे मारते हैं ॥ २९ ॥ तभी नक्ररूपको त्यागकर वह विद्याधर हो गया और गरुडको प्रणाम करके प्रसन्न मुद्रामें बोला ॥ ३० ॥ उसने कहा—हे गरुडजी ! पूर्वजन्ममें मैं हेमकुण्डल नामका विद्याधर था । एक बार आकाशगंगामें स्नान करनेके लिए गया ॥ ३१ ॥ वहाँ ककुत्थ मुनि स्नान कर रहे थे । सो हँसी-हँसीमें मैं उनका पैर पकड़कर जलमें खींच ले गया ॥ ३२ ॥ इससे ककुत्थ मुनिने मुझे शाप दे दिया कि तू मगर हो जा । जब मैंने उन्हें प्रसन्न किया तो उन्होंने यह वरदान दिया कि जब गरुड तुम्हारी पीठमें चौंच मारेंगे, तब तुम इस नक्रयोनिसे छुटकारा पा जाओगे । सो हे सुव्रत ! तुम्हारी कृपासे मैं आज शापमुक्त हो गया ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ श्रीनारदजी बोले—हे राजन् ! ऐसा कहकर जब हेमकुण्डल विद्याधर चला गया, तब गरुडजी अपने पंखोंसे आकाशमें उड़ गये ॥ ३५ ॥ बड़े वेगसे उड़ते हुए गरुडजी हरिण द्वीपमें जा पहुँचे । वहाँ अपान्तरतमा मुनि प्रबल तप कर रहे थे ॥ ३६ ॥ उनके आश्रमपर गरुडजीका एक पंख गिर गया । उसे देखकर अपान्तरतमा मुनिने कहा—॥ ३७ ॥ हे पक्षी ! तुम मेरे मस्तकपर यह पंख रखकर सानन्द चले जाओ । उनके आदेशानुसार वह पंख मुनिके मस्तकपर रखकर चले ॥ ३८ ॥ उसी समय गरुडजीको उनके माथेपर अपने पंखके समान बहुतरे चन्द्रकयुक्त पंख उन्हें दिखायी पड़े । इससे उनको बहुत विस्मय हुआ । तब अपान्तरतमाने कहा—॥ ३९ ॥ जब-जब श्रीकृष्णका अवतार होता है, तब-तब गरुडका एक-एक पंख मेरे सिरपर गिरता है ॥ ४० ॥ इसीसे मेरे मस्तकपर अगणित पंख पड़े हुए हैं । प्रत्येक कल्पमें श्रीकृष्णका अवतार होता है और उस अवतारमें मेरे माथेपर एक पंख आता है । इस तरह इन पंखोंकी संख्या अनन्त है । हे पक्षिन् ! मैं मस्तक झुकाकर उन श्रीकृष्ण भगवान्को प्रणाम करता हूँ ॥ ४१ ॥ श्रीनारदजी बोले—

सर्पेभ्योऽपि बलिं नोत्वा द्वीपमावर्तकं गतः । तत्र दिव्ये सुधाकुण्डे सुधां पीत्वा विराड् बली ॥४३॥
 शुक्लद्वीपं तु संप्राप्तः पप्रच्छ द्वीपचंद्रभाक् । मया प्रणोदितः पक्षी प्रययावुत्तरां दिशम् ॥४४॥
 चन्द्रद्वीपं तु संप्राप्तः पर्वते पतगेश्वरः । जलदुर्गं वह्निदुर्गं वैनतेयो ददर्श ह ॥४५॥
 जलदुर्गं चंचुपुटे सर्वं कृत्वा विराड् बली । वह्निदुर्गं च तेनापि सांत्वयामास मैथिल ॥४६॥
 दरीमुखे शयाना ये दैत्या लक्षं समुत्थिताः । तैः सार्द्धं समभूद्युद्धं तार्क्ष्यस्य घटिकाद्वयम् ॥४७॥
 कांश्चित्पादनखैर्युद्धे विददार खगेश्वरः । कांश्चिदैत्यान्स्वपक्षाभ्यां पातयामास भूतले ॥४८॥
 कांश्चिच्चंचुपुटेनापि गृहीत्वा पक्षिराड् बली । पातयित्वा गिरेः पृष्ठे विक्षेप गगने बलात् ॥४९॥
 केचिन्मृतास्तथा शेषा दद्रुवुस्ते दिशो दश । इत्थं दैत्यवधं कृत्वा दरीमध्ये गतः खगः ॥५०॥
 चकार पादविक्षेपं शंखचूडोपरि स्फुरत् । शंखचूडोऽपि गरुडं दृष्ट्वा सोऽतिप्रधर्षितः ॥५१॥
 शुक्रं जले पंजरस्थं शीघ्रं त्यक्त्वा पलायितः । चंचुदेशेन तं नीत्वा शुक्रं सद्यः संपंजरम् ॥५२॥
 प्रोत्पतन्नवरे राजन् युद्धे गन्तुं मनो दधे । पलायितानां दैत्यानां तावत्कोलाहलो महान् ॥५३॥
 शुक्रो नीतः शुक्रो नीतो वदतामं वरे नृप । तच्छब्दो दिक्षु सैन्यानां गतशब्दस्तु शृण्वताम् ५४॥
 दिवि भूमौ सर्वतोऽपि ब्रह्मांडेऽपि प्रपूरितः । शुक्रो नीत इति श्रुत्वा शकुनिः शंकितोऽसुरैः ॥५५॥
 शूलं धृत्वा ततः सद्यश्चंद्रावत्यां समुत्थितः । गरुडेन शुक्रो नीतः श्रुत्वा क्रुद्धः समन्वयात् ॥५६॥
 तच्छूलताडितस्ताक्ष्यो न जहौ मुखतः शुक्रम् । सप्तर्द्धापान्सप्तसिंधून्निरीक्षन्स गतः खगः ॥५७॥
 तमन्वधावदैत्येन्द्रो दिक्षु दिक्षु नमोतरे । भ्रमन्नागांतको राजन्नाकाशे कोटियोजनम् ॥५८॥
 दैत्यत्रिशूलक्षतभृन् जहौ मुखतः शुक्रम् । संपंजरः शुक्रो राजन्नाकाशे लक्षयोजनम् ॥५९॥

हे राजन् । यह सुनकर विस्मित गरुडने उन मुनिवरको प्रणाम किया और गगनमण्डलमें उड़ते हुए रमणक द्वीप जा पहुँचे ॥ ४२ ॥ वहाँके सर्पोंसे भेंट लेकर गरुड आवर्तक द्वीप चले गये । वहाँके दिव्य अमृतकुण्डमें बलवान् गरुडने अमृत पिया ॥ ४३ ॥ वहाँसे उड़कर वे शुक्लद्वीप पहुँचे । वहाँ वे चन्द्रद्वीपका पता पूछने लगे तो मैंने (नारदने) बताया । मेरे कथनानुसार वे उत्तर दिशाको चले गये ॥ ४४ ॥ चन्द्रद्वीपमें पहुँचकर गरुडजीने जलदुर्ग और अग्निदुर्ग देखा ॥ ४५ ॥ सो पूरे जलदुर्गको अपनी चोंचमें लेकर गरुडजीने उसीके जलसे अग्निदुर्गकी अग्नि बुझा दी ॥ ४६ ॥ उस गुफाके द्वारपर एक लाख दैत्य सोये हुए थे । उनके साथ गरुडजीका दो घड़ी तक युद्ध हुआ ॥ ४७ ॥ उनमेंसे कितने ही दैत्योंको अपने चरण-नखसे और कितनोंको पंखोंसे मारकर गरुडजीने धरतीपर गिरा दिया ॥ ४८ ॥ बहुतरे दैत्योंको अपनी चोंचसे पकड़कर पर्वतपर और बहुतोंको आकाशमें फेंक दिया ॥ ४९ ॥ उनमेंसे कुछ दैत्य मर गये और जो बाकी बचे, वे दसों दिशाओंमें भाग गये । इस प्रकार दैत्यवध करके गरुडजी कन्दराके भीतर गये ॥ ५० ॥ वहाँ जाते ही गरुडने शंखचूडके ऊपर पैर रख दिया । इससे वह बहुत डर गया ॥ ५१ ॥ उसने शकुनि दैत्यके जीवरूपी तोतेको पिंजड़े समेत जलमें डालकर भाग गया । तब गरुडने पिंजड़े सहित तोतेको अपनी चोंचमें रख लिया ॥ ५२ ॥ उसको लेकर गरुड आकाशमें गये तो रणभूमि जानेका विचार किया । इससे पहलेके भागे हुए दैत्योंमें बड़ा कोलाहल मचा ॥ ५३ ॥ 'तोता ले गया' 'तोता ले गया' का निनाद आकाशमंडलमें व्याप्त होकर सभी दैत्य-सैनिकों और सभी दिशाओंमें गूँज गया ॥ ५४ ॥ वह निनाद स्वर्गमें, भूमिमें और समस्त ब्रह्माण्डमें फैल गया । असुरोंके मुखसे तोतेके अपहरणकी बात सुनकर शकुनि दैत्यको बड़ी शंका हुई ॥ ५५ ॥ वह शूल लेकर तत्काल चन्द्रावतीपुरीसे उड़ा और 'गरुड तोतेका ले गये हैं'—यह सुनकर रोषपूर्वक उनका पीछा करने लगा ॥ ५६ ॥ उसने गरुडको अपने शूलसे मारा, तो भी उन्होंने मुखसे तोतेको नहीं छोड़ा । वे सातों समुद्र और सातों द्वीपोंका निरीक्षण करते हुए आगे बढ़ते गये ॥ ५७ ॥ दैत्यराज शकुनिने प्रत्येक दिशामें और आकाशमें भी उनका पीछा किया । हे राजन् । नागान्तक गरुड आकाशमें भ्रमण करते हुए कोटि योजनतक चले गये । दैत्यके त्रिशूलकी मारसे वे क्षत-विक्षत हो गये, तथापि मुखसे तोतेको नहीं छोड़ा

पपातोपलवद्वेगात्सुमेरोगिरिमूर्द्धनि । पंजरोऽगात्खगस्तत्र विशीर्णोऽभूद्वचसुः शुक्रः ॥ ६० ॥
 गरुडोऽथ महायुद्धे कृष्णपार्श्वं समागतः । दैत्यः खिन्नमनो राजन्पुरीं चन्द्रावतीं ययौ ॥ ६१ ॥
 इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे गरुडागमो नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

अथ एकचत्वारिंशोऽध्यायः

(भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा युक्तिपूर्वकं शकुनिका वध)

श्रीनारद उवाच

दैत्यान् शेषान् समानीय नाना युद्धधधरो बली । उच्चैःश्रवसमाहूय हयं दिव्यं मनोहरम् ॥ १ ॥
 धनुष्टंकारयन्वीरः शकुनिः क्रोधमूर्च्छितः । आययौ संमुखे योद्धुं श्रीकृष्णस्यापि संमुखे ॥ २ ॥
 पुनः प्राप्तं दैत्यसैन्यं शकुनिं युद्धदुर्मदम् । तं वीक्ष्य वृष्णयः सर्वे जगृहुः स्वायुधानि च ॥ ३ ॥
 दैत्यानां यदुभिः सार्द्धं घोरं युद्धं बभूव ह । वीरैः संयुयुधुर्वीराः सिंहाः सिंहैरिवाहवे ॥ ४ ॥
 सर्वेषामग्रतः प्राप्तः कोदण्डं नादयन्मुहुः । शकुनिर्मेघवद्राजन् चक्रे नाराचदुर्दिनम् ॥ ५ ॥
 बाणांधकारे संजाते भगवान् गरुडध्वजः । शार्ङ्गं शार्ङ्गेण धनुषा यथेद्रेण घनो वभौ ॥ ६ ॥
 श्रीकृष्णो भगवान्साक्षाच्छकुनेरसुरस्य च । चिच्छेद बाणपटलं बाणेनैकेन लीलया ॥ ७ ॥
 आकृष्य कर्णपर्यंतं कोदण्डं शकुनिर्मृधे । तताड दशभिर्बाणैः श्रीकृष्णहृदि मैथिल ॥ ८ ॥
 प्रलयाब्धिमहावर्तभीमसंघर्षनादिनीम् । धनुज्यां शकुनैः शौरिश्चिच्छेद दशभिः शरैः ॥ ९ ॥
 मायावी शकुनिर्दैत्यः शतरूपी बभूव ह । युयोध हरिणा युद्धे सर्वेषां पश्यतां नृप ॥ १० ॥
 सहस्राणि स्वरूपाणि धृत्वा साक्षाद्भरिः स्वयम् । युयुधे तेन दैत्येन तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ११ ॥

॥ ५८ ॥ हे राजन् ! लाख योजन ऊँचे आकाशमें जानेपर पिंजरे-सहित शुक पत्थरकी भाँति सुमेरुपर्वतके शिखरपर बड़े वेगसे गिरा । जिससे पिंजरा टट गया और तोतेके प्राण-पखेरू उड़ गये ॥ ५९ ॥ ६० ॥ तदनन्तर गरुड उस महायुद्धमें श्रीकृष्णके पास चले गये । हे राजन् ! दैत्य शकुनि खिन्न-चित्त होकर चन्द्रावतीपुरीमें लौट गया ॥ ६१ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे प्रियंवदाभाषाटीकायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! शेष दैत्योको लेकर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण किये बलवान् वीर शकुनि, दिव्य मनोहर अश्व उच्चैःश्रवापर आरूढ़ हो, क्रोधसे अचेत-सा होकर, धनुषका टंकार करता हुआ युद्ध करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णके सम्मुख आ गया ॥ १ ॥ २ ॥ रणदुर्मद दैत्य शकुनि तथा उसकी सेनाका पुनः आगमन देख समस्त वृष्णिर्वंशियोने अपने-अपने आयुध उठा लिये ॥ ३ ॥ उस समय दैत्योका यादवोंके साथ घोर युद्ध हुआ । वीरोंके साथ वीर इस तरह जूझने लगे, जैसे सिंहोंके साथ सिंह लड़ रहे हों ॥ ४ ॥ हे राजन् ! मेघकी गर्जनाके समान बारंबार कोदण्डका टंकार करता हुआ शकुनि सबके आगे था । उसने बाणवर्षा द्वारा दुर्दिन उपस्थित कर दिया ॥ ५ ॥ बाणोंका अन्धकार छा जानेपर शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले भगवान् गरुडध्वज अपने उस धनुषसे उसी प्रकार सुशोभित हुए, जैसे इन्द्रधनुषसे मेघकी शोभा होती है ॥ ६ ॥ साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने अपने एक ही बाणसे लीलापूर्वक असुर शकुनिके बाण-समूहोंको काट डाला ॥ ७ ॥ हे मिथिलेश्वर ! युद्धमें अपने धनुषको कानतक खींचकर शकुनिने भगवान् श्रीकृष्णके हृदयमें दस बाण मारे ॥ ८ ॥ तब प्रलय-समुद्रके महान् आवर्तोंके भीषण संघर्षके समान गम्भीर नाद करनेवाली शकुनिके धनुषकी प्रत्यञ्चाको श्रीकृष्णने दस बाणोंसे काट डाला ॥ ९ ॥ हे नरेश्वर ! मायावी दैत्य शकुनि सबके देखते-देखते सौ रूप धारण करके श्रीहरिके साथ युद्ध करने लगा ॥ १० ॥ तब साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण एक सहस्र रूप धारण करके उस दैत्यके साथ युद्ध करने लगे, वह अद्भुत-सी बात हुई ॥ ११ ॥

मयदैत्येन रचितं त्रिशूलं ज्वलनप्रभम् । भ्रामयित्वाऽथ हरये प्राहिणोदैत्यराड् वली ॥१२॥
 ततः क्रुद्धो महाबाहुः परिपूर्णतमो हरिः । चिच्छेद तं तीक्ष्णतुंडं पन्नगं गरुडो यथा ॥१३॥
 ततः क्रुद्धो महाबाहुर्गदां चिक्षेप मूर्धनि । हयात्तं पातयामास गदया वज्रकल्पया ॥१४॥
 गदाप्रहारव्यथितः क्षणं मूर्च्छां गतोऽसुरः । गृहीत्वा स्वां गदां युद्धे युयुधे माधवेन वै ॥१५॥
 तयोर्युद्धमभूद्धोरं गदाभ्यां रणमण्डले । अभूच्चटचटारावो वज्रनिष्पेषवत्किल ॥१६॥
 श्रीकृष्णगदया तस्य चूर्णीभूता गदा भुवि । विरेजेऽङ्गारवत्तत्र सर्वेषां पश्यतां मृधे ॥१७॥
 गिरिदर्यां यथा सिंहौ वने मत्तौ गजावुभौ । रणमध्ये तथा तौ द्वौ युयुधाते परस्परम् ॥१८॥
 श्रीकृष्णं नोदयामास शकुनिः शतयोजनम् । हरिस्तं प्रेषयामास सहस्रं योजनं भुवि ॥१९॥
 गृहीत्वा भुजयोस्तं वै जंघाभ्यां भुवनेश्वरः । पातयामास भूषष्ठे कमण्डलुमिवार्भकः ॥२०॥
 किञ्चिद्वथां गतो दैत्यो गृहीत्वा जारुधिगिरिम् । प्राहिणोच्च दुराचारः शकुनिर्युद्धदुर्मदः ॥२१॥
 समागतं गिरिं वीक्ष्य भगवान्कमलेक्षणः । जयशब्दं प्रकुर्वतावन्योन्यं ताडयन् गिरिम् ॥२२॥
 चूर्णयामासत् राजंस्तथा चन्द्रावतीं पुरीम् । तदा दैत्योऽतिसक्रुद्धो गृहीत्वा खड्गचर्मणी ॥२३॥
 आययौ संमुखे राजञ्छ्रीकृष्णस्य महात्मनः । शार्ङ्गं शार्ङ्गं संगृहीत्वाऽथाद्धं चंद्रमुखं शरम् ॥२४॥
 संदधे सहसा युद्धे ग्रीष्ममार्तण्डसन्निभम् । शार्ङ्गमुक्तो दिव्यबाणो द्योतयन्मण्डलं दिशाम् ॥२५॥
 शकुनेर्मस्तकं छित्त्वा भूमिं भित्त्वा तलं गतः । व्यसुर्भूत्वा तदा दैत्यः पतितो रणमण्डले ॥२६॥
 भूमिस्पर्शात्सजीवोऽभूत्क्षणमात्रेण मैथिलः । करेणादाय मुंडं स्वं स्वकबंधे निधाय सः ॥२७॥

वलवान् दैत्यराज शकुनिने मयासुरके वनाये हुए अग्नितुल्य तेजस्वी त्रिशूलको घुमाकर उसे श्रीहरिके ऊपर चला दिया ॥ १२ ॥ तब कुपित होकर परिपूर्णतम महाबाहु श्रीहरिने उस त्रिशूलको वैसे ही काट दिया, जैसे तीखी चोंचवाला गरुड किसी सर्पको टूक-टूक कर डाले ॥ १३ ॥ तदनन्तर क्रोधसे भरे हुए महाबाहु श्रीहरिने शकुनिके मस्तकपर अपनी गदा चलायी तथा उस वज्रतुल्य गदाकी चोटसे उस दैत्यको घोड़ेसे नीचे गिरा दिया ॥ १४ ॥ गदाकी चोटसे पीड़ित वह दैत्य क्षणभरके लिये मूर्च्छित हो गया । फिर युद्धस्थलमें अपनी गदा लेकर वह माधवके साथ युद्ध करने लगा ॥ १५ ॥ उस समय रणमण्डलमें गदाओं द्वारा उन दोनोंके बीच घोर युद्ध हुआ । गदाओंके टकरानेका चट-चट शब्द वज्रके टकरानेकी भाँति सुनायी पड़ता था ॥ १६ ॥ श्रीकृष्णकी गदासे चूर-चूर होकर शकुनिकी गदा पृथ्वीपर गिर पड़ी । वह युद्धमें सबके देखते-देखते अङ्गारकी भाँति दहकने लगी ॥ १७ ॥ जैसे पर्वतकी कन्दरामें दो सिंह लड़ते हों, जैसे वनमें दो मतवाले हाथी जड़ते हों, उसी प्रकार समराङ्गणमें वे दोनों—श्रीकृष्ण और शकुनि परस्पर युद्ध करने लगे ॥ १८ ॥ शकुनिने श्रीकृष्णको सौ योजन पीछे हटा दिया और श्रीकृष्णने उसे भूतलपर सहस्र योजन पीछे ढकेल दिया ॥ १९ ॥ तब त्रिभुवननाथ श्रीहरिने उसे दोनों भुजाओंसे पकड़कर जाँघोंके धक्केसे जमीनपर वैसे ही पटक दिया, जैसे किसी बालकने कमण्डलु फेंक दिया हो ॥ २० ॥ इससे उस दैत्यको कुछ व्यथा हुई । फिर उस युद्ध-दुर्मद दुराचारी शकुनिने जारुधि पर्वतको उखाड़कर उसे श्रीकृष्णपर चला दिया ॥ २१ ॥ पर्वतको अपने ऊपर आता देख कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने पुनः उसे उसीकी ओर लौटा दिया । इस प्रकार जय-शब्दका उच्चारण करते हुए वे दोनों एक-दूसरेपर उसी पर्वतके द्वारा प्रहार करते रहे ॥ २२ ॥ हे राजन् ! उस पर्वतके आघातसे उन दोनोंने चन्द्रावतीपुरीको भी चूर्ण कर दिया । उस समय दैत्य शकुनिने अत्यन्त कुपित हो ढाल-तलवार उठा ली और महात्मा श्रीकृष्णके सामने वह युद्धके लिये आ गया । तब भगवान् शार्ङ्गधरने अपना शार्ङ्गधनुष लेकर उसके ऊपर सहसा अर्धचन्द्रमुख वाणका संधान किया, जो युद्धस्थलमें ग्रीष्मऋतुके सूर्यके समान उद्भासित हो उठा ॥ २३-२५ ॥ शार्ङ्गधनुषसे छूटा हुआ वह दिव्य बाण दिङ्मण्डलको विद्योतित करता हुआ शकुनिका मस्तक काट और भूमिका भेदन करके तललोकमें चला गया । उस समय दैत्य शकुनि प्राणशून्य होकर युद्ध-स्थलमें गिर पड़ा ॥ २६ ॥ हे मिथिलेश्वर ! भूमिका स्पर्श होते ही वह क्षणभरमें पुनः जीवित हो

युद्धं कर्तुं समुत्तस्थौ तदद्भुतमिवाभवत् । इत्थं कृष्णेन निहतः सप्तवारं महासुरः ॥२८॥
भूमिस्पर्शात्सजीवोऽभूद्राहुवत्पुनरुत्थितः । एकाकी यादवकुलं संहारं कर्तुमुद्यतः ॥२९॥
विवेशाशु महादैत्यो वने वह्निरिव प्रभुः । सतुरंगान्महावीरान्सशस्त्रानुत्कटान् गजान् ॥३०॥
संगृहीत्वा भुजाभ्यां खं प्राक्षिपल्लक्षयोजनम् । कांश्चिद्रजान्मुखे धृत्वा स्कन्धयोरुभयोरपि ॥३१॥
कक्षयोरुभयोदैत्यो बभौ कालाग्निरुद्रवत् । पद्भ्यां कराभ्यां दैत्यस्य त्रासं याते महामृधे ३२॥
हाहाकारो महानासीच्छ्रीकृष्णस्य महात्मनः । तदैव भगवान्साक्षाच्छ्रीकृष्णो विश्वरक्षकः ॥

सुदर्शनास्त्रं प्रायुक्तं साधूनां रक्षणाय वै ॥ ३३ ॥

तद्वस्तुमुक्तं निशितं सुदर्शनं लयार्ककोटिद्युतिमज्ज्वलत्प्रभम् ।

जहार सद्यः शकुनेर्दृढं शिरो यथा च वृत्रस्य पविर्महामृधे ॥३४॥

तावद्गृहीत्वा शकुनिं महामृधे चिक्षेप सद्यो मृतमंवरे वलात् ।

उत्क्षेपणं भोः कुरुतेषुभिर्दिवि यदून् गिरा श्रीपतिरित्युवाच ॥३५॥

श्रीनारद उवाच

इत्थं हरेर्वचः श्रुत्वा सर्वे यादवपुंगवाः । अंबरात्रपतंतं ते तेडुर्बाणैः स्फुरत्प्रभैः ॥३६॥
दैत्यो दीप्तिमतो बाणैरंबरे शतयोजनम् । गतः कंदुकवद्राजचूर्ध्वं लोकस्य पश्यतः ॥३७॥
सांबस्यापि स बाणेन सहस्रं योजनं गतः । पुनस्तमापतंतं खाञ्जधान त्विषुणाऽर्जुनः ॥३८॥
तेन बाणेन दैत्येद्रो योजनं चायुतं गतः । अनिरुद्धस्य बाणेन लक्षयोजनमास्थितः ॥३९॥
प्रद्युम्नस्यापि बाणेन नियुतं योजनं गतः । पुनस्तमापतंतं खाद्रीक्ष्य योगेश्वरेश्वरः ॥४०॥
बाणं समादधे तेन गतः खे कोटियोजनम् । एवं खे संस्थिते दैत्ये व्यतीते प्रहरद्वये ॥४१॥

उठा । अपने कटे हुए मस्तकको अपने ही हाथसे धड़पर रखकर वह युद्ध करनेके लिये पुनः उठ खड़ा हुआ, यह अद्भुत-सी घटना घट गयी ॥२७॥ इस प्रकार श्रीकृष्णके हाथसे सात बार मारे जानेपर भी वह महान् असुर भूमिके स्पर्शसे जी गया तथा राहुकी भाँति फिर उठ खड़ा हुआ । अब वह अकेले ही यादव-कुलका संहार करनेके लिये उद्यत हुआ ॥ २८ ॥ २९ ॥ वनमें दावानलकी भाँति उस शक्तिशाली महादैत्यने तत्काल यादव-सेनामें प्रवेश किया । उसने घोड़ों और अस्त्र-शस्त्रोंसहित महावीर घुड़सवारों तथा मदमत्त हाथियोंको भुजाओंसे पकड़कर आकाशमें लाख योजन दूर फेंक दिया । किन्हीं हाथियोंका मुँह, किन्हींके दोनों कंधे तथा किन्हींके दोनों कक्ष पकड़कर फेंकता हुआ वह दैत्य कालाग्नि रुद्रके समान जान पड़ता था ॥ ३० ॥ ३१ ॥ उस दैत्यके दोनों पैरों और हाथोंने उस महासमरमें जब भारी आतङ्क उत्पन्न कर दिया और महात्मा श्रीकृष्णकी सेनामें जोरोसे हाहाकार होने लगा, तब विश्वरक्षक साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने साधु पुरुषोंकी रक्षाके लिये अपने अस्त्र सुदर्शनचक्रका प्रयोग किया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उनके हाथसे छूटा हुआ तीखा सुदर्शनचक्र प्रलयकालके कोटि सूर्योंकी दीप्तिमती प्रभासे प्रज्वलित हो उठा । उसने उस महायुद्धमें शकुनिके सुदृढ़ मस्तकको उसी तरह काट लिया, जैसे वज्रने वृत्रासुरका मस्तक काटा था ॥ ३४ ॥ तबतक भगवान् श्रीकृष्णने महासमरमें मरे हुए शकुनिको बलपूर्वक आकाशमें फेंक दिया । फिर श्रीपतिने यादवोंसे कहा—‘तुमलोग इसके शरीरको बाणोंसे ऊपर-ही-ऊपर फेंकते रहो’ ॥ ३५ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! श्रीहरिकी यह बात सुनकर समस्त यादवश्रेष्ठ वीर आकाशसे गिरते हुए उस दैत्यको चमकीले बाणोंसे ताड़ित करने लगे ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! दीप्तिमान्के बाणोंसे आहत हो वह दैत्य लोगोंके देखते-देखते गेंदकी भाँति सी योजन ऊपर चला गया ॥ ३७ ॥ फिर साम्बके बाणका धक्का पाकर वह एक सहस्र योजन ऊपर चला गया । जब वह पुनः आकाशसे नीचे गिरने लगा, तब अर्जुनने अपने बाणसे उसपर चोट की ॥ ३८ ॥ उस बाणसे वह दैत्यराज दस हजार योजन ऊपर चला गया । तदनन्तर जब वह फिर नीचे आने लगा, तब अनिरुद्धके बाणने उसे लाख योजन ऊपर उछाल दिया ॥ ३९ ॥ इसके बाद प्रद्युम्नके बाणसे वह दस लाख योजन ऊपर उठ गया । तत्पश्चात् उसे पुनः आकाशसे नीचे गिरते देख योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने उसपर बाण मारा, जिससे वह

द्वितीयेनापि बाणेन तं जघान हरिः स्वयम् । सबाणस्तं भ्रामयित्वा दिक्षु वै कोटियोजनम् ॥४२॥
 समुद्रे पातयामास वातः पद्ममिव प्रभुः । एवं मृते तदा दैत्ये तज्ज्योतिर्निर्गतं स्फुरत् ॥४३॥
 सर्वतोऽपि भ्रमद्राजन् श्रीकृष्णे लीनतां गतम् । तदा जयजयारावो दिवि भूमाववर्तत ॥४४॥
 विद्याधर्यश्च गन्धर्व्यो ननृतुः खे सुखान्विताः । जगुः किन्नरगन्धर्वास्तुष्टुबुः सिद्धचारणाः ॥४५॥
 ऋषयो मुनयः सर्वे प्रशंससुहृदि परम् । ब्रह्मरुद्रैर्द्रुसूर्याद्याः सर्वे तत्र समागताः ॥४६॥
 श्रीकृष्णस्योपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ॥४७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे शकुनिदैत्यवधो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

(शकुनि आदिदैत्योके पूर्व जन्मोक्ता परिचय)

श्रीनारद उवाच

पलायितेषु शेषेषु दैत्येषु रणमण्डलात् । वीणावेणुमृदंगादीन्नादयन्दुंभीन्हरिः ॥ १ ॥
 गीयमानो यादवेन्द्रः सूतमागधवन्दिभिः । स्वपुत्रैर्यादवैः सार्द्धं स्वसैन्यपरिवारितः ॥ २ ॥
 शंखचक्रगदापद्मशार्ङ्गचापविराजितः । प्रविवेश सुरैः सार्द्धं पुरीं चन्द्रावतीं प्रभुः ॥ ३ ॥
 दुःखार्ता भर्तारि मृते रुदन्ती करुणं बहु । अंके गृहीत्वा शकुनेः सुतं राज्ञी मदालसा ॥ ४ ॥
 श्रीकृष्णचरणे बालं निधायानु कृताञ्जलिः । अभ्रपूर्णमुखी दीना हरिं नत्वा जगाद ह ॥ ५ ॥

मदालसोवाच

भारावताराय भुवि प्रभो त्वं जातो यदूनां कुल आदिदेव ।
 प्रसिष्यसे यानि भवं निधाय गुणैर्न लिप्तोऽसि नमामि तुभ्यम् ॥ ६ ॥

कोटि योजन ऊपर चला गया । इस प्रकार दो पहरतक वह दैत्य आकाशमें ही स्थित रह गया, उसे नीचे नहीं गिरने दिया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ तदनन्तर साक्षात् श्रीहरिने उसके ऊपर दूसरा बाण मारा । उस बाणने सम्पूर्ण दिशाओंमें उसको कोटि योजनतक घुमाकर समुद्रमें वैसे ही ला पटका, जैसे हवाने कमलके फूलको उड़ाकर नीचे डाल दिया हो । हे राजन् । इस प्रकार जब उस दैत्यकी मृत्यु हो गयी, तब उसके शरीरसे एक प्रकाशमान ज्योति निकली और वह चारों ओरसे परिक्रमा करके भगवान् श्रीकृष्णमें विलीन हो गयी । उस समय भूतल और आकाशमें जय-जयकार होने लगा ॥ ४२-४४ ॥ विद्याधरियाँ और गन्धर्वकन्याएँ आनन्दमग्न होकर आकाशमें नृत्य करने लगीं, किन्नर और गन्धर्व यश गाने लगे तथा सिद्ध और चारण स्तुति सुनाने लगे ॥ ४५ ॥ समस्त ऋषियों और मुनियोंने श्रीहरिकी भूरि-भूरि प्रशंसा की । ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र और सूर्य आदि सब देवता वहाँ आ गये और श्रीकृष्णके उपर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ इति श्रीगर्ग-संहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामेकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! बचे हुए दैत्य रणभूमिसे भाग गये । यादवेन्द्र भगवान् श्रीहरि वीणा, वेणु, मृदङ्ग और दुन्दुभि आदि बाजे बजवाते और सूत-मागध एवं बन्दीजनोंके मुखसे अपने यशका गान सुनते हुए, पुत्रों तथा अन्य यादवोंके साथ सेनासे घिरकर शङ्ख, चक्र, गदा, कमल और शार्ङ्गधनुषसे सुशोभित हो, देवताओंसहित चन्द्रावतीपुरीमें गये ॥ १-३ ॥ वहाँ अपने पतिके मारे जानेके कारण रानी मदालसा शकुनिके पुत्रको गोदमें लिये दुःखसे आतुर हो अत्यन्त करुणाजनक विलाप कर रही थी ॥ ४ ॥ उसके मुखपर अभ्रधारा बह रही थी और वह अत्यन्त दीन हो गयी थी । उसने तुरन्त हाथ जोड़कर अपने बच्चेको श्रीकृष्णके चरणोंमें डाल दिया और भगवान्को नमस्कार करके कहा ॥ ५ ॥ मदालसा बोली—हे प्रभो ! हे आदिदेव । आप भूतलका भार उतारनेके लिये यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं । आप संसारके स्रष्टा हैं

मदात्मजं पालय भीतभीतममुष्य हस्तं कुरु शीर्ष्णि देव ।

भर्त्रा कृतं मे किल तेऽपराधं क्षमस्व देवेश जगन्निवास ॥ ७ ॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्तो भगवांस्तस्य मूर्ध्नि कृत्वा करद्वयम् । सर्वं चन्द्रावतीराज्यं ददौ तस्मै महाशुनिः ॥ ८ ॥

दत्त्वा कल्पान्तमायुष्यं भक्तिज्ञानं विरक्तिमत् । शकुनेः शिशवे कृष्णः स्वमालां प्रददौ शुभाम् ॥ ९ ॥

उच्चैःश्रवो हयो रत्नं कामधेनुः सुरद्रुमः । आहूता ये शकुनिना पुरा युद्धे पुरंदरात् ॥ १० ॥

पुरंदराय तान्प्रादात्प्रयत्नाच्छ्रीजनार्दनः । गोविप्रसुरसाधूनां छंदसां पालकः स्वयम् ॥ ११ ॥

बहुलाश्व उवाच

केऽमी दैत्याः पूर्वकाले शकुन्याद्या महाबलाः । देवर्षे मे परं चित्रं कस्मान्मोक्षमुपागताः ॥ १२ ॥

श्रीनारद उवाच

ब्रह्मकल्पे पुरा राजन् गंधर्वेशः पुरावसुः । आसीत्तस्य शुभाः पुत्रा बभूवुर्नव चौरसाः ॥ १३ ॥

कंदर्पसमलावण्या दिव्यभूषणभूषिताः । नित्यं जगुर्ब्रह्मलोके गीतवाद्यविशारदाः ॥ १४ ॥

मंदारो मंदरो मंदो मंदहासो महाबलः । सुदेवः सुधनः सौधः श्रीभानुरिति विश्रुताः ॥ १५ ॥

एकदा मोहतः पुत्रीं वाग्देवीं वीक्ष्य वेधसः । जहसुस्ते स्वमनसि पुरावसुसुताश्च ये ॥ १६ ॥

सुरज्येष्ठापराधेन गता योनिं च तामसीम् । वाराहेऽथ हिरण्याक्षपत्न्यां ते जज्ञिरे नव ॥ १७ ॥

शकुनिः शंबरो हृष्टो भूतसन्तापनो वृकः । कालनाभो महानाभो हरिश्मश्रुस्तथोत्कचः ॥ १८ ॥

एकदा गृहमायांतमपांतरतमं मुनिम् । नत्वा संपूज्य विधिवत्प्रच्छुरिदमादरात् ॥ १९ ॥

और प्रलयकाल आनेपर आप ही इसका संहार करेंगे; किन्तु कभी आप गुणोंसे लीप्त नहीं होते । मैं आपकी अनुकूलता प्राप्त करनेके लिये आपके चरणोंमें प्रणाम करती हूँ । मेरा बेटा बहुत डरा हुआ है । आप इसकी रक्षा कीजिये । हे देव । इसके मस्तकपर अपना वरद हस्त रखिये । हे देवेश । हे जगन्निवास ! मेरे पतिने आपका जो अपराध किया है, उसे क्षमा कीजिये ॥ ६ ॥ ७ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् । मदालसाके यों कहनेपर महामति भगवान् श्रीकृष्णने उस बालकके मस्तकपर अपने दोनों हाथ रखकर चन्द्रावतीका सारा राज्य उसे दे दिया ॥ ८ ॥ फिर कल्पपर्यन्तको लम्बी आयु देकर वैराग्यपूर्ण ज्ञान एवं अपनी भक्ति प्रदान की । तदनन्तर उस शकुनिकुमारको श्रीकृष्णने अपने गलेकी सुन्दर माला उतारकर दे दी ॥ ९ ॥ शकुनिने पहले युद्धमें इन्द्रसे जो उच्चैःश्रवा घोड़ा, चिन्तामणि रत्न, कामधेनु और कल्पवृक्ष छीन लिये थे, वे सब श्रीजनार्दनने प्रयत्नपूर्वक देवेन्द्रको लौटा दिये; क्योंकि भगवान् स्वयं ही गीतों, ब्राह्मणों, देवताओं, साधुओं तथा वेदोंके प्रतिपालक हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ बहुलाश्वने पूछा—हे देवर्षे । पूर्वकालमें ये महाबली शकुनि आदि दैत्य कौन थे और कैसे इन्हें मोक्षकी प्राप्ति हुई? इस बातको लेकर मेरे मनमें बड़ा आश्चर्य हो रहा है ॥ १२ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् । पूर्वकालके ब्रह्मकल्पकी बात है, परावसु गन्धर्वोंका राजा था । उसके बड़े सुन्दर नौ औरस पुत्र हुए ॥ १३ ॥ वे सभी कामदेवके समान रूप-सौन्दर्यशाली, दिव्य भूषणोंसे विभूषित और गीत-वाद्य-विशारद थे तथा प्रतिदिन ब्रह्मलोके गान किया करते थे ॥ १४ ॥ उनके नाम थे—मन्दार, मन्दर, मन्द, मन्दहास, महाबल, सुदेव, सुधन, सौध और श्रीभानु ॥ १५ ॥ एक समय ब्रह्माजीने अपनी पुत्री वाग्देवता सरस्वतीको मोहपूर्वक देखा । विधाताके इस व्यवहारको लक्ष्य करके परावसुके पुत्र मन-ही-मन हँसने लगे ॥ १६ ॥ सुरज्येष्ठ ब्रह्माके प्रति अपराध करनेके कारण उन्हें तामसी योनिमें जाना पड़ा । श्वेतवाराह-कल्प आनेपर वे नवों गन्धर्व हिरण्याक्षकी पत्नीके गर्भसे उत्पन्न हुए ॥ १७ ॥ उस समय उनके नाम इस प्रकार हुए—शकुनि, शम्बर, हृष्ट, भूत-सन्तापन, वृक, कालनाभ, महानाभ, हरिश्मश्रु तथा उत्कच ॥ १८ ॥ एक दिनकी बात है, अपने घरपर आये हुए अपान्तरतमा मुनिको नमस्कार करके उनकी विधिवत् पूजा

दैत्या ऊचुः

मृणु त्वं स्वमुखाद्ब्रह्मन् कैवल्येशो हरिः स्वयम् ।

ददाति मोक्षं भगवान् भक्तानां भक्तवत्सलः ॥२०॥

अस्माभिर्न कृता भक्तिरासुरीं योनिमास्थितैः । दुःसंगनिरतैर्दुष्टैः कथं मोक्षो भवेदिह ॥२१॥

उपायं वद नो ब्रह्मन्कल्याणस्य परस्य च । कल्याणार्थं विचरसि दीनानां जगति प्रभो ॥२२॥

अपान्तरतमा उवाच

गुणानामपृथग्भावैर्ये भजन्ति हरिं परम् । ते ते प्रापुः परं दैत्या निर्गुणं मोक्षनायकम् ॥२३॥

ऐक्यं च सौहृदं स्नेहं भयं क्रोधं स्मयं तथा । विधाय पूर्वं सततं श्रीकृष्णे लीनतां गताः ॥२४॥

पृथ्निगर्भस्य संवधात्प्रजानां पतयो यथा । कायाधवः सौहृदाच्च स्नेहाच्च सुतपा मुनिः ॥२५॥

भयाद्विरण्यकशिपुः क्रोधाद्ब्रह्म पिताऽसुरः । स्मयाच्च श्रुतयः प्रापुर्योगिनां दुर्लभं परम् ॥२६॥

येन केनापि भावेन श्रीकृष्णे धारयेन्मनः । भक्तियोगेन तद्धाम यदेभिः प्राप्यते सुराः ॥२७॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वांतर्हिते राजन्पान्तरतमे मुनौ । चक्रुर्वैरं शकुन्याद्याः परिपूर्णतमे हरौ ॥२८॥

ते प्रापुर्वैरभावेन श्रीकृष्णं परमेश्वरम् । न चित्रं विद्धि राजेंद्र कीदृशं पेशस्कृतं यथा ॥२९॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे शकुन्यादिदैत्यानां पूर्वजन्मपरिचयो नाम

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

करनेके पश्चात् उन सबने आदरपूर्वक इस प्रकार पूछा ॥ १९ ॥ दैत्य बोले—हे ब्रह्मन् । सुनिये । आप अपने मुँहसे कहते हैं कि कैवल्यके स्वामी साक्षात् भगवान् श्रीहरि हैं, वे भक्तवत्सल भगवान् भक्तोंको मोक्ष प्रदान करते हैं ॥ २० ॥ परन्तु हमलोग आसुरी-योनिमें पड़कर सदा कुसङ्गमें तत्पर रहनेवाले और दुष्ट हैं, हमने कभी भगवान्की भक्ति नहीं की । अतः इस जन्ममें हमारा मोक्ष कैसे होगा ? ॥ २१ ॥ हे ब्रह्मन् । हमें परम कल्याणका उपाय बताइये; क्योंकि हे प्रभो ! आप दीनजनोंके कल्याणके लिये ही जगत्में विचरते रहते हैं ॥ २२ ॥ अपान्तरतमाने कहा—हे दैत्यकुमारों ! गुण पृथक्-पृथक् नहीं रहते, वे सब मिले-जुले होते हैं । अथवा जिसके जो गुण हैं, वे उससे विलग नहीं होते । अतः उन्हीं गुणोंके द्वारा जो गुणातीत मोक्षाधीश्वर परमात्मा श्रीहरिका भजन करते रहे हैं, वे दैत्य उन परमात्माको प्राप्त हो चुके हैं ॥ २३ ॥ ऐक्यसम्बन्ध, सौहार्द, स्नेह, भय, क्रोध तथा स्मय (अभिमान)—इन भावों या गुणोंको सदा श्रीकृष्णके प्रति प्रयुक्त करके वे दैत्यगण उन्हींमें लीन हो गये ॥ २४ ॥ उदाहरणतः भगवान् पृथ्निगर्भके साथ एकता (एक कुल, कुटुम्ब या गोत्र) का सम्बन्ध माननेके कारण प्रजापतिगण मुक्त हो गये । भगवान्के प्रति सौहार्द स्थापित करनेसे कयाधूपुत्र प्रह्लादने भगवान्को पा लिया । श्रीहरिके प्रति स्नेहसे सुतपा मुनि, भयसे हिरण्यकशिपु, क्रोधसे तुम्हारे पिता हिरण्यक्ष तथा स्मय (अभिमान) से श्रुतियोंने योगीजनोंके लिये भी परम दुर्लभ पदको प्राप्त कर लिया ॥ २५ ॥ २६ ॥ जिस किसी भावसे सम्भव हो, श्रीकृष्णमें मनको लगाये । ये देवतालोग भक्तियाग-के द्वारा ही भगवान्में मन लगाकर उनका धाम प्राप्त करते हैं ॥ २७ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! यों कहकर अपान्तरतमा मुनि अन्तर्धान हो गये । तबसे शकुनि आदिने परिपूर्णतम श्रीहरिमें वैरभाव स्थापित किया ॥ २८ ॥ उन्होंने वैरभावसे ही परमेश्वर श्रीकृष्णको पा लिया । हे राजेन्द्र ! इसमें कोई आश्चर्य न मानो । जैसे कीड़ा झमरका चिन्तन करनेसे तद्रूप हो जाता है, उसी प्रकार भगवच्चिन्तन करनेवाला जीव भगवान्का सारूप्य प्राप्त कर लेता है ॥ २९ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषा टीकायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नका इलावृत देशपर विजय प्राप्त करके वेदनगर गमन)

श्रीनारद उवाच

इत्थं खंडं तु भद्राश्वं जित्वा श्रीयादवेश्वरः । यदुभिः सैनिकैः सार्द्धमिलावृतमथाययौ ॥ १ ॥
 विभाति यत्रैव गिरीन्द्रराजो भूपद्मगोलस्य च कर्णिकेव ।
 स्फुरद्द्युतिः स्वर्णमयः सुमेरुः सुरालयो मैथिल रत्नसानुः ॥ २ ॥
 तं सर्वतो मंदरमेरुसुंदरौ सुपार्श्व एवं कुमुदश्चतुर्थकः ।
 विभाति सैको गिरिभिर्नगेश्वरश्चतुष्पदार्यैश्च मनोरथा इव ॥ ३ ॥
 जांबूनदं जंबुभवं हि यत्र यतः स्वतः सिद्धिभवं सुवर्णम् ।
 यत्रारुणोदाख्यनदी च जाता यद्धारिपानाद्भुवि नामयित्वम् ॥ ४ ॥
 कदंबजा मधुधाराश्च पंच यासां तु पानेन नृणां कदापि ।
 शीतोष्णवैवर्ण्यपरिश्रमाद्या दौर्गन्ध्यभावा न भवन्ति राजन् ॥ ५ ॥
 यदुद्धवाः कामदुषा नदाश्च रत्नाब्जवासःशुभभूषणानि ।
 शय्यासनादीनि फलानि यानि दिव्यानि तानि त्वथ चार्पयन्ति ॥ ६ ॥
 एवं च यत्रोर्ध्ववनं प्रसिद्धं संकर्षणो यत्र विराजतेऽथ ।
 शिवः सदाऽसौ रमते प्रियाभिः स्त्रीभावतां यांति जनास्तु तत्र ॥ ७ ॥
 हैमांबुजैः शीतवसंतवायुभिः काश्मीरवृक्षैश्च लवंगजालैः ।
 देवद्रुमामोदमदांधपट्पदैरिलावृतं खंडमतीव रेजे ॥ ८ ॥
 पश्यन् भुवं स्वर्णमयीं मनोहरां वैदूर्यरत्नाङ्कुरवृन्दचित्रिताम् ।
 इलावृतं पूर्णमलंकृतैः सुरैर्विजित्य खंडं जगृहे बलिं हरिः ॥ ९ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् । इस प्रकार भद्राश्ववर्षपर विजय पाकर यादवेश्वर श्रीहरि यादव-
 सैनिकोंके साथ इलावृतवर्षको गये ॥ १ ॥ हे मिथिलेश्वर ! इलावृतवर्षमें ही रत्नमय शिखरोसे सुशोभित, देव-
 ताओंका निवासस्थान, दीप्तिमान् स्वर्णमय पर्वत गिरिराजाधिराज 'सुमेरु' है, जो भूमण्डलरूपी कमलकी
 कर्णिकाके समान शोभा पाता है ॥ २ ॥ उसके चारों ओर मन्दर, मेरु-मन्दर, सुपार्श्व तथा कुमुद— ये चार
 पर्वत शोभा पाते हैं । इन चारोंसे घिरा हुआ वह एक गिरिराज सुमेरु घर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चार
 पदार्थोंसे युक्त मनोरथकी भांति शोभा पाता है ॥ ३ ॥ उस इलावृतवर्षमें जम्बूफलके रससे उत्पन्न होनेवाला
 जाम्बूनद नामक स्वतःसिद्ध स्वर्ण उपलब्ध होता है । वहाँ जम्बूरससे 'अरुणोदा' नामकी नदी प्रकट हुई है,
 जिसका जल पीनेसे इस भूतलपर कोई रोग नहीं होता ॥ ४ ॥ हे राजन् ! वहाँ कदम्बवृक्षसे उत्पन्न 'कादम्ब'
 नामक मधुकी पांच धाराएँ प्रवाहित होती हैं, जिनके पीनेसे मनुष्योंको कभी सर्दी-गरमी, विवर्णता
 (कान्तिका फीका पड़ना), थकावट तथा दुर्गन्ध आदि दोष नहीं प्राप्त होते ॥ ५ ॥ उन मधु-धाराओंसे काम-
 पूरक नद प्रकट हुए हैं, जो मनुष्योंकी इच्छाके अनुसार रत्न, अन्न, वस्त्र, सुन्दर आभूषण, शय्या तथा
 आसन आदि जो-जो दिव्य पदार्थ हैं, उन सबको अर्पित करते हैं ॥ ६ ॥ इसी प्रकार वहाँ सुप्रसिद्ध 'ऊर्ध्व-
 वन' है, जहाँ भगवान् संकर्षण विराजते हैं और जिस वनमें भगवान् शिव स्वतः अपनी प्रेयसी ज्योतियोंके
 साथ रमण करते हैं तथा जिसमें गये हुए पुरुष तत्काल स्त्रीरूपमें परिणत हो जाते हैं ॥ ७ ॥ स्वर्णमय कमल,
 शीतल वसन्त वायु, केसरके वृक्ष, लवङ्गलताओंके समूह तथा देववृक्षोंकी सुगन्धके सेवनसे मदान्ध भ्रमर
 ये सब इलावृतवर्षकी अत्यन्त शोभा बढ़ाते हैं ॥ ८ ॥ वैदूर्यमणिके अङ्कुरोंसे विचित्र लगनेवाली
 वहाँकी मनोहर स्वर्णमयी भूमिको देखते हुए भगवान् श्रीहरिने अलंकारमण्डित देवताओंसे पूर्ण

श्रीशोभनो नाम पुरा कृतेन जामातुकोऽभून्मुचुकुन्दभूमृतः ।
 एकादशीं यः समुपोष्य भारते प्राप्तः स देवैः किल मंदराचले ॥१०॥
 अद्यापि राज्यं कुरुते कुबेरवद्राज्ञः सुतोऽसौ किल चन्द्रभागया ।
 नीत्वा बलिं देववरस्य संमुखे समाययौ मैथिल सुंदरः परः ॥११॥
 प्रदक्षिणीकृत्य हरिं यदूत्तमं पादारविंदे पतितोऽथ शोभनः ।
 भक्त्या प्रणम्याशु बलिं महात्मने दत्त्वा ययौ मैथिल मंदराचलम् ॥१२॥

बहुलाश्व उवाच

शोभने च नृपे याते भगवान्मधुसूदनः । अग्रे चकार किं देवो वद देवर्षिसत्तम ॥१३॥

श्रीनारद उवाच

सरोवरं परं दिव्यं तस्मिन्मन्दरसानुनि । सौवर्णपङ्कजं वीक्ष्य किरीटी प्राह माधवम् ॥१४॥

अर्जुन उवाच

कांचनीमिलितामिश्र सौवर्णैः पंकजैर्द्वैतम् । वद मां देवकीपुत्र कस्येदं कुण्डमद्भुतम् ॥१५॥

श्रीभगवानुवाच

पृथुः पूर्वो राजराजः स्वायंभुवकुलोद्भवः । तताप स तपो दिव्यं तस्येदं कुण्डमद्भुतम् ॥१६॥
 अस्य पीत्वा जलं सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते । स्नात्वा तद्धाम परमं याति पार्थ नरेतरः ॥१७॥

श्रीनारद उवाच

अत्रैव भगवान्साक्षात्तपोभूमिं जगाम ह । सरूपास्तत्र नृत्यन्ति सर्वास्ता ह्यष्टसिद्धयः ॥१८॥
 ता वीक्ष्य चोद्भवः प्राह भगवंतं सनातनम् ।

उद्भव उवाच

कस्येयं सुतपोभूमिर्मन्दराचलसन्निधौ । मूर्तिमत्यो विराजन्त्यः काः स्त्रियो वद हे प्रभो ॥१९॥

श्रीभगवानुवाच

स्वायंभुवेन मनुना तपश्चात्र कृतं पुरा । तस्येयं सुतपोभूमिरद्यापि श्रेयसी बहु ॥२०॥

इलावृतवर्षको जीतकर वहाँसे भेंट ग्रहण की ॥ ९ ॥ पूर्वकालके सत्ययुगमें राजा मुचुकुन्दके जामाता शोभनने भारतवर्षमें एकादशीका व्रत करके जो पुण्य अर्जन किया, उसके फलस्वरूप देवताओंने उन्हें मन्दराचलपर निवास दे दिया ॥ १० ॥ आज भी वह राजकुमार कुबेरकी भाँति रानी चन्द्रभागाके साथ वहाँ राज्य करता है । हे मिथिलेश्वर ! तभी परम सुन्दर शोभन भेंट लेकर देवप्रवर भगवान् श्रीकृष्णके सामने आया ॥ ११ ॥ यदुकुलतिलक श्रीहरिकी परिक्रमा करके शोभन उनके चरणारविन्दोंमें पड़ गया और भक्तिपूर्वक प्रणाम करके, उन परमात्माको शीघ्र ही भेंट देकर पुनः मन्दराचलको चला गया ॥ १२ ॥ बहुलाश्वने पूछा—हे देवर्षिप्रवर ! राजा शोभनके चले जानेपर भगवान् मधुसूदनने आगे कौन-सा कार्य किया, यह बतलाइये ॥ १३ ॥ श्रीनारदजीने कहा—हे राजन् ! उस मन्दराचलके शिखरपर एक परम दिव्य सरोवर है, उसमें स्वर्णमय कमल खिलते हैं । यह देखकर किरीटधारी अर्जुनने माधव श्रीकृष्णसे पूछा—हे देवकीनन्दन ! सुवर्णमयी लताओं और स्वर्णमय कमलोंसे व्याप्त यह अद्भुत कुण्ड किसका है ? मुझे बताइये ॥ १४ ॥ १५ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—स्वायम्भुव मनुके कुलमें उत्पन्न आदि राजाधिराज पृथुने यहाँ दिव्य तप किया था । उन्हींका यह अद्भुत और दिव्य कुण्ड है । हे पार्थ ! इसका जल पीकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा इसमें स्नान करके नरेतर प्राणी भी मेरे परमधाममें पहुँच जाता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! यहीं साक्षात् भगवान्ने उस तपोभूमिमें पदार्पण किया, जहाँ सदा आठों सिद्धियाँ मूर्तिमती होकर नृत्य करती हैं । उन सिद्धियोंको देखकर उद्भवने सनातन भगवान्से पूछा ॥ १८ ॥ उद्भव बोले—हे भगवन् ! मन्दराचलके समीप यह किसकी तपोभूमि है ? हे प्रभो ! यहाँ कौन-सी स्त्रियाँ मूर्तिमती होकर विराज रही हैं—कृपया यह बतायें ॥ १९ ॥ श्रीभगवान्ने

सदाऽत्रैव हि वर्तते नारीरूपाष्टसिद्धयः । अत्र प्राप्तस्य कस्यापि ततस्ताश्च भवन्ति हि ॥२१॥
अत्र क्षणेन तपसा देवत्वं याति मानवः । तपोभूमेः माहात्म्यं वक्तुं नालं चतुर्मुखः ॥२२॥

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वा भगवान्कृष्णः स्वसैन्यपरिवारितः । जगाम प्रोत्कटान्देशान्दुन्दुभीचादयन्मुहुः ॥२३॥
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो यत्र तेपे तपः पुरा । यत्र लीलावती नाम वर्तते कांचनी पुरी ॥२४॥
लीलावतीश्वरः साक्षाद्गीतिहोत्रो हुताशनः । नित्यं राज्यं प्रकुरुते मूर्तिमान् भुवि सुव्रतः ॥२५॥
सोऽपि श्रीकृष्णचंद्राय पुरुषाय महात्मने । बलिं दत्त्वा परां शश्वत्स्तुतिं चक्रे धनंजयः ॥२६॥
इत्थं पश्यन्देवदेवः सर्वं वर्षमिलावृतम् । जगाम वेदनगरं जंबूद्वीपं मनोरमम् ॥२७॥
मूर्तिमान् यत्र निगमो दृश्यते सर्वदैव हि । तत्सभायां सदा वाणी वीणापुस्तकधारिणी ॥२८॥
गायन्ती कृष्णचरितं सुभगं मंगलायनम् । उर्वशीपूर्वचित्याद्या नृत्यन्त्यप्सरसो नृप ॥२९॥
हावभावकटाक्षैश्च तोषयन्त्यः श्रुतीश्वरम् । अहं विश्वावसुश्चैव तुंबुरुश्च सुदर्शनः ॥३०॥
तथा चित्ररथो ह्येते वादित्राणि मुहुर्मुहुः । वेणुवीणामृदङ्गानि मुर्यष्टियुतानि च ॥३१॥
तालदुन्दुभिभिः सार्द्धं वादयन्ति यथाविधि । ह्रस्वदीघप्लुतोदात्तानुदात्तस्वरिता नृप ॥३२॥
सानुनासिकभेदश्च तथा निरनुनासिकः । एतैरष्टादशैर्भेदैर्गीयन्ते श्रुतयः परैः ॥३३॥
मूर्तिमन्तो विराजन्ते तत्र वेदपुरे नृप । अष्टौ तालाः स्वराः सप्त तथा ग्रामत्रयं नृप ॥३४॥
वसन्ति वेदनगरे मूर्तिमन्तः सदैव हि । भैरवो मेघमल्लारो दीपको मालकंसकः ॥३५॥
श्रीरागश्चापि हिंडोलो रागाः षट् संप्रकीर्तिताः । पञ्चभिश्च प्रियाभिश्च तनुजैरष्टभिः पृथक् ॥३६॥
मूर्तिमन्तस्तु ते तत्र विचरन्ति नरेश्वर । भैरवो बभ्रवर्णश्च मालकंसः शुकद्युतिः ॥३७॥

कहा—हे उद्धव ! यहाँ पूर्वकालमें स्वायम्भुव मनुने तपस्या की थी । उन्हींकी यह सुन्दर तपोभूमि है, जो आज भी परम कल्याणकारिणी है ॥ २० ॥ यहाँ नारी-रूपधारिणी आठ सिद्धियाँ सदा विद्यमान रहती हैं । यहाँ जो कोई भी आ जाय, उसे आठों सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं ॥ २१ ॥ यहाँ एक क्षण भी तपस्या करके मानव देवत्व प्राप्त कर लेता है । चतुर्मुख ब्रह्मा भी इस तपोभूमिके माहात्म्यका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ २२ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! श्रीकृष्ण अपनी सेनासे घिरे हुए और बारंबार दुन्दुभि बजवाते हुए उन अत्यन्त उत्कट प्रदेशोंमें गये, जहाँ पूर्वकालमें हिरण्यकशिपु दैत्यने तपस्या की थी और जहाँ लीलावती नामकी एक स्वर्णमयी नगरी है ॥ २३ ॥ २४ ॥ उस लीलावतीके स्वामी साक्षात् वीतिहोत्र नामधारी अग्नि हैं, जो उत्तम व्रतका पालन करते हुए नित्य मूर्तिमान् होकर राज्य करते हैं ॥ २५ ॥ उन धनंजयदेवने भी परम पुरुष परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रको भेंट देकर उनकी उत्तम स्तुति की ॥ २६ ॥ इस प्रकार सारे इलावृतवर्षका दर्शन करते हुए देवाधिदेव भगवान् श्रीकृष्ण वेदनगरमें गये, जो जम्बूद्वीपका एक मनोहर स्थान है ॥ २७ ॥ उस नगरमें भगवान् निगम (वेद) सदा मूर्तिमान् होकर दिखाई देते हैं । उनकी सभामें सदा वीणा-पुस्तकधारिणी वाग्देवता वाणी (सरस्वती) सुन्दर एवं सङ्गलके अधिष्ठान स्वरूप श्रीकृष्ण-चरितका गान करती हैं ॥ २८ ॥ हे नरेश्वर ! उर्वशी और विप्रचित्ति आदि अप्सराएँ वहाँ नृत्य करती हैं और अपने हावभाव तथा कटाक्षोंद्वारा वेदेस्वरको रिझाती रहती हैं । मैं, विश्वावसु, तुम्बुरु, सुदर्शन तथा चित्ररथ—ये सब लोग वेणु, वीणा, मृदङ्ग, मुर्यष्टि आदि वाद्योंको खड़ाताल एवं दुन्दुभिके साथ विधिवत् बजाया करते हैं । हे नरेश्वर ! वहाँ ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा सानुनासिक और निरनुनासिक—इन अठारह भेदोंके साथ स्तुतियाँ गायी जाती हैं । हे नरेश्वर ! वेदपुरमें आठों ताल, सातों स्वर और तीनों ग्राम मूर्तिमान् होकर विराजते हैं ॥ २९-३४ ॥ वेदनगरमें राग-रागिनियाँ भी मूर्तिमती होकर निवास करती हैं । भैरव, मेघमल्लार, दीपक, मालकंस, श्रीराग और हिन्दोल—ये सब राग बताये गये हैं ॥ ३५ ॥ इनकी पाँच-पाँच स्त्रियाँ—रागिनियाँ हैं और आठ-आठ

मयूरद्युतिसंयुक्तो मेघमल्लार एव हि । सुवर्णाभो दीपकश्च श्रीरागोऽरुणवर्णभृत् ॥३८॥
हिंदोलो दिव्यहंसाभो राजते मिथिलेश्वर ।

बहुलाश्व उवाच

तालानां च स्वराणां च ग्रामाणां मुनिसत्तम । नृत्यानां कति भेदा वै नामभिः सहितान् वद ॥३९॥

श्रीनारद उवाच

रूपकश्चञ्चरीकश्च तालः परमठः स्मृतः । विराटकमठश्चैव मल्लकश्च झटिज्जुटा ॥४०॥
निषादर्षभगांधारषड्जमध्यमधैवताः । पञ्चमश्चेत्यमी राजन् स्वराः सप्त प्रकीर्तिताः ४१॥
माधुर्यमथ गांधारं ध्रौव्यं ग्रामत्रयं स्मृतम् । रासं च तांडवं नाट्यं गांधर्वं कैचरं तथा ॥४२॥
वैद्याधरं गौह्यकं च नृत्यमाक्रूरं नृप । हावभावानुभावैश्च दशमिश्राष्टभेदवत् ॥४३॥
सारेगमपधनीति स्वरगम्यं पदं स्मृतम् । एतत्ते कथितं राजन् किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४४॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे वेदनगरवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

(रागिनियों तथा रागपुत्रोंके नाम और वेदादिकों द्वारा भगवत्स्तुति)

बहुलाश्व उवाच

रागिणीनां च नामानि वद देवऋषे मम । तथा वै रागपुत्राणां त्वं परावरवित्तमः ॥ १ ॥

श्रीनारद उवाच

कालेन देशभेदेन क्रियया स्वरमिश्रया । भेदा बुधैः षट्पञ्चाशत्कोटयो गीतस्य कीर्तिताः ॥२॥
अंतर्भेदा अनन्ता हि तेषां सन्ति नृपेश्वर । विद्वधेनं रागमानन्दं शब्दब्रह्ममयं हरिम् ॥ ३ ॥
तस्मान्मुख्याश्च भेदाः कौ वदिष्यामि तवाग्रतः । भैरवी पिंगला शंकी लीलावत्यगरी तथा ॥ ४ ॥
भैरवस्यापि रागस्य रागिण्यः पञ्च कीर्तिताः । महर्षिश्च समृद्धश्च पिंगलो मागधस्तथा ॥ ५ ॥

पुत्र हैं ॥ ३६ ॥ हे नरेश्वर ! वे सब भूतिमान् होकर विचरते हैं । 'भैरव' भूरे रंगका है, 'मालकोश' का रंग तोतेके समान हरा है, 'मेघमल्लार' की कान्ति मोरके समान है । 'दीपक' का रंग सुवर्णके समान है और 'श्रीराग' अरुण रंगका है । हे मिथिलेश्वर ! 'हिन्दोल'का रंग दिव्य हंसके समान शोभा पाता है ॥३७॥३८॥
बहुलाश्वने पूछा—हे मुनिश्रेष्ठ ! ताल, स्वर, ग्राम और नृत्य—इनके कितने-कितने भेद हैं ? इन सबका नामोल्लेखपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ३९ ॥ नारदजीने कहा—हे राजन् ! रूपक, चंचरीक, परमठ, विराट, कमठ, मल्लक, झटि और जुटा—ये आठ ताल हैं ॥ ४० ॥ हे राजन् ! निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम, धैवत तथा पञ्चम—ये सात स्वर कहे गये हैं ॥ ४१ ॥ माधुर्य, गान्धार और ध्रौव्य—ये तीन ग्राम माने गये हैं । रास, ताण्डव, नाट्य, गान्धर्व, कैचर, वैद्याधर, गौह्यक और आप्सरस—ये आठ नृत्यके भेद हैं । ये सभी दस-दस हाव-भावों और अनुभावोंसे युक्त हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ स्वरोंका बोध करानेवाला पद 'सा रे ग म प ध नि'—इस प्रकार है । हे राजन् ! यह सब मैंने तुम्हें बताया, अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ४४ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

राजा बहुलाश्वने पूछा—देवर्षे ! रागिनियों और रागपुत्रोंके नाम मुझे बताइये । क्योंकि परावरवेत्ता विद्वानोंमें आप सबसे श्रेष्ठ हैं ॥१॥ नारदजीने कहा—हे राजन् ! कालभेद, देशभेद और स्वरमिश्रित क्रियाके भेदसे विद्वानोंने गीतके छप्पन करोड़ भेद बताये हैं ॥ २ ॥ हे नृपेश्वर ! इन सबके अन्तर्भेद तो अनन्त हैं । आनन्दस्वरूप जो शब्दब्रह्ममय श्रीहरि हैं, इन्हींको तुम राग समझो । इसलिये सूतलपर इन सबके जो मुख्य-मुख्य भेद हैं, उन्हींका मैं तुम्हारे सामने वर्णन करूंगा ॥ ३ ॥ भैरवी, पिंगला, शंकी, लीलावती और

मीमांसाशास्त्रं हस्तौ च ज्योतिर्नेत्रं प्रकीर्तितम् । आयुर्वेदः पृष्ठदेशो धनुर्वेद उरःस्थलम् ॥२४॥

गाधर्वं रसनं विद्धि मनो वैशेषिकं स्मृतम् ॥२५॥

सांख्यं बुद्धिरहंकारो न्यायवादः प्रकीर्तितः । वेदांतं तस्य चित्तं हि वेदस्यापि महात्मनः ॥२६॥

रागरूपमिमं राजन् विहारं विद्धि मैथिल । एतत्ते कथितं राजन् किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥२७॥

बहुलाश्व उवाच

तस्मिन्वेदपुरे रम्ये किं चकार हरिः स्वयम् । एतन्मे वद देवर्षे त्वं साक्षादिव्यदर्शनः ॥२८॥

श्रीनारद उवाच

आयातं वेदनगरं श्रीकृष्णं यादवेश्वरम् । निगमोऽपि बलिं नीत्वा सरस्वत्या तथा सह ॥२९॥

गंधर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामतालैः स्वरैः सह । रागैः सभेदैः सहितः प्रणनाम कृतांजलिः ॥३०॥

प्रसन्नो भगवान्साक्षाद्देवदेवो जनार्दनः । वेदं प्राह यदूनां च सर्वेषां शृण्वतां सताम् ॥३१॥

श्रीभगवानुवाच

निगम त्वं वरं ब्रूहि यत्ते मनसि वर्तते । दुर्लभं किं त्रिलोकेषु भक्तानां हर्षिते मयि ॥३२॥

वेद उवाच

यदि देव प्रसन्नोऽसि सर्वे ये मे सुपार्षदाः । तेषां देव निजं रूपं दर्शयात्र परेश्वर ॥३३॥

यद्रूपं ते च गोलोके स्वधाम्नि प्रस्फुरद्युतौ । वृन्दावने च तद्रासे तस्य दर्शनकाक्षिणः ॥३४॥

श्रीनारद उवाच

श्रुत्वा वेदवचः कृष्णः परिपूर्णतमः स्वयम् । स्वरूपं दर्शयामास राधया सहितं परम् ॥३५॥

तद्रूपं सुंदरं दृष्ट्वा सर्वे वै मूर्च्छन्तां गताः । पूरिताः सात्त्विकैर्मावैर्विस्मृत्य स्वतनोः सुखम् ३६॥

तदापि हर्षिताः सर्वे वादित्रैर्मधुरस्वनैः । जगुस्तत्पुरतो राजन्ननृतुः पश्यतां सताम् ॥३७॥

यथा श्रुतं तथा दृष्टं माधुर्यं रूपमद्भुतम् । तथैव चक्रुर्वेदाद्या वर्णनं मैथिलेश्वर ॥३८॥

॥ २३ ॥ नारदजीने कहा—हे राजन् । वेदस्वरूप श्रीहरिका मुख 'व्याकरण' कहा गया है, पिङ्गलकथित 'छन्दःशास्त्र' उनका पैर बताया जाता है । 'मीमांसा-शास्त्र' (कर्मकाण्ड) हाथ है, 'ज्योतिष-शास्त्र' को नेत्र बताया गया है । 'आयुर्वेद' पृष्ठदेश, 'धनुर्वेद' वक्षःस्थल, 'गान्धर्ववेद' रसना और 'वैशेषिक शास्त्र' वेदभगवान्का मन है ॥२४॥२५॥ सांख्य बुद्धि, न्यायवाद अहंकार और वेदान्त महात्मा 'वेदका चित्त' है ॥ २६ ॥ हे मिथिलेश्वर ! रागरूप जो शास्त्र है, उसे वेदराजका विहारस्थल समझो । हे राजन् ! ये सब बातें तुम्हें बतायीं । अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ २७ ॥ बहुलाश्वने पूछा—हे देवर्षे ! उस वेदपुरमे जाकर साक्षात् भगवान् श्रीहरिने क्या किया, यह मुझे बताइये; क्योंकि आप साक्षात् दिव्यदर्शी हैं ॥ २८ ॥ नारदजीने कहा—हे राजन् । यादवेश्वर श्रीकृष्ण जब वेदपुरमें आये, तब निगम (वेद) भी सरस्वतीके साथ भेंट लेकर आये ॥ २९ ॥ गन्धर्व, अप्सरा, ग्राम, ताल, स्वर तथा भेदोंसहित राग भी उनके साथ थे । उन्होंने हाथ जोड़कर भगवान्को प्रणाम किया ॥ ३० ॥ देवताओंके भी देवता साक्षात् भगवान् जनार्दन वेदपर प्रसन्न होकर समस्त यादवोंके समक्ष उनसे बोले ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान्ने कहा—हे निगम ! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसके अनुसार कोई वर माँगो । मेरे प्रसन्न होनेपर तीनों लोकोंमें भक्तोंके लिये कौन-सी वस्तु दुर्लभ है ? ॥ ३२ ॥ वेद बोले—हे देव ! हे परमेश्वर ! यदि आप प्रसन्न हैं तो यहाँ मेरे जो ये उत्तम पार्षद हैं, उन सबको अपने दिव्य रूपका दर्शन कराइये । अत्यन्त उद्दीप्त तेजवाले अपने निज धाम गोलोकमें आपका जो स्वरूप है तथा वृन्दावनमें और वहाँके रासमण्डलमें आपका जो रूप प्रकट होता है, उसीका ये सब लोग दर्शन करना चाहते हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे मैथिलेश्वर ! वेदका कथन सुनकर साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णने श्रीराधाके साथ अपने परम दिव्य रूपका उन्हें दर्शन कराया । उस अनुपम सुन्दर रूपको देखकर सब लोग मूर्च्छित हो गये । अपना शारीरिक सुख भुलाकर वे सभी सात्त्विक भावोंसे पूरित हो गये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हे राजन् । उस समय अत्यन्त हर्षसे उत्फुल्ल हो

वेद उवाच

सज्ज्ञानमात्रं सदसत्परं बृहच्छब्दप्रशांतं विभवं समं महत् ।
त्वां ब्रह्म वंदे वसुदुर्गमं परं सदा स्वधाम्ना परिभूतकैतवम् ॥३९॥

सरस्वत्युवाच

महः परं त्वां किल योगिनो विदुः सविग्रहं तत्र वदन्ति सात्वताः ।
दृष्टं तु यत्ते पदयोर्द्वयं मे क्षेमस्य भूयान्महसामधीश्वरम् ॥४०॥

गन्धर्वा ऊचुः

श्यामं च गौरं विदितं स्वधाम्ना कृतं त्वया धाम निजेच्छया हि ।
विराजसे नित्यमलं च ताभ्यां धनो यथा मेचकदामिनीभ्याम् ॥४१॥

अप्सरस ऊचुः

यथा तमालः कलधौतवल्लया धनो यथा चंचलया चकास्ति ।
नीलोऽद्रिराजो निकषाश्मखन्या श्रीराधयाऽऽद्यस्तु तथा रमण्या ॥४२॥

ग्रामा ऊचुः

यस्य पदस्य परागं शंभू रमा कविदेवैः ।
इच्छति चेतसि राधा तं भज माधवपादम् ॥४३॥

ताला ऊचुः

येन बलिः सद्विहरेच्छलिमेव हरेत् । तं भज पादं तु हरेश्चेतसि तप्ते कुहरे ॥४४॥

गाना ऊचुः

उत्क्षिपन्ति बहिर्दुःखं सन्तो यच्छरणं गताः । राधामाधवयोर्दिव्यं दधाम पदपंकजम् ॥४५॥

वे वाद्योंके मधुर शब्दोंके साथ सत्पुरुषोंके देखते-देखते भगवान्‌के समक्ष नाचने और गान करने लगे ॥ ३७ ॥ हे मैथिलेश्वर ! भगवान्‌का माधुर्यमय अद्भुत रूप जैसा सुना गया था, वैसा ही देखा गया और उसी प्रकार वेद आदिने (उसका नीचे दिये शब्दोंमें) वर्णन किया ॥३८॥ वेदने कहा—हे देव । आप सत्स्वरूप, ज्ञानमात्र, सत्-असत्से परे, व्यापक, सनातन, प्रशान्तरूप, विभवात्मक, सम, महत्, प्रकाशरूप, परम दुर्गम, परात्पर तथा अपने धाम (चिन्मय प्रकाश) द्वारा भ्रम एवं अज्ञानके अन्धकारको निरस्त करनेवाले 'ब्रह्म' हैं; आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३९ ॥ सरस्वती बोलों—हे भगवन् । योगीलोग आपको परम ज्योतिःस्वरूप जानते हैं, वहीं भक्तजन आपको चिन्मय विग्रहसे युक्त बताते हैं । इस समय जो आपके चरणारविन्दयुगल देखे गये हैं, वे समस्त ज्योतिषोंके अधीश्वर हैं । वे सदा मेरे लिये कल्याणकारी हों ॥ ४० ॥ गन्धर्व बोलें—हे प्रभो ! श्याम और गौर तेजके रूपमें अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित जो आपका तेजोमय स्वरूप है, वह आपने अपनी इच्छासे प्रकट किया है । उन्हीं युगल धामों (स्वरूपों) से आप नित्य उसी प्रकार पूर्णतया विराजित रहते हैं, जैसे मेघ श्याम वर्ण तथा बिजलीसे शोभा पाता है ॥ ४१ ॥ अप्सराओंने कहा—जैसे तमाल रङ्गते हैं, जैसे मेघ श्याम वर्ण तथा बिजलीसे शोभा पाता है, उसी सुवर्णमयी लतासे, मेघ विद्युन्मालासे तथा नील गिरिराज जैसे सोनेकी खानसे सुशोभित होता है, उसी प्रकार आदिपुरुष तथा श्यामसुन्दर आप अपनी प्रेयसी श्रीराधारानीके नित्य साहचर्यसे शोभा पाते हैं ॥४२॥ संहित श्रीराधा अपने चित्तमें धारण करना चाहती हैं, माधवके उन चरण-कमलोंका सदा भजन करो ॥४३॥ तालोंने कहा—जिनके कारण राजा बलि सत्स्वरूप होकर प्रतिष्ठित हुए, उन्हीं भगवान्‌को बलि अर्पित करनी चाहिये । अपने संतप्त चित्तरूपी गुफामें श्रीहरिके उस चरणको ही प्रतिष्ठित करके उसकी सेवा करो ॥ ४४ ॥ गान (लय) बोलें—संतजन जिनकी शरण लेकर दुःख और शोकको निकाल फेंकते हैं, श्रीराधा-माधवके उन दिव्य चरण-कमलोंको हम सदा हृदयमें धारण करें ॥ ४५ ॥ स्वर बोलें—जो शरद्-ऋतुके

स्वरा ऊचुः

शरद्विकचपंकजश्रियमतीव विद्वेषकं मिलिदमुनिलेदितं कुलिशकंजचिह्नावृतम् ।

स्फुरत्कनकनूपुरं दलितभक्तापत्रयं चलद्द्युतिपदद्वयं हृदि दधामि राधापतेः ॥४६॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्रसंवादे वेदादिस्तुतिवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

(रागिनीयौ तथा रागपुत्रौके द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति और भगवानका द्वारकाके लिए प्रस्थान)

श्रीनारद उवाच

भैरवाद्या रागगणाः पुरः प्राप्ता हरेः प्रभोः । रूपानुरूपावयवां तनुं दृष्ट्वाऽतिहर्षिताः ॥ १ ॥

यत्र यत्र च तेषां वै दृष्टिः प्राप्ता हरेस्तनौ । तत्र स्थिता च निर्गतं लावण्यान्न शशाक ह ॥ २ ॥

अहो श्रीकृष्णचन्द्रस्य रूपमत्यद्भुतं हरेः । दृष्ट्वोपवर्णनं तस्य चक्रुस्तेऽपि पृथक् पृथक् ॥ ३ ॥

भैरव उवाच

भज हरिजानुद्वयमिति लक्ष्मीः ॥ भजति सदांके कमलकराभ्याम् ॥ ४ ॥

मेघमल्लार उवाच

ऊरु विष्णो रम्भाखंडौ हेमस्तंभौ ध्याये बंधौ । ओजः पूर्णौ शोभायुक्तौ वस्त्रापीतौ कृष्णस्योभौ ॥ ५ ॥

दीपक उवाच

सकलसुखकरं कनकरुचिधरम् ॥ प्रथितहरिपदं भजत कटितले ॥ ६ ॥

मालकोश उवाच

कटी केशवद्या हरेरस्ति तत्र नृणां नेत्रयोर्दृष्टिमानं हरंति ।

परं कंपिता मंदगच्छत्समीरैः सुनम्रेण सा सर्वचेतोहरेत्थम् ॥ ७ ॥

प्रफुल्ल पङ्कजकी शोभाको अत्यन्त तिरस्कृत कर देते हैं, मुनिरूपी भ्रमर जिनका आस्वादन करते हैं, जो वज्र कमल और शङ्ख आदिके चिह्नोंसे सुशोभित हैं, जिनपर सोनेके नूपुर चमक रहे हैं तथा जिन्होंने भक्तोंके त्रिविध तापोंका उन्मूलन कर दिया है, श्रीराधावल्लभके उन चञ्चल-द्युतिशाली युगल चरणारविन्दोंको मैं हृदयमें धारण करता हूँ ॥ ४६ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! तदनन्तर भैरव आदि रागगण भगवान् श्रीहरिके सामने उपस्थित हो और रूपके अनुरूप उनके प्रत्येक अवयवका दर्शन करके अत्यन्त हर्षित हुए ॥ १ ॥ श्रीहरिके विग्रहमें जिस-जिस अङ्गपर उनकी दृष्टि पड़ती थी, वहीं-वहीं वह ठहर जाती थी । लावण्य-विशेषका अनुभव करके वह वहाँसे हटनेमें समर्थ नहीं होती थी ॥ २ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके उस अत्यन्त अद्भुत रूपका दर्शन करके वे भी पृथक्-पृथक् उसका गुणगान करने लगे ॥ ३ ॥ भैरव बोला—श्रीहरिके दोनों धुटनोंका चिन्तन करो, जिन्हें सदा अङ्कमें लेकर कमला अपने कमलोपम करोंसे उनकी सेवा करती हैं ॥ ४ ॥ मेघमल्लारने कहा—सर्वव्यापी भगवान् श्रीकृष्णकी दोनों जाँघें, मानो कदलीखण्ड है, सोनेके खंभे हैं, तेजसे पूर्ण हैं, अनुपम शोभासे सम्पन्न हैं तथा पीताम्बरसे ढकी हुई हैं । उन दोनों वन्दनीय ऊरुयुगलका मैं ध्यान करता हूँ ॥ ५ ॥ दीपक रागने कहा—भगवान्के कटिभागसे नीचे जो सम्पूर्ण चरण हैं, वे समस्त सुखोंको देनेवाले हैं तथा सुवर्णकी-सी कान्ति धारण करते हैं, उन सुप्रसिद्ध चरणोंका भजन करो ॥ ६ ॥ मालकोश बोला—भगवान् श्रीहरिकी जो कमर है, वह केशके समान अत्यन्त पतली है और वह मनुष्योंकी दृष्टिका मान हरती है, अर्थात् उस कटिको देखनेमें दृष्टि समर्थ नहीं हो पाती; वह मन्द-मन्द समीरके चलनेपर भी

दीपकपुत्रा ऊचुः

किं वा कुलिङ्गयुगलं नवपद्ममध्ये दुःखक्षयाय वसतां निशितासियुग्मम् ।
जैत्रं धनुर्जयति किं मकरध्वजस्य भ्रूमण्डलं किमथ चन्द्रमुखे परस्य ॥१५॥

मालकोशरागिण्य ऊचुः

परिनुत्यति इन्दुमण्डले फणिपत्न्याविव लोलकुण्डले ।
कमले मकरन्दनिर्भरे भ्रमरालीव सुगण्डमण्डले ॥१६॥

मालकोशपुत्रा ऊचुः

रविरिव खमण्डले किमु यदुभर्तुस्त्वथवा घने तडित् ।
अधितिष्ठति गण्डमण्डलं द्युतिखण्डं कलधौतकुण्डलम् ॥१७॥

श्रीरागिण्य ऊचुः

कलिङ्गयोः खंजनयोः किलारादापत्यतां युद्धमभूदलीनाम् ।
तेषां गतः कीर उपःप्रफुल्ले चकास्ति पद्मेऽरुणविंबलिप्सुः ॥१८॥

श्रीरागपुत्रा ऊचुः

परिकरीकृतपीतपटं हरिं शिखिकिरीटनतीकृतकंधरम् ।
लगुडवेणुकरं चलकुण्डलं पदुतरं नटवेषधरं भजे ॥१९॥

हिंडोलरागिण्य ऊचुः

अतसीकुसुमोपमेयकांतिर्यमुनाकूलकदम्बमध्यवतीं
नवगोपवधूविहारशाली वनमाली वितनोतु मंगलानि ॥२०॥

रक्षा करे । वह कटाक्ष कामदेवके वाणोंका परीक्षक है और उससे भी तीव्र शक्तिवाला है । उसने सम्पूर्ण लावण्य-
की दीक्षा ले ली है, अर्थात् वह समस्त लावण्यकी राशि है । उसने अपनी उदारताके सामने कल्पवृक्षको
भी तिरस्कृत कर दिया है तथा उसके एक-दो नहीं, करोड़ों लक्ष्य हैं ॥ १४ ॥ दीपकके पुत्र बोले—क्या ये
नूतन कमलके बीच दो कुलिङ्ग (गोरेया) पक्षी बैठे हैं या तीनों लोकोके दुःखोंका नाश करनेके लिये दो
तीखी तलवारें हैं या कामदेवके दो विजयशील धनुष हैं, अथवा परमात्मा श्रीकृष्णके मुखचन्द्रमें युगल
भ्रूमण्डल शोभा पा रहे हैं ॥ १५ ॥ मालकोशकी रागिनियोंने कहा—सुन्दर कपोलमण्डलपर दो चञ्चल
कुण्डल नृत्य कर रहे हैं, मानो चन्द्रमण्डलमें दो नागिनें नाच रही हों, अथवा मकरन्दसे परिपूर्ण कमलपर
भ्रमरावली मँडरा रही हो ॥ १६ ॥ मालकोशके पुत्र बोले—आकाश-मण्डलमें सूर्यदेव उदित हुए हैं या
मेघमालामें बिजली चमक रही है अथवा यदुपति भगवान् श्रीकृष्णके गण्डमण्डल (कपोलद्वय) पर ज्योतिके
खण्ड जैसा कनक-निर्मित कुण्डल झलमला रहा है ॥ १७ ॥ श्रीरागकी रागिनियाँ बोलीं—दो कुलिङ्ग किंवा
दो खंजन पक्षियोंकी पंक्तियोंका परस्पर युद्ध हुआ । उनके मध्यमें बीच-बचाव करनेके लिये प्रफुल्ल कमलपर
एक तोता निकट आ गया है, जो अरुण विम्ब-फलको प्राप्त करनेकी इच्छासे वहाँ बैठा शोभा पाता है (यहाँ
कुलिङ्ग या खंजन पक्षी भगवान्के दोनों नेत्र हैं, उनके बीचमें बैठा हुआ तोता नासिका है, प्रफुल्ल कमल
मुख है । और अरुण विम्ब-फल अधर है) ॥ १८ ॥ श्रीरागके पुत्र बोले—जिन्होंने अपनी कमरमें पाताम्बर
बाँध रक्खा है, मस्तकपर मोर-मुकुट धारण किया है और श्रीवाको एक ओर झुका दिया है, जो हाथमें
लकुटी और वंशी लिये हैं तथा जिनके कानोंमें कुण्डल हिल रहे हैं, उन पदुतर नटवर-वेषधारी श्रीहरिका
हम भजन करते हैं ॥ १९ ॥ हिंडोलरागकी रागिनियाँ बोलीं—जिनकी श्याम कान्तिकी अलसीके फूलसे
उपमा दी जाती है, जो यमुनाके तटपर कदम्ब-काननके मध्यभागमें विराजमान हैं तथा नयी अवस्थाकी
गोपसुन्दरियोंके साथ विहार करते हुए शोभा पाते हैं, वे वनमाली हम सबके मञ्जलका विस्तार करें ॥ २० ॥

हिंडोलपुत्रा ऊचुः

हरे मत्समः पातकी नास्ति भूमौ तथा त्वत्समो नास्ति पापापहारी ।

इति त्वां च मत्वा जगन्नाथदेवं यथेच्छा भवेत्ते तथा मां कुरु त्वम् ॥२१॥

श्रीनारद उवाच

इति रागकृतं ध्यानं यः शृणोति पठेत्सदा । तन्नेत्रगोचरो याति भगवान् भक्तवत्सलः ॥२२॥

इत्थं स्वं दर्शनं दत्वा वेदादिभ्यो हरिः स्वयम् । बभूव पश्यतां तेषां शार्ङ्गपाणिश्चतुर्भुजः ॥२३॥

कृत्वा तु दर्शनं विष्णोर्गते देवे गणैः सह । सैन्ये सुतं शंवरारिं स्थापयित्वा यदुत्तमम् ॥२४॥

द्वारकां स्वां पुरीं गंतुं मनश्चक्रे परात्परः ॥२५॥

मञ्जीरघंटाकलकिकिणीकलं सुकांस्यपात्रध्वनिना रथेन ।

सुग्रीवमुख्यैः स च चञ्चलाश्वैर्नियोजितैर्मैथिल दारुकेण ॥२६॥

युतेन सद्रत्नमता श्रुतिस्वनैः प्रभञ्जनैर्जद्गरुडध्वजेन ।

विहाय तं वेदपुरीं परात्मा ययौ पुरीं यादवद्वन्द्वमण्डिताम् ॥२७॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीविश्वजित्सण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे श्रीकृष्णध्यानवर्णनं नाम पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

(यादव-गन्धर्वयुद्ध और बलराम द्वारा गन्धर्व-सेनाका संहार)

श्रीनारद उवाच

अथ कृष्णे भगवति पुरीं द्वारावतीं गते । प्रद्युम्नः सैनिकैः सार्द्धं नदं कामदुघं ययौ ॥ १ ॥

शतयोजनविस्तीर्णा गंधर्वाणां मनोहरा । वसन्तमालती नाम्ना हेमरत्नमयी पुरी ॥ २ ॥

लवंगलतिकाजालैरेलाकाश्मीरदेशकैः । जातीफलादिजावित्रीश्रीखंडपारिजातकैः ॥ ३ ॥

मत्तालिनादिता भृंगैः शब्दिता चित्रपक्षिभिः । गंधर्वै राजिता भव्यैर्नागैर्भोगवती यथा ॥ ४ ॥

हिण्डोलरागके पुत्रोंने कहा—हे हरे । भूतलपर मेरे समान पातकी नहीं है और आपके समान कोई पापापहारी भी नहीं है । इसलिये आपको जगन्नाथदेव मानकर मैं शरणमें आया हूँ । आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा मेरे प्रति कीजिये ॥ २१ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् । रागोंद्वारा किये गये उपर्युक्त ध्यानको जो सदा सुनता अथवा पढ़ता है तो भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण उसके नेत्रोंके समक्ष प्रकट हो जाते हैं । इस प्रकार वेद आदिको अपने स्वरूपका दर्शन कराके साक्षात् श्रीहरि उन सबके देखते-देखते चतुर्भुज शार्ङ्गपाणि बन गये ॥ २२ ॥ २३ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णका दर्शन करके जब देवतालोग अपने गणोंके साथ चले गये, तब सेनामें अपने पुत्र यदुकुलतिलक शम्बर-शत्रु प्रद्युम्नको स्थापित करके परात्पर भगवान् श्रीहरिने अपनी द्वारकापुरीमें जानेका विचार किया ॥२४॥२५॥ हे मिथिलेश्वर ! उनके रथपर मञ्जीर, घंटा और किङ्किणीकी मधुर ध्वनि होने लगी । सुन्दर कांस्य-पात्र (झाँझ) की आवाज भी उसमें मिल गयी । दारुकने उस रथमें सुग्रीव आदि चञ्चल घोड़े जोत दिये ॥ २६ ॥ वह उत्तम रत्नयुक्त आभूषणोंसे सजाया गया था, उसके आंगे वेद-मन्त्रोंका घोष भी होता था और उसके ऊपरका गरुडध्वज प्रभञ्जनके वेगसे फहरा रहा था । ऐसे रथके द्वारा वेदपुरीको छोड़कर परमात्मा श्रीहरि यादववृन्दसे मण्डित द्वारकापुरीको चले गये ॥ २७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्सण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

नारदजी कहते हैं—हे राजन् । भगवान् श्रीकृष्णके द्वारकापुरीको चले जानेपर प्रद्युम्न अपने सैनिकोंके साथ कामदुघ नदके समीप गये ॥ १ ॥ वहाँ गन्धर्वोंकी मनोहारिणी हेमरत्नमयी वसन्तमालती नामकी नगरी है, जिसका विस्तार सौ योजनका है ॥ २ ॥ लवङ्ग-लताओंके राशुद्ध, दल्लागची, केसर, जाय-

पतंगो नाम तत्रैव गन्धर्वेशो महाबलः । करोति राज्यं सुकृती शक्रवद्वलपौरुषम् ॥ ५ ॥
 श्रुत्वा प्रद्युम्नमायातं दिग्जयार्थं विनिर्गतम् । गन्धर्वैरुद्धैर्युक्तो युद्धं कर्तुं मनो दधे ॥ ६ ॥
 रथाश्वगजवीरैश्च गन्धर्वैर्दशकोटिभिः । पतङ्ग आगतो योद्धुं प्रद्युम्नस्यापि संमुखे ॥ ७ ॥
 गन्धर्वैर्युद्धमिः सार्द्धं घोरं युद्धं बभूव ह । भल्लैर्गदाभिः परिवैर्मुद्गरैस्तोमरिष्टिभिः ॥ ८ ॥
 बाणांधकारे संजाते पतङ्गोऽतिरथो बली । धनुष्टंकारयन् प्राप्तो जगज्जघनवद्वली ॥ ९ ॥
 गदो गदां समादाय बलदेवानुजो बली । तद्वलं पोथयायास वज्रजेंद्रो यथा गिरीन् ॥ १० ॥
 गदस्य गदया केचिद्गन्धर्वाः पतिता रणे । रथाश्चूर्णीकृताः सर्वे मातङ्गा भिन्नमस्तकाः ॥ ११ ॥
 अश्वारूढाः केऽपि वीराः पतिता रणमूर्धनि । अधोमुखा ऊर्ध्वमुखा गन्धर्वाश्छिन्नबाहवः ॥ १२ ॥
 क्षणमात्रेण तत्सैन्ये रुधिराणां नदी बभूव । प्रमथा हरमालार्थं शिरांसि जगृहुर्मृधे ॥ १३ ॥
 सिंहारूढा भद्रकाली डाकिनी शतसंवृता । कपालेनापि रुधिरं पिवन्ती दृश्यते मृधे ॥ १४ ॥
 एवं युद्धे गदकृते गन्धर्वाणां पलायताम् । गन्धर्वैश्चस्तदा प्राप्तो हस्तिलक्षबलान्वितः ॥ १५ ॥
 गदं तताड गदया पतङ्गो हृदि मैथिल । गदोऽपि तं स्वगदया पतंगं हृदि चौजसा ॥ १६ ॥
 तयोश्च गदया युद्धं बभूव घटिकाद्वयम् । विस्फुलिगान् क्षरन्त्यौ द्वे गदे चूर्णोवभूवतुः ॥ १७ ॥
 लक्षभारमयीं गुर्वीं गदामादाय सत्वरम् । गदं तताड शिरसि पतंगो रणदुर्मदः ॥ १८ ॥
 गदाप्रहारेण गदः क्षणं मूर्छामवाप ह । एवं कृते घोरमृधे पतंगेन महात्मना ॥ १९ ॥
 तदैव द्वारकापुर्यास्तेजःसंघट्टमागतम् । ददृशुर्यादवाः सर्वे कोटिमातङ्सन्निभम् ॥ २० ॥

फल, जावित्री, श्रीखण्ड चन्दन और पारिजातके वृक्ष उस पुरीकी शोभा बढ़ाते थे ॥ ३ ॥ मतवाले भ्रमरोंके गुञ्जारवसे निनादित विचित्र पक्षियोंके कलरवसे मुखरित तथा गन्धर्वोंसे सुशोभित वह नगरी नागोंसे युक्त भोगवतीपुरीके समान शोभा पाती थी ॥ ४ ॥ वही पतंग नामसे प्रसिद्ध महाबली गन्धर्वराज राज्य करते थे, जो बड़े पुण्यात्मा थे और जिनका बल-पौरुष देवराज इन्द्रके समान था ॥ ५ ॥ उन्होंने सुना कि दिग्विजय-के लिये निकले हुए प्रद्युम्न आ रहे हैं, तब उन गन्धर्वराजने उद्भूट गन्धर्वोंसे युक्त होकर युद्ध करनेका निश्चय किया ॥ ६ ॥ रथ, घोड़े, हाथी और पैदल दस करोड़ गन्धर्वोंके साथ राजा पतंग प्रद्युम्नके सामने युद्धके लिये आये ॥ ७ ॥ वहाँ गन्धर्वों और यादवोंमें बड़ा भयंकर युद्ध हुआ । भालों, गदाओं, परिधों, मुद्गरों, तोमरों तथा ऋष्टियोंकी मार होने लगी ॥ ८ ॥ बाणोंसे अन्धकार फैल जानेपर अतिरथी बलवान् वीर पतंग घनुषको टंकारते हुए आगे बढ़े और मेघके समान गर्जन करने लगे ॥ ९ ॥ बलदेवजीके बलवान् अनुज गदने गदा लेकर गन्धर्वोंकी सेनाको वैसे ही धराशायी करना आरम्भ किया, जैसे देवराज इन्द्र वज्रसे पर्वतोंको ढहा देते हैं ॥ १० ॥ गदकी गदाके प्रहारसे कितने ही गन्धर्व युद्धभूमिमें गिर गये, उनके रथ चूर-चूर हो गये और समस्त हाथियोंके कुम्भस्थल फट गये ॥ ११ ॥ कितने ही घुड़सवार वीर भी युद्धके मुहाने-पर प्राणशून्य होकर पड़ गये । भुजाएँ कट जानेसे कितने ही गन्धर्व उत्तानमुख और औंवेमुख पड़े दिखायी देते थे ॥ १२ ॥ क्षणमात्रमें गन्धर्वोंकी सेनामें खूनकी नदी बह चली । प्रमथगण भगवान् रुद्रकी मुण्डमाला बनानेके लिये युद्धभूमिमें नरमुण्डोंका संग्रह करने लगे ॥ १३ ॥ सिंहपर चढ़ी हुई भद्रकाली सैकड़ों डाकिनियोंके साथ युद्धभूमिमें आकर खप्परमें खून भर-भरकर पीती दिखायी देने लगी ॥ १४ ॥ इस तरह गदके द्वारा किये गये युद्धमें जब गन्धर्वगण पलायन करने लगे, तब गन्धर्वोंके राजा पतंग एक लाख गजसेनाके साथ वहाँ आ पहुँचे ॥ १५ ॥ हे मिथिलेश्वर ! पतंगने आते ही गदकी छातीमें गदा मारी । गदने भी अपनी गदासे पतंगके वक्षपर बलपूर्वक चोट पहुँचायी ॥ १६ ॥ उन दोनोंमें दो घड़ीतक गदायुद्ध चलता रहा । उनकी दोनों गदाएँ आगकी चिनगारियाँ बिखेरती हुई चूर-चूर हो गयीं ॥ १७ ॥ तब रणदुर्मद पतंगने लाख भारकी भारी गदा लेकर तुरन्त गदके मस्तकपर मारी ॥ १८ ॥ गदाके उस प्रहारसे गद क्षणभरके लिये अर्च्छित हो गये । इस प्रकार महामना पतंगने जब घोर युद्ध किया, तब उसी समय द्वारकापुरीसे एक

तस्मिंस्तेजसि गौरांगो बलदेवो महाबलः । आविर्बभूव सहसा भगवान् भक्तवत्सलः ॥२१॥
 गन्धर्वाणां बलं सर्वं समाकृष्य हलेन वै । तताड मुसलं क्रुद्धो बलो नीलांबरो बली ॥२२॥
 रथान् गजांस्तुरंगांश्च वीराः शस्त्रभृतां वराः । निपेत्युगपत्सर्वे चूणिताश्चोपला इव ॥२३॥
 पतंगो विरथस्तस्माद्धीतभीतः पुरीं ययौ । पुनर्योद्धुं यादवैश्च सेनाव्यूहं चकार ह ॥२४॥
 शतयोजनविस्तीर्णं गन्धर्वाणां महापुरीम् । वसन्तमालतीं सर्वामुद्विदार्य हलेन वै ॥२५॥
 विचर्ष्य बलः क्रुद्धो नदे कामदुषे नृप । हाहाकारस्तदैवासीन्नगर्य्यं पतितैर्गृहैः ॥२६॥
 तिर्यक्पोतमिवाधूर्णां नगरीं वीक्ष्य सत्वरम् । पतंगः सर्वगन्धर्वैर्हर्षितः सन्कृताञ्जलिः ॥२७॥
 खचिद्वेमसुवर्णानां युक्तातोरणशालिनाम् । दशयोजनविस्तीर्णीकृतानां विश्वकर्मणा ॥२८॥
 कामगानां पताकाभिर्युतानां कुम्भकोटिभिः । सहस्रार्कप्रकाशानां विमानानां द्विलक्षकम् ॥२९॥
 चतुर्लक्षं गवां चैव तुरंगाणां दशार्बुदम् । एलालवंगकाश्मीरजातीफलफलैः सह ॥३०॥
 सुधाफलानां दिव्यानां कोटिशो भाजनानि च । नीत्वा बलिं समादाय दत्त्वा नत्वा प्रधर्षितः ॥३१॥
 कृताञ्जलिः प्राह बलं बलभद्रप्रसादवित् ।

पतंग उवाच

राम राम महावीर्यं न जाने तव विक्रमम् । यस्यैकमूर्ध्नि तिलकं दृश्यते भूमिमण्डलम् ॥३२॥
 देवाधिदेव भगवन् कामपाल नमोऽस्तु ते । नमोऽनन्ताय शेषाय साक्षाद्रामाय ते नमः ॥३३॥
 जयजयाच्युत देव परात्पर स्वयमनन्तदिगन्तगतश्रुते ।
 सुरमुनीन्द्रफणीन्द्रचराय ते मुसलिने बलिने हलिने नमः ॥३४॥

तेजपुञ्ज आ पहुँचा ॥ १९ ॥ समस्त यादवोंने करोड़ों सूर्योंके तुल्य तेजस्वी उस तेजपुञ्जको देखा ॥ २० ॥
 उसके भीतरसे गोरे अङ्गवाले महाबली भक्तवत्सल भगवान् बलदेव सहसा प्रकट हो गये ॥ २१ ॥ नीलाम्बर-
 घारी और बलशाली बलरामने कुपित हो गन्धर्वोंकी सारी सेनाको हलसे खींचकर मुसलमें मारना आरम्भ
 किया ॥ २२ ॥ बहुत-से रथी, हाथियों और घोड़ोंको उन्होंने कालके गालमें पहुँचा दिया । शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ
 वीर सब-के-सब चूर-चूर हुए और पत्थरोंकी भाँति एक साथ ही भूतलपर बिखर गये ॥२३॥ पतंग भी रथहीन हो
 भारी भयके कारण वहाँसे वसन्तमालती पुरीमें चले गये और पुनः यादवोंसे युद्ध करनेके लिये सेनाका व्यूह
 बनाने लगे ॥ २४ ॥ हे नरेश्वर ! सौ योजन विस्तृत गन्धर्वोंकी सम्पूर्ण वसन्तमालती नामकी महापुरीको
 हलसे उपाटकर कुपित बलदेवजीने कामदुष नदमें गिरानेके लिये खींचा । उस नगरीके भवन घड़ाघड़
 धराशायी होने लगे । फिर तो तत्काल वहाँ हाहाकार मच गया ॥२५॥२६॥ अपनी नगरीको टेढ़ी या करवट
 लेती हुई नौकाकी भाँति डगमगाली देख पतंग सर्वथा पराभूत हो, तत्काल समस्त गन्धर्वोंके साथ हाथ जोड़,
 भेंट-सामग्रीके साथ वहाँ आ पहुँचा ॥ २७ ॥ उसने दो लाख ऐसे विमान बलदेवजीको भेंट किये, जो सुवर्णके
 समान कान्तिवाले तथा विविध रत्नोंसे जटित थे । मोतीकी बंदनवारें उनकी शोभा बढ़ाती थीं । विश्वकर्मनि
 उन विमानोंको दस-दस योजन विस्तृत बनाया था । वे सभी विमान इच्छानुसार चलनेवाले तथा कोटि-कोटि
 कलशों एवं पताकाओंसे सुशोभित थे । उनसे सहस्रों सूर्योंके समान प्रकाश फैल रहा था ॥ २८ ॥ २९ ॥ चार
 लाख गौएँ, दस अरब घोड़े, इलायची, लवङ्ग, केसर और जायफल्लोंके साथ दिव्य अमृतफलोंसे भरे करोड़ों पात्र
 उपहारके रूपमें लाकर उन्होंने दिये ॥ ३० ॥ फिर वे नमस्कार करके तिरस्कृतकी भाँति हाथ जोड़कर बल-
 रामजीसे बोले, उन्हें बलभद्रजीके प्रभावका पूरा परिचय मिल गया था ॥३१॥ पतङ्गने कहा—हे राम ! महा-
 पराक्रमी हे बलराम ! मैंने आपके पराक्रमको पहले नहीं जाना था, इसीलिये अपराध कर बैठा । जिनके एक
 फनपर सारा भूमण्डल तिलके समान दिखायी देता है, उनके सामने कौन ठहर सकता है ॥ ३२ ॥ हे भगवन् !
 हे कामपाल ! हे देवाधिदेव ! आपको नमस्कार है । साक्षात् अनन्त एवं शेषस्वरूप आप बलरामको
 बारंबार प्रणाम है ॥३३॥ हे अच्युत देव ! आपकी जय हो, जय हो । हे परात्पर ! हे साक्षात् अनन्त ! आपकी

श्रीनारद उवाच

एवं स्तुतः पतंगेन बलभद्रो महाबलः । प्रसन्नचेता गन्धर्वं मामैष्टेत्यभयं ददौ ॥३५॥
स्थापयित्वा बले कार्णि प्रणतं यादवेश्वरः । यादवैः प्रस्तुतः शीघ्रं पुरीं द्वारावतीं ययौ ॥३६॥
इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसंवादे वसंतमालतीकर्षणं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

(यादव-सेनाके साथ शक्रसखका युद्ध और उसकी पराजय)

श्रीनारद उवाच

प्रद्युम्नोऽथ महावीरो नादयन् जयदुन्दुभिम् । यदुभिः सैनिकैः सार्द्धं मधुधारातटं ययौ ॥ १ ॥
सुवर्णाद्रितटीभूते वने वैश्रवसे शुभे । सुवर्णवर्णहंसादये कांचनीलतिकावृते ॥ २ ॥
हेमावतीषु द्रोणीषु देवदुर्गासु मैथिल । दानवानामगम्यासु गंगावेत्रवतीषु च ॥ ३ ॥
दानवेभ्यः प्रभीतानां क्वचित्स्वर्गात्पलायिनाम् । अष्टानां लोकपालानां निधयो यत्र संति हि ॥ ४ ॥
तत्र शक्रसखो देव आधिपत्याभिरक्षकः । श्रुत्वाऽऽगतं च प्रद्युम्नं युद्धं कर्तुं मनो दधे ॥ ५ ॥
प्रद्युम्नप्रेषितः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः । पप्रच्छ दृष्टमागँश्च जनैस्तस्य पुरं ययौ ॥ ६ ॥
नत्वा देवं शक्रसखं सभायामुद्धवः प्रभुः । प्रद्युम्नकथितं ग्राह विस्तरान्मन्त्रिणां वरः ॥ ७ ॥

उद्धव उवाच

उग्रसेनो यादवेंद्रो द्वारकेशो नृपेश्वरः । जंबूद्वीपनृपान् जित्वा राजसूयं करिष्यति ॥ ८ ॥
तेन प्रणोदितो जेतुं रुक्मिणीनन्दनो बली । जित्वा स भारतादीनि खंडानि स्वस्य तेजसा ॥ ९ ॥
अर्धवेलावृतं प्राप्तो जेतुं कार्णिर्महाबलः । तस्मै यच्छ बलिं शीघ्रं कुलकौशलहेतवे ॥१०॥

कीर्ति दिगन्ततक फेली हुई है । आप समस्त देवताओं, मुनीन्द्रों और फणीन्द्रोंसे श्रेष्ठ हैं । हे मुसलधारी ! आप बलवान् हलधरको नमस्कार है ॥ ३४ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! पतङ्गके इस प्रकार स्तुति करनेपर महाबली बलभद्रजीका चित्त प्रसन्न हो गया । उन्होंने गन्धर्वको 'अब तुम मत डरो'—यों कहकर अभयदान दिया । तदनन्तर यादवेश्वर बलदेव अपने चरणोंमें पड़े हुए प्रद्युम्नको सेनाके संचालक-पदपर स्थापित करके, यादवोंसे प्रशंसित हो शीघ्र ही द्वारकापुरीको चले गये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! तदनन्तर महावीर प्रद्युम्न अपनी विजय-दुन्दुभि बजवाते हुए यादव-सैनिकोंके साथ मधुधारा नदीके तटपर गये ॥ १ ॥ सुवर्णगिरिके किनारे कुबेरके सुन्दर वनमें, जो सुनहरे हंसों और काञ्चनी लतिकाओंसे सम्पन्न है, पहुँचे ॥ २ ॥ हे मिथिलेश्वर ! हिमालयकी गुफाएँ देवताओंके लिये दुर्गका काम देती हैं । वहाँ दानवोंकी पहुँच नहीं हो पाती । वहाँ गङ्गातटवर्ती वेंतकी झाड़ियाँ छायी रहती हैं ॥ ३ ॥ कभी-कभी दानवोंसे डरकर स्वर्गसे भागे हुए आठों लोकपालोंकी निधियाँ वहाँ निवास करती हैं ॥ ४ ॥ शक्रसख नामक देव-शिरोमणि उस प्रान्तके अधिपति हैं । प्रद्युम्नका आगमन सुनकर उन्होंने उनके साथ युद्ध करनेका विचार किया ॥ ५ ॥ प्रद्युम्नके भेजे हुए बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ साक्षात् उद्धव मार्गदर्शी लोगोंसे रास्ता पूछते हुए शक्रसखकी नगरीमें गये ॥ ६ ॥ सभामें पहुँचकर मन्त्रिप्रवर प्रभु उद्धवने राजा इन्द्रसखको नमस्कार करके प्रद्युम्नकी कही हुई बातें विस्तारके साथ कह सुनायीं ॥ ७ ॥ उद्धव बोले—यादवोंके इन्द्र, द्वारकापुरीके स्वामी और राजाधिराज उग्रसेन जम्बूद्वीपके नरेशोंको जीतकर राजसूय यज्ञ करेंगे ॥ ८ ॥ उनके द्वारा दिग्विजयके लिये भेजे गये बलवान् रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न अपने तेजसे भारत आदि वर्षोंको जीतकर आज ही इलाहृतवर्षपर विजय पानेके लिये आये हैं । उन श्रीकृष्णकुमारका बल महात् है ।

न चेद्युद्धं हि भवता राजन्सर्वविदां वर ॥

शक्रसख उवाच

शृणु दूत सदा देवैः पूजितोऽहं नरैः किमु । सिद्धोऽहं वै महावीरो नागलक्षसमो बले ॥११॥
अष्टानां लोकपालानामाधिपत्याभिरक्षकः । कुबेर इव कोशाढ्यः पुरंदर इवोद्भटः ॥१२॥
उग्रसेनेन दातव्यं मह्यं चोपायनं परम् । पुरा तस्मै न दास्यामि यदुराजाय भूभृते ॥१३॥

उद्धव उवाच

यथा तिरस्कृतिं प्राप्तः कुबेरो यदुतेजसा । यथा शृंगारतिलकश्चैत्रदेशाधिपो बली ॥१४॥
शुभांगो हरिवर्षेश उत्तरेशो गुणाकरः । यथा दैत्यसखो राजा लंकेशो राक्षसेश्वरः ॥१५॥
संवत्सरः केतुमालः शकुन्याद्या महासुराः । तथाभूतस्त्वं हि राजन् बलिं तस्मै प्रदास्यसि ॥१६॥

श्रीनारद उवाच

इत्युद्धववचः श्रुत्वा क्रुद्धः शक्रसखो बली । उद्धवं प्रत्युवाचाथ शृणु भागवतोत्तम ॥१७॥
यावद्बलिं प्रदास्यामि तावत्त्वं संस्थितो भव । अन्यथा ते गतिर्नास्ति सत्यं सत्यं महामते ॥१८॥

उद्धव उवाच

वयं तु मंत्रिप्रवराः पूर्णज्ञानप्रदा वराः । मच्छिक्षणं न मन्यन्ते तेषां नो मंगलं भवेत् ॥१९॥

श्रीनारद उवाच

एवं स दृष्टरोधेन रोधयामास चोद्धवम् । उद्धवं नागतं राजन् यदूनामनुशोचताम् ॥२०॥
दिनानि कतिचित्तत्र व्यतीयुस्तमपश्यताम् । मन्मुखात्तदुपाकर्ण्य प्रद्युम्नो भगवान्हरिः ॥२१॥
जेतुं शक्रसखं प्रागात्त्रिपुरं त्र्यंबको यथा । यदुभिर्भ्रातृभिः सार्द्धं स सैन्यपरिवारितः ॥२२॥
सुवर्णाद्रिगुहाद्वारात्संप्राप्तो मकरध्वजः । वीरकोदण्डंकारैर्दुन्दुभिध्वनिमिश्रितैः ॥२३॥

यदि आप अपने कुलकी कुशल चाहते हों तो वीर्य उन्हें भेंट दीजिये ॥ ९ ॥ १० ॥ हे सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ नरेश ! यदि आप भेंट नहीं देंगे तो आपके साथ युद्ध अनिवार्य होगा । शक्रसख बोले—हे दूत ! सुनो । देवतालोग भी सदा मेरी पूजा करते हैं, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है । मैं सिद्ध हूँ, महावीर हूँ और एक लाख हाथियोंके समान बलवान् हूँ ॥ ११ ॥ आठों लोकपालोंके आधिपत्यका रक्षक हूँ । कुबेरके समान कोशसे सम्पन्न तथा इन्द्रके समान उद्भट शक्तिशाली हूँ ॥ १२ ॥ उग्रसेनको ही मुझे उत्तम उपायन भेंट करना चाहिये । मैंने पहले कभी किसीको भेंट नहीं दी है, इसलिये मैं तुम्हारे यदुराजको भी भेंट नहीं दूँगा ॥ १३ ॥ उद्धव बोले—यादवोंके तेजसे जैसे कुबेरको तिरस्कार प्राप्त हुआ है और उन्हें भेंट देनी पड़ी है; जैसे चैत्रदेशके बलवान् राजा शृङ्गारतिलकने भेंट दी है; हरिवर्षके राजा शुभाङ्ग, उत्तराखण्डके स्वामी गुणाकर, दैत्योंके सखा राक्षसराज लङ्कापति, संवत्सर, केतुमाल और शकुनि आदि बड़े-बड़े असुरोंने जैसे भेंट दी है, हे राजन् ! उसी तरह उन्हींकी-सी दुर्दशामें पड़नेपर आप भी प्रद्युम्नको भेंट देंगे ॥ १४-१६ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! उद्धवकी उपर्युक्त बात सुनकर बलवान् शक्रसखने कुपित हो उद्धवको इस प्रकार उत्तर दिया—‘हे भगवद्भक्त-शिरोमणे ! सुनो । जबतक मैं भेंट न दूँ, तबतक तुम यहीं ठहरो । अन्यथा तुम जाने नहीं पाओगे । हे महामते ! मेरी यह बात सत्य है, सत्य है ॥ १७ ॥ १८ ॥ उद्धव बोले—हम मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ और श्रेष्ठ ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं । जो हमारी शिक्षा नहीं मानते, उनका मङ्गल नहीं होता ॥ १९ ॥ श्रीनारदजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार शक्रसखने उद्धवकी वहाँ नजरबंद कर लिया । उद्धवके नहीं लौटनेसे यदुवंशी लोग चिन्तित हो गये ॥ २० ॥ उन्हें देखे बिना उन सबके कई दिन बीत गये । तब मेरे मुखसे उद्धवजीके अव-रोधका समाचार सुनकर भगवान् प्रद्युम्न हरि त्रिपुरासुरको जीतनेके लिये यात्रा करनेवाले महादेवजीके समान शक्रसखपर विजय पानेके लिये चले । उनके साथ समस्त यादव-बन्धु और सारी सेना थी ॥ २१ ॥ २२ ॥ प्रद्युम्नजी सुवर्णाद्रिकी गुफाके द्वारपर जा पहुँचे । दुन्दुभियोंकी ध्वनिसे मिश्रित वीर योद्धाओंके कोदण्डोंकी

अश्वहैर्षैर्हस्तिनादैर्विनेदुश्च दिशो दश । सैन्यपादरजोभिश्च युयुधे यादवैः सह ॥२४॥
 बभूव तुमुलं युद्धं छादितं व्योममण्डलम् । वीक्ष्य सर्वे मेरुदेवा भयं प्राप्नुवन्पेश्वर ॥२५॥
 अथ शक्रसखः क्रुद्धो रथारूढो महाबलः । अक्षौहिणीभिर्दशभिर्युयुधे यादवैः सह ॥२६॥
 बभूव तुमुलं युद्धं देवानां यदुभिः सह । प्राकृतप्रलये राजन्नुदधीनां ध्वनिर्यथा ॥२७॥
 शस्त्रांधकारे संजाते सारणो रोहिणीसुतः । बलदेवानुजो वीरो दक्षितो गजसंस्थितः ॥२८॥
 सर्वेषामग्रतः प्राप्तो धनुष्टंकारयन्मुहुः । तद्भलं पोथयामास बाणैः कोदण्डनिर्गतैः ॥२९॥
 श्रीसारणस्य बाणौघैः केचिद्वीरा द्विधाकृताः । तिर्यग्भूता रथा युद्धे निपेतुः पादपा इव ॥३०॥
 गजानां भिन्नकुंभानां मौक्तिकान्यपतस्तदा । बाणान्धकारे संजाते रात्रौ तारागणा इव ॥३१॥
 संछिन्नमानैरश्वैश्च वीरैर्नागै रणांगणम् । बभौ भूतगणैर्युक्तं यथाऽऽक्रीडन्मुमापतेः ॥३२॥
 सारणस्य बलं दृष्ट्वा सर्वे देवाः पलायिताः । संछिन्नभिन्नकोदंडा अमितः शीर्णकंचुकाः ॥३३॥
 पलायमानं स्वबलं दृष्ट्वा शक्रसखो बली । धनुष्टंकारयन्प्राप्तो जगर्ज घनवद्वलात् ॥३४॥
 अर्जुनं दशभिर्बाणैर्विश्लेष्य भानुमेव च । सांचं बाणशतैर्युद्धेऽनिरुद्धं च शतैः शरैः ॥३५॥
 द्विशतैश्च गदं वीरं सहस्रैः सारणं तथा । तताड समरे वीरो धन्वी शक्रसखो बली ॥३६॥
 तद्बाणैः सरथा वीरा बभ्रमुर्धटिकाद्वयम् । चक्रवत्कुंभकारस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥३७॥
 हयाश्च पंचतां प्राप्ताः श्लथद्वंधा रथाभ्रमात् । रथिनः खिन्नमनसः सूता मूर्च्छां गता मृधे ॥३८॥
 स चान्यं रथमारुह्य धनुष्टंकारयन्बलात् । धनुः शक्रसखस्यापि चिच्छेद दशभिः शरैः ॥३९॥

टंकारों, घोड़ोंके हिनहिनाहटकी आवाजों तथा हाथियोंकी चिंगाड़ोंसे दसों दिशाएँ गूँज उठीं । सैनिकोंके पैरोंसे उड़ी हुई धूल भी सब ओर व्याप्त हो गयी । शक्रसखकी सेना यादवोंसे युद्ध करने लगी । भयंकर युद्ध होने लगा । व्योम-मण्डल अश्व-शस्त्रोंसे आच्छादित हो गया । हे नृपेश्वर ! यह सब देखकर मेरुपर्वतके निवासी समस्त देवता भयभीत हो उठे ॥ २३-२५ ॥ इसी समय क्रोधसे भरा और रथपर चढ़ा महाबली शक्रसख दस अक्षौहिणी सेनाके-साथ आगे बढ़कर यादवोंके साथ युद्ध करने लगा ॥ २६ ॥ देवताओंका यादवोंके साथ तुमुल युद्ध छिड़ गया । हे राजन् ! प्राकृत प्रलयके समय चारों समुद्रोंके टकरानेसे जैसी भीषण ध्वनि होती है, वैसा ही महान् कोलाहल वहाँ होने लगा ॥ २७ ॥ अश्व-शस्त्रोंसे वहाँ अन्धकार-सा छा गया । उस समय बलदेवके छोटे भाई रोहिणीनन्दन वीर सारण कवच धारण किये, हाथीपर बैठकर, बारंबार धनुषका टंकार करते हुए सबसे आगे आ गये और अपने कोदण्डसे छूटे हुए बाणोंद्वारा शक्रसखकी सेनाका संहार करने लगे ॥ २८ ॥ २९ ॥ सारणके बाणसमूहोंसे कितने ही वीरोंके दो-दो टुकड़े हो गये । युद्धभूमिमें बहुत-से रथ करवट लेकर वृक्षोंके समान घराशायी हो गये ॥ ३० ॥ उस समय जिनके कुम्भस्थल फट गये थे, उन हाथियोंके मोती इधर-उधर गिर रहे थे । बाणोंके अन्धकारमें वे बिखरे हुए मोती रात्रिकालमें तारागणोंके समान चमकने लगे ॥ ३१ ॥ कटते हुए घोड़ों, पैदल योद्धाओं तथा हाथियोंसे वह समराङ्गण भूतगणोंसे युक्त भूतनायके क्रीडास्थल महास्मयान-सा जान पड़ता था ॥ ३२ ॥ सारणका बल देखकर सब देवता भाग चले । उनके कोदण्ड छिन्न-भिन्न हो गये और कवच चारों ओरसे फट गये ॥ ३३ ॥ अपनी सेनाको पलायन करती देख स्वयं बलवान् शक्रसख धनुष टंकारता हुआ वहाँ आ पहुँचा और बड़े जोरसे मेघकी भाँति गर्जन करने लगा ॥ ३४ ॥ वीर धनुर्धर बलवान् शक्रसखने समराङ्गणमें अर्जुनको दस, साम्ब और अनिरुद्धको सौ-सौ, गदको दो सौ तथा सारणको एक सहस्र बाण मारे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ उसके बाणोंको मारसे रथी वीर दो-दो घड़ीतक उसी प्रकार चक्कर काटने लगे, जैसे कुम्हारके चाक घूम रहे हों । यह अद्भुत-सी बात हुई ॥ ३७ ॥ उस तरह चक्कर काटनेसे घोड़े मृत्युके ग्रास बन गये, रथोंके बन्धन ढीले पड़ गये, रथियोंके मनमें खेद होने लगा और सारथि भी युद्धमें मूर्च्छित हो गये ॥ ३८ ॥ हे राजेन्द्र ! उस समय जाम्बवतीनन्दन साम्ब दूसरे रथपर आरूढ़ हो बलपूर्वक धनुष टंकारते हुए आये । उन्होंने शक्रसखके धनुषको दस बाणोंसे छिन्न-भिन्न कर

द्वाभ्यां सूतं शतैरश्वान्सहस्रैस्तद्वथं शरैः । चूर्णयामास राजेंद्र सांबो जांबवतीसुतः ॥४०॥
 स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । नागेंद्रं मत्तमारुह्य शूलं जग्राह रोषतः ॥४१॥
 विव्याध सांबं शूलेन हृदि शक्रसखो बली । तेन घातेन सांबोऽपि किञ्चिद्व्याकुलमानसः ॥४२॥
 योजने पादविक्षेपं कज्जलाद्रिसमप्रभम् । चतुर्योजनमुच्चांगं योजनाद्धं रदद्वयम् ॥४३॥
 महर्षीत्कारकुर्वतं त्रिशुंडादंडमंडलैः । शृङ्खले पातयंतं तं चतुर्योजनविस्तृतैः ॥४४॥
 गजान् वीरान्मर्दयंतं रथानश्वानितस्ततः । दंतैः पादैर्घातयंतं कालांतक्यमोपमम् ॥४५॥
 आगतं वीक्ष्य नागेंद्रं शत्रुणा नोदितं परम् । विचरंतं मृधाद्धीता यदुसेना विदुद्रुवुः ॥४६॥
 गदो गदां समादाय बलदेवानुजो बली । जघान तद्गजं कुंभे गदया वज्रकल्पया ॥४७॥
 तद्घातमिन्नकुंभो हि गजो युद्धे पपात ह । छिन्नपक्षो यथा शैलस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥४८॥
 अथ शक्रसखो यावद्गदां जग्राह रोषतः । तावत्ताड्य दगया गदः शक्रसखं हृदि ॥४९॥
 तेन घातेन सगजो पतितो मूर्च्छितोऽभवत् । पुनरुत्थाय स गदं भुजाभ्यां जगृहे मृधे ॥५०॥
 गदशक्रसखौ युद्धे युयुधाते परस्परम् । रंगे मद्भाविब वने वन्यौ तौ वारणाविव ॥५१॥

भुजाभ्यां तं समुत्थाप्य बलदेवानुजो बली ।

चिक्षेप तत्पुरे वीरं बलात्तं शतयोजनम् ॥५२॥

तदा जयजयारावो यदुसैन्ये बभूव ह ।

जयदुंदुभयो नेदुः प्रशंसुर्मुहुर्जनाः ॥५३॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे श्रीनारदबहुलाश्वसम्वादे शक्रसखयुद्धं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥



डाला ॥ ३९ ॥ दो बाणोंसे उसके सारथिको और सौ बाणोंसे घोड़ोंको यमलोक भेजकर सहस्र बाणोंद्वारा उसके रथको भी चूर-चूर कर दिया ॥ ४० ॥ धनुषके कट जाने तथा घोड़ों और सारथिके मारे जानेपर रथहीन शक्रसखने एक मतवाले गजराजपर आरुढ़ हो रोषपूर्वक शूल हाथमें ले लिया ॥ ४१ ॥ बलवान् शक्रसखने उस शूलसे साम्बकी छातीपर चोट की । उस आघातसे साम्बका मन कुछ व्याकुल हो गया ॥ ४२ ॥ शक्रसखका हाथी एक-एक योजनका डग भरता था । उसका रंग कज्जलगिरिके समान काला था । उसकी ऊँचाई चार योजनकी थी और उसके दो दाँत आधे योजनतक आगे निकले हुए थे ॥ ४३ ॥ वह बड़े जोरसे चिग्याड़ता था । उसके चार-चार योजन विस्तृत तीन सूँडें थीं । उनके द्वारा वह साँकलोंको गिराता, हाथियों और वीरोंको कुचलता तथा रथों और घोड़ोंको अपने दाँतों और पैरोंसे विनष्ट करता हुआ काल, अन्तक और यमके समान दिखायी देता था ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ शत्रुसे प्रेरित उस महान् गजराजको आते और विचरते देख यादव-सैनिक भयभीत हो युद्धसे भाग चले ॥ ४६ ॥ उस समय बलदेवजीके छोटे भाई बलवान् गदने गदा लेकर उस वज्र-सरोखी गदासे उक्त गजराजके कुम्भस्थलपर बड़े जोरसे आघात किया । उस आघातसे उसका कुम्भस्थल फट गया और वह हाथी युद्धस्थलमें पंख कटे हुए पर्वतके समान ढह गया । वह अद्भुत-सी बात हुई ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ तदनन्तर शक्रसखने ज्यों ही रोषपूर्वक गदा उठानेकी चेष्टा की, त्यों ही गदने अपनी गदासे उसकी छातीमें चोट पहुँचायी ॥ ४९ ॥ उस आघातसे वह हाथीसहित गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया । फिर उठकर उसने युद्धस्थलमें दोनों हाथोंसे गदा उठायी ॥ ५० ॥ अब गद और शक्रसख दोनों इस प्रकार परस्पर गदायुद्ध करने लगे, जैसे रङ्गशालामें दो मल्ल और जंगलमें दो हाथी लड़ रहे हों ॥ ५१ ॥ तब बलदेवके छोटे भाई बलवान् गदने अपनी दोनों भुजाओंसे उस वीरको उठा लिया और बलपूर्वक उसे सौ योजन ऊपर उसके नगरमें फेंक दिया ॥ ५२ ॥ उस समय यादव-सेनामें जय-जयकार होने लगी, विजयकी दुन्दुभियाँ बज उठी और सब लोग बारंबार गदकी प्रशंसा करने लगे ॥ ५३ ॥ इति श्रीगर्ग-संहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अथ अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

(प्रद्युम्नका लीलावतीपुरीके स्वयंवरमें सुन्दरीको प्राप्त करके द्वारकापुरीमें आगमन)

नारद उवाच

स्वपुरे पतितो मूर्च्छा गतः शक्रसखो भृशम् । उत्तस्थौ च क्षणं तत्र किञ्चिद्व्याकुलमानसः ॥ १ ॥
 अथ कर्ष्णि परं ब्रह्म ज्ञात्वा शक्रसखस्त्वरन् । स्वसकाशाद्वलं नीत्वा यदूनां च बलं ययौ ॥ २ ॥
 ऐरावतकुलेभाश्च त्रिशुंडा दंडदंतिनः । चतुर्दंताः श्वेतवर्णाः सहस्राणि मदच्युतः ॥ ३ ॥
 हेमाद्रिप्रभवा नागा योजनद्वयविग्रहाः । कोटिशः पर्वताकारा उन्मत्ता दिग्गजा इव ॥ ४ ॥
 दिव्यास्या दिव्यगतयः कोटिशः कोटिशो नृप । शतार्जुदा रथा दिव्याः शतकौभमयाः पराः ॥ ५ ॥
 अयुतानि विमानानां योजनद्वयशालिनाम् । नियुतं कामधेनूनां पारिजातसहस्रकम् ॥ ६ ॥
 करिदन्तखचित्तंभहेमरत्नखचित्पदाः । मुक्तास्तडागसंबृद्धा गुणयंत्रस्फुरत्प्रभाः ॥ ७ ॥
 मल्लिकामकरन्दार्द्राः शिरीष कुसुमाकुलाः । पयःफेननिभाः शय्याः कोटिशः सोपवर्हणाः ॥ ८ ॥
 वितानानि विचित्राणि भित्तिवस्त्राणि कोटिशः । आसनानि मृदुस्पर्शचित्रवर्णानि सर्वशः ॥ ९ ॥
 दीर्घाणि चोपवर्हाणि विश्वकर्मकृतानि च । मुक्तास्तबकहेमाद्यैः खचितानि सहस्रशः ॥ १० ॥
 सहस्रशो जवनिंकाः शिविकाश्चैव कोटिशः । छत्राणां चामराणां च दिव्यसिंहासनैः सह ॥ ११ ॥
 व्यजनानां तथा कोटी राज्यश्रीभूषणानि च । पीयूषाणां द्रोणकोटिः सुधर्मा च सभा तथा ॥ १२ ॥
 एवं च सर्वतोभद्रपद्मानोति सहस्रकम् । हीरकाणां च हरितां मुक्तानां च तथैव हि ॥ १३ ॥
 गोमेदानां कोटिमारा नीलकानां तथैव च । आदित्यचंद्रकांतीनां वैदूर्याणां सहस्रशः ॥ १४ ॥
 स्यमन्तकमणीनां च कोटिमाराः समागताः । तथा वै पद्मरागाणां भारा विद्वथर्बुदं नृप ॥ १५ ॥

नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! अपने नगरमें गिरकर शक्रसख अत्यन्त मूर्च्छित हो गया। फिर उस मूर्च्छासे वह उठा। उठनेपर भी एक क्षणतक उसे बड़ी घबराहट रही ॥ १ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नको पत्रद्वारा जानकर शक्रसख बड़ी उतावलीके साथ अपने पाससे भेंट-सामग्री लेकर यादव-सेनाके समीप गया ॥ २ ॥ ऐरावतकुलमें उत्पन्न हुए तीन सँड और चार दाँतवाले श्वेत रंगके एक हजार मदवर्षी हाथी, सुवर्णगिरिपर उत्पन्न दो योजन विस्तृत शरीरवाले तथा दिग्गजोंके समान उन्मत्त और पर्वताकार एक करोड़ हाथी, जिनके मुख दिव्य थे और जिनका गति भी दिव्य थी, करोड़ोंकी संख्यामें उपस्थित किये गये। हे राजन् ! इन सबके साथ सोनेके बने हुए उत्तम दिव्य रथ भी थे, जिनकी संख्या सौ अरब थी ॥ ३-५ ॥ दस हजार विमान भेंटके लिये लाये गये, जो दो-दो योजन विस्तारसे सुशोभित थे। दस लाख कामधेनु गौएँ और एक हजार पारिजात वृक्ष प्रस्तुत किये गये ॥ ६ ॥ तड़ागोंमें परिपुष्ट हुए सीपके मोती, जो यन्त्रपर चढ़ाकर चमकाये गये थे तथा चमेलीके इत्रसे आर्द्र, शिरीष-कुसुमोंसे सज्जित तथा दूधके फेनकी तरह सफेद करोड़ों शय्याएँ लायी गयीं, जिनपर सुन्दर तकिये भी रखे गये थे ॥ ७ ॥ ८ ॥ हाथीके दाँतकी बनी हुई उनकी पाटियाँ रत्नोंसे जड़ित थीं और उनके पायोंमें भी सुवर्ण तथा रत्न जड़े गये थे। विचित्र वितान (चँदोवे) और दीवारोंपर लगाये जानेवाले वस्त्र करोड़ोंकी संख्यामें भेंट किये गये। छूनेमें कोमल एवं चितकबरे आसन तथा विश्वकर्माद्वारा रचित बड़े-बड़े तकिये दिये गये, जो मोतियोंके गुच्छों और सुवर्णरत्न आदिके द्वारा खचित थे। वे सब सहस्रोंकी संख्यामें थे ॥ ९ ॥ १० ॥ हजारों परदे, करोड़ों पालकियाँ, छत्र, चँवर और दिव्य सिंहासनोंके साथ करोड़ों व्यजन, जो राजलक्ष्मीके भूषण थे, प्रस्तुत किये गये ॥ ११ ॥ कोटि द्रोण अमृत, सुधर्मा सभा, सर्वतोभद्र मण्डल, सहस्रदल कमल, हीरें, पन्ने और मोती दिये गये। कोटि भार गोमेद और नीलम दिये गये, सहस्रों भार सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त और वैदूर्य मणियोंके थे ॥ १२-१४ ॥ कोटि भार स्यमन्तक मणियोंके लाये गये थे। हे नरेश्वर ! पद्मराग मणिके भारोंकी संख्या एक अरब थी ॥ १५ ॥

जांबूनदसुवर्णानां हाटकानां तथैव च । सुवर्णाद्रिसुवर्णानां कोटिभाराश्च कोटिशः ॥१६॥
 राज्यं नवनिधीन्सर्वान्देवानां मैथिलेश्वर । अष्टानां लोकपालानामाधिपत्याधिरक्षकः ॥१७॥
 नीत्वोद्धवं शक्रसखो दत्तैवं बलिमद्भुतम् । कौशल्याहेतवे कार्ष्णिं प्रणनाम् कृताञ्जलिः ॥१८॥
 तस्मै तुष्टः शंवरारिः प्रददौ रत्नमालिकाम् । संस्थाप्य राज्ये तं राजरूपे हि प्रकृतिः सताम् १९॥
 इत्थं शक्रसखं जित्वा प्रद्युम्नाय बलिं ददौ । शिविराणां समूहोऽधूदरुणोदानदीसन्तु ॥२०॥
 महाधनखचिद्धिश्च वित्तानैः शतयोजनम् । पतत्पताकैर्दिव्याभैर्भूयस्तविजयध्वजैः ॥२१॥
 विरेजे शिविरव्यूहो लहरीभिः पयोदधिः । आकाशादागतं तत्र गजारूढं पुरन्दरम् ॥२२॥
 ससैन्यं सहसा राजन्दुभिध्वनिसंयुतम् । संवीक्ष्य वेगतो वीरा जगृहुः शस्त्रसंहतिम् ॥२३॥
 पुनरिदं च तं ज्ञात्वा बभूवुर्हर्षिता नृपाः । श्रीप्रद्युम्नं सभागध्ये कथयन्मघवा तदा ॥२४॥
 शृणु राजन्महाबाहो त्वं परावरवित्तमः । लीलावती नाम पुरी शुभा हेमाद्रिसानुषु ॥२५॥
 विद्याधरेशः सुकृती तत्र राज्यं करोति हि । तत्कन्या सुन्दरीनामा शतचन्द्रनिभा शुभा ॥२६॥
 आगता देवताः सर्वास्तस्या राजन्स्वयंवरे । लोकपालास्तथा सर्वे संप्राप्ता दिव्यविग्रहाः ॥२७॥
 यं दृष्ट्वा मूर्च्छिताऽहं स्यां स मे भर्ता भविष्यति । गिरेत्येवं प्रजल्पन्ती सुन्दरं वरमिच्छती ॥२८॥
 तत्रापि गच्छ सहसा भ्रातृभिः सह कौतुके । स्वयंवरं पश्य वरं देवलोकैश्च मण्डितम् ॥२९॥

श्रीनारद उवाच

तच्छ्रुत्वा भगवान्कार्ष्णिर्यादवैर्भ्रातृभिः सह । पुरन्दरेण सहसा पुरीं लीलावतीं ययौ ॥३०॥
 विशालाजिरसंयुक्ते खचिद्रत्नमनोहरे । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चिते ॥३१॥

जाम्बूनद सुवर्ण, हाटक सुवर्ण तथा सुवर्णगिरिसे प्राप्त सुवर्णोंके भी कोटि-कोटि भार प्रस्तुत किये गये ॥१६॥
 हे मैथिलेश्वर ! आठ लोकपालोंके आधिपत्यकी रक्षा करनेवाला शक्रसख अपना राज्य तथा देवताओंकी सम्पूर्ण निधियोंको भेंटके लिये लेकर उद्धवजीके साथ यादव-सेनाके पास गया और अपनी कुशलताके लिये वह अद्भुत भेंट अर्पित करके उसने प्रद्युम्नको हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥ १७ ॥ १८ ॥ शम्बरशत्रु प्रद्युम्नने संतुष्ट होकर उसे रत्नमाला अर्पित की और उस राज्यपर उसीको पुनः स्थापित कर दिया । हे राजन् ! सत्पुरुषोंका ऐसा ही स्वभाव होता है ॥ १९ ॥ इस प्रकार जिसने प्रद्युम्नको भेंट दी थी, उस शक्रसखको जीतकर वे सेनासहित आगे बढ़े । अब उनके सैनिकोंकी छावनी अरुणोदा नदीके तटपर पड़ी ॥ २० ॥ महामूल्य और रत्नोंसे जटित चंदोवे सौ योजनतक तन गये । वहाँ दिव्य पताकाएँ फहराने लगीं और वहाँकी भूमिपर विजय-ध्वजकी स्थापना हो गयी । उन ध्वजा-पताकाओंके कारण वह शिविरसमूह उत्ताल तरंगोंसे युक्त महासागरकी भाँति शोभा पाने लगा ॥ २१ ॥ हे राजन् ! उसी समय आकाशसे ऐरावतपर चढ़े हुए देवराज इन्द्र सहसा सेनासहित वहाँ उत्तर आये । देवताओंकी दुन्दुभियाँ भी उनके साथ-साथ बजती आयीं । यह देख सम्पूर्ण यादववीरोंने बड़े वेगसे अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र उठा लिये ॥ २२ ॥ २३ ॥ देवराज इन्द्रको पहचानकर समस्त नरेश बड़े प्रसन्न हुए । उस समय इन्द्रने भरी सभामें प्रद्युम्नसे कहा— ॥ २४ ॥
 “हे महाबाहु नरेश ! तुम परावरवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हो, अतः मेरी बात सुनो । सुवर्णगिरिके शिखरोंपर लीलावती नामसे प्रसिद्ध एक सुन्दर पुरी है ॥ २५ ॥ वहाँ विद्याधरोंके राजा सुकृती राज्य करते हैं । उनकी एक सुन्दरी नामवाली कन्या है, जो सौ चन्द्रमाओंके समान रूप-लावण्यसे सुशोभित और परम सुन्दरी है ॥ २६ ॥ हे राजन् ! उसके स्वयंवरमें समस्त लोकपाल और देवता दिव्य रूप धारण करके आये हैं ; किन्तु वह राजकन्या कहती है कि ‘जिसको देखकर मैं मूर्छित हो जाऊँगी, वही मेरा पति होगा ।’ यह बात कहकर वह सुन्दर वर पानेकी इच्छा रखती है ॥ २७ ॥ २८ ॥ तुम उस उत्सवमें भी अपने समस्त भाइयोंके साथ वहाँ चलो और देववृन्दसे मण्डित उस सुन्दर स्वयंवरको देखो” ॥ २९ ॥ नारदजी कहते हैं—हे राजन् ! यह सुनकर भगवान् प्रद्युम्न अपने यदुवंशी भाइयोंसहित देवेन्द्रके साथ सहसा

मुक्तायुक्तैस्तोरणैश्च वितानैः सुमहाधनैः । जांबूनदासनैः साक्षादिद्रलोक इवापरे ॥३२॥
तस्मिन्स्वयंवरे तस्थौ प्रद्युम्नो दिव्य आसने । गिरिशृंगे यथा सिंहः सर्वेषां पश्यतां नृप ॥३३॥
ब्रजेशा मुनयस्तत्र देवा रुद्रगणास्तथा । मरुतो रवयश्चैव वसवो ह्यग्नयोऽश्विनौ ॥३४॥
यमोऽथ वरुणः सोमो धनदः शक्र एव हि । सिद्धा विद्याधराश्चैव गंधर्वाः किन्नरास्तथा ॥३५॥
अन्ये समागताः सर्वे रत्नाभरणभूषिताः । जहुर्वैवाहिकीमाशां प्रद्युम्नं वीक्ष्य मैथिल ॥३६॥

सा सुंदरी तत्र सुरत्नमालया रतिं च रंभां क्षिपतीव निर्गता ।
वाणीं रमां रूपवतीं पुलोमजां विडम्बयन्तीव वभौ वरांगना ॥३७॥
यां वीक्ष्य सर्वेषु सदःसु सर्वतो मोहं प्रयातेषु तथैव मैथिल ।
श्रीः सर्वलोकस्य च पश्यतो वरं विचिन्वती सा चपलेव चांबुदम् ॥३८॥
दिव्यांवरं पद्मदलायतेक्षणं प्रद्युम्नवीरं नरलोकसुन्दरम् ।
समेत्य मूर्च्छां समवाप सुन्दरी विद्याधरी सा पुनराप संज्ञाम् ॥३९॥
समुत्थिता सात्वतहर्षविह्वला तस्थौ सुमालां विनिधाय तद्गले ।
विद्याधरेशः सुकृती च सुन्दरीं सुतां ददौ मैथिल शंवरारये ॥४०॥
नदत्सु तूर्येषु तदैव निर्जरा न सेहिरे वीक्ष्य विवाहमंगलम् ।
तं सर्वतः संरुधुः स्वयंवरं प्रचण्डमेघा इव भास्करं परम् ॥४१॥
क्रोधावृतांस्तानमरान्धनुर्धरान् मदोद्धतान् वीक्ष्य हरेः स्वयंवरम् ।
श्रीकृष्णदत्तं सशरं धनुः स्वयं वरं गृहीत्वा यदुभिर्जगर्ज ह ॥४२॥

लीलावतीपुरीमें गये ॥३०॥ जहाँ स्वयंवर हो रहा था, वहाँका प्राङ्गण बड़ा विशाल था । जड़े गये रत्नोंके कारण उसकी मनोहरता बढ़ गयी थी । उस स्थानपर चन्दन, अगर, कस्तूरी और केसरके द्रवका छिड़काव किया गया था ॥ ३१ ॥ मोतीकी बंदनवारों, बहुसूत्र्य वितानों और जाम्बूनद सुवर्णके आसनोंसे वह स्वयंवर-भवन साक्षात् दूसरे इन्द्रलोक-सा शोभा पा रहा था ॥ ३२ ॥ नरेश्वर प्रद्युम्न उस स्वयंवरमें गये और सिंह जैसे किसी पर्वतके शिखरपर बैठता है, उसी प्रकार सबके देखते-देखते एक दिव्य आसनपर विराजमान हुए ॥ ३३ ॥ हे मैथिल ! वहाँ जितने प्रजापति, मुनि, देवता, रुद्रगण, मरुद्गण, आदित्यगण, वसुगण, अग्नि, दोनों अश्विनीकुमार, यम, वरुण, सोम, कुबेर, इन्द्र, सिद्ध, विद्याधर, गन्धर्व, किन्नर तथा अन्यान्य सभी समागत एवं रत्नाभरणोंसे विभूषित देवता थे, उन्होंने प्रद्युम्नको आया देख अपने विवाहकी आशा छोड़ दी ॥ ३४-३६ ॥ उसी समय सुन्दरी हाथमें रत्नमाला लिये अपने रूप-लावण्यसे रति और रंभाको भी तिरस्कृत करती हुई-सी निकली । वह वराङ्गी अङ्गना सरस्वती, लक्ष्मी तथा रूपवती शचीकी विडम्बना करती हुई-सी जान पड़ती थी । हे मैथिल ! जिसे देखकर सब ओरके समस्त सभासद् मोहको प्राप्त हो गये, वह लक्ष्मीके समान राजकुमारी सुन्दरी सब लोगोंके सामने अपने लिये योग्य वरकी इस प्रकार खोज करने लगी, मानो चपला (विजली) नूतन जलधरको ढूँढ़ रही हो ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ दिव्याम्बरधारी, प्रफुल्लित कमलदल सदृश बड़े-बड़े नयनोंवाले एवं नरलोक सुन्दर प्रद्युम्नको देखकर वह सुन्दरी विद्याधरी मूर्छित हो गयी ॥ ३९ ॥ फिर थोड़ी ही देरमें उसे चेत हुआ तो वह उठी और आनन्द-विभोर होकर प्रद्युम्नके गलेमें सुन्दर माला डालकर खड़ी हो गयी । हे मिथिलेश्वर ! विद्याधरोंके राजा सुकृतीने अपनी पुत्री सुन्दरीको प्रद्युम्नके हाथमें दे दिया ॥ ४० ॥ तब सब ओर मात्तलिक बाद्य बज उठे, किन्तु इस वैवाहिक मङ्गलको देखकर देवतालोग सहन नहीं कर सके । उन लोगोंने उस स्वयंवरभवनको चारों ओरसे उसी प्रकार घेर लिया, जैसे प्रचण्ड मेघोंने सूर्यदेवको आच्छादित कर लिया हो ॥ ४१ ॥ उन देवताओंको क्रोधके बशीभूत हो धनुष उठाये और युद्धके मदसे उद्वत देख साक्षात् प्रद्युम्न हरिने भगवान् श्रीकृष्णके दिये हुए

तच्चापमुक्तैर्विशिखैः स्फुरत्प्रभैश्छिन्नायुधा मैथिलशीर्णकञ्जुकाः ।

विदुद्रुवुस्ते च दिशो दशामरा नीहारमेघा इव सूर्यरश्मिभिः ॥४३॥

प्रद्युम्नो भगवान्साक्षादित्थं जित्वा स्वयंवरम् । विजित्येलावृतं खड्गं भारतं गंतुमुद्यतः ॥४४॥

भ्रातृभिर्यदुभिः सैन्यैः सर्वमंत्रिजनैः सह । आययौ भारतं खड्गं नादयन् जयदुद्रुभीन् ॥४५॥

पश्यन्देशाननेकांश्च जंबूद्वीपजयो वली । आनर्तान्द्वारकान्देशान् प्राप्तोऽभूत्स हरेः सुतः ४६॥

प्रद्युम्नप्रेषितः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः । प्रणनामोग्रसेनं तं सभायां श्रीहरिं वली ॥४७॥

वयं वर्षेऽपि यज्जातं जंबूद्वीपजयं तथा । तत्सर्वं हि यथायोग्यं कथयामास चोद्धवः ॥४८॥

श्रीकृष्णबलदेवाभ्यां सर्वैर्बुद्धजनैः सह । प्रद्युम्नं तं समानेतुमुग्रसेनो विनिर्गतः ॥४९॥

गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा । मुक्तावर्षैर्लाजिपुष्पैः पाठारावैः सुमङ्गलैः ॥५०॥

वारणेंद्रं पुरस्कृत्य सौवर्णैः कलशैर्नृप ।

गंधर्वैर्वारमुख्याभिः शंखदुन्दुभिवेणुभिः ॥५१॥

गंधाक्षतैर्हंसपात्रैः पुष्पधूपैर्यवाङ्कुरैः ।

उग्रसेनः शंबरारेः संमुखं चाजगाम ह ॥५२॥

खड्गं नीत्वोग्रसेनस्य पुरो धृत्वा कृताञ्जलिः ।

ननाम कार्ष्णिर्भ्यदुभिर्भ्रातृभिः सह मैथिल ॥५३॥

श्रीकृष्णं सबलं नत्वा सर्वान् बुद्धान्प्रणम्य च ।

गर्गाचार्यं ननामाशु प्रद्युम्नो मीनकेतनः ॥५४॥

संश्लाघ्याभ्यर्च्य विधिवद्ब्राह्मणैर्वेदसूक्तिभिः ।

आरोप्य वारणे कार्ष्णिमुग्रसेनः पुरीं ययौ ॥५५॥

बाणसहित श्रेष्ठ धनुषको हाथमें लेकर यादवोंके साथ सिंहनाद किया ॥ ४२ ॥ हे मिथिलेश्वर ! उनके धनुषसे छूटे हुए चमकीले बाणोंद्वारा देवताओंके अस्त्र-शस्त्र छिन्न-भिन्न हो गये और उनके कवचोंकी ध्वजियाँ उड़ गयीं । जैसे सूर्यकी किरणोंसे कुहासेके बादल भाग जाते हैं, उसी प्रकार वे देवता दसों दिशाओंमें भाग खड़े हुए ॥४३॥ इस प्रकार साक्षात् भगवान् प्रद्युम्न स्वयंवर जीत और इलावृतखण्डपर विजय पाकर भारतवर्षकी जानेके लिए उद्यत हुए ॥ ४४ ॥ भाइयों, यादवों, सैनिकों तथा समस्त मन्त्रीजनोके साथ विजय-दुन्दुभि कुमार क्रमशः आनर्तप्रदेशमें और द्वारकाके देशोंमें आये ॥४५॥ अनेक देशोंको देखते हुए जम्बूद्वीपविजयी बलवान् वीर श्रीकृष्ण-बलवाते हुए वे भारतखण्डमें आये ॥४६॥ प्रद्युम्नके द्वारा पहले ही भेजे गये बुद्धिमानोंमें कुमार क्रमशः आनर्तप्रदेशमें और द्वारकाके देशोंमें आये ॥४६॥ प्रद्युम्नके द्वारा पहले ही भेजे गये बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ साक्षात् उद्धवने राजसभामें पहुँचकर राजा उग्रसेनको तथा भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया ॥ ४७ ॥ प्रत्येक देशमें क्या-क्या हुआ और जम्बूद्वीपपर किस तरह विजय मिली, वह सारा वृत्तान्त उद्धवजीने यथोचित रूपसे कह सुनाया ॥ ४८ ॥ तब राजा उग्रसेन श्रीकृष्ण-बलदेव एवं सम्पूर्ण बुद्धजनोके साथ प्रद्युम्नको लानेके लिये निकले । गीतवाद्योंकी ध्वनि तथा वेद-मन्त्रोंके गम्भीर घोषके साथ मोतियों, खीलों और फूलोंकी वर्षापूर्वक मङ्गलपाठ करते हुए लोग उनकी अगवानीके लिये आये ॥ ४९ ॥ हे नरेश्वर ! एक गजराजको आगे करके सोनेके कलश, गन्धर्व, अप्सराएँ, शङ्ख, दुन्दुभि, वेणु, सुगन्ध, अक्षत, सोनेके पात्र, फूल, धूप तथा जौके अङ्कुर साथ लिये राजा उग्रसेन प्रद्युम्नके सम्मुख आये ॥ ५०-५२ ॥ पात्र, फूल, धूप तथा जौके अङ्कुर साथ लिये राजा उग्रसेन प्रद्युम्नके सामने रख दिया और हे मैथिल ! श्रीकृष्णकुमारने यादव-बन्धुओंके साथ खड्ग ले जाकर महाराज उग्रसेनके सामने रख दिया और हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥५३॥ मीन-केतन प्रद्युम्नने श्रीकृष्ण-बलरामको मस्तक झुकाकर समस्त बुद्धजनोको प्रणाम करनेके अनन्तर शीघ्र जाकर श्रीगर्गाचार्यके चरणोंमें नमस्कार किया ॥५४॥ राजा उग्रसेन सूरि-सूरि प्रशंसा करके, वैदिककन्त्रों तथा ब्राह्मणोंके सहयोगसे विधिवत् पूजन करके, प्रद्युम्नको हाथीपर बिठाकर

मङ्गलं द्वारकायां च सर्वत्राभूद्गृहे गृहे ।

इत्थं नृप ते कथितं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ५६ ॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीविश्वजित्खण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे प्रधुम्नद्वारकागमनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

अथ एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(राजसूय यज्ञमें ऋषियों, ब्राह्मणों, राजाओं, तीर्थों, क्षेत्रों, देवगणों तथा सुहृद्-सम्बन्धियोंका शुभागमन)

बहुलाश्व उवाच

कथं चकार विधिवद्राजसूयाध्वरं नृपः । एतन्मे ब्रूहि विप्रेन्द्र त्वं परावरवित्तमः ॥ १ ॥

श्रीनारद उवाच

अथोग्रसेनो नृपतिः सर्वधर्मभृतां वरः । श्रीकृष्णेन सहायेन क्रतुराजं चकार ह ॥ २ ॥

गर्गाद्यदुकुलाचार्यान्मुहूर्तं बोध्य यत्नतः ।

बधुभ्यः प्रददौ राजन्सुहृद्भ्योऽपि निमन्त्रणम् ॥ ३ ॥

भक्त्या परमयाऽऽहूता ऋषयो मुनयो द्विजाः ।

आजग्मुर्द्वारिकां सर्वे पुत्रशिष्यैः समावृताः ॥ ४ ॥

वेदव्यासः शुकः साक्षान्मैत्रेयोऽथ पराशरः ।

पैलः सुमन्तुर्दुर्वासा वैशम्पायन इत्यपि ॥ ५ ॥

जैमिनिर्भार्गवो रामो दत्तात्रेयोऽसितो मुनिः ।

अंगिरा वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठः कण्व एव च ॥ ६ ॥

विश्वामित्रः शतानन्दो भारद्वाजोऽथ गौतमः ।

कपिलः सनकाद्याश्च विभाण्डश्च पतञ्जलिः ॥ ७ ॥

द्रोणः कृपः प्राङ्विपाकः शाण्डिल्यो मुनिसत्तमः ।

अन्ये च मुनयो राजन्सशिष्याश्च समागताः ॥ ८ ॥

ब्रह्मा शिवो जम्भेदी देवा रुद्रगणास्तथा ।

आदित्या मरुतः सर्वे वसवो ह्यग्नयोऽश्विनौ ॥ ९ ॥

द्वारकापुरीमें ले गये ॥ ५५ ॥ द्वारकामें सर्वत्र—घर-घरमें उत्सव हुआ । हे नरेश्वर ! इस प्रकार मैंने तुम्हारी पूछी हुई सब बातें कहीं, अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ५६ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

राजा बहुलाश्वने कहा—हे विप्रवर ! आप परावर-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं; अतः मुझे यह बताइये कि राजा उग्रसेनने किस प्रकार राजसूय यज्ञका विधिपूर्वक अनुष्ठान किया ॥ १ ॥ नारदजीने कहा—हे राजन् ! तदनन्तर समस्त वर्मात्माओंमें श्रेष्ठ राजा उग्रसेनने भगवान् श्रीकृष्णकी सहायतासे क्रतुराज राजसूयका सम्पादन किया ॥ २ ॥ यदुकुलके आचार्य गर्गजीसे यत्नपूर्वक मुहूर्त पूछकर भाई-बन्धुओं तथा सुहृदोंको निमन्त्रण भेजा ॥ ३ ॥ अत्यन्त भक्तिभावसे बुलाये जानेपर ऋषि, मुनि तथा ब्राह्मण—सब लोग अपने पुत्रों और शिष्योंके साथ द्वारकामें आये ॥ ४ ॥ हे राजन् ! साक्षात् वेदव्यास, शुकदेव, पराशर, मैत्रेय, पैल, सुमन्त, दुर्वासा, वैशम्पायन, जैमिनि, भार्गव परशुराम, दत्तात्रेय, असित, अङ्गिरा, वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ, कण्व, विश्वामित्र, शतानन्द, भारद्वाज, गौतम, कपिल, सनकादि, विभाण्ड, पतञ्जलि, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, प्राङ्विपाक, मुनिश्रेष्ठ शाण्डिल्य तथा दूसरे-दूसरे मुनि वहाँ शिष्योंसहित पधारे । ब्रह्मा, शिव, इन्द्र,

यमोऽथ वरुणः सोमो धनदो गणनायकः । सिद्धा विद्याधराश्चैव गंधर्वाः किन्नरादयः ॥१०॥
 गंधर्वाप्सरसः सर्वा विद्याधर्यः समागताः । वेताला दानवा दैत्याः प्रह्लादो बलिना सह ॥११॥
 रक्षोभिर्भीषणैः सार्द्धं लंकाधीशो विभीषणः । सर्वैश्च वानरैः सार्द्धं हनुमान् वायुनन्दनः ॥१२॥
 ऋक्षैश्च दंष्ट्रिभिः सार्द्धं जाम्बवानृक्षराड् बली । सर्वैश्च पक्षिभिः सार्द्धं गरुडः पक्षिराड् बली ॥१३॥
 सर्वैः सरोस्रुपैः सार्द्धं वासुकिर्नागराड् बली । गोरूपधारिणी पृथ्वी सर्वाभिः कामधेनुभिः ॥१४॥
 सर्वैः शैलैर्मूर्तिमद्भिः सुमेरुश्च हिमाचलः । गुल्मवृक्षलताभिश्च वटः साक्षात्प्रयागराट् ॥१५॥
 महानदीभिः सहिता श्रीगंगा यमुना नदी । पारावाराः सप्त तथा रत्नोपायनसंयुताः ॥१६॥
 आजगमुर्ग्रसेनस्य राजसूयस्य चाध्वरे । सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा नवारण्या नवोषराः ॥१७॥
 चतुर्दशैव गुह्यानि विख्यातानि महीतले । तीर्थराजः प्रयागश्च पुष्करं बद्रीकाश्रमः ॥१८॥
 सिद्धाश्रमो विनशनं कुण्डैः सर्वैः सरोवरैः । वनानि दण्डकादीनि सर्वैश्चोपवनैः सह ॥१९॥
 क्षेत्रैः समग्रैर्विमलैरेते तत्र समाययुः । श्रीमद्गोवर्धनो नाम गिरिराजो ब्रजाद्धरिम् ॥२०॥
 वृन्दावनव्रजवनैः सरः कुण्डैः समाययौ । कीर्तिर्यशोमतिः साक्षाद्गोपीभिर्गोपिकेश्वरी ॥२१॥
 श्रीराधा शिविकारूढा सखीसंघैश्च कोटिभिः । शतयूथश्च गोपीनां द्वारकां प्रययौ मुदा ॥२२॥

तासां वासो यत्र यत्र गोपीभूमिश्च साऽभवत् ।

तदङ्गराजसंजातं गोपीचन्दनमेव हि ॥२३॥

गोपीचन्दनलिप्तांगो नरो नारायणो भवेत् ।

चतुर्वर्णास्तथा सर्वे आजगमुस्तस्य चाध्वरे ॥२४॥

धृतराष्ट्रो बुद्धिचक्षुः साक्षाद्दुर्योधनः कलिः ।

शाल्वो भीष्मश्च कर्णश्च कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥२५॥

देवगण, आदित्यगण, मरुद्गण, समस्त बसुगण, अग्नि, दोनों अश्विनीकुमार, यम, वरुण, सोम, कुबेर, गणेश, सिद्ध विद्याधर, गन्धर्व तथा किन्नर आदिका शुभागमन हुआ ॥ ५-१० ॥ गन्धर्व-सुन्दरियाँ, अप्सराएँ और समस्त विद्याधरियाँ वहाँ आयीं । वेताल, दानव, दैत्य, प्रह्लाद, बलि, भीषण राक्षसोंके साथ लङ्कापति विभीषण तथा समस्त वानरोंके साथ वायुनन्दन हनुमान् पधारे ॥ ११ ॥ १२ ॥ ऋक्ष और दाढ़वाले वन्य पशुओंके साथ बलवान् ऋक्षराज जाम्बवान्का आगमन हुआ । समस्त पक्षियोंके साथ बलवान् पक्षिराज गरुड आये ॥ १३ ॥ सर्पगणोंको साथ लिये बलवान् नागराज वासुकि पधारे । सम्पूर्ण कामधेनुओंके साथ गोरूपधारिणी पृथ्वीका आगमन हुआ ॥ १४ ॥ समस्त मूर्तिमान् पर्वतोंके साथ मेरु और हिमालय पधारे । गुल्मों, वृक्षों और लताओंके साथ प्रयागके वृक्षराज अक्षयवटका शुभागमन हुआ ॥ १५ ॥ महानदियोंके साथ श्रीगङ्गा और यमुना नदी आयीं । रत्नोंकी भेंटके साथ सातों समुद्र पधारे ॥ १६ ॥ ये सबके-सब उग्रसेनके राजसूय यज्ञमें सहर्ष आये । सात सागर, तीन ग्राम, नौ अरण्य, महीतलके नौ ऊसर, विख्यात चौदह गुह्य, तीर्थराज प्रयाग, पुष्कर, बदरिकाश्रम, सिद्धाश्रम, कुण्डों और समस्त सरोवरों-सहित विनशन (कुरुक्षेत्र), समस्त उपवनोंके साथ दण्डक आदि वन—वे सबके-सब समग्र विमल क्षेत्रोंके साथ वहाँ उपस्थित हुए ॥ १७-१९ ॥ ब्रजसे श्रीमान् गिरिराज गोवर्धन, वृन्दावन, दूसरे-दूसरे वन, सरोवर तथा कुण्ड पधारे । रानी कीर्तिदा और गोपियोंके साथ गोपिकेश्वरी यशोदा पधारी ॥ २० ॥ २१ ॥ अपने करोड़ों सखी-समूहोंके साथ शिविकारूढ़ा श्रीराधाका भी शुभागमन हुआ । गोपियोंके सौ यूथ भी द्वारकागें सानन्द पधारे ॥ २२ ॥ जहाँ आजकल गोपी-भूमि है, वहीं उन्हें ठहराया गया । उन्हींके अङ्गराजसे वहाँ गोपीचन्दन प्रकट हुआ । जिसके अङ्गमें गोपीचन्दन लग जाता है, वह मनुष्य नरसे नारायण हो जाता है ॥ २३ ॥ चारों वर्णोंके सभी लोग उस यज्ञमें उपस्थित हुए थे । प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र, कलिका अवतार

भीमोर्जुनोऽथ नकुलः सहदेवस्तथापरे ।
 दमघोषो वृद्धशर्मा जयसेनो महानृपः ॥२६॥
 धृष्टकेतुभीष्मकश्च नागजित्कौशिलेश्वरः ।
 बृहत्सेनो धृतिः साक्षान्मैथिलेशः पितामहः ॥२७॥
 अन्येऽपि तत्र राजानः सुहृत्संबन्धिबांधवाः ।
 सहस्रीभिस्तथा पौत्रैः पुत्रैराजगुरध्वरम् ॥२८॥

इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे स्वजननिमंत्रणं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(राजसूय यज्ञका मङ्गलमय उत्सव, देवताओं, ब्राह्मणों तथा अतिथियोंका दान-मानसे सत्कार)

श्रीनारद उवाच

अर्थसिद्धेरिव द्वारे रैवताद्रिसमुद्रयोः ।
 मध्ये पिण्डारके क्षेत्रे यज्ञारंभो बभूव ह ॥ १ ॥
 पञ्चयोजनविस्तीर्णः कुण्डोऽभूद्यस्य चाध्वरे ।
 योजनं ब्रह्मकुण्डस्तु गव्यूतिः पञ्च कुण्डकाः ॥ २ ॥
 मेखलागर्तविस्तारवेदीभिर्निर्मिताः शुभाः ।
 सहस्रहस्तमुचाङ्गो यज्ञस्तंभो बभौ महान् ॥ ३ ॥
 पञ्चयोजनविस्तीर्णः सौवर्णो यज्ञमण्डपः ।
 वितानतोरणे रेजे कदलीखंडमण्डितः ॥ ४ ॥

भोजवृष्ण्यंधकमधुशूरसेनदशार्हकैः । देवैश्च सहितो राजा बभौ शक्र इवाध्वरे ॥ ५ ॥
 यज्ञावतारः श्रीकृष्णः परिपूर्णतमोऽध्वरे । बभौ पुत्रैश्च पौत्रैश्च परमात्मेव भूतिभिः ॥ ६ ॥
 महासंभृतसंभारे राजसूयेऽध्वरे वरे । गर्गाचार्यं गुरुं कृत्वा यदुराजो हि दीक्षितः ॥ ७ ॥

साक्षात् दुर्योधन, शात्व, भीष्म, कर्ण, कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, दमघोष, वृद्धशर्मा, महाराज जयसेन, धृष्टकेतु, भीष्मक, कोसलराज नग्नजित्, बृहत्सेन तथा तुम्हारे पितामह, साक्षात् मिथिलेश्वर धृति तथा अन्य राजे, सुहृद-सम्बन्धी, वन्धु-बान्धव अपनी रानियों तथा पुत्र-पौत्रोंके साथ उस यज्ञमें पधारे थे ॥ २४-२८ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामैकोन-पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

नारदजी बोले—हे राजन् ! अर्थसिद्धिके द्वारभूत पिण्डारक क्षेत्रमें, जो रैवतक पर्वत और समुद्रके बीचमें स्थित है, यज्ञका आरम्भ हुआ ॥ १ ॥ उस यज्ञमें जो कुण्ड बना, उसका विस्तार पाँच योजनका था । ब्रह्मकुण्ड एक योजनका और पाँच कुण्ड दो कोसमें बनाये गये ॥ २ ॥ वे सभी कुण्ड मेखला, गतं, विस्तार और वेदियोंके साथ सुन्दर ढंगसे निमित्त हुए थे । वहाँका महान् यज्ञस्तम्भ एक हजार हाथ ऊँचा था ॥ ३ ॥ सुवर्णमय यज्ञमण्डपका विस्तार पाँच योजनका था, जो चंदोवों और बंदनवारोंसे सुशोभित था । केलेके खंभे उसकी शोभा बढ़ाते थे ॥ ४ ॥ भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन तथा दशार्ह वंशके यादवोंसे घिरे हुए राजा उग्रसेन देवताओंसे युक्त इन्द्रकी भाँति उस यज्ञमण्डपमें शोभा पाते थे ॥ ५ ॥ जैसे परमात्मा अपनी विभूतियोंसे शोभा पाता है, उसी प्रकार परिपूर्णतम भगवान् यज्ञावतार श्रीकृष्ण उस यज्ञमें अपने पौत्रों और पौत्रोंसे सुशोभित हो रहे थे ॥ ६ ॥ महान् सम्भारका संचय करके, गर्गाचार्यको गुरु बनाकर यदुराज

होतारो दश लक्षाणि दश लक्षाणि दीक्षिताः । अध्वर्यवः पञ्चलक्षमुद्रातारस्तथाऽपरे ॥ ८ ॥
 हस्तिशुण्डासमा धारा शुक्त्वाज्यस्य हुताशनः । अजीर्णं प्राप तद्यज्ञे चित्रं विबुध मैथिल ॥ ९ ॥
 केऽपि जीवास्त्रिलोक्यां तु न बभूवुर्बुधक्षिताः । सर्वे देवास्तु सोमेन ह्यजीर्णत्वमुपागताः ॥ १० ॥
 रुचिमत्या धर्मपत्न्योग्रसेनो यदुराड् बली । अध्वरावमृथस्नानं तीर्थे पिण्डारकेऽकरोत् ॥ ११ ॥
 व्यासाद्यैर्मुनिभिः स्नातो विधिवद्वेदसूक्तिभिः । यथा दक्षिण्या यज्ञो रुचिमत्या बभौ नृप ॥ १२ ॥
 देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभयस्तथा । उग्रसेनोपरि सुराः पुष्पवर्षं प्रचक्रिरे ॥ १३ ॥
 गजानां हेमभाराणां नियुतानि चतुर्दश । शतार्बुदं हयानां तु यज्ञांते दक्षिणां पराम् ॥ १४ ॥
 कोटिशो नवरत्नानां महाहारांबरैः सह । गर्गाचार्याय मुनयो गृहोपस्करसंयुताम् ॥ १५ ॥
 उग्रसेनो ददौ राजा यादवेन्द्रो महामनाः । गजानां तत्र साहस्रं हयानामयुतं तथा ॥ १६ ॥
 विश्वद्वारं सुवर्णानां ब्राह्मणे ब्राह्मणे ददौ । मरुत्तस्य महायज्ञे त्यक्तपात्रा यथा द्विजाः ॥ १७ ॥
 तथोग्रसेनस्य क्रतौ संतुष्टा हर्षिता गताः । संतुष्टा देवताः सर्वाः प्राप्तभागा दिवं गताः ॥ १८ ॥
 भूरिद्रव्या बंदिनश्च जयारावा गृहं गताः । रक्षोदैत्या वानराश्च दंष्ट्रिणः पक्षिणस्तथा ॥ १९ ॥
 नागाः संतुष्टमनसः सर्वे स्वं स्वं गृहं ययुः । गावः शैला वृक्षसंघा नद्यस्तीर्थाश्च सिंधवः ॥ २० ॥
 संतुष्टाः प्राप्तभागा ये ते सर्वे स्वं गृहं ययुः ।
 राजानो ये समाहूताः पारिवर्हेण भूयसा ॥ २१ ॥
 पूजिता दानमानाभ्यां तेऽपि स्वं स्वं गृहं गताः ।
 नंदाद्या गोपमुख्या ये श्रीकृष्णेन प्रपूजिताः ॥ २२ ॥

उग्रसेनने क्रतुश्रेष्ठ राजसूय यज्ञकी दीक्षा ली ॥ ७ ॥ हे मैथिल ! उस यज्ञमें दस लाख होता, दस लाख दीक्षित अध्वर्यु और पांच लाख-उद्राता थे ॥ ८ ॥ अग्निकुण्डमें हाथीकी सूँड़के समान मोटी धृतकी धारा गिरायी जाती थी, जिसे खा-पीकर अग्निदेवता अजीर्ण रोगके शिकार हो गये ॥ ९ ॥ उन दिनों दोनों लोकोंमें कोई भी जीव भूखे नहीं रह गये । सब देवता सोमपान करके अजीर्ण रोगीके रोगी हो गये ॥ १० ॥ अपनी धर्मपत्नी रुचिमतीके साथ बलवान् यादवराज उग्रसेनने पिण्डारक तीर्थमें यज्ञका अवभृथ-स्नान किया ॥ ११ ॥ वे व्यास आदि मुनीश्वरोंके साथ वेद-मन्त्रोंके द्वारा विधिपूर्वक नहाये । जैसे दक्षिणासे यज्ञकी शोभा होती है, उसी तरह रानी रुचिमतीके साथ राजा उग्रसेनकी शोभा हुई ॥ १२ ॥ देवताओं तथा मनुष्योंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं और देवता उग्रसेनके ऊपर फूल बरसाने लगे ॥ १३ ॥ सोनेके हारसे विभूषित चौदह लाख हाथी उग्रसेनने दान किये । सौ अरब घोड़े उन्होंने यज्ञान्तमें दक्षिणाके रूपमें दिये ॥ १४ ॥ उन्होंने बहुसूत्र्य हारों और वस्त्रोंके साथ करोड़ों नवरत्न मुनिवर गर्गाचार्यको भेंट किये । साथ ही उन्हें घर-गृहस्थीके उपकरण भी अर्पित किये ॥ १५ ॥ महामनस्वी यादवेन्द्र राजा उग्रसेनने उस यज्ञमें एक हजार हाथी, दस हजार घोड़े और बीस भार सुवर्ण ब्रह्मा बने हुए ब्राह्मणको दिये ॥ १६ ॥ जैसे राजा मरुत्तके यज्ञमें ब्राह्मणलोग दक्षिणासे इतने संतुष्ट हुए थे कि अपने-अपने सुवर्णमय पात्र भी छोड़कर चल दिये थे, उसी प्रकार महाराज उग्रसेनके इस यज्ञमें भी ब्राह्मण संतुष्ट तथा हर्षोत्फुल्ल होकर अपने घर लौटे । अपने-अपने भागको पाकर संतुष्ट हुए सब देवता स्वर्गलोकको चले गये ॥ १७ ॥ १८ ॥ वंजीजनोंको भी बहुत द्रव्य दिया गया, जिससे जय-जयकार करते हुए वे अपने घर गये । राक्षस, दैत्य, वानर, दाढ़वाले पशु तथा पक्षी भी संतुष्ट होकर गये ॥ १९ ॥ समस्त नाग भी संतुष्टचित्त होकर अपने-अपने घर पधारे । गौएँ, पर्वत, वृक्ष-समुदाय, नदियाँ, तीर्थ तथा समुद्र—सबको अपना-अपना भाग प्राप्त हुआ और वे सब संतुष्ट होकर अपने-अपने स्थानको पधारे । जो राजे आमन्त्रित किये गये थे, उन्हें भी बहुत भेंट देकर दान-मानके द्वारा उनकी पूजा की गयी और वे सब संतुष्ट होकर अपने-अपने घर गये । नन्द आदि मुख्य-मुख्य गोपोंका पूजन स्वयं श्रीकृष्णने किया । वे सब लोग प्रेम और दानसे प्रसन्न होकर व्रजको लौटे ॥ २० ॥ २१ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार मैंने तुमसे राजसूय महायज्ञके

हर्षिताः प्रेमदानाभ्यां तेऽपि सर्वे ब्रजं ययुः । एतत्ते कथितं राजन्महायज्ञस्य मण्डलम् ॥२३॥
 यत्र श्रीकृष्णचन्द्रोऽस्ति तत्र किं सफलं न हि । ये शृण्वन्ति कथामेतां पठन्ति सत्ततं नराः ॥२४॥
 धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षस्तेषां प्रजायते ॥२५॥

पूर्णः परेशः परमेश्वरः प्रभुः पुनातु वो यः पुरुषः पुराणः ।
 शृण्वन्ति ये तस्य कथां विचित्रां कुर्वन्ति तीर्थं स्वकुलं नरास्ते ॥२६॥
 छलेन यज्ञस्य हरिः परेश्वरो भारं विदेहेश भुवोऽवतारयत् ।
 योऽभूच्चतुर्व्यूहधरो यदोः कुले तस्मै नमोऽनंतगुणाय भूयते ॥२७॥

इति श्रीमद्गर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे नारदबहुलाश्वसंवादे उग्रसेनमहोदये राजसूययज्ञोत्सववर्णनं

नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

मङ्गलमय उत्सवका वर्णन किया । जहाँ साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण हैं, वहाँ कौन-सा कार्य सफल नहीं होगा ? जो मनुष्य सदा इस कथाको पढ़ते और सुनते हैं, उन्हें धर्म अर्थ काम और मोक्ष—चारों पदार्थोंकी प्राप्ति होती है ॥ २३-२५ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ण, परेश, परमेश्वर और पुराणपुरुष हैं—वे तुमको पवित्र करें । जो मनुष्य उनकी इस विचित्र कथाको सुनते हैं, वे अपने समस्त कुलको पवित्र कर देते हैं ॥२६॥ हे विदेहराज ! परमेश्वर श्रीहरिने यज्ञके बहाने समस्त भूतलका भार उतार दिया । जो यदुकुलमें चतुर्व्यूह रूप धारण करके प्रकट हुए, उन अनन्त-गुणशाली तथा भुवन-पालक परमेश्वरको नमस्कार है ॥ २७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां विश्वजित्खण्डे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

॥ सम्पूर्णोऽयं विश्वजित्खण्डः ॥

* श्रीकृष्णः शरणं मम *
आचार्य-श्रीगर्गमहामुनिविरचिता—

श्रीगर्गसंहिता

‘प्रियंवदा’ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितः।

(बलभद्रखण्डः ८)

अथ प्रथमोऽध्यायः

(श्रीबलभद्रजीके अवतारका कारण)

बहुलाश्व उवाच

श्रुतं तव मुखाद्ब्रह्मन् मंगलं परमाद्भुतम् । सुधाखंडात्परं मिष्टं खंडं विश्वजितं परम् ॥ १ ॥
परिपूर्णतमस्यापि श्रीकृष्णस्य महात्मनः । षोडशस्त्रीसहस्राणां पुत्रा दशदशामवन् ॥ २ ॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च बभूवुः कोटिशो मुने । रजांसि भूमेर्गणयेन कविश्चेद्वरेः कुलम् ॥ ३ ॥
रेवत्यां बलदेवस्य रामस्यापि महात्मनः । पुत्रोदयः कथं नु स्यादेतन्मे ब्रूहि तत्त्वतः ॥ ४ ॥

श्रीनारद उवाच

बाढमुक्तं भगवतः संकर्षणस्याच्युताग्रजस्य बलभद्रस्य रामस्य कामपालस्य कथां
सर्वथा तवाग्रे कथयिष्यामि ॥ ५ ॥ अथ कदाचित्प्राड्विपाको नाम मुनीन्द्रो योगीन्द्रो दुर्योधन-
गुरुर्गजाह्वयं नाम पुरमाजगाम ॥ ६ ॥ सुयोधनेन संपूजितः परमादरेण सोपचारेण महार्हसिंहासने
स्थितोऽभूत् ॥ ७ ॥ तं प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य कृतांजलिः पुरः स्थितो मनःसन्देहं स्मृत्वा धार्तराष्ट्र
इति होवाच ॥ ८ ॥ संकर्षणः साक्षाद्बलभद्रः किं कारणात्कस्माद्भोकात्केन प्रार्थितो भूलोकानाजगाम
येनेदं पुरं तिर्यग्भूतमभवत्तस्य मम गुरोर्गदाशिक्षाकरस्याहो तत्प्रभावं नितरां वदतात् ॥ ९ ॥

राजा बहुलाश्वने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपके श्रीमुखसे मैंने अमृतकी अपेक्षा भी परम मधुर, मङ्गलमय, परम अद्भुत विश्वजितखण्डका श्रवण किया ॥ १ ॥ महात्मा श्रीकृष्ण परिपूर्णतम भगवान् हैं, उनकी सोलह हजार पत्नियोंमेंसे प्रत्येकके दस-दस पुत्र हुए ॥ २ ॥ मुनिवर ! उनके फिर करोड़ों पुत्र और पौत्र उत्पन्न हुए । पृथ्वीके रजकण गिने जा सकते हैं, किंतु कोई विद्वान् कवि भी श्रीकृष्णके वंशजोंकी गणना करनेमें समर्थ नहीं है ॥ ३ ॥ महात्मा बलरामजीकी रेवती पत्नी थीं । उनके एक भी पुत्र क्यों नहीं हुआ ? कृपापूर्वक इसका रहस्य बताइये ॥ ४ ॥ श्रीनारदजी कहने लगे—तुम्हारा प्रश्न बहुत सुन्दर है । भगवान् अच्युतके बड़े भाई भगवान् संकर्षण कामपाल हैं । उन बलरामजीकी कथा मैं तुम्हारे सामने भलीभाँति वर्णन करूँगा ॥ ५ ॥ दुर्योधनके गुरु प्राड्विपाक नामक मुनि योगियोंके और मुनियोंके अधीश्वर थे । वे एक दिन हस्तिनापुर पधारे ॥ ६ ॥ दुर्योधनने महान् आदरके साथ उनका विविध उपचारोंके द्वारा सम्यक् प्रकारसे पूजन किया । फिर वे महासूक्ष्मवान् सिंहासनपर विराजित हुए ॥ ७ ॥ दुर्योधनने उनकी वन्दना और प्रदक्षिणा की और हाथ जोड़कर उनके सामने बैठ गया । फिर अपने मनके संदेहका स्मरण करके उनसे कहा—॥ ८ ॥ ‘भगवान् संकर्षण साक्षात् बलभद्रजीका इस भूमण्डलमें किस कारण और किनकी प्रार्थनासे शुभागमन हुआ ? उन्होंने मेरे नगरको उलटकर टेढ़ा कर दिया था । वे मेरे गुरु हैं । मुझको उन्होंने ही गदायुद्ध सिखलाया था । आप

प्राड्विपाक उवाच

युवराज कुरुद्रह यदुवरस्य प्रभावं शृणु यच्छ्रवणे पापहानिः परं भूयात् ॥ १० ॥
 अस्मिन्दापरांते नृपव्याजदैत्यानीककोटिभिर्भूरिभराक्रान्ता भूगौर्भूत्वा स्वयंभुवं शरणं जगाम ॥ ११ ॥
 तदुपचर्य सुरश्रेष्ठः सर्वसुरगणैः समृद्धो वैकुण्ठनाथं पुरस्कृत्य श्रीवामनवामपादांगुष्ठनखनिर्मिञ्चोर्च्चा-
 डकटाहविवरमार्गेण बहिर्निर्गत्य कोटिशौडनिचयं ब्रह्मद्रवे संप्रेक्षन् विरजातीरं प्राप्तवान् ॥ १२ ॥
 अथाग्रेऽसंख्यकोटिमातृडज्योतिषां मण्डलमवेक्ष्य धाता नत्वा ध्यात्वा तत्रानन्तं सहस्रवदनं संकर्षणं
 गुणलक्षणलक्षितं देवैः सह ददर्श ॥ १३ ॥ तद्भोगकुण्डलीभूतोत्संगेवृन्दारण्यकालिंदीगोवर्द्धनाद्रि-
 कुञ्जनिकुञ्जलतातरुपुञ्जगोपालगोपीगोकुलसंकुलं ललितं गोलोकं सर्वलोकनमस्कृतं समेत्य तत्र
 निजकुंजे निजाज्ञां नीत्वातःप्राप्य साक्षात्परिपूर्णतमं स्वयं श्रीकृष्णचंद्रमसंख्यब्रह्मांडपतिं श्रीराधापतिं
 श्यामलच्छविं पीतांबरवनमालावंशीधरं कणत्कनकनूपुरकिंकिणीकटकांगदहारस्फुरत्कौस्तुभांगुली-
 यकैः सर्वतः परिस्फुरत्कोटिवालमातृडमण्डलं किरीटकुण्डलमण्डितगंडस्थलमलकालिभिर्विभ्राजमान-
 नमुखारविंदं नमस्कृत्य विधिः सर्वैः सर्वं भूभारवृत्तांतं कथयांबभूव ॥ १४ ॥ तेषां विज्ञप्तिं
 विज्ञाय भूमिभारहरणार्थं भगवान्स्वजनान् सर्वदेवान् यथातथमाज्ञां दत्त्वाऽनन्तं सहस्रवदनमिति
 होवाच ॥ १५ ॥ अङ्ग पुरा त्वमपि वसुदेवस्य देवक्यां भूत्वा रोहिण्युदरादाविर्भव पश्चाद्देवक्याः
 पुत्रतामहं प्राप्स्यामि ॥ १६ ॥

इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखण्डे दुर्योधनप्राड्विपाकसम्वादे बलदेवावतारकारणं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

उनके प्रभावका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये' ॥ ९ ॥ प्राड्विपाक मुनिने कहा—हे कुरुसत्तस युवराज ! यादव-
 श्रेष्ठ बलभद्रजीका प्रभाव सुनो । उसके सुननेसे पापोंका सम्पूर्णतया विनाश हो जाता है ॥ १० ॥ इसी व्यापार
 के अन्तकी बात है, राजाओंके रूपमें करोड़ों-करोड़ों दैत्यसेनाओंने उत्पन्न होकर पृथ्वीको भयानक भारसे
 दबा दिया । तब पृथ्वीने गौका रूप धारण करके स्वयम्भू ब्रह्माजीकी शरण ली ॥ ११ ॥ देवश्रेष्ठ ब्रह्माजीने
 सम्पूर्ण देवताओं और शंकरजीके साथ श्रीवैकुण्ठनाथको आगे किया और भगवान् वामनदेवके बायें पैरके
 अंगूठेके नखसे कटे हुए ऊर्ध्व ब्रह्माण्डकटाहके छिद्र द्वारा वे बाहर निकले । वहाँ ब्रह्माजी देवताओंसहित
 ब्रह्मद्रव (श्रीगङ्गाजी) के समीप उपस्थित हुए तो उसमें करोड़ों-करोड़ों ब्रह्माण्डोंको लुढ़कते देखा । तद-
 नन्तर वे विरजा नदीके तटपर पहुँचे ॥ १२ ॥ इसके बाद देवताओंके साथ ब्रह्माने अनन्तकोटि सूर्योंकी
 ज्योतियोंके समान तेजोमण्डलके दर्शन किये । उन्होंने ध्यान और प्रणाम किया । वहाँ देवताओंसहित ब्रह्माजी-
 को भगवान् संकर्षणके दर्शन हुए । उनके हजार मुख थे और उनका श्रीविग्रह अनन्त गुणोंसे लक्षित था
 ॥ १३ ॥ वे अनन्त भगवान् कुण्डलाकारमें विराजित थे । उन अनन्तकी गोदमें उन्हें वृन्दावन, यमुना नदी,
 गोवर्धन गिरि, कुंज-निकुंज, लता-वेलोंकी कतारें, भाँति-भाँतिके वृक्ष, गोपाल, गोपी और गोकुलसे परिपूर्ण
 सर्वलोकके द्वारा नमस्कृत परम सुन्दर गोलोकधामकी उपलब्धि हुई और वहाँ निकुंजेश्वर स्वयं भगवान्की
 अनुमति प्राप्त करके वे अन्तःपुरमें पहुँचे । वहाँ उस निजनिकुंजमें साक्षात् परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र
 विराजित थे, जो अनन्त ब्रह्माण्डोंके स्वामी हैं । उन राधापति भगवान्की श्यामसुन्दर कान्ति है । पीताम्बर
 पहने हुए हैं । उनके गलेमें वनमाला मुशोभित है और वे वंशी धारण किये हुए हैं । ध्वनि करते हुए स्वर्णके
 नूपुर, किङ्किणी, कड़े, बाजूबंद, हार, उज्ज्वल आभापूर्ण कौस्तुभ मणि तथा अंगूठियोंसे अलंकृत हैं । करोड़ों-
 करोड़ों वालसूर्योंके समान द्युतिवाले किरीट और कुण्डल उन्हें मुशोभित कर रहे हैं । उनका मुख-कमल
 अलकावलियोंसे समलंकृत है । ऐसे कमल-वदन भगवान्को ब्रह्मा आदि देवताओंने नमस्कार किया और पृथ्वी-
 के भारका सारा वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया ॥ १४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने उनकी सब बातोंको सुन-जानकर अपने निज
 जन समस्त देवताओंको पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये यथायोग्य आदेश दिया और सहस्र मुखवाले भगवान्

अथ द्वितीयोऽध्यायः

(बलरामजीके अवतारका उपक्रम)

प्राङ्विपाक उवाच

इत्युक्तः सहस्रवदनो गंतुमभ्युदितः स्वसभायां स्थितोऽभूत् । तदैव सिद्धचारणगन्धर्वाः सर्वतस्तं नतकंधरा बभूवुः ॥ १ ॥ अथ सुमतिः सारथिर्दिव्यं रथं तालांकं साश्वं समानीय सम्मुखं स्थितोऽभूत् ॥ २ ॥ परसैन्यविदारणं मुसलं दैत्यदमनं हलं ते तूर्णं पुरस्तादुपतस्थतुः ब्रह्ममयं नाम वर्म चोपतस्थे ॥ ३ ॥ अथ तत्र श्रीवलभद्रसभायां सर्वेषां पश्यतां रमावैकुण्ठात्समागतः पाणिनिपतं-जल्यादिभिर्मुनिभिः स्तूयमानः सहस्रफणमौलिविराजमानः सिद्धचारणचामरसंसेव्यमानः शेषस्तमनंतं संकर्षणं स्तुत्वा तद्विग्रहे संलीनोऽभूत् । ४ ॥ अथाजितवैकुण्ठात्समागतोऽजैकपादहिर्बुध्न्यबहुरूप-महदादिभिः संवेष्टितो घोरैः प्रेतविनायकैः संवेष्टितः शेषः सहस्रवदनः समागत्य स सभायामनंतं स्तुत्वा तस्मिन् संलीनोऽभूत् ॥ ५ ॥ अथ श्वेतद्वीपात्समागतः कुमुदकुमुदाभादिभिः पार्षदप्रवरैः संसेव्यमानः सहस्रफणमौलिविराजमानः सिताचलाभो नीलांबरो नीलकुंतलाभो भीमामः सर्वेषां पश्यतामनंतविग्रहे सोऽपि संलीनोऽभूत् ॥ ६ ॥ अथ तदैवैलावृतखण्डात्समागतस्त्रीगणार्बुदसहस्रै-र्भवानीनाथैः समावृतः शेषः सहस्रवदनमौलिमण्डलमण्डितः प्रस्फुरत्किरीटकटकांगदः सभामेत्या-नंतविग्रहे संग्रलीनोऽभूत् ॥ ७ ॥ अथ पातालस्याधस्ताद्द्वात्रिंशद्योजनसहस्रांतरात्समागतो

अनन्तसे वे यों कहने लगे—॥ १५ ॥ 'हे अनन्त ! तुम पहले वसुदेवजीकी पत्नी देवकीके गर्भमें जाकर फिर रोहिणीके उदरसे प्रकट होओ । तदनन्तर मैं देवकीके पुत्रके रूपमें आविर्भूत होऊंगा' ॥ १६ ॥ इति श्रीगर्ग-संहितायां बलभद्रखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

प्राङ्विपाक मुनिने कहा—इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके कहनेपर हजार मुखवाले अनन्त जानेके लिये तैयार होकर अपनी सभामें जाकर विराजित हुए । उसी समय सिद्ध, चारण और गन्धर्वोंने आकर अत्यन्त विनीत भावसे सिर झुकाकर उन्हें नमस्कार किया ॥ १ ॥ इसके बाद तालके चिह्नसे सुशोभित ध्वजावाले दिव्य रथमें घोड़े जोतकर सुमति नामक सारथि उनके सम्मुख उपस्थित हुआ ॥ २ ॥ शत्रुकी सेनाका विदारण करनेवाला 'मुसल', दैत्योंका कचूमर निकालनेवाला 'हल' और ब्रह्ममय नामक 'कवच' भी उनके सामने आकर उपस्थित हो गया ॥ ३ ॥ तदनन्तर वहाँ सबके देखते-देखते बलभद्रजीकी सभामें श्रीशेषजी रमावैकुण्ठधामसे पधारे । उनके एक सहस्र फनोंपर मुकुट सुशोभित थे । सिद्ध, चारणगण तथा पाणिनि और पतञ्जलि आदि मुनि उनकी स्तुति कर रहे थे । ऐसे शेषजी आये और स्तुति करके संकर्षणके श्रीविग्रहमें विलीन हो गये ॥ ४ ॥ उसके बाद अजितवैकुण्ठसे सहस्रवदन शेषजीका वहाँ शुभागमन हुआ । वे अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप, महद् आदि रुद्रोंसे घिरे हुए थे । भयंकर प्रेत और विनायक आदि उनके चारों ओर फैले थे । बलरामकी सभामें आकर शेषनागने उनका स्तवन किया और स्तवन करनेके पश्चात् वे उन्हींके शरीरमें विलीन हो गये ॥ ५ ॥ तदनन्तर श्वेतद्वीपसे कुमुद और कुमुदाक्ष आदि प्रधान पार्षदोंके द्वारा सेवित, हजार फनोंके ऊपर विराजमान मुकुटोंसे सुशोभित, नीलाम्बरधारी, श्वेतपर्वतके समान प्रभावाले, नील कुन्तलकी कान्तिसे मण्डित, भयंकर रूपवाले शेषजी पधारे और वे भी सबके देखते-देखते अनन्तके देहमें विलीन हो गये ॥ ६ ॥ फिर उसी समय इलावृतवर्षसे शेषजी आये । भगवती पार्वतीकी दासी करोड़ों स्त्रियोंके यूथ उनकी सेवा कर रहे थे । मुकुट-मण्डित हजार मुखोंवाले शेषजी चमचमाते हुए किरीट, कुण्डल और बाजूबंदसे सुशोभित थे । सभामें आकर वे भी भगवान् अनन्तके श्रीविग्रहमें प्रवेश कर गये । तदनन्तर पातालके बत्तीस हजार योजन नीचेसे शेषजी आये । वे हजार मुखवाले शेषजी 'भगवान्की तामसी' कलासे सम्पन्न थे । उन्होंने अनन्त सूर्योंके समान प्रकाशमान किरीट धारण कर रक्खा था । व्यास, पराशर, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, नारद, सांख्यायन, पुलस्त्य, बृहस्पति और मैत्रेय आदि महर्षियोंकी संनिधिसे

भगवतस्तामसीकलः साक्षात्सहस्रवदनकिरीटमार्तंडमण्डलमण्डितो वेदव्यासपराशरसनकसनन्दन-
सनातनसनत्कुमारनारदसांख्यायनपुलस्त्यवृहस्पतिमैत्रेयादिमहर्षिभिः संशोभितो वासुकिमहाशंख-
श्चेतधनंजयधृतराष्ट्रकुहककालियतक्षककंबलाश्वतरदेवदत्तादिभिर्नागैर्द्रौश्रामरपाणिभिः संसेव्यमानो
मृगमदागरुकुंकुमचंदनपङ्कावलप्यमानाभिर्नागकन्याभिः सिद्धचारणगंधर्वविद्याधरगणैरुपगीयमानो
हाटकेश्वरत्रिपुरवलकालकेयकलिनिवातकवचैरनुयायिभिः पुरःसरै रुद्रैकादशव्यूहैर्नाभिकामधेनुवरुणैः
पश्चात्त्रयायिभिर्वीणावेणुमृदंगतालदुन्दुभिध्वनिशब्दायमानः फणींद्रो नागेंद्र इव तूर्णगतिर्विराजते
यस्यैकफणे चेदं क्षितिमण्डलं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते सोऽप्यागत्य महानन्तविग्रहे संलीनोऽभूत् ॥८॥
तच्चित्रं दृष्ट्वा तत्सभापार्षदाः सर्वे तं परिपूर्णतमं ज्ञात्वाऽवनता विस्मिता बभूवुः ॥९॥ अथानंतवदनो
महानंतः संकर्षणो भगवान् पार्षदान् सिद्धानुवाच ॥१०॥ अहं भूमिभारहणार्थं भुवि गमिष्यामि
तस्याद्ययं यादवेषु भविष्यथ ॥११॥ भोः प्रबलोद्भटसुमते सारथे भवताऽत्रैव स्थीयतां शोकं मा
कुरुतात् यदा युद्धार्थी त्वत्स्मरणं करिष्यामि तदा त्वं दिव्यं तालांकं रथं नीत्वा मत्समीपमागमिष्यसि
॥१२॥ हे हलमुसले यदा यदा युवयोः स्मरणं करिष्यामि तदा तदा मत्पुर आविर्भूते भवतम्
॥१३॥ भो वर्म त्वमपि चाविर्भव । हे मुनयः पाणिन्यादयो हे कोटिशो रुद्रा हे भवानीनाथ हे
एकादश रुद्रा हे गन्धर्वा । हे वासुक्यादिनागेन्द्रा हे निवातकवचा हे वरुण हे कामधेनो भूम्यां
भरतखंडे यदुकुलेऽवतरंतं मां यूयं सर्वे सर्वदा एतय मम दर्शनं कुरुत ॥१४॥

प्राङ्चिपाक उवाच

इत्याज्ञप्ताः सर्वे स्वं स्वं धाम समाजगुः तेषु गतेषु नागकन्यायूथान् भगवाननन्तः
प्राह-युष्माकमभिप्रायो मया ज्ञातस्तपसा गोपालानां गृहेषु जन्मानि प्राप्य मदर्शनं कुरुत ॥१५॥

उनकी अपार शोभा हो रही थी । वासुकि, महाशङ्ख, श्वेत, धनंजय, धृतराष्ट्र, कुहक, कालिय, तक्षक, कम्बल, अश्वतर और देवदत्तादि नागराज उनपर चँवर डुला रहे थे । कस्तूरी, अगर, केसर और चन्दनके द्वारा अनुल्लिप्त बहुत-सी नागकन्याएँ उनकी सेवा कर रही थीं । सिद्ध, चारण, गन्धर्व और विद्याधरोंके द्वारा उनका यशोगान हो रहा था । हाटकेश्वर, त्रिपुर, बल, कालकेय, कलि और निवातकवचादि दैत्य उनके अनुयायी होकर आगे-आगे चल रहे थे । ग्यारह रुद्र व्यूहाकारसे उनके आगे-आगे और कस्तूरीमृग, कामधेनु तथा वरुण उनके पीछे-पीछे चल रहे थे । वे फणिधर गजराजके समान तीव्र गतिसे वहाँ पधारे । उनके एक फनपर यह सारा भूमण्डल सरसोंके दानेकी तरह प्रतीत हो रहा था । ऐसे शेषजी वहाँ आकर भगवान् अनन्तके श्रीविग्रहमें प्रविष्ट हो गये ॥७॥८॥ सभाके सम्पूर्ण पार्षदोंने इस विचित्र लीलाको देखा और वे उन्हें परिपूर्णतम भगवान् समझकर सर्वथा अवनत और आश्चर्यचकित हो गये ॥ ९ ॥ तदनन्तर अनन्तमुखवाले अनन्त भगवान् संकर्षणने सिद्धपार्षदोंसे कहा—॥ १० ॥ ‘भूमिका भार हरण करनेके लिये मैं भूमण्डलपर चलूँगा । इसलिये तुमलोग जाकर यादवकुलमें जन्म ग्रहण करो ।’ ॥ ११ ॥ तदनन्तर वे सुमति सारथीसे बोले—‘तुम बड़े बलवान् और शूरवीर हो । तुम यहाँ ही रहो । किसी प्रकारका शोक न करो । जिस समय युद्धाभिलाषी होकर मैं तुम्हें याद करूँगा, उसी समय तालचिह्नित दिव्य रथको लेकर तुम मेरे समीप आ जाना ॥ १२ ॥ हे हल और मुसल ! मैं जब-जब तुम्हारा स्मरण करूँ, तब-तब तुम मेरे सामने प्रकट हो जाना ॥ १३ ॥ हे कवच ! तुम भी वैसे ही प्रकट होना । हे पाणिनि आदि, व्यास आदि तथा कुमुद आदि मुनियो ! हे ग्यारह रुद्रो ! हे कोटि-कोटि रुद्रो ! हे गिरिजापति श्रीशंकरजी ! हे गन्धर्वो ! हे वासुकि आदि नागराजो ! हे निवातकवचादि दैत्यो ! हे वरुण और कामधेनु ! मैं भूमण्डलपर भारतवर्षके यदुकुलमें अवतार लूँगा । तुम सब वहाँ सदा-सर्वदा मेरा दर्शन करना’ ॥ १४ ॥ प्राङ्चिपाक मुनि कहने लगे—इस प्रकार आज्ञा पाकर वे सभी अपने-अपने स्थानोंको चले गये । उनके चले जानेके अनन्तर भगवान् अनन्तने नागकन्याओंके श्रृंगसे कहा—‘मैं तुम्हारा अभिप्राय जानता हूँ, तुम सभी तपस्याके द्वारा गोपोंके घर जन्म लेकर मेरा

कदाचित्कलिंदनंदिनीकूले विहारमाधुर्यमूले युष्माभिः सह रासमण्डलं करिष्यामि युष्माकं मनोरथः सफलो भविष्यति ॥१६॥ अथ निवातकवचानां राजा कलिः स्वामिपादकृतमस्तकांजलिः प्रदत्त-
पुष्पावलिः श्रीभगवन्तं प्रत्युवाच ॥१७॥ अहं किं करिष्यामि मय्याज्ञां कुरु । भगवन् यत्र त्वं गमिष्यसि तत्राप्यहं गमिष्यामि ह वाव त्वद्वियोगेन महान् खेदो भविष्यति सहैव मां नय त्वं भक्तवत्सलोऽसि ॥१८॥ एवं संप्रार्थितो भगवाननन्तः कलिं राजानं स्वभक्तं प्रसन्नः प्रत्युवाच-
सुखेन त्वं मत्सहेहागच्छ भरतखण्डे कौरवेन्द्राणां कुले धृतराष्ट्रस्य पुत्रो भूत्वा दुर्योधनो नाम चक्रवर्ती भविष्यसि त्वत्सहायमहं करिष्यामि गदाशिक्षां च दास्यामि ॥१९॥ इत्युक्तः कलिस्तं नमस्कृत्य स्वधाम गतवान् सैष कलिस्त्वं जातोऽसि विष्णुमायया स्वात्मानं न स्मरसि ॥२०॥

इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखण्डे प्राड्विपाकदुर्योधनसंवादे संकर्षणगमनमंत्रो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

(ज्योतिष्मतीका उपाख्यान)

प्राड्विपाक उवाच

अथागता कोटिशरचंद्रमंडलग्रतीकाशा नागलक्ष्मीर्महारथस्या सखी कोटिमंडलमंडिता संकर्षणं महान्तं भर्तारं सभायां ग्राह ॥ १ ॥ अहमपि त्वया सहैव भगवन् भुवमागमिष्यामि त्वद्वियोगातुरा प्राणान्न धारयामि ॥२॥ इति बाष्पकंठीं प्रियां संप्रेक्ष्य भगवाननन्तः सर्वभक्तदुःख-
निवारणो महेंद्रवारण इव भोगवारण इति होवाच ॥ ३ ॥ रंभोरु त्वं रेवतीविग्रहे संलीना भूत्वा भूलोकं भजतान्मा शोकं कुरुतात् ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा नागलक्ष्मीः प्रत्युवाच रेवती का कस्य सुता

दर्शन करना ॥ १५ ॥ किसी समय कालिन्दीके तटपर मनोहर रासमण्डलेमें तुम्हारे साथ रास करके मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा ।' ॥ १६ ॥ तदनन्तर निवातकवचोंके राजा कलिने हाथ जोड़कर प्रभुके चरण-
कमलोंमें पुष्पाञ्जलि अर्पण की और भगवान्के चरणोंमें मस्तक टेककर कहा—॥१७॥ 'हे भगवन् ! मुझे आज्ञा दीजिये, मेरे लिये क्या काम होगा ? आप जहाँ पधारेंगे, वहाँ ही मैं भी चलूँगा । हे पिताजी ! आपके वियोगमें मुझे महान् दुःख होगा; आप भक्तवत्सल हैं, अतएव मुझे साथ ले चलिए ॥ १८ ॥ इस प्रकार प्रार्थना सुनकर भगवान् अनन्तने प्रसन्न होकर अपने भक्त कलिराजसे कहा—'तुम मेरे साथ सुखपूर्वक भारतवर्षमें चलो । तुम वहाँ कौरवकुलमें धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनके नामसे विख्यात चक्रवर्ती राजा बनो । मैं तुम्हारी सहायता करूँगा और तुम्हें गदायुद्ध सिखाऊँगा ।' ॥१९॥ इस प्रकार कहनेपर उन्हें नमस्कार करके राजा कलि अपने स्थानपर चला गया । उसी कलिस्वरूप तुमने दुर्योधनके रूपमें जन्म लिया है । भगवान् विष्णुकी मायासे तुमको अपने स्वरूपकी स्मृति नहीं है ॥ २० ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखण्डे 'प्रियंवदा' माषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

प्राड्विपाक मुनिने कहा—तदनन्तर करोड़ों शारदीय चन्द्रमाओंकी कान्तिवाली स्वयं नागलक्ष्मी महान् रथपर सवार होकर वहाँ पधारीं । करोड़ों सखियाँ उनकी शोभा बढ़ा रही थीं । उन्होंने सभामें आकर अपने स्वामी महान् अनन्त भगवान् संकर्षणसे कहा—॥१॥ हे 'भगवन् ! मैं भी आपके साथ हो भूमण्डलपर चलूँगी । आपके वियोगकी व्यथा मुझे इतना व्याकुल कर देगी कि मैं अपने प्राणोंको नहीं रख सकूँगी ।' ॥ १ ॥ २ ॥ नागलक्ष्मीका गला भर आया था । भगवान् अनन्तने, जो समस्त जगत्के कारणके भो कारण हैं, भक्तोंका दुःखनिवारण करना ही जिनका स्वभाव है और जिनका श्रीविग्रह ऐरावतके सभान बृहत् सर्परूप है, अपनी प्रियाकी यह दशा देखकर कहा—॥ ३ ॥ 'हे रंभोर ! तुम शोक मत करो । पृथ्वीपर जाकर रेवतीकी देहमें विलीन हो जाओ । वहाँसे फिर मेरी सेवामें उपस्थित हो जाओगी ।' ॥ ४ ॥ यह सुनकर

क वर्तमाना नितरां वदैतच्छ्रुत्वा भगवाननंतः सस्मितः स्वप्रियां प्रत्युवाच ॥ ५ ॥ आदिसर्गे कश्यपस्य कद्रूसुतो ह्यहं जातः श्रीकृष्णाज्ञया त्वखंडभूखंडमंडलं गजराडिव चैकफले कमंडलुमिव धृत्वा सर्वतोऽधस्ताद्विराजमानोऽहं बभूव ॥ ६ ॥ अथ मयि स्थिते चक्षुषः पुत्रोऽतिबलश्चाक्षुषो नाम मनुः सप्तद्वीपभूखंडमंडलेषु मंडलपतिभिर्घृष्टपादपुंडरीकः पुरंदरादिभिर्लघितचंडशासनः प्रचंड-दोर्दंडाविखंडितारिदोर्दंडः सर्वगुणमंडितः सम्राट् बभूव ॥ ७ ॥ तस्य मनोः सुद्युम्नाद्याः पुत्रा बभूवुः । तस्य यज्ञकुंडसमुद्भवा कन्या ज्योतिष्मती जाता ॥ ८ ॥ एकदा स्नेहाच्चाक्षुषः पुत्रीं पप्रच्छ कीदृशं वरमिच्छसीति वद । सा तदोवाच यः सर्वेषां बलवान्स मे वरो भूयात् ॥ ९ ॥ तच्छ्रुत्वा राजा शक्रं बलवंतं ज्ञात्वा तमाजुहाव । तदैव सद्यः समागतं वज्रिणं पुरःस्थितं सादरेणासनं दत्त्वा मनुः प्राह ॥ १० ॥ त्वत्तः कोऽपि बलवान् वर्तते न वा तत्सत्यं वद न चेत्स्मृतिः 'न हि सत्यात्परो धर्म इति होवाच भूरियम् । सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीकपरं नरम्' ॥ ११ ॥

इन्द्र उवाच

अहं बलवान्नास्मि मत्तो बलवान् वायुरस्ति तेन सहायेन कार्यं करोमीत्युक्त्वा गते शक्रे राजा वायुमाजुहावाह च त्वत्तः कोऽपि बलवान् वर्तते सत्यं वदतात् ॥ १२ ॥

वायु उवाच

मत्तो बलवंतः पर्वताः संति मद्भोगेन नोद्धीयमाना इत्युक्त्वा गते वायौ राजा पर्वतानाजुहावाह च भवद्भयः कोऽपि कौ बलवान् वर्तते तत्सत्यं वदत ॥ १३ ॥ पर्वताः प्राहुरस्म-द्वारणाद्भूखंडं बलवद्वर्तते यत्र वयं स्थिताः स्मः । पर्वतेषु गतेषु भूखंडमंडलं समाहूय राजा प्राह त्वत्तः कोऽपि बलवान् वर्तते न वा सत्यं वद ॥ १४ ॥

नागलक्ष्मी बोलों—'रेवती कौन हैं, किनकी कन्या हैं और कहाँ रहती हैं—आप विस्तारसे मुझे बताइये ।' यह सुनकर भगवान् अनन्तने मुस्कराते हुए अपनी प्रियासे कहा—॥ ५ ॥ 'आदि सृष्टिकी बात है, कद्रूके गर्भसे कश्यपजीके पुत्ररूपमें मैं उत्पन्न हुआ था । भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे मैंने अखण्ड भूमण्डलको कमण्डलुके समान अपने एक फनपर धारण कर लिया और सब लोकोंसे नीचेके लोकमें जाकर विराजित हो गया ॥ ६ ॥ मेरे इस प्रकार वहाँ स्थित होनेपर चक्षुषके पुत्र अतिबल चाक्षुष नामक मनु सप्तद्वीपमय अखण्ड पृथ्वी-मण्डलके सर्वगुणसम्पन्न सम्राट् हुए, बड़े-बड़े मण्डलेश्वर राजा उनके चरणकमलोंपर अपने मस्तक घिसा करते थे । इन्द्रादि देवतागण भी उनका शासन मानते थे । प्रचण्ड वनस्पतियों के चाक्षुष मनु शत्रुओंके समस्त बल-गर्वकी चूर्ण करके स्थित थे ॥ ७ ॥ उन चाक्षुष मनुके सुद्युम्नादि अनेक पुत्र हुए । तदनन्तर मनुने यज्ञ किया और उनके यज्ञकुण्डसे ज्योतिष्मती नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ ८ ॥ एक दिन चाक्षुष मनुने स्नेहवश अपनी उस कन्यासे पूछा—'बताओ, तुम कैसा वर चाहती हो ?' तब कन्याने उत्तर दिया कि 'जो सबसे अधिक बलवान् हो, वे ही मेरे स्वामी बनें ।' ॥ ९ ॥ यह सुनकर राजाने इन्द्रको सबसे अधिक बलवान् समझकर बुलाया । वज्रधारी इन्द्रके सामने आनेपर राजाने आदरपूर्वक उन्हें आसनपर बैठाया और कहा— ॥ १० ॥ 'आपकी अपेक्षा कोई और अधिक बलवान् है कि नहीं, यह आप सत्य-सत्य बताइये । भगवतो स्मृति कहती हैं—पृथ्वी देवीने कहा है कि 'सत्यसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है; मैं सब कुछ सहन कर सकती हूँ, परंतु मिथ्यावादी मनुष्यका भार मुझसे नहीं सहा जाता ।' ॥ ११ ॥ इन्द्रने कहा—'मैं बलवान् नहीं हूँ । वायुदेवता मुझसे अधिक बलवान् हैं । मैं उन्हींकी सहायतासे कार्य किया करता हूँ ।' यों कहकर इन्द्र चले गये । तब राजाने वायुका आवाहन किया और उनसे पूछा—'सच-सच बताइये, आपसे भी बढ़कर कोई बलवान् है ?' ॥ १२ ॥ वायु बोले—'पर्वत मुझसे अधिक बलवान् हैं; क्योंकि मेरा वेग उन्हें उखाड़ नहीं सकता । यह कहकर वायु चले गये । तब राजाने पर्वतोंको बुलाया और कहा—'सच बताइये, भूमण्डलमें आपसे अधिक बलवान् कौन है ?' ॥ १३ ॥ पर्वतोंने उत्तर दिया—'हमलोगोंको अपने ऊपर धारण करनेके कारण भूमण्डल

तच्छ्रुत्वा भूखंड उवाच

सत्तो बलवान्संकर्षणो भगवान् वर्तते । सोऽयं सदाऽनंतोऽनंतगुणार्णव आदिदेवो वासुदेवः
सहस्रवदनो नागेंद्र इव भव्यवपुः कैलास इव शुक्लप्रकाशः कोटिसूर्यप्रतिभासः कोटिकंदर्पहारि-
लावण्येन विभ्राजमानः कमलपत्राक्षः कमलकर्णिकादिव्यविमलमालानिर्मलपरिलोमितमधुकरनिकर-
संगीयमानः सिद्धचारणगंधर्वविद्याधरवरगणैरुपगीयमानः सुरासुरोरगमुनिगणैः संध्यायमानः
सर्वोपरि विराजमान आस्ते ॥१५॥ यस्यैकस्मिन्मूर्ध्नि सगिरिसरित्समुद्रवनजीवकोटिमंडितं
भूखंडमंडलमहं दृश्ये । यन्नामानुकीर्तनात्त्रिलोक्यां त्रैलोक्यघात्यपि कैवल्यं प्राप्नोति ॥१६॥
एवंप्रभावो भगवान् सर्वतो बलवान्सर्वकारणकारणः सर्वेश्वरो दुरंतवीर्यो मूले रसायाः
स्थितस्तस्मात्परः कोऽपि नास्ति ॥१७॥

महानंत उवाच

इत्थुक्त्वा गते भूखंडे चाक्षुषः कन्या ज्योतिष्मती मम माधुर्यप्रभावं विज्ञाय पित्राज्ञां गृहीत्वा विंध्याचले
मत्प्राप्त्यर्थं वर्षाणां लक्षाणि ब्रह्मतपस्तेपे ॥१८॥ ग्रीष्मे पंचाशितप्ता वर्षासु सर्वासारधारिणी
शिशिर आकण्ठमग्रा शीतोदके भूत्वा स्थंडिलशायिनी बभूव ॥१९॥

इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखंडे ज्योतिष्मत्युपाख्यानं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

(रेवतीका उपाख्यान)

श्रीमहानंत उवाच

अथ ज्योतिष्मतीं शतचंद्रप्रतीकाशां नवयौवनां सुंदरीं तपस्विनीं वीक्ष्य शक्रयमधन-
दाधिवरुणसोमसूर्यमंगलबुधबृहस्पतिशुक्रशनयः सर्वे तद्रूपोद्दीपितकामसंमोहित चित्तास्तदाश्रममेत्य

हमसे अधिक बलवान् है ।' पर्वत इतना कहकर चले गये । तब राजाने भूमण्डलको बुलाकर कहा—'सच-सच बताओ, तुमसे भी अधिक कोई शक्तिसम्पन्न है या नहीं' ॥ १४ ॥ यह सुनकर भूमण्डलने कहा—'मुझसे अधिक बलवान् भगवान् संकर्षण हैं । वे नित्य अनन्त, अनन्त गुणोंके समुद्र हैं । वे आदिदेव हैं, वासुदेवरूप हैं, उनके हजार मुख हैं, उनका विग्रह गजराजके समान विशाल है, वे कैलासके सहस्र उज्ज्वल प्रभाववाले हैं, करोड़ों सूर्योंके समान उनकी ज्योति है । वे सुन्दरतामें करोड़ों कामदेवोंके गर्वको चूर्ण करनेवाले हैं कमलपत्रके समान उनके सुन्दर नेत्र हैं । वे दिव्य निर्मल कमल-कर्णिकाओंकी मालासे सुशोभित हैं, जिनके परिमलका पान करनेके लिये भ्रमरोंके यूथ गुंजार करते रहते हैं । सिद्ध, चारण, गन्धर्व और श्रेष्ठ विद्याधरों-द्वारा जिनका यशोगान होता रहता है । देवता, दानव, सर्प और मुनिगण जिनका सदा आराधन करते हैं और जो सबसे ऊपर विराजमान हैं ॥ १५ ॥ जिनके एक मस्तकपर पर्वत, नदी, समुद्र, वन और करोड़ों-करोड़ों प्राणियोंसे अलंकृत अखण्ड भूमण्डल दिखायी देता है और तीनों लोकोंमें जिनका नाम कीर्तन करनेसे त्रिलोकीका वध करनेवाला पापी भी कैवल्य-मोक्षको प्राप्त कर लेता है—॥१६॥ ऐसे प्रभावसम्पन्न, समस्त कारणोंके कारण, सबके ईश्वर और सबसे अधिक शक्तिशाली भगवान् संकर्षण है । वे रसातलके मूलभागमें विराजमान हैं । उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है' ॥ १७ ॥ महानन्तने कहा—'इस प्रकार कहकर भूमण्डल-के चले जानेपर मेरे माधुर्य और प्रभावको जानकर ज्योतिष्मतीने पिताकी आज्ञा ली और मुझे प्राप्त करनेके लिये विन्ध्याचल पर्वतपर तप करने चली गयी । उसने लाख वर्षोंतक वहाँ तपस्या की ॥ १८ ॥ वह गर्मीके दिनोंमें पञ्चाग्निके बीचमें बैठकर तप करती, वर्षामें निरन्तर जल-धाराको सहन करती और सर्दिके दिनोंमें कण्ठपर्यन्त ठंडे जलमें डूबी रहती थी । वह तपस्याकालमें नीचे जमीनपर ही सोया करती थी ॥ १९ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

तामूचुः ॥१॥ हे सुंदरि रंभोरु धन्याऽसि कस्यार्थं तपः करोषि ते वयस्तपोयोग्यं नास्ति मनोजमिप्रायं
स्वकमस्माकं वदेति तच्छ्रुत्वा ज्योतिष्मत्युवाच भगवाननंतः सहस्रवदनो मम भर्ता भूयादेतदर्थं
तपस्तपामीति तद्वचः श्रुत्वा सर्वे जहसुः पृथक् पृथक्तेषां पूर्वमिदं इदमाह ॥ २ ॥

इन्द्र उवाच

सर्पराजं वरं कर्तुं किं वृथा तपसु शुभे । देवराजं वरय मां स्वतः प्राप्तं शतक्रतुम् ॥ ३ ॥

यम उवाच

यमराजं वरय मां दण्डनेतारमागतम् । सर्वोत्तमा त्वं मत्पत्नी पितृलोके भविष्यसि ॥ ४ ॥

घनद उवाच

राजराजं हि मां विद्धि निधीशं हे वरांगने । त्वं भजाशु विशालाक्षि त्यज संकर्षणे रतिम् ॥ ५ ॥

अक्षिरुवाच

सर्वदेवमुखं विद्धि सर्वयज्ञप्रतिष्ठितम् । भज मां त्वं विशालाक्षि विहायान्यत्र वासनाम् ॥ ६ ॥

वरुण उवाच

लोकपालं वरय मां पाशिनं यादसां पतिम् । सप्तानां हि समुद्राणां वैभवं पश्य भामिनि ॥ ७ ॥

सूर्य उवाच

जगच्चक्षुः सदाऽहं वै चंडांशुश्चाक्षुषात्मजे । विहाय पातालगतिं वर मां स्वर्णभूषणम् ॥ ८ ॥

लोम उवाच

द्विजराजश्रौषधीशो नक्षत्रेशः सुधाकरः । कामिनीबलदोऽहं वै भज मां गजगामिनि ॥ ९ ॥

मङ्गल उवाच

इयं मही हि मे माता पिता साक्षादुरुक्रमः । मङ्गलं भज मां भद्रे भूत्वा भूरि भवार्थिनी ॥१०॥

श्रीमहानन्तने कहा—तदनन्तर सैकड़ों चन्द्रमाओंके समान कान्तिवाली, तपस्यामें संलग्न, नव-
यौवना, सुन्दरी ज्योतिष्मतीपर इन्द्र, यम, कुबेर, अग्नि, वरुण, सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र
और शनैश्चरकी दृष्टि पड़ी । उसके रूपको देखकर उनके मनमें उसे प्राप्त करनेकी इच्छा उद्दीप्त हो उठी और
वे सम्मोहितचित्त हो गये । तब उन्होंने ज्योतिष्मतीके आश्रमपर जाकर कहा—॥१॥ 'हे सुन्दरी ! हे रंभोरु !
तुम धन्य हो । तुम किसके लिये तप कर रही हो ? तुम्हारी अवस्था अभी तपके योग्य नहीं है । तुम अपने
मनका अभिप्राय हमलोगोंके सामने प्रकट करो ।' यह सुनकर ज्योतिष्मती बोली—'हजार मुखवाले भग-
वान् अनन्त मेरे स्वामी हों, मैं इसीलिये तप कर रही हूँ ।' ज्योतिष्मतीकी यह बात सुनकर इन्द्रादि देवता
हंस पड़े और अलग-अलग अपनी बात कहनेको तैयार हो गये । उनमें सबसे पहले इन्द्र यों बोले ॥ २ ॥
इन्द्रने कहा—सर्पराजको स्वामी बनानेके लिये तुम व्यर्थ ही तप कर रही हो । मैं देवताओंका राजा हूँ ।
मैंने सौ अश्वमेध यज्ञ किये हैं और मैं स्वयं तुम्हारे सामने उपस्थित हूँ । तुम मुझे वरण कर लो ॥ ३ ॥
यमराज बोले—मैं सारे जगत्के प्राणियोंका दण्डविधान करनेवाला यमराज हूँ । तुम मुझे वरण कर लो और
पितृलोकमें मेरी सबसे श्रेष्ठ पत्नी होकर रहो ॥ ४ ॥ कुबेरने कहा—हे वरानने ! मैं सम्पूर्ण धनका स्वामी हूँ ।
तुम मुझे राजाधिराज समझो और संकर्षणके प्रति प्रीति छोड़कर शीघ्र मुझे पतिरूपमें वरण कर लो ॥ ५ ॥
अग्निदेव बोले—हे विशाललोचने ! मैं सम्पूर्ण यज्ञोंमें प्रतिष्ठित और समस्त देवताओंका मुख हूँ । अन्य सभीके
प्रति वासनाका त्याग करके तुम मुझे भजो ॥ ६ ॥ वरुणने कहा—हे भामिनी ! मैं जलचरोंका स्वामी एवं
लो रूपाल हूँ । मेरे हाथमें सदा पाश रहता है । सातों समुद्रोंका ऐश्वर्य मेरा ही वैभव है । यह समझकर तुम
मुझे पतिरूपमें वरण करो ॥ ७ ॥ सूर्यदेवता बोले—हे चाक्षुषात्मजे ! मैं जगत्का नेत्र हूँ । मेरी प्रचण्ड किरणें
सर्वत्र व्याप्त रहती हैं । अतएव पातालमें रहनेवाले अनन्तका त्याग करके तुम स्वर्गके आभूषणस्वरूप मुझको
वरण करो ॥ ८ ॥ चन्द्रमाने कहा—मैं ओषधियोंका अधीश्वर, नक्षत्रोंका राजा, अमृतकी खान, ब्राह्मण-
श्रेष्ठ और कामिनियोंको बल प्रदान करनेवाला हूँ । हे गजगामिनि ! तुम मेरी उपासना करो ॥ ९ ॥
मङ्गल बोले—यह पृथ्वी मेरी माता है और साक्षात् उरुक्रम भगवान् मेरे पिता हैं । मेरा नाम मङ्गल है ।

त्वं सर्वभक्षो भवतादुपबुध मनुष्यधर्मन् हृतपुष्पको भव ।
 वैवस्वत त्वं बहुमानभङ्गो भवाशु युद्धे प्रबलेन रक्षसा ॥२१॥
 मां हर्तुमागत्य सुराधम स्थितः करोषि निंदां परमात्मनो गिरा ।
 तव प्रियां कोऽपि नृपो हरिष्यति करिष्यति स्वर्गसुखं गते त्वयि ॥२२॥
 पाशेन वद्धं युधि निजितं त्वां बलाद्गृहीत्वा खलु कोऽपि राक्षसः ।
 लंकां पुरीमेत्य दिवस्पते वै कारागृहेऽन्धे किल कारयिष्यति ॥२३॥

श्रीमहानन्त उवाच

अथ ह वाव तया शप्तानां देवानां मध्ये कृपितः शक्रोऽपि तां शशाप । कोपकारिणि संकर्षणं
 वरमपि प्राप्यात्र जन्मनि ह्यन्यत्र वा कदाचित्तव पुत्रोत्सवो माभूत् । एवमुक्त्वा शक्रोऽपि तत्तेजसा
 धर्षितः सर्वदेवगणैः सह स्वर्गं जगाम । पुनः सा तपस्तेपे ॥२४॥ अथ तत्तपो दृष्ट्वा ब्रह्मा ब्रह्म-
 विद्भिर्ब्राह्मणैर्ब्राह्मयादिभिः संवृतः सर्वजगत्कारणभूतः स्वभवनाद्वंसयानेनागतवान् ॥२५॥ अंबरे
 स्थित्वा तामाह हे ज्योतिष्मति चाक्षुषात्मजे त्वत्तपः सफलं जातं तेन सिद्धाऽसि परमहं प्रसन्नोऽस्मि
 वरं ब्रूहीति ॥२६॥ तच्छ्रुत्वाऽऽकण्ठजलाद्विनिर्गत्य ब्रह्माणं प्रणिपत्य स्तुत्वा कृताञ्जलिरित्यब्रवीत् ।
 हे भगवन् यदि प्रसन्नोऽसि किलेह संकर्षणो भगवान् सहस्रवदनो मम वरो भूयादिति श्रुत्वा ह
 वाव विबुधर्षभः प्रत्युवाच ॥२७॥ हे पुत्रि तव मनोरथो दुर्लभोऽस्ति तथापि पूर्णं करिष्याम्यद्यैव
 वैवस्वतमन्वन्तरः प्राप्तोऽस्ति ह्यस्य त्रिनवचतुर्युगविकल्पिते काले सति तत्र वरः संकर्षणो भगवान्
 भविष्यति ॥२८॥ तच्छ्रुत्वा ज्योतिष्मती ब्रह्माणमाह देवदेव भगवान् महान् कालो वर्तते मम

करनेपर सफलता नहीं मिलेगी ॥१९॥ मङ्गल । तू बंदरके समान सुखवाला हो जा । चन्द्रमा । तेरे राज्यक्षमा-
 का रोग हो जाय । सूर्य । तेरे दाँत टूट जायँ । वरुण । तू जलंधर रोगका शिकार हो जा ॥ २० ॥ अग्नि ।
 तू सब कुछ खानेवाला बन जा । कुबेर । तेरा पुष्पक विमान छिन जाय । यमराज । बलवान् राक्षस युद्धमें
 तेरा मान भङ्ग करें और तू शक्तिशाली राक्षसोंसे युद्धमें हार जा ॥ २१ ॥ देवाधम इन्द्र । तू मुझे हरनेके
 लिये आया है और अपने मुँहसे तूने परमात्माकी निन्दा की है । स्वर्गमें किसी राजाके द्वारा तेरी पत्नी शची
 हर ली जायगी, वह स्वर्ग-मुखका भोग करेगा और तू वहाँसे भगा दिया जायगा ॥ २२ ॥ अरे स्वर्गके
 राजा ! किसी राक्षसके द्वारा युद्धमें तेरी हार होगी । तू पाशमें बाँधा जायगा और वे लङ्कापुरीमें ले जाकर
 तुझे अन्धकारपूर्ण कारागारमें डाल देंगे ॥ २३ ॥ भगवान् महानन्त बोले—इस प्रकार ज्योतिष्मतीके द्वारा
 शापको प्राप्तकर देवताओंके बीच इन्द्र कुपित हो गये और इन्द्रने भी ज्योतिष्मतीको शाप देकर कहा—‘हे
 क्रोधकारिणी ! संकर्षणको पतिके रूपमें प्राप्त करके भी इस जन्म अथवा दूसरे जन्ममें अथवा कभी तुम्हारे
 घरमें पुत्रोत्सव नहीं होगा ।’ इन्द्र ज्योतिष्मतीके तेजसे बड़े तिरस्कृत हो गये थे । उन्होंने इस प्रकार कहकर
 सारे देवताओंके साथ स्वर्गकी यात्रा की और ज्योतिष्मती फिर तपस्यामें लग गयी ॥ २४ ॥ तदनन्तर सारे
 जगत्के कारणभूत ब्रह्माजीकी दृष्टि ज्योतिष्मतीके तपकी ओर गयी और वे हंसपर सवार होकर ब्रह्मविद्
 ब्राह्मणों और ब्राह्मी आदि शक्तियोंके साथ अपने भवनसे वहाँ पधारे ॥२५॥ आकाशमें ही स्थित होकर ब्रह्माने
 उसको सम्बोधन करके कहा—‘हे ज्योतिष्मती और चाक्षुष मनुकी पुत्री । तुम्हारा तप सफल हो गया । इस तपमें
 तुम सिद्ध हो गयीं । मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ । तुम वर माँगो’ ॥ २६ ॥ ब्रह्माजीकी बात सुनकर ज्योति-
 ष्मती कण्ठपर्यन्त जलसे बाहर निकली । उसने ब्रह्माजीको प्रणाम किया, उनका स्तवन किया और वह हाथ
 जोड़कर कहने लगी—‘भगवन् ! यदि निश्चय ही आप मुझपर प्रसन्न हैं तो हजार सुखवाले भगवान् संकर्षण
 मेरे पति हों, मुझे यही वर दीजिये ।’ देवश्रेष्ठ ब्रह्माजीने यह सुनकर उत्तरमें कहा—॥२७॥ ‘हे पुत्री । तुम्हारा
 मनोरथ दुर्लभ है, तथापि मैं उसे पूर्ण करूँगा । आजसे ही वैवस्वत मन्वन्तर प्रारम्भ हुआ है । इसकी सत्ता-
 ईस चतुर्युगी बीत जानेपर भगवान् संकर्षण तुम्हारे पति होंगे ।’ ॥ २८ ॥ यह सुनकर ज्योतिष्मतीने

मनोरथः शीघ्रं भूयाच्च सर्वकार्यं कर्तुं समर्थः न चेत्तुभ्यं शापं दास्यामि यथा देवेभ्यो दत्तः ॥२९॥
इति प्रोक्तो ब्रह्मा शापभीतः क्षणं विचार्य पुनराह—हे राजपुत्रि त्वमानर्तपतेरेव तस्य कुशस्थल्यां
पुत्री भव । तस्मिन् जन्मनि त्रिनवचतुर्युगविकल्पितः कालः केनचित्कारणेन क्षणवद्भविष्यति इति
तस्यै वरं दत्त्वा ब्रह्मा तत्रैवांतरधीयत ॥३०॥ अथ साऽप्यानर्तेषु कुशस्थलीपुरे रेवतस्य भार्यायां
जन्म लेभे । तत्र ज्योतिष्मती रेवती नाम रूपौदार्यगुणमण्डिता नवशरत्कजनेत्रा विवाहयोग्या
बभूव ॥३१॥ तां रेवतः स्नेहेनातःपुरे सभार्य उवाच कीदृशं वरमिच्छसीति वचः श्रुत्वा सा तदोवाच
सर्वेषां बलवान्स मे वरो भूयात् ॥३२॥ इति श्रुत्वा राजा रेवतः सभार्योऽपि सुतां नीत्वा दिव्यं
रथमारुह्य बलवन्तं वरं दीर्घायुषं परिग्रह्य लोकानुल्लङ्घ्य ब्रह्मलोकं गतवान् ॥३३॥ तत्र क्षणमा-
स्थितोऽभूत्तेन क्षणेन भूलोकेऽद्यैव त्रिनवचतुर्युगविकल्पितः कालो जातः । साऽद्यैव ब्रह्मलोके वर्तते
रंभोरु तस्यां त्वं संलीना भूत्वाऽऽवेशवतारिणी द्वारकां प्राप्य रमस्व ॥३४॥

प्राङ्बिपाक उवाच

इत्थं तद्वाक्यं श्रुत्वा नागलक्ष्मीः संकर्षणं भर्तारमनुज्ञाप्य ब्रह्मलोकमेत्य रेवतीविग्रहे स्वावेशं
चकार ॥३५॥ अथ संकर्षणो भगवान् भूरि भूमिभारहरणार्थं लोकनमस्कृताद्भूलोकधामसकाशादवत-
तारेदं बलभद्रस्य भगवत आगमनं मया ते कथितं सर्वदुरितापहरणं मंगलायनं युवराज कौरवेन्द्र
किं भूयः श्रोतुमिच्छसीति ॥३६॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीबलभद्रखण्डे ज्योतिष्मत्युपाख्यानं रेवत्युपाख्यानं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

ब्रह्माजीसे कहा—‘हे देवदेव भगवन् ! यह तो बड़ा लंबा समय है । आप सब कुछ करनेमें समर्थ हैं । अतएव मेरा मनोरथ शीघ्र पूर्ण कीजिये । नहीं तो जैसे मैंने देवताओंको शाप दिया है, वैसे ही आपको भी शाप दे दूँगी ।’ ॥ २९ ॥ ज्योतिष्मतीके इस प्रकार कहनेपर ब्रह्माजी शापके भयसे डर गये और क्षणभर विचार करनेके बाद बोले—‘हे राजकुमारी ! तुम आनर्त देशके राजा रेवतके यहाँ कन्या बनो । वे राजा कुशस्थलीमें विद्यमान हैं । इससे इसी जन्ममें तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो जायगा । किसी कारणसे सत्ताईस चतुर्युगीका समय एक घड़ीके समान बीत जायगा ।’ ज्योतिष्मतीको इस प्रकार वर देकर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्धान हो गये ॥३०॥ तदनन्तर ज्योतिष्मतीने आनर्त देशमें कुशस्थलीके राजा रेवतकी पत्नीसे जन्म धारण किया । उस समय उसका नाम रेवती रक्खा गया । वह रूप, गुण और उदारतासे सुशोभित, नूतन कमलके समान नेत्रवाली रेवती विवाहके योग्य हो गयी ॥ ३१ ॥ एक दिन राजा रेवत अन्तःपुरमें अपनी भार्याके साथ बैठे थे । उन्होंने स्नेहवश कन्यासे कहा—‘तुम कैसा वर चाहती हो, बताओ ।’ यह सुनकर उसी समय रेवतीने कहा—‘जो सबसे बलवान् हों, वे ही मेरे पति हों’ ॥ ३२ ॥ यह सुनकर राजा रेवत कन्याको लेकर, अपनी भार्याके साथ दीर्घायु तथा बलवान् वरकी खोजके लिये रथपर सवार हो सभी लोकोंको लाँघते हुए ब्रह्मलोक गये ॥ ३३ ॥ वहाँ घड़ीभर ठहरे । इतनेमें ही पृथ्वीलोकके सत्ताईस चतुर्युगीका समय पूरा हो गया । महान्तने नागलक्ष्मीसे कहा—‘हे रंभोर ! वह रेवती अब भी ब्रह्मलोकमें ही है । तुम उसकी देहमें प्रवेश कर जाओ और आवेशावतारिणी बनो । तदनन्तर द्वारकामें जाकर मेरे साथ आनन्दका उपभोग करना’ ॥ ३४ ॥ प्राङ्बिपाक मुनि बोले—नागलक्ष्मीने महान्तके इन वचनोंको सुनकर अपने स्वामी भगवान् संकर्षणकी आज्ञा ली और ब्रह्मलोकमें जाकर रेवतीके विग्रहमें प्रविष्ट हो गयी ॥३५॥ हे कौरवेन्द्र दुर्योधन ! तदनन्तर भगवान् संकर्षण पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये सर्वलोकनमस्कृत गोलोकधामसे पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए । यही भगवान् बलभद्रजीका आगमन-वृत्तान्त है । मैंने यह तुमको सुनाया है । यह समस्त पापोंका नाश करनेवाला और परम मङ्गलमय है । हे युवराज ! अब आगे तुम क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ३६ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखण्डे ‘प्रियंवदा’भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

(श्रीबलराम और श्रीकृष्णका जन्म)

दुर्योधन उवाच

मुनीन्द्राहो अहं धन्योऽस्मि पुरा संकर्षणस्य भक्तोऽस्मि त्वया स्मारितो भगवतो
वासुदेवस्य सप्रभावं माहात्म्यं परमाद्भुतं श्रुतमत्रावतारौ भूत्वा भूम्यां रामकृष्णौ पितुः
पुरात्कथं ब्रजे गतवन्तौ ब्रजवासिभिर्न ज्ञातौ कथमभूतां च तदुच्यताम् ॥ १ ॥

प्राङ्विपाक उवाच

अथैकदा मथुरायां यदुपुष्यामुग्रसेनाग्रजो देवको देवकीं सुतां वसुदेवाय ददावथ
वरवध्वोः प्रयाणकाले कंस उग्रसेनात्मजस्तयोः स्यन्दनं नोदयामास ॥ २ ॥ तदैव देववाणी
कंसमाह । रे यां वहसेऽस्याश्चाष्टमो गर्भो हि त्वां हनिष्यतीति श्रुत्वा स महासुरः कालनेमिसुतः
कंसः खड्गपाणिर्भगिनीं हंतुं प्रवृत्तः ॥ ३ ॥ तदैव वसुदेवस्तं बोधयित्वा प्राहैनां मा मारयास्याः
पुत्रान्समर्पयिष्ये यतस्ते भयं जातं ममापि । इति श्रुत्वा तद्वाक्यसारवित्कंसस्तौ कारागारे
कारयित्वा निश्चिन्तोऽप्यभवत् ॥ ४ ॥ अथ देवक्याः प्रथमं जातं पुत्रं कंसाय वसुदेवः प्रददौ । तं
सत्यवादिनं ज्ञात्वा कंसोऽर्भकं न जघान ॥ ५ ॥ अंकानां वामतो गतिस्तथा देवानां तस्मादयं वा
शत्रुः सर्वे यादवा देवाः संति तव वधमिच्छन्तीति नारदवाक्यात्पुनर्जातं जातमपि निर्जघान ॥ ६ ॥
अथ कंसमयात्पलायितानां यदूनां महान्कष्टो बभूव । अथ सप्तमो गर्भो देवक्या भगवाननन्तो
ह्यभवत् । तत्तेजः श्रीकृष्णाज्ञया योगमाया देवक्युदरात्संनिकृष्य वसुदेवस्य भार्यायां कंसमयाद्गो-
कुलस्थितायां रोहिण्यामर्पयितुमाजगाम ॥ ७ ॥ तत्रैते श्लोकाः—

दुर्योधनने कहा—हे मुनिराज ! पूर्वजन्ममें मैं भगवान् संकर्षणका भक्त था, अतः मैं धन्य हूँ । आपने मुझे यह स्मरण करा दिया । साथ ही भगवान् वासुदेवकी प्रभावयुक्त परम अद्भुत महिमा भी आपने सुनायी । अब यह बतलानेकी कृपा कीजिये कि भगवान् बलराम और श्रीकृष्णचन्द्रने पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर अपने पिताकी नगरी मथुरासे ब्रजमें कैसे गमन किया और ब्रजवासियोंमें वे गुप्तरूपसे किस प्रकार रहे ॥ १ ॥ प्राङ्विपाक मुनि बोले—यादवोंकी पुरी मथुरामें राजा उग्रसेन थे । एक समय उनके बड़े भाई देवककी कन्या देवकीसे वसुदेवजीका विवाह हुआ । विवाहके उपरान्त वर-वधूकी विदाईके समय उग्रसेन-नन्दन कंस स्वयं वसुदेव-देवकीका रथ चलाने लगा ॥ २ ॥ उसी समय आकाशवाणी हुई—‘अरे निर्बोध ! तू जिसका रथ चला रहा है, उसीका आठवाँ गर्भ तेरा विनाश करेगा ।’ यह सुनते ही कालनेमि-तनय महान् दैत्य कंस हाथमें तलवार लेकर बहिन देवकीका वध करनेको तैयार हो गया ॥ ३ ॥ उसी क्षण वसुदेवजीने कंसको समझाकर कहा कि ‘तुम इसका वध मत करो । जिनसे तुमको और मुझको भी भय हो रहा है, देवकीके गर्भसे उत्पन्न वे जितने पुत्र होंगे, मैं सबको लाकर तुम्हें दे दूँगा ।’ वसुदेवजीकी बातपर विश्वास करके कंसने देवकी तथा वसुदेव दोनोंको-कारागारमें बंद करवा दिया और वह निश्चिन्त हो गया ॥ ४ ॥ तदनन्तर देवकीके पहला पुत्र उत्पन्न हुआ । वसुदेवजीने उसे तुरन्त लाकर कंसको दे दिया । कंसने समझा, वसुदेवजी बड़े सत्यवादी हैं । अतएव उसने लड़केका वध नहीं किया ॥ ५ ॥ इसके उपरान्त उसके यहाँ नारदजी पधारें और उन्होंने कहा—‘जैसे अङ्गोंकी वाम गति होती है, वैसे ही देवताओंकी चाल भी उलटी होती है । सम्भव है, इधर-उधरसे गिननेपर यही लड़का आठवाँ माना जाय और तुम्हारा शत्रु बने । विशेष बात तो यह है कि सारे यादवोंके रूपमें देवता ही अवतीर्ण हुए हैं और वे सभी तुम्हारा वध चाहते हैं ।’ नारदजीसे इस प्रकारकी बात सुनी, तबसे कंस देवकीसे उत्पन्न प्रत्येक लड़केको मारने लगा ॥ ६ ॥ उस समय कंसके भयसे यादवोंमें भगदड़ मच गयी और वे महान् कष्टोंका अनुभव करने लगे । तदनन्तर देवकीके सातवें गर्भमें भगवान् अनन्तका आगमन हुआ । वसुदेवजीकी एक दूसरी पत्नी रोहिणी कंसके भयसे नन्दबाबाके यहाँ

देवक्याः सप्तमे गर्भे हर्षशोकविवर्द्धने । व्रजं प्रणीते रोहिण्यामनन्ते योगमायया ॥

अहो गर्भः क्व विगत इत्युच्युर्माथुरा जनाः ॥ ८ ॥

अथ व्रजे पंचदिनेषु भाद्रे स्वातौ च षष्ठ्यां च सिते बुधे च ।

उच्चैर्ग्रहैः पंचमिरावृते च लग्ने तुलाख्ये दिनमध्यदेशे ॥ ९ ॥

सुरेषु वर्षत्सु च पुष्पवर्षं घनेषु मुंचत्सु च वारिविदून् ।

वभूव देवो वसुदेवपत्न्यां विभासयन्नंदगृहं स्वभासा ॥ १० ॥

नंदोऽपि कुर्वञ्छिशुजातकर्म ददौ द्विजेभ्यो नियुतं गवां च ।

गोपान्समाहूय सुगायकानां रावैर्महामंगलमाततान ॥ ११ ॥

अथाष्टमो देवक्याः परिपूर्णतमो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रोऽवततार । तदैव तदाज्ञया निशीथे तं ग्रंथे निधाय नंदपत्न्यां जातायां योगनिद्रायां संसृप्ते जगति सति यमुनामुत्तीय महावनमेत्य यशोदाशयने सुतं निधाय तां सुतामादाय पुनर्वसुदेवो गृहानाययौ ॥ १२ ॥ अथ कारागारे बालध्वनिं श्रुत्वा शत्रुभीतः कंसः समागत्य जातमात्रां कन्यां गृहीत्वा शिलापट्टे पातयामास ॥ १३ ॥ तदैव तद्वस्तात्समुत्पत्त्यांबरे योगनिद्रा भूत्वा सिद्धचारणगंधर्वविद्याधरमुनिगणैः स्तूयमाना कंसमिदमाह—हे खल तव पूर्वशत्रुर्यत्र क्व वा जातो वृथा देवकीवसुदेवौ दीनौ दुनोषीत्युक्त्वा सा विन्ध्याचलं जगाम ॥ १४ ॥ इत्युक्तो विस्मितः कंसो देवकी वसुदेवं च विमुच्य पूतनादीन् दैत्यान्समाहूय चानिर्दशाभिर्दशान्वालान्हंतुमाज्ञां चकार तेऽपि तथा चक्रुः ॥ १५ ॥

गोकुलमें रहा करती थी । भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर योगमाया भगवान् अनन्तको देवकीके उदरसे खींचकर वसुदेव-पत्नी रोहिणीके गर्भमें स्थापित करनेको तैयार हो गयीं ॥ ७ ॥ यहाँ ये श्लोक हैं— देवकीका सातवाँ गर्भ एक ही साथ हर्ष और शोक बढ़ानेवाला था । योगमायाने उसे व्रजमें ले जाकर रोहिणीके गर्भमें स्थापित कर दिया । तब मथुराके लोगोंने कहा—‘अहो ! देवकीका गर्भ कहाँ चला गया ? बड़े आश्चर्यकी बात है ॥ ८ ॥ उसके पाँच दिन बाद भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको, जो स्वाती नक्षत्र और बुधवारसे युक्त थी, मध्याह्नके समय, तुला लग्नमें, जब पाँच ग्रह उच्चके होकर स्थित थे, व्रजमें वसुदेवपत्नी रोहिणीके गर्भसे अपने तेजके द्वारा नन्द-भवनको उद्भासित करते हुए महात्मा बलरामजी प्रकट हुए ॥ ९ ॥ उस समय मेघोंने जलबिन्दु बरसाये और देवताओंने पुष्पोंकी वृष्टि की ॥ १० ॥ नन्दजीने शिशुका जातकर्म-संस्कार करवाया । ब्राह्मणोंको दस लाख गौएँ दानमें दीं, फिर गोपोंको बुलाकर अच्छे-अच्छे गायकोंके संगीतके साथ महा-महोत्सव मनाया ॥ ११ ॥ तदनन्तर देवकीके आठवें गर्भसे अर्द्धरात्रिके समय परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अवतीर्ण हुए । इधर उसी समय नन्दरानी यशोदाजीके गर्भसे कन्याके रूपमें योगमाया प्रकट हुई । योगमायाके प्रभावसे सारा जगत् सो गया था । तब भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे वसुदेवजी श्रीकृष्णचन्द्रको लेकर यमुनाके उस पार वृन्दावनमें पहुँच गये और यशोदाके शयनागारमें जाकर उन्होंने यशोदाकी गोदमें बालक श्रीकृष्णको सुला दिया और कन्याको लेकर वे अपने स्थानपर लौट आये ॥ १२ ॥ इसके बाद कारागारमें बालककी रुदनध्वनि सुनायी पड़ी । शत्रुके भयसे डरा हुआ कंस तुरंत आ पहुँचा और उसने तत्काल उत्पन्न हुई उस कन्याको उठा लिया एवं उसे एक शिलापर पटक दिया ॥ १३ ॥ ठीक उसी समय कंसके हाथसे छूटकर कन्या बड़े जोरसे उछली और ऊपर आकाशमें जाकर योगमायाके रूपमें परिणत हो गयी । सिद्ध, चारण, गन्धर्व और मुनिगण उनका स्तवन कर रहे थे । योगमायाने कंससे कहा—‘रे दुष्ट ! तेरा पूर्वका शत्रु कहीं उत्पन्न हो चुका है । तू इन बेचारे दीन वसुदेव-देवकीको व्यर्थ ही कष्ट दे रहा है ?’ इस प्रकार कहकर वे योगमाया विन्ध्याचलको चली गयीं ॥ १४ ॥ योगमायाके इन वचनोंसे कंस बड़े आश्चर्यमें पड़ गया । फिर उसने देवकी और वसुदेवको छोड़ दिया और पूतना आदि दैत्योंको बुलाकर आज्ञा दी—‘दस दिनके अंदर या बादमें पैदा हुए जितने भी बालक हों, सबको मार डालो ।’ कंसकी आज्ञा पाकर

अथ नंदोऽपि पुत्रजन्मोत्सवं श्रुत्वा महोत्सवं चकारैवं कंसभयमिषेण व्रजं प्राप्तौ रामकृष्णौ स्वमाय-
याऽलक्षितौ व्रजवासिनां कृपां कर्तुं जातमात्रावद्भुतां बाललीलां चक्रतुः । कौरवेन्द्र भूयः
श्रोतुमिच्छसि किम् ॥ १६ ॥

इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखंडे श्रीबलभद्रश्रीकृष्णजन्मोत्सवो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

(प्राड्विपाक मुनिके द्वारा श्रीराम-कृष्णकी व्रजलीलाका वर्णन)

दुर्योधन उवाच

मुनीन्द्र रामोऽनंतोऽनंतलीलः श्रीकृष्णोऽपि च भूम्यां भूत्वा रराज । तस्य संक्षेपेण
चरित्रं वद । व्रजे किं मथुरायां किं द्वारकायां किमत्र किमन्यत्र किं चकार ॥ १ ॥

प्राड्विपाक उवाच

अथ ह वाव श्रीकृष्णो जातमात्रोऽद्भुतां लीलां पूतनामोक्षशकटासुरवृणावर्तवधयुतां
विश्वरूपदर्शनदधिकौर्ग्यब्रह्मांडदर्शनयमलार्जुनद्रुमखंडभंगादिसंयुक्तां दुर्वाससो मायादर्शनवैभवां
श्रीमद्गर्गाचार्यवर्णितराधाकृष्णनामौदार्यमाहात्म्ययुक्तां सुरज्येष्ठकारितवृषभानुवरनंदिनीविवाह-
रासमंडलकथामंडितां चकार ॥ २ ॥ ततः श्रीवृंदावनागमने सति वत्सासुरबकासुराद्यसुराणां वधं
कृत्वा गोपालैः सह गोचारणे वृंदावनादिवनेषु विचचार ॥ ३ ॥ अथ तालवने धेनुकासुरं
खरस्वनं स्वपद्मं ताडयंतं भुजदंडाभ्यां गृहीत्वा महाबलो बलदेवस्तालवृक्षे तं पातयित्वा
पुनरापतंतं भूयुष्टे पोथयामास । मूर्च्छितो भग्नमस्तकः सद्यस्तन्मुष्टिप्रहारेण निधनं जगाम ॥ ४ ॥
अथ श्रीकृष्णः कालियदमनदावाग्निपानादीनि चरित्राणि कृत्वा श्रीराधाप्रेमप्रकाशप्रीतिपरीक्षण-

दैत्यगण बालकोंका वध करने लगे ॥ १५ ॥ इधर नन्दने भी पुत्रजन्म सुनकर महान् उत्सव मनानेकी
योजना की । हे कुरुराज ! इस प्रकार कंसके भयके बहाने भगवान् बलराम और श्रीकृष्ण व्रजमें पधारे ।
वे अपनी मायासे ही वहाँ गुप्तरूपमें रहे और व्रजवासियोंपर कृपा करनेके लिये व्रजमें प्रकट होते ही विविध
प्रकारकी अद्भुत बाल-लीला करने लगे । हे कौरवेन्द्र ! अब तुम क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १६ ॥ इति
श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दुर्योधनने पूछा—हे मुनिराज ! भगवान् अनन्त श्रीवलरामजी और अनन्तलीलाधारी भगवान्
श्रीकृष्णने भूमण्डलपर अवतार लेकर विचरण किया । अब संक्षेपमें यह बतानेकी कृपा कांजिए कि व्रजमें,
मथुरामें, द्वारकामें और अन्यत्र उन्होंने क्या-क्या लीलाएँ कीं ? ॥ १ ॥ प्राड्विपाक मुनिने उत्तर दिया—
हे दुर्योधन ! भगवान् श्रीकृष्णने प्रकट होते ही अद्भुत लीला आरम्भ कर दी । उन्होंने पूतनाको मोक्ष प्रदान
किया, शकटासुर और वृणावर्तका वध किया, (माताको) विश्वरूप दिखाया, दधिकी चोरी की, अपने
श्रीमुखमें ब्रह्माण्डके दर्शन करवाये, यमलार्जुनवृक्षोंको उखाड़ा और दुर्वासाजीको मायाका प्रभाव दिखलाया ।
श्रीगर्गाचार्यजीके द्वारा राधाकृष्ण नामकी सुन्दरता और महिमाका वर्णन कराया । ब्रह्माजीने वृषभानुराज-
नन्दिनी राधिकाके साथ भाण्डौर वनके रासमण्डलमें श्रीकृष्णका विवाह करवाया ॥ २ ॥ तत्पश्चात् श्रीकृष्ण और
बलराम दोनोंने वृन्दावन जाकर वत्सासुर और बकासुर आदि दानवोंका संहार किया, गोपालोंके साथ गौ
चराते हुए वृन्दावनमें विचरण किया ॥ ३ ॥ फिर तालवनमें गधेके समान रेंकनेवाला जो धेनुकासुर दैत्य
रहता था, उसने अपनी दुलत्ती चलाकर बलरामजीको चोट पहुँचानेकी चेष्टा की । तब शक्तिशाली बलदेव-
जीने दोनों हाथोंसे उसे पकड़कर ताड़के वृक्षपर दे मारा । वह फिर उठकर सामने आया तो बलरामजीने
उसे पुनः जमीनपर दे पटका । फलतः उसका सिर फट गया और वह मूर्च्छित हो गया । तब बलरामजीने

वृन्दावनविहारदानमानलीलाहावभावयुक्तां शङ्खचूडवधादिशिवासुर्युपाख्यानकथां कथनीयां लीलां चकार ॥ ५ ॥ अथैकदा गिरिराजपूजने कृते भग्नवलिरिन्द्रः सांवर्तमेघमण्डलैर्ब्रजमण्डले ववर्ष । तदा भगवान् भयातुरं ब्रजं वीक्ष्य मामैष्टेत्यभयं दत्त्वा एककरेण गिरिराजं समुत्पाद्योच्छिर्लींघ्रं बाल इव दधार ह वाव सप्तवर्षीयः सप्ताहं सुस्थिरं स्थितः ॥ ६ ॥ अथेन्द्रः सर्वदेवगणैर्भयभीतः श्रीकृष्णचन्द्र-श्रीमत्पादारविन्दद्वयं प्रणम्य किरीटेन नतः स्तुत्वा तदभिषेकं कृत्वा महेंद्रराट् सुरभिसुरमुनिभिः सार्द्धं स्वर्गं जगाम ॥ ७ ॥ तदद्भुतं गोवर्द्धनोद्धारणं दृष्ट्वा गोपा विसिस्म्युस्तेभ्यो मुक्तारोपणादिवैभवं संदर्शयामासुः ॥ ८ ॥ अथ श्रुतिरूपर्विरूपा मैथिला कौशलाज्योध्यापुरवासिनी यज्ञसीता पुलिन्दकारमावैकुण्ठश्चेतद्वीपोर्ध्ववैकुण्ठाजितपदश्रीलोकाचलवासिनी सखी दिव्यादिव्यात्रिगुणवृत्तिभूमिगोपीजनदेवश्रीजालंधरीवर्हिष्मतीपुरंध्रयप्सरःसुतलवासिनीनागेन्द्रकन्यादिभिर्गोपीयूथैः पृथक् पृथक् श्रीकृष्णो ब्रजमण्डले रासमंडलं चकार ॥ ९ ॥ एकदा गाश्चारयन्सवलः श्रीकृष्णो गोपाल-बालैर्भांडीरे बाललीलां बाह्यबाहकलक्षणां कृतवान् । तत्र प्रलम्बो गोपरूपी दैत्यो विहारे विहारविजयं रामं स्वपृष्ठे निधायोवाह ॥ १० ॥ अथ ह वाव मथुरां गंतुमुद्यतं गिरिन्द्रस्य सदृशदेहं तमुद्गीक्ष्य पृष्ठगतो बलदेवो महाबलो रुषा मुष्टिना शिरसि महाद्रिं यथाद्रिभित्ताड तेन सद्यो विशीर्णमस्तको वज्रहतो गिरिरिव स दैत्यो भूम्यां निपपात ॥ ११ ॥ एकदा ग्रीष्मे मुंजारण्यगतासु गोषु गोपालेषु च सत्सु सद्यः संभूतो दावाग्निः प्रलयाग्निरिव ववृधे । ततः कृष्णरामेति वदतः पाहि पाहीति

श्रीघ्न ही उसको एक मुक्का मारा, जिससे उसके प्राण-मखेरू उड़ गये ॥ ४ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णने कालिया नागका दमन तथा दावाग्नि-मान आदि लीलाएँ कीं, फिर श्रीराधिकाजीके प्रति प्रेम प्रकाश करके उनके प्रेमकी परीक्षा ली, वृन्दावनमें विहार किया, हाव-भावयुक्त दानलीला मानलीला, शङ्खचूडादिका वध और शिवासुरि-उपाख्यान इत्यादिके प्रवचनकी बहुत-सी लीलाएँ कीं ॥ ५ ॥ तदनन्तर एक समय गोवर्धन-पूजा की गयी । इन्द्रने यज्ञभागसे वञ्चित होनेपर कुपित होकर सांवर्तक आदि मेघोंके द्वारा ब्रजमण्डलपर घोर वर्षा आरम्भ करा दी । इससे सारे ब्रजवासी भयसे व्याकुल हो गये । भगवान् श्रीकृष्णने उनको आतुर देखकर—‘डरो मत’ यों कहकर अभयदान दिया । फिर उन्होंने गिरिराज गोवर्धनको उखाड़कर, जैसे बालक छत्रक (कठफुल्ला) को उठा लेता है, ठीक वैसे ही गोवर्धनको अपने एक हाथपर उठाये और बिना हिले-डुले खड़े रहे ॥ ६ ॥ तब तो सम्पूर्ण देवताओंके साथ इन्द्र भयभीत हो गये और उन्होंने अत्यन्त नम्रताके साथ मुकुट झुकाकर भगवान् श्रीकृष्णके मङ्गलमय युगल चरणोंमें प्रणाम किया । उनकी स्तुति और अभिषेक किया । तदनन्तर कामधेनु सुरभि, देवता तथा मुनियोंके साथ वे स्वर्गको चले गये ॥ ७ ॥ गोवर्धन-धारणकी इस अद्भुत लीलाको देखकर सभी गोप अत्यन्त विस्मित हो गये । फिर श्रीकृष्णने खेतमें मोती आदिके बीज बोकर मोती उपजानेका चमत्कारमय ऐश्वर्य गोपोंको दिखलाया ॥ ८ ॥ तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने श्रुतिरूपा, ऋषिरूपा, मैथिली, कोसलदेशनिवासिनी, अतोध्यावासिनी, यज्ञसीता, पुलिन्दका, रमावैकुण्ठवासिनी, श्वेतद्वीप-निवासिनी, ऊर्ध्ववैकुण्ठवासिनी, अजितपदवासिनी, श्रीलोकाचलनिवासिनी, दिव्या, अदिव्या, त्रिगुणवृत्ति, भूमि, गोपी, देवश्री, जालंधरी, बार्हिष्मती, पुरन्ध्री, अप्सरा, सुतलवासिनी और नागेन्द्रकन्या आदि गोपी-यूथोंके साथ पृथक्-पृथक् रास-मण्डलकी रचना की ॥ ९ ॥ एक समय श्रीबलरामजीके साथ श्रीकृष्णचन्द्र भाण्डीरवनमें गोपबालकोंके साथ गौएँ चराने गये । वहाँ जाकर एक दूसरेको ढोने और ढोवानेका खेल करने लगे । उस समय वहाँ प्रलम्बासुर नामका एक दैत्य गोप-बालकका वेश धारण करके खेलमें शामिल हो गया, बलरामजी उसपर विजयी हुए । अतः उन्हें पीठपर चढ़ाकर वह चलने लगा ॥ १० ॥ उन्हें लेकर वह गिरिराजके समान विशाल देहवाला असुर मथुराकी ओर जाना चाहता था, किन्तु उस असुरकी पीठ पर सवार अमित पराक्रमी श्रीबलदेवजीने, रोषमें भरकर जैसे इन्द्र किसी पर्वतपर प्रहार करे, वैसे ही उसके मस्तकपर मुष्टि-प्रहार किया । उस प्रहारसे वज्रकी चोट खाये हुए पहाड़की तरह उस असुरका सिर टूक-टूक हो गया और उसी क्षण वह भूमिपर गिर पड़ा ॥ ११ ॥ एक समय गरमीके दिनोंमें सभी गौएँ और गोपाल किसी

गोपालान् शरणं गतान् वीक्ष्य लोचनानि निमीलयताशु मामैष्टेयुक्त्वा तमग्निमपिबत् ॥१२॥
 अथ ह वाव भांडीराद्यमुनातीरे गोपालगोगणं नीत्वा प्राप्तोऽभूत्तत्राशोकवने यज्ञपत्न्यानीतं भोजनं
 कृतवान् ॥१३॥ अथ चैकदा व्रजे नन्दराजे वरुणग्रस्ते वरुणस्य मानभंगं कृत्वा नन्दादिभ्यो गोपेभ्योऽपि
 सर्वलोकनमस्कृतं वैकुण्ठं दर्शयामास ॥१४॥ अथांबिकावने श्रीकृष्णः सरस्वतीतीरे नन्दं ग्रसंतं
 सुदर्शनं सर्पं किलाखिललोकपालवन्दितेन श्रीमच्चरणारविंदेन स्पृष्ट्वा सर्पदेहात्तं मोचयामास ॥१५॥
 अथ सबलः श्रीकृष्णो निलायनक्रीडायां चोररूपं व्योमासुरं कंससखं भुजदंडाभ्यां गृहीत्वा दश-
 दिशासु भ्रामयन् भूपृष्ठे पोथयामास ॥१६॥ तथाऽरिष्टासुरं कंसप्रणोदितं वृषरूपं शृङ्गयोः समुद्धृत्य
 पातयामास । अथ नारदमुखाच्छ्रुतश्रीकृष्णकथेन कंसेन प्रणोदितं केशिनं श्रीकृष्णस्तन्मुखे स्वभुज-
 प्रवेशेन संमर्देंत्थमनेका लीलाः सहसा व्रजमंडले बलेन कारयामास ॥१७॥

इति श्रीमद्भागवतसंहितायां बलभद्रखण्डे प्राड्विपाकदुर्योधनसंवादे रामकृष्णव्रजलीलावर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥



अथ सप्तमोऽध्यायः

(श्रीराम-कृष्णकां मथुरा-लीलाका वर्णन)

प्राड्विपाक उवाच

अथ मथुरायां रामकृष्णौ यानि चरित्राणि कृतवन्तौ तानि संक्षेपेण युवराज शृणुतात् । अथ
 कालनेमिसुतेन कंसेन प्रयुक्तोऽक्रूरो रामकृष्णौ समानेतुं व्रजमण्डलमागतवान् ॥ १ ॥ तत्र गंतु-

सूँजके वनमें जा पहुँचे । इतनेमें ही वहाँ बड़े जोरकी प्रलयाग्निके समान दावाग्नि जल उठी और वह चारों
 तरफ फैल गयी । तब गोपालगण 'हे राम ! हे कृष्ण ! हम शरणागत गोपालोंकी रक्षा करो ।' यों पुकार उठे ।
 भगवान् ने तुरंत कहा—'डरो मत । तुम सब अपनी-अपनी आँखें मूँद लो ।' यों कहकर भगवान् उस भीषण
 दावाग्निको पी गये ॥ १२ ॥ तदनन्तर गोपाल और गायोंके साथ भगवान् श्रीकृष्ण भाण्डौर वनसे
 यमुनाके तटपर पधारे और अशोकवनमें यज्ञदीक्षित द्विजोंकी पत्नियोंके द्वारा लाया हुआ भोजन ग्रहण
 किया ॥ १३ ॥ इसके बाद एक दिन व्रजमें नन्दबाबाको वरुण देवताने अपहरण कर लिया, तब भगवान् ने
 वरुणका मान-भङ्ग करके नन्द आदि गोपोंको सम्पूर्ण लोकोंके द्वारा नमस्कृत वैकुण्ठके दर्शन कराये ॥ १४ ॥
 इसके अनन्तर एक दिन अम्बिका-काननमें सरस्वती नदीके तटपर सुदर्शन नामक सर्प नन्दजीको
 निगलने लगा । तब भगवान् श्रीकृष्णने अखिल लोकपालोंके द्वारा वन्दनीय अपने चरणकमलका उसको
 स्पर्श कराया । चरण-स्पर्श प्राप्त होते ही वह सर्प-शरीरसे मुक्त हो गया ॥ १५ ॥ एक समय
 श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ गोप-बालकोंको लेकर आँखमिचौनी और चोर-साहूकारका खेल खेल
 रहे थे । उसी समय कंसका सखा व्योमासुर चोरके रूपमें वहाँ आया । भगवान् श्रीकृष्णने अपनी प्रचण्ड
 दोनों भुजाओंसे उसे पकड़कर दसों दिशाओंमें घुमाते हुए पृथ्वीपर पटक दिया ॥ १६ ॥ इसी प्रकार
 कंसका भेजा हुआ अरिष्टासुर बेलके रूपमें आया । भगवान् ने उसके दोनों सोंग पकड़कर उसे भी घराशायी
 कर दिया । तब नारदजीने जाकर कंसको श्रीकृष्णकी ये सारी लीलाएँ कह सुनायीं । सो सुनकर कंसने
 केशीको भेजा । भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसके मुँहमें अपनी भुजा प्रवेश कराकर उसके मर्मको भेद डाला ।
 श्रीकृष्णने इस प्रकार बलरामजीके साथ व्रजमण्डलमें अनेक अद्भुत लीलाओंकी रचना की ॥ १७ ॥ इति
 श्रीमद्भागवतसंहितायां बलभद्रखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

श्रीप्राड्विपाक मुनि बोले—हे युवराज दुर्योधन ! भगवान् बलरामजी और श्रीकृष्णचन्द्रने मथुरामें
 जो-जो लीलाएँ कीं, उनका संक्षेपमें वर्णन कर रहा हूँ; सुनो । कुछ समयके पश्चात् कालनेमिकुमार कंसने
 बलराम और श्रीकृष्णको बुलानेके लिये अक्रूरजीको भेजा । अक्रूरजी व्रजमें पधारे ॥ १ ॥ श्रीकृष्णको मथुरा

मन्युदितं नन्दराजस्रजं वीक्ष्य गोपीगणा विरहातुरा बभूवुः । पृथक् पृथक् तानाश्वास्य भगवान्धमारुह्य
सबलोऽक्रूरेण यदुपुरीं गच्छन्मार्गे यमुनाजलेपुश्चाफल्काय स्वधाम दर्शयामास ॥ २ ॥ अथ पूर्वाह्ने
मथुरोपवने स्थित्वाऽपराह्णे मथुरापुरीं सर्वतो ददर्श । अथ रामकृष्णौ देवौ पुराणौ पुरुषौ लीलया
नटवरवेषधरौ दिदृक्षवः पौराश्च पुरंध्रयः कर्माणि त्यक्त्वा व्यधावन्नापगा उदधिमिव तौ कोटिकं-
दर्पहरं सौंदर्यं स्वं संदर्शयन्तौ चेतो हरन्तौ विचेरतुः स्म ॥ ३ ॥ अथ भगवान्नाजमार्गे तथा-
चितवस्त्राप्यदास्यंतं रजकं रंगकारं कराग्रेण सर्वेषां पश्यतां निर्जघान तथा वस्त्रवेषं कुर्वते वायकाय
स्वसारूप्यं प्रादात् ॥ ४ ॥ ततः सैरंध्रीं कुब्जां त्रिवक्रां चंदनादानमियेणज्जीं त्रिलोकसुन्दरीं
कृत्वा ततो वैश्यजनान्समाभाष्य मथुरार्भकैः सहितो धनुःस्थले विवेश । अथ हेमचित्रं सप्ततालकं
सहस्रशः पुरुषैर्नंतुमशक्यं बृहद्भारं चाष्टधातुमयलक्षभारसमं यत्तमंडपधृतं कंसाय भार्गवेण दत्तं
साक्षाच्छेषमिव कुंडलीभूतं कोदंडं वैष्णवं वीक्ष्य प्रसन्नाददे ॥ ५ ॥ तदैव पश्यतां लोकानां
सज्यं कृत्वा लीलयाऽऽकृष्य कर्णपर्यन्तं दोर्दंडाभ्यां यथेक्षुदंडं वेतंडः शुंडादंडेन कोदंडं मध्यतो
बभंज ॥ ६ ॥ भज्यमानधनुषपट्टाङ्गरेण सप्तलोकविलैः सह सर्वं ब्रह्मांडं ननाद । ततस्तारा दिग्गजाश्च
विचेलुः । सर्वं भूखंडमंडलं स्थालीव घटिकाद्वयमात्रं प्रचकंपे ॥ ७ ॥ अथापराह्णे रंगभूमिद्वारि
द्विपं कुवलयापीडं समेत्य क्षणं बाललीलया युद्धं कृत्वा शुण्डादंडे संगृहीत्वा त्वितस्ततो भ्रामयित्वा
बालकः कर्मण्डलुमिव भूपृष्ठे तं पातयामास ॥ ८ ॥ तमित्थं निहत्य रंगभूमौ कंससभायां

जानेके लिये प्रस्तुत देखकर गोपियां विरहसे आतुर हो गयीं । भगवान्ने उन सबको अलग-अलग बुलाकर
आश्वासन दिया । फिर बलरामजीसहित स्वयं रथपर सवार होकर अक्रूरजीके साथ मथुराकी ओर चले ।
जाते समय रास्तेमें यमुनाजी पड़ीं । उसके जलमें भगवान्ने अक्रूरको अपने तेज या धामके दर्शन कराये ॥ २ ॥
तदनन्तर पूर्वाह्णके समय वे मथुरामें जा पहुँचे और अपराह्णकालतक मथुरापुरीकी सब ओरसे देखते रहे ।
लीलारूपमें मनुष्यका वेष धारण किये हुए श्रीराम । कृष्ण साक्षात् पुराण-पुरुष हैं । मथुरा नगरीके सभी
नर-नारियोंके मनमें उनके दर्शनका आनन्द प्राप्त करनेकी अभिलाषा उत्पन्न हो गयी और वे अपना सारा
काम-धाम छोड़कर, जैसे नदियां समुद्रकी ओर दौड़ती हैं, वैसे ही उनकी ओर दौड़ पड़े । कोटि-कोटि काम-
देवोंका दर्प चूर्ण करनेवाले भगवान् राम-कृष्णने अपना सौन्दर्य सबको दिखलाया और उन सबका मन
हरण करते हुए वे स्वेच्छासे विचरण करने लगे ॥ ३ ॥ तदनन्तर राजमार्गमें भगवान्ने धोबी और रंगरेजसे
कपड़ोंकी याचना की; परंतु उन्होंने जब वस्त्र नहीं दिये, तब सबके देखते-देखते ही हाथोंसे प्रहार करके धोबी
और रंगरेज दोनोंको उस जीवनसे मुक्त कर दिया । तदनन्तर भगवान्को एक दर्जी मिला । उसने वस्त्रोंके
द्वारा उनको सजाया और भगवान्ने उसे अपना सारूप्य प्रदान कर दिया ॥ ४ ॥ फिर कुब्जा सैरंध्री
मिली । वह तीन जगहसे टेढ़ी थी । चन्दन ग्रहण करनेके बहाने भगवान्ने उसको सीधी कर दिया । वह तीनों
लोकोंमें सुन्दरी बन गयी । तत्पश्चात् वहाँके वैश्य व्यापारियोंसे बातचीत की और कुछ बच्चोंको साथ लेकर,
जहाँ कंसका धनुष रखा था, उस स्थानपर जा पहुँचे । वह धनुष स्वर्णसे मण्डित था और सात ताड़
वृक्षोंके बराबर उसकी लंबाई थी । हजारों पुरुषोंके द्वारा भी वह उठाया नहीं जा सकता था । कंसने वह धनुष
अष्टधातुसे बना हुआ था, अत्यन्त भारी था और उसका बोझ लाख भारके समान था । कंसने वह धनुष
परशुरामजीसे प्राप्त किया था । वह वैष्णव (भगवान् विष्णुसे सम्बन्ध रखनेवाला) धनुष साक्षात् भगवान्
क्षेत्रके समान कुण्डलाकार था । भगवान् श्रीकृष्णने उसे देखा और बलपूर्वक उठा लिया ॥ ५ ॥ फिर सब
लोगोंके देखते-देखते ही लीलापूर्वक उस धनुषको चढ़ाया और कामतक तानकर ले गये । तदनन्तर दोनों
भुजाओंका सहारा लगाकर उसको बीचसे उसी प्रकार तोड़ डाला, जैसे हाथी अपनी सूँड़से गन्नेको तोड़ वेता
है ॥ ६ ॥ धनुषके टूटनेकी भयानक ध्वनिसे पातालसहित सप्तलोकमय सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा । सारे
और दिग्गजगण अपने स्थानसे विचलित हो चले । इतना ही नहीं, सारा भूमण्डल दो छड़ालक भालीकी
तरह काँपता रह गया ॥ ७ ॥ अपराह्णके समय रक्तशालाके द्वारपर कुवलयापीड हाथो दिखायी दिया ।

जनतायै यथाभावं दर्शनं दत्त्वा मल्लयुद्धं कृत्वा चाणूरमुष्टिककूटशलतोशलकान् कंसस्याग्रे सर्वेषां पश्यतां भूपृष्ठे रामकृष्णौ पातयामासतुः ॥ ९ ॥ अथ तत्कर्म वीक्ष्य दुर्वचनानि विकल्थमानस्य कंसस्य मधुसूदनः सहस्रोत्पत्य मञ्चं महोन्नतं समारोह ॥ १० ॥ ततः सत्वरं मृत्युमिवागतं वीक्ष्य मंचादुत्थाय तं निर्भर्त्सयन्नुन्मना द्रुतं कंसः खड्गचर्मणी जगृहे । हरिः सहसा चर्मासिसंयुक्तं कंसं सविषं फणीद्रमिव तुण्डविभागाभ्यां विराडिव दोर्दंडाभ्यां बलात्समग्रहीत् ॥ ११ ॥ अथ तार्क्ष्यतुण्डात्फणीव कंसो भुजबन्धाद्बलाद्विनिर्गत्य पतत्खड्गचर्मा पुनरुद्यतोऽभूत्पुनर्मंचे बलिनौ वेगान्मर्दयन्तौ शैले सिंहाविव शुशुभाते ॥ १२ ॥ ततो बलादुत्पतंतं कंसं शतहस्तमंवरं कृष्ण उत्पतन् इयेन इयेन इव तं समग्रहीत् । पुनर्गच्छंतं दैत्यपुंगवं प्रचण्डभुजदण्डाभ्यां गृहीतत्रैलोक्या-धार इतस्ततो आमयित्वा महांबरान्मंचोपरि पातयामास ॥ १३ ॥ ततस्तडित्पाताद्द्रुमखंड इव भग्नदंडो मंचो बभूव । स वज्रांगः पतितोऽपि किंचिद्व्याकुलः सहस्रोत्थाय महात्मना पुनर्युयुधे । पुनस्तं भुजदंडाभ्यां भगवान् गृहीत्वा मंचे क्षिप्त्वा हृदयमारुह्य तन्मौलिं गृहीत्वा सद्यः केशेषु गृह्य मंचाद्रंगोपरि पातयित्वा शैलाद्गंडशिलामिव तस्योपरिष्ठात्सनातनः सर्वाधारोऽनंतविक्रमो वेगात्स्वयं निपपात । तयोर्निपातेन निम्नीभूतं मूखंडमंडलं स्थालीव दंडत्रयं सहसा चकपे ॥ १४ ॥ अथ संपरेतं भोजराजं यदुराजो भूमिगतं नागेन्द्रं मृगेन्द्र इव सर्वेषां पश्यतां विचर्कष । तदैव भूभुजां

भगवान्ने उसके समीप जाकर बाललीलाके रूपमें क्षणभर उसके साथ युद्ध किया, तदनन्तर उसकी सूँड़को पकड़कर उसे इधर-उधर घुमाया और फिर वैसे ही जमीनपर पटक दिया, जैसे कोई बालक कमण्डलुको पटक दे ॥ ८ ॥ कुवलयापीड़ हाथीका इस प्रकार वध करके श्रीबलराम और कृष्णचन्द्र कंस-रचित रङ्गभूमिमें पहुँचे और उन्होंने वहाँपर बैठे हुए सभी लोगोंको उनके अपने-अपने भावके अनुसार यथायोग्य दर्शन दिया । फिर अखाड़में पहुँचकर मल्लयुद्धके लिये जा डटे और कंसके सामने सब लोगोंके देखते-देखते ही भगवान् बल-राम और कृष्णचन्द्रने चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशलको धराशायी कर दिया ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णके इन कार्योंको देखकर कंस दुर्वचनोंके द्वारा उनका तिरस्कार करने लगा । इसी बीच भगवान् श्रीकृष्ण कूदकर उस कटुभाषी कंसके अत्यन्त ऊँचे मञ्चपर चढ़ गये ॥ १० ॥ तुरंत मृत्युके समान श्रीकृष्णको सामने आया देखकर कंस मञ्चसे उठा और भगवान्की भर्त्सना करते हुए उसने उसी क्षण ढाल और तलवारको हाथमें उठा लिया । श्रीकृष्णने तुरंत ढाल-तलवार लिये हुए कंसको; जैसे गरुड अपनी चौंचसे विषधर सर्पको पकड़ ले, वैसे ही बलपूर्वक अपनी प्रचण्ड भुजाओंसे पकड़ लिया ॥ ११ ॥ पर गरुडकी चौंचसे जिस प्रकार सर्प छूटकर निकल भागे, उसी प्रकार कंस भगवान्के भुज-बन्धनसे निकल और ढाल-तलवार लेकर फिर लड़नेके लिये तैयार हो गया । भगवान् श्रीकृष्ण और कंस—दोनों मञ्चपर आ गये और वेगपूर्वक एक दूसरे-पर आक्रमण करते हुए वैसे ही सुशोभित हुए, जैसे पर्वतपर दो सिंह लड़ते हुए शोभित हों ॥ १२ ॥ तदनन्तर कंस उछलकर सौ हाथ ऊपर आकाशमें चला गया, तब भगवान् श्रीकृष्णने भी वैसे ही उछलकर बाजकी तरह उसे पकड़ लिया । कंस पुनः श्रीकृष्णके हाथोंसे छूटकर निकल भागा, तब त्रिलोकको धारण करनेवाले श्रीकृष्णने फिर अपने प्रचण्ड भुजदण्डोंसे उसको पकड़ लिया और इधर-उधर घुमाते हुए महाकाशसे मञ्चपर पटक दिया ॥ १३ ॥ जैसे विजली गिरनेसे वृक्ष टूट जाता है, उसी प्रकार कंसके गिरते ही मञ्चके खंभे टूट गये । वज्रके समान कठोर शरीरवाला कंस नीचे गिर पड़ा । एक बार उसे कुछ व्याकुलता हुई; परंतु वह फिर उठा और महात्मा श्रीकृष्णके साथ जूझने लगा । सहसा भगवान् श्रीकृष्णने अपनी भुजाओंसे पकड़कर उसे मञ्चपर पटक दिया और उसकी छातीपर चढ़ बैठे । तब उन्होंने उसके सिरको पकड़कर केश खींचते हुए, जैसे पर्वतसे कोई चट्टानको गिराये, वैसे ही उसे मञ्चसे नीचे अखाड़में गिरा दिया । तदनन्तर सबके आधारस्वरूप अनन्त-पराक्रमशाली सनातन पुरुष भगवान् कृष्ण स्वयं वेगपूर्वक मञ्चसे कूदकर कंसके ऊपर जा पहुँचे । इस प्रकार दोनोंके गिरनेसे पृथ्वी कुछ नीचे धँस गयी और सारा भूमण्डल तीन घड़ी-तक थालीकी तरह काँपता रह गया ॥ १४ ॥ कंसके प्राण निकल गये । सबके देखते-देखते ही जैसे भूमिपर

हाहाकार आसीदहो वैरभावेन यं भजन्कंसोऽपि तस्य सारूप्यं भृङ्गिणः क्रीटक इव जगाम ॥१५॥
ततः कंस मृतं सहसा वीक्ष्य समागतास्तस्यानुजान् खड्गचर्मधरान् दृष्ट्वा बलभद्रो मुद्गरं नीत्वा
सर्वतोऽभिजघान । तदा देवदुन्दुभ्यो नेदुर्जयध्वनिश्चाभूद्देवाः पुष्पैर्वृषुर्विद्याधर्यो ननुतुविद्याधरगंधर्व
किन्नरा जगुः ॥ १६ ॥ अथ सर्वानाश्वास्य पितरौ विमोक्ष्योग्रसेनाय राज्यं दत्त्वोपवीतं प्राप्य
संदीपनाद्विद्या अधीत्य तस्मै मृतं सुतं दक्षिणां दत्त्वा शंखं हत्वा मथुरामेत्य वसन् व्रजशांत्यै
चोद्धवं प्रेषयित्वा पुनः स्वयं व्रजं गत्वा राधायै गोपीभ्यश्च दर्शनं दत्त्वा रासमध्ये ऋभुमोक्षं
कृत्वा पुनर्मथुरायां माथुरेशो रराज । रामोऽपि कोलवधं कृत्वा तस्यां विराजेति तयोर्मथुरायां
सहस्रशः पवित्राणि चरित्राणि बभूवुः ॥ १७ ॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीबलभद्रखण्डे मथुरालीलावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

(श्रीराम-कृष्णकी द्वारकालीलाका वर्णन)

प्राङ्विपाक उवाच

अथ युवराज धार्तराष्ट्र तयोर्द्वारकालीलां संक्षेपेण शृणुतात् । ततः कंसस्य पारोक्ष्यं
सौहृदं कुर्वतं समागतं जरासंधं जित्वा द्वारकाख्यं समुद्रे दुर्गं निर्माय तत्रैकरात्रेण ज्ञातीन्स-
माधाय मुचुकुन्ददृशा कालं घातयित्वा पुनश्च रामकृष्णौ प्रवर्षणाद्रिमेत्य तस्माद्द्वारकायां
जग्मतुः ॥ १ ॥ अथ ब्रह्मलोकात्समागतो रैवतः सुतां रत्नयुतां विधिवद्बलशालिने बलभद्राय

पड़े हुए गजराजको सिंह खींच रहा हो, वैसे ही वे कंसके शरीरको घसीटने लगे । इससे राजाओंमें हाहाकार मच
गया । लोग कहने लगे—‘अहो ! कैसे आश्चर्यकी बात है कि वैरभावसे स्मरण करनेवाला कंस भी उन प्रभुके
सारूप्यको वैसे ही प्राप्त हो गया, जैसे कोड़ा भुङ्गीके रूपमें परिणत हो जाता है ॥ १५ ॥ कंसकी मृत्यु देखकर
उसके छोटे भाई तत्काल ढाल-तलवार लेकर वहाँ आ डटे । उनपर बलभद्रजीकी दृष्टि पड़ी और उन्होंने
मुद्गर उठाकर सब ओरसे प्रहार करते हुए सबको घराशायी कर दिया । तब देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज
उठीं । सर्वत्र जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी । देवताओंने पुष्पोंकी वर्षा की । विद्याधरियाँ नृत्य करने लगीं
और विद्याधर, गन्धर्व तथा किन्नर भगवान्का यशोगान करने लगे ॥ १६ ॥ तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने
सबको आश्वासन देकर माता-पिताको बन्धनमुक्त किया और उग्रसेनको राज्य सौंप दिया । फिर यज्ञोपवीत-
संस्कार सम्पन्न होनेपर सांदीपनि मुनिके समीप जाकर उन्होंने समस्त विद्याओंका अध्ययन किया । दक्षिणारूपमें
मरे हुए गुरुपुत्रोंको लाकर प्रदान किया और शङ्खासुरका वध किया । फिर वे मथुरामें आकर निवास करने
लगे । व्रजकी व्यथाको दूर करनेके लिये भगवान्ने उद्धवको वहाँ भेजा । फिर स्वयं वहाँ जाकर रासमण्डलमें
श्रीराधा और गोपियोंको अपने दर्शन कराये । रासमें ऋभु ऋषिको मुक्ति दी, फिर मथुरामें मथुरानरेशके
सदृश कार्य करते हुए विराजमान हुए । बलरामजीने भी कोलासुरका वध करके मथुरापुरीमें शुभागमन
किया । इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामकी हजारों-हजारों पवित्र और विचित्र लीलाएँ मथुरामें
सम्पन्न हुई ॥ १७ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखण्डे ‘प्रियंवदा’भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

प्राङ्विपाक मुनिने कहा—हे युवराज दुर्योधन ! अब भगवान् श्रीबलराम और श्रीकृष्णकी द्वारका-
लीलाओंको संक्षेपमें सुनो । हे धृतराष्ट्र-तनय ! जब कंसका देहावसान हो गया, तब उसके न रहनेपर भी उसके
साथ अन्तरङ्ग मैत्रीका निर्वाह करनेके लिये जरासंध आया । भगवान्ने उसपर विजय प्राप्त की । तदनन्तर
समुद्रके बीचमें द्वारका-दुर्गका निर्माण किया । फिर एक ही रात्रिमें अपने सारे बन्धु-बान्धवोंको वहाँ भेजकर
उनके रहनेकी व्यवस्था की । कालयवनके आनेपर मुचुकुन्दद्वारा उसका वध कराया । तदनन्तर बलरामजी

दत्त्वा तपः कर्तुं बदर्याख्यं वनं गतवान् ॥ २ ॥ अथ श्रीकृष्णः शत्रूणां पश्यतां कुंडिनपुरा-
 द्भुविमणीं जहार तथा जांबवतीं सत्यभामां कालिंदीं मित्रविदां नागिजितीं भद्रां लक्ष्मणां च
 भीमं हत्वा षोडशसहस्रं शतं च राजकन्या उवाह ॥ ३ ॥ राजन् भीष्मककन्यायां रुक्मिण्यां
 श्रीकृष्णस्य पुत्रः प्रथमं कामदेवावतारः पितृसमसुंदर आसीत् । तस्मादनिरुद्धः सुरज्येष्ठावता-
 रोऽभूत् ॥ ४ ॥ अथैकदोऽसेनराजसूयाध्वरे नागवल्लीं गृहीत्वा दिग्विजयार्थं निर्गतः प्रभुम्नो
 यादवैर्भ्रातृभिः सह जंबूद्वीपे नवखंडविजयं कुर्वन् कामदुघनदसमीपे वसंतमालतीपुराधीशेन
 पतंगेन गंधर्वराजेन युयुधे ॥ ५ ॥ तत्र गदायुद्धे गदामादाय गदो बलदेवानुजो गदाधरं
 स्वगदया पतंगं तताड । सोऽपि तं हृदि चौजसा जघानेत्यं तयोर्गदायुद्धं घटिकाद्वयं अभूत् ।
 ततः पतंगगदाप्रहारेण गदो युद्धे क्षणं मूर्च्छां जगाम ॥ ६ ॥ तदा हाहाकारे जाते कोटिमा-
 तंडसन्निभो बलभद्र आविर्भूत्वा गंधर्वाणां सर्वं बलं हलाग्रेण समाकृष्य तदुपरि क्लिष्टमुश-
 लताडनं चकार । तेन युगपत्सर्वं सैन्यं समद्विपरथं चूर्णावभूत् ॥ ७ ॥ अथ पतंगोऽपि विरथो
 भयभीतस्तस्मात्पुरीं गत्वा पुनर्योद्धुं यादवैः सेनाव्यूहं चकार । तच्छ्रुत्वा क्रुद्धो बलभद्रो गंधर्वाणां
 महापुरीं शतयोजनविस्तीर्णां वसंतमालतीनाम्नीं सर्वां हलेन संविदार्य सहसा कामदुधे नदे
 संकर्षणो विचर्कष ॥ ८ ॥ अथ ह वाय पतितैर्गृहैर्हाहाकारे जाते तिर्यक्योतमिवाघूर्णां समस्तां
 नगरीं वीक्ष्य गंधर्वैर्गन्धवेशः पतंगः कृताञ्जलिर्घर्षितो विश्वकर्मकृतानां विमानानां विलक्षं
 गजानां चतुर्लक्षं चाश्वशतार्बुदं च दिव्यानां रत्नानां भारं दशशतार्बुदं च बलिं नीत्वा

और श्रीकृष्ण दोनों प्रवर्षण पर्वतपर गये और वहाँसे द्वारकाको प्रस्थान किया ॥ १ ॥ ब्रह्मलोकसे लौटे हुए
 राजा रेवतने रत्न आदि आभूषणोंसे अलंकृत कन्या रेवतीको लेकर आगमन किया और प्रतापी बलराम-
 जीके हाथोंमें उसे सविधि समर्पण कर दिया । फिर राजा रेवत तप करनेके लिये बदरिकाश्रमको चले
 गये ॥ २ ॥ उसके बाद श्रीकृष्णने कुण्डिनपुर जाकर शत्रुओंके देखते-देखते रुक्मिणीका हरण किया एवं
 जान्मवती, लक्ष्मणा एवं भीमासुरका वध करके सोलह हजार एक सौ राजकन्याओंका पाणिग्रहण किया
 ॥ ३ ॥ हे राजन् ! भीष्मककुमारी रुक्मिणीके गर्भसे भगवात् श्रीकृष्णके प्रथम पुत्र प्रभुम्न हुए । वे कामदेवके
 अवतार अपने पिता श्रीकृष्णके समान ही सुन्दर हैं । इनसे अनिरुद्धका जन्म हुआ, जो ब्रह्माके अवतार हैं
 ॥ ४ ॥ तत्पश्चात् एक समय राजा उपसेनके यहाँ राजसूय यज्ञका प्रस्ताव हुआ और दिग्विजयके लिये
 प्रभुम्नने बीड़ा उठा लिया । यादवों तथा अपने भाइयोंके साथ उन्होंने विजययात्रा आरम्भ की और
 जम्बूद्वीपके ती छण्डोंपर विजय प्राप्त करके कामदुध नदके समीप पहुँचे । वहाँ वसन्तमालती नामकी नगरीके
 स्वामी गन्धर्वराज पतंगके साथ उनका युद्ध हुआ ॥ ५ ॥ गदा-युद्ध आरम्भ होनेपर बलदेवजीके छोटे भाई
 गदने गदाके द्वारा गदाधारी पतंगपर प्रहार किया । पतंगने भी गदाके द्वारा बड़े वेगसे गदके हृदयपर
 आघात किया । इस प्रकार दो घड़ीसक दोनोंका युद्ध होनेके पश्चात् पतंगकी गदाके प्रहारसे क्षणभरके लिये
 गदकी मूर्च्छा आ गयी ॥ ६ ॥ उस समय हाहाकार मच गया और इसी बीच करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी
 बलभद्रजी यहाँ प्रकट हो गये । उन्होंने गन्धर्वोंकी सारी सेनाको हलकी नोकके द्वारा खींच लिया और उसके
 ऊपर क्रोधैर मुशलका प्रहार करना आरम्भ कर दिया । इससे पतंगकी सारी सेना—शूरवीर योद्धा, हाथी
 और रथ सभी चूर-चूर हो गये ॥ ७ ॥ तब तो रथहीन पतंग भयभीत होकर अपने नगरको चला गया और
 यादवोंसे युद्ध करनेके लिये फिरसे व्यूहाकार सेना सजाने लगा । बलभद्रजीको जब इसका पता लगा, तब
 वे अत्यन्त क्रुद्ध होकर गन्धर्वोंकी वसन्तमालती नामकी उस विशाल नगरीको, जिसका विस्तार सौ योजन
 था, हलके द्वारा उखाड़ लिया और कामदुध नदमें डुबा देनेके लिये उसे खींचने लगे ॥ ८ ॥ नगरीके महलों और
 घरोंका गिरना-डहना आरम्भ हो गया । जिससे चारों ओर हाहाकार मच उठा । सारी नगरी समुद्रमें चक्कर
 खाती हुई देवी मावकी तरह घूमने लगी । यह देखकर गन्धर्वराज पतंग भयभीत हो गये और अपने गन्धर्व
 भाई-बन्धुओंके साथ हाथ जोड़कर बलभद्रजीके समीप उपस्थित हुए । उन्होंने विश्वकर्माके द्वारा निर्मित

बलशालिने बलाय दत्त्वा प्रदक्षिणीकृत्य प्रणनाम ॥ ९ ॥ अथ तथा सांवमोक्षार्थं बलमद्र
इहागतो भवतां पश्यतां पुरमिदं हलाग्रेण संविदार्य श्रीगंगा साक्षात्संकर्षणो विचकर्ष । तथैव
नागकन्याभिगोपीभिर्निर्मिते रासमण्डले कालिंदीं हलाग्रेण विचकर्ष ॥ १० ॥ अथैकदा द्विविदो
नाम वानरः सुग्रीवसचिवो भौमसखो नारदेन प्रेरितो हरिं योद्धुकामोऽवतरद्रवतकाचलमेत्य
बलेन घटिकाचतुष्टयं युयुधे । द्रुमदंडशिलामुष्टिभिर्विनिघ्नन्तं तं बलमद्रो मुसलेन भूष्णिं निजघान ।
पुनर्न मृतं मुष्टिना घातयित्वा पलायन्तं भुजदंडाभ्यां गृहीत्वा रैवतकाचलपृष्ठे पातयित्वाऽच्यु-
ताग्रजो दृढेन मुष्टिना हृदि तं तताड । तत्पतनेन सटकः शैलेंद्रः कमंडलुरिव चकपे ॥ ११ ॥
अथ ह वाव राजचक्रं भवतां पाण्डवैः सह युद्धोद्यमं श्रुत्वा तीर्थाभिषेकन्याजेन ब्राह्मणैर्नागरैः
सहितः पुराद्विनिर्गतो द्वारकां प्रदक्षिणीकृत्य सिद्धाश्रमप्रभासयोः स्नात्वा पश्चिमायां दिशि
सरस्वतीप्रतिस्रोतः सैन्धवारण्यजंबूमागोत्पलावतर्बुदहेमवन्तसिन्धुनपस्पृश्य पृथग्विंदुसरस्वितकूपसुदर्श-
नात्रितौशनसाग्नेयवायवसौदासगुहतीर्थश्राद्धदेवादीनि तीर्थानि स्नात्वा उत्तरस्यां दिशि कैलास-
करवीरमहायोगगणेशकौबेरप्राग्न्योतिषरंगवल्लीसीतारामक्षेत्रचैत्रदेशवसन्ततिलकादशार्णभद्राकूर्मती-
र्थपुष्पमालाचित्रवनचंद्रकांतानैः श्रेयसमनुपर्वतचक्षुःकामशालिनीकामवनवेदक्षेत्रसीतापृथुतीर्थतपोभू-
मिलीलावतीवेदनगरगांधर्वशक्रमीमरथीश्रीजाह्नवीकालिंदीहरिद्वारकुक्षेत्रमथुरापुष्करेषु स्नात्वा
पुनस्तस्माच्छांभलं सौकरं प्राप्य चान्यानि कुर्वन् तीर्थानि साक्षात्संकर्षणो नैमिषारण्यं
जगाम ॥ १२ ॥ तं समागतं वीक्ष्य शौनकादयो मुनयः समुत्थाय ध्वनिरे चार्चयन् ॥ १३ ॥

दो लाख विमान, चार लाख हाथी, एक करोड़ घोड़े और दस करोड़ स्वर्ण तथा दिव्य रत्नोंका भार बल-
देवजीकी सेवामें समर्पण करते हुए प्रदक्षिणा करके उनको प्रणाम किया ॥ ९ ॥ फिर साम्बको छुड़ानेके
लिये बलरामजी यहाँ तुम्हारे हस्तिनापुरमें पधारे और तुम सबके सामने ही उन्होंने हलकी नोकसे तुम्हारे
नगरको उखाड़ लिया और गङ्गामें डुबानेके लिये खींचने लगे । फिर नागकन्यास्वरूपिणी गोपियोंके साथ रास-
मण्डलमें यमुनाजीको भी उन्होंने अपने हलकी नोकसे खींचा ॥ १० ॥ तदनन्तर, एक समयकी बात है, नारदजीकी
प्रेरणासे भौमासुरका सखा और सुग्रीवका मन्त्री द्विविद नामक बंदर युद्ध करनेके लिये आया । रैवतक
पर्वतपर बलरामजीके साथ चार घड़ीतक उसका युद्ध हुआ । वह वृक्षों और शिलाओंके द्वारा बलरामजीपर
प्रहार कर रहा था । ऐसी स्थितिमें बलरामजीने मुसलके द्वारा उसके मस्तकपर चोट पहुँचायी; पर वह
मरा नहीं और फिरसे बलरामजीको मुक्का मारनेके लिए दौड़ा । तब भगवान् अच्युतके बड़े भाई बलरामजीने अपने
दोनों हाथोंसे उसे पकड़ लिया और रैवतक पर्वतपर दे मारा । फिर उसके हृदयमें बड़े जोरसे मुष्टि-प्रहार
किया । जिससे बंदर नीचे गिर गया । उसके गिरनेसे वृक्षोंसहित सारा पर्वत कमण्डलुकी तरह काँपने लगा ॥ ११ ॥
हे प्रिय बुयोधन । तदनन्तर पाण्डवोंके साथ तुमलोगोंके युद्धका उद्योग सुनकर बलरामजी तीर्थयात्राकें बहाने
नागरिकों और ब्राह्मणोंको साथ लेकर द्वारकाको प्रदक्षिणा करके पुरीसे बाहर निकले । फिर उन्होंने सिद्धा-
श्रम और प्रभासमें स्नान किया । पश्चिम दिशामें स्थित सरस्वती, प्रतिस्रोता, सैन्धवारण्य, जम्बूमाग, उत्प-
लावत, अबुद (आबू), हेमवन्त और सिन्धुनदमें पृथक्-पृथक् स्नान किया । तदनन्तर विन्दुसर, त्रितकूप,
सुवर्दान, अत्रितीर्थ, औशनस, आग्नेय, वायव, सौदास, गुहतीर्थ और श्राद्धदेव आदि तीर्थोंमें स्नान किया ।
तदनन्तर उत्तर दिशामें जाकर कैलास, करवीर, महायोग, गणेश, कौबेर, प्राग्न्योतिष, रत्नवल्ली, सीताराम
आदि क्षेत्र, चैत्रवेश, वसन्ततिलक, दशार्ण, भद्र, कूर्मतीर्थ, पुष्पमाला, चित्रवन, चन्द्रकान्त, नैःश्रेयस, मनु-
पर्वत, चक्षुः, कामशालिनी, कामवन, वेदक्षेत्र, सीता, पृथुतीर्थ, तपोभूमि, लीलावती, वेदनगर, गान्धर्व, शक्र,
मीमरथी, श्रीजाह्नवी, कालिन्दी, हरिद्वार, कुक्षेत्र, मथुरा और पुष्कर आदि तीर्थोंमें स्नान किया । फिर
वहाँसे संभलग्राम और सूकरक्षेत्र (सोरों) में गये । इस प्रकार तीर्थोंकी यात्रा करते हुए साक्षात् संकर्षण
श्रीबलरामजी नैमिषारण्यमें पहुँचे ॥ १२ ॥ बलरामजीको आया देखकर शौनकादि मुनियोंने खड़े होकर

तत्र वेदव्यासशिष्यं रोमहर्षणमप्रत्युत्थायिनं वीक्ष्य करस्थेन कुशाग्रेण तं जघानेति तदा
 द्वाहेतिवादिनो मुनीन् वीक्ष्य लोकपावनोऽपि लोकसंग्रहार्थं द्वादश मासान् तीर्थस्नानेन विशुद्धये
 मनो दधे ॥ १४ ॥ तत्रेन्वल्लसुतो बल्ललो नाम दैत्य उपावृत्ते पर्वणि पांसुवर्षणप्रचंडेन वायुना
 पूयशोणितविण्मूत्रसुरामांसदुर्गन्धेन समागतः खे दृष्टोऽभूत् । अथ ललज्जिह्वं वज्रांगं भिन्नकज्ज-
 लांजनचयकृष्णं तप्तताम्रश्मश्रुभयंकरं ब्रह्मशांतये हलाग्रेण समाकृष्य गगनान्मुसलेन मूर्ध्नि
 बलभद्रस्तं तताड । तत्ताडनेनाकाशात्सोऽपि क्रमंडलुरिव व्यसुः पपात ॥ १५ ॥ अथ प्रसन्ना
 मुनयोऽपि रामं संस्तुत्यावितथाशिषः प्रयुज्य वृत्रघ्नं विबुधा इवाभ्यषिंचन् तैरभ्यनुज्ञातः
 सरयूकौशिकीमानसरोवरगंडकीगौतमीषु स्नात्वाऽयोध्यानंदिग्रामवर्हिष्मतीब्रह्मावर्तादीन्युपस्पृश्य
 तीर्थराजं प्रयागं जगाम । तत्रायुतगजदानं चकार ॥ १६ ॥ ततश्चित्रकूटविंध्याचलकाशीविपाशा-
 शोणमिथिलागयादिषु स्नात्वा गंगासागरसंगमं जगाम । तत्र सुवर्णशृंगावरसंयुक्तं पृथक् सुवर्ण-
 रत्नभारसहितं गवां कोटिशतं ब्राह्मणेभ्यः प्रादात् । ततः क्रमशो दक्षिणस्यां दिशि महेन्द्राद्रिसप्त-
 गोदावरीवेणीपंपाभीमरथीस्कन्दक्षेत्रश्रीशैलवेंकटककांचीकावेरीश्रीरंगर्षभाद्रिसमुद्रसेतुकृतमालाताम्र-
 पर्णीमलयाचलकुलाचलदक्षिणसिंधुफाल्गुनपंचाप्सरोगोकर्णशूर्पारकतापीपयोष्णीनिर्विंध्यादंडकरे वा
 माहिष्मत्यवंतिकादीनि तीर्थानि साक्षात्संकर्षणः करिष्यति स्म । ततस्त्वत्सहायार्थं विशसने
 चागमिष्यति ॥ १७ ॥ इदं बलभद्रचरित्रं पवित्रं सर्वपापाभिहरणं तीर्थयात्रावर्णनं नितरां
 मया वर्णितं सर्वमंगलकारणं कौरवेंद्र किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १८ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायां श्रीबलभद्रखंडे प्राड्वपाकदुर्योधनसंवादे द्वारकालीलावर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

उनको प्रणाम किया और उनकी अर्चना की ॥ १३ ॥ वहाँ वेदव्यासजीके शिष्य रोमहर्षणजी विराजमान थे ।
 वे खड़े नहीं हुए । बलरामजीने यह देखकर हाथमें जो कुशा लिये हुए थे, उसीकी नोकसे मुनिको निहत
 कर दिया । यह देखकर सब मुनि हाहाकार करने लगे । बलरामजीने यह सब देखा । समस्त लोकोंको पवित्र
 करनेवाले होनेपर भी उन्होंने लोकसंग्रहके लिये अपना बुद्धिकी कामनासे बारह महीनेतक तीर्थ-स्नान
 करनेका व्रत ले लिया ॥ १४ ॥ वहाँ ही इल्लका पुत्र बल्लल नामक दैत्य रहता था । वह नैमिषारण्यमें पर्वोंके
 अवसरपर भयानक आँधीके साथ-साथ धूल तथा दुर्गन्धपूर्ण दूध, रुधिर, विषा, मूत्र, मदिरा और मांस
 आदिकी वर्षा करता था । उसकी जीभ सदा लपलपाया करती थी । उसके समान दृढ़ उसके अङ्ग थे । कज्जल-
 गिरिके समान उसकी काली आकृति थी और तपाये हुए ताँबेके समान मूँछ-दाढ़ीवाला वह असुर बड़ा ही भया-
 नक दीख पड़ता था । ऋषि-ब्राह्मणोंकी शान्तिके लिये उस भयानक असुरको बलरामजीने आकाशमें खींचकर
 उसके मस्तकपर मुसलके द्वारा प्रहार किया । मुसलकी चोट लगते ही उसके प्राण निकल गये और वह
 आकाशसे क्रमण्डलुकी तरह नीचे गिर पड़ा ॥ १५ ॥ तदनन्तर प्रसन्नतासे खिले हुए मुखवाले मुनियोंने बल-
 रामजीका स्तवन किया, उनको बड़े-बड़े आशीर्वाद दिये और जिस प्रकार वृत्रासुरका वध करनेवाले इन्द्रका
 देवतालोगोंने अभिषेक किया था, उसी प्रकार बलरामजीका अभिषेक किया । तदनन्तर मुनियोंसे आज्ञा
 लेकर बलरामजीने सरयू, कौशिकी (कोसी), मानसरोवर, गण्डकी और गौतमी आदि तीर्थोंमें स्नान
 किया । फिर अयोध्या, नन्दिग्राम, वर्हिष्मती और ब्रह्मावर्त आदि तीर्थोंमें स्नान करके वे तीर्थराज प्रयागमें
 पधारे और वहाँ दस हजार हाथियोंका दान किया ॥ १६ ॥ तदनन्तर चित्रकूट, विन्ध्याचल, काशी, विपाशा,
 शोण, मिथिला और गया आदि तीर्थोंमें स्नान करके गङ्गासागर-संगमपर गये और वहाँ स्वर्णके सींगोंसे और
 मुन्तर बलोंसे सुशोभित सौ करोड़ गौएँ ब्राह्मणोंको दान दीं । प्रत्येक गोपर स्वर्ण और रत्नोंका भार पृथक्
 रूपसे लदा हुआ था । तदनन्तर वहाँसे दक्षिण दिशामें जाकर क्रमशः महेन्द्राद्रि पर्वत, ५१ गोदावरी, वणा,
 मन्ना, भीमरथी, स्कन्दक्षेत्र, श्रीशैल, वेङ्कट, काञ्ची, कावेरी, श्रीरङ्ग, ऋषभाद्रि, समुद्रसेतु, कृतमाला,

अथ नवमोऽध्यायः

(श्रीबलरामजीकी रासलीलाका वर्णन)

दुर्योधन उवाच

मुनिशार्दूल भगवान्बलभद्रो नागकन्याभिर्गोपीभिः कदा कालिंदीकूले विजहार ॥ १ ॥

प्राङ्विपाक उवाच

एकदा द्वारकानगराद्वितालांकं रथमास्थाय सुरान्दिदृक्षुः परमुत्कण्ठो नन्दराजगोकुलगोगोपालगोपी-
गणसंकुलः संकर्षण आगतश्चिरोत्कण्ठाभ्यां नन्दराजयशोदाभ्यां परिविक्तो गोपीगोपालगोभिमिलित्वा
तत्र द्वौ मासौ वासन्तिकौ चावात्सीत् ॥ २ ॥ अथ च या नागकन्याः पूर्वोक्तास्ता गोपकन्या
भूत्वा बलभद्रप्राप्त्यर्थं गर्गाचार्याद्वलभद्रपञ्चांगं गृहीत्वा तेनैव सिद्धा बभूवुः । तामिर्वलदेव एकदा
प्रसन्नः कालिंदीकूले रासमण्डलं समारम्भे । तदैव चैत्रपूर्णिमायां पूर्णचन्द्रोऽरुणवर्णः संपूर्ण वनं
रञ्जयन् विरेजे ॥ ३ ॥ शीतला मन्दयानाः कमलमकरंदरेणुवृंदसंवृताः सर्वतो वायवः परिववुः ।
कलिंदगिरिनन्दिनीचललहरीभिरानन्ददायिनी पुलिनं विमलं ह्याचितं चकार । तथा च कुञ्जप्रांगण-
निकुञ्जपुञ्जैः स्फुरन्नलितपल्लवपुष्पपरागैर्मयूरकोकिलपुंस्कोकिलकूजितैर्मधुपमधुरध्वनिभिर्व्रजभूमिर्वि-
भ्राजमाना बभूव ॥ ४ ॥ तत्र कण्ठद्वटिकनूपुरः स्फुरन्मणिमयकटकटिस्त्रकेयूरहारकिरीटकुण्डल-
योरुपरि कमलपत्रनैलांबरौ विमलकमलपत्राक्षौ यक्षीभिर्यक्षराडिव गोपीभिर्गोपराड् रासमण्डले

ताम्रपर्णी, मलयाचल, कुलाचल, दक्षिणसिन्धु, फाल्गुनतीर्थ, पंचाप्सर, गोकर्ण, शूर्पारक, तापी, पयोष्णी,
निर्विन्ध्या, दण्डक, रेवा, माहिष्मती और अवन्तिका आदि तीर्थोंका स्वयं भगवान् संकर्षणने सेवन किया ।
तत्पश्चात् तुम्हारी सहायताके लिये विशसन (कुक्षेत्र) में पधारेंगे ॥ १७ ॥ यह मैंने बलभद्रजोका परम
पावन तीर्थयात्रा-चरित्र तुम्हारे सामने वर्णन किया । हे कौरवेन्द्र ! यह सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला और
सर्वकल्याणकारी पवित्र प्रसङ्ग है । अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १८ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां
बलभद्रखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायामष्टमाध्यायः ॥ ८ ॥

दुर्योधनने पूछा—हे भगवन् ! हे मुनिसत्तम ! भगवान् बलभद्रजीने नागकन्या गोपियोंके साथ यमुना-
जीकेतटपर कब विहार किया था ? ॥ १ ॥ प्राङ्विपाक मुनि बोले—एक समयकी बात है, व्रजके सुहृद्-बन्धुओं-
को देखनेकी बलरामजोक मनमें बड़ी उत्कण्ठा पैदा हो गयी । तब वे अपने तालध्वजसे युक्त रथपर सवार
होकर द्वारकासे निकल और गोओं, गोपालों तथा गोपियोंसे भरे गोकुलमें जा पहुँच । नन्दराज और
यशोदाजी भी बहुत दिनोंसे उन्हें देखनेके लिये उत्कण्ठित थीं, अतएव उन्होंने उनको हृदयसे लगा लिया ।
फिर बलभद्रजी गोओं, गोपियों और गोपालोंसे मिल और पूरे वसन्तक दो महाने उन्होंने वहाँ निवास
किया ॥ २ ॥ पहलं जिन नागकन्याओंके गोपी होनेका वर्णन आ चुका है, उन्होंने गर्गाचार्यजैसे बलभद्रजो-
का पञ्चाङ्ग प्राप्त करके उस सिद्ध किया था । उसाके प्रभावसे बलभद्रजीनं प्रसन्न होकर कालिन्दाके तटपर
उनके साथ रासमण्डलमें रास-झोड़ा की । उस दिन चैत्रकी पूर्णिमा थी । अरुण वर्णके पूर्ण चन्द्र उदित होकर
सारे वनको अपनी रंग-बिरंगां किरणोंसे रञ्जित कर रह थे ॥ ३ ॥ शीतल पवन कमलक मकरन्द आर
परागको लिये सर्वत्र मन्द-मन्द गतिसे प्रवाहित हो रहा था । आनन्ददायिनी यमुना अपनी चञ्चल लहरियां
निर्मल पुलिनभूमिको व्याप्त कर रही थी । कुञ्जाका प्राङ्गण-भूमि विविध निकुञ्जपुञ्जासे सुशोभित तथा
चमचमाते हुए सुन्दर पल्लवों और पुष्पोंके परागसे आवृत था । मोर और कायल मधुर स्वरमें बाल रह
थे और मधुपान-भक्त मधुकरोकों मधुर-ध्वनिसे सुखरित व्रजभूमि अत्यन्त शोभाको प्राप्त हो रहा था ॥ ४ ॥
बलरामजोक पेटोंमें नूपुरकी मधुर ध्वनि हो रही थी । चमकती हुई मणियोंके कढ़े, करघना, कयूर, हार,
किरीट और कुण्डलोंसे व अलंकृत थे । उनके बदनपर कमलदलकी छटा छा रही थी । वे नालाम्बर धारण
किये हुए थे । उनके विमल कमल-दलके समान नेत्र थे । ऐसे श्रीबलदेवजी यक्षिणियोंके साथ यक्षराजको भाँति

रेजे ॥ ५ ॥ अथ वरुणप्रेषिता वारुणी देवी पुष्पभारगंधिलोभिमिलिदनादितवृक्षकोटरेभ्यः पतंती सर्वतो वनं सुरभीचकार । तत्पानमदविह्वलः कमलविशालताम्राक्षो मकरध्वजावेशचलद्ध्युर्ग्याङ्गभङ्गो विहारखेदप्रस्वेदाबुक्कगैर्गलद्गण्डस्थलपत्रभङ्गो गर्जेत्रगतिर्गजेन्द्रगुण्डादंडसमदोर्दडमण्डितो गजी-मिर्गजराजेन्द्र इवोन्मत्तः सिंहासने न्यस्तहलो मुसलपाणिः कोटींदुर्पूर्णमण्डलसंकाशः प्रोद्गमद्रत्न-मञ्जीरप्रचलन्पुरप्रक्षणत्कनककिंकिणीभिः कंकणस्फुरत्ताटङ्कपुरट्टहारश्रीकंठांगुलीयशिरोमणिभिः प्रविडंविनीकृतसर्पिणीश्यामवेणीकुन्तलललितगण्डस्थलपत्रावलिभिः सुंदरीभिर्मगवान् भुवनेश्वरो विभ्राजमानो विरराज अथ च रेमे ॥ ६ ॥ अथ ह वाव कालिंदीकूलकांतारपर्यटनविहारपरिश्रमो-द्यत्स्वेदविदुव्यासमुखारविदः स्नानार्थं जलक्रीडार्थं यमुनां दूरात्स आजुहाव । ततस्त्वनागतां तटिनीं हलाम्रेण कुपितो विचकर्ष इति ह्रीवाच च ॥ ७ ॥ अद्य मामवज्ञाय नायासि मयाहृताऽपि मुसलेन त्वां कामचारिणीं शतधा नेष्य एवं निर्भर्त्सिता सा भूरिभीता यमुना चकिता तत्पादयोः पतितोवाच ॥ ८ ॥ राम राम संकर्षण बलभद्र महाबाहो तव परं विक्रमं न जाने । यस्यैकस्मिन्मूर्च्छिन् सर्वपव-त्सर्वं भूखण्डमण्डलं दृश्यते । तस्य तव परमनुभावमजानंतीं प्रपन्नां मां मोक्तुं योग्योऽसि । त्वं भक्तवत्सलोऽसि ॥ ९ ॥ इत्येवं याचितो बलभद्रो यमुनां ततो व्यमुञ्चत्पुनः करेणुभिः करीव गोपीमिगोपराड् जले विजगाह । पुनर्जलाद्विनिर्गत्य तटस्थाय बलभद्राय सहसा यमुना चोपायनं नीलांबराणि हेमरत्नमयभूषणानि दिव्यानि च ददौ ह वाव तानि गोपीयूथाय पृथक् पृथक् विभज्य स्वयं नीलांबरं वसित्वा कांचनीं मालां नवरत्नमयीं धृत्वा महेंद्रो वारणेंद्र इव बलभद्रो विरेजे ॥ १० ॥ इत्थं कौरवेन्द्र यादवेन्द्रस्य रमतः सर्वा वासन्तिकीर्तिशा व्यतीता बभूवुः ।

रासमण्डलमें गोपियोंके द्वारा घिरे हुए विराजित थे ॥ ५ ॥ तदनन्तर वरुणके द्वारा प्रेरित वारुणी देवी वृक्षोंके कोटरोंसे प्रकट होकर बहने लगीं । उस पुष्पासवकी सुगन्धसे सारा वन सुगन्धमय हो गया । मधुके लोभमें मधुकर-पुष्प मधुर गुंजार करने लगा । वारुणी-पानसे मधुविह्वल तथा कमल-बलके समान विशाल और गरुण नेत्रवाले बलदेवजीके अङ्ग प्रेमावेशसे चञ्चल हो उठे । तदनन्तर लीला-विहारजन्य श्रमके कारण जलकण्ठकी भांति पसीनेकी बूंदें उनके मुखपर प्रकट हो गयीं और उन्होंने कपोलोंपर रचित चित्रकारीकी धो दिया । तदनन्तर गजराजकी-सी चालवाले और गजेन्द्र ऐरावतकी सूँड़के समान विशाल भुजाओंवाले बलदेवजी गोपियोंके साथ वैसे ही क्रीड़ा करने लगे, जैसे उन्मत्त मातङ्ग हथिनियोंके साथ क्रीड़ा करता है । उनके सिंहस्कन्ध-तुल्य कंधेपर हल और हाथमें मुसल सुशोभित था । करोड़ों-करोड़ों पूर्ण चन्द्रमाओंकी प्रभाके समान उनका तेज छिटक रहा था । वेदोप्यमान रत्नोंके मञ्जीर, चञ्चल नूपुर, मधुर शब्द करती हुई स्वर्णमयी किङ्किणी, कड़े, ताटङ्क, हार, श्रीकण्ठ, अंगूठियाँ और सिरपर दिव्य मणिभूषण सुशोभित थे । काली नागिनको लजाने-वाली कृष्ण अलकावलीकी वेणीसे युक्त और कपोलोंपर चित्रित मनोहर पत्रावलियोंसे सुशोभित गोप सुन्दरियोंके साथ अखिल भुवनपति भगवान् बलरामजी वहाँ विराजित होकर रास-विहार करने लगे ॥ ६ ॥ फिर यमुनाके किनारे वनमें विचरण और क्रीड़ा करते हुए बलदेवजीके मुख-कमलपर पसीनेकी बूंदें दिखायी देने लगीं । तब उन्होंने स्नान तथा जल-क्रीड़ा करनेके लिये दूरसे ही यमुनाजीको पुकारा, परंतु वे नहीं आयीं । फिर तो बलदेवजीने क्रोधमें भरकर हलकी नोकसे यमुनाजीको खींच लिया और कहा—॥ ७ ॥ 'आज मैंने तुमकी बुलाया, किंतु तुम मेरा अपमान करके नहीं आयीं । तुम मनमाना बर्ताव करनेवाली हो । अच्छा, अभी इस सुसंज्ञके द्वारा मैं तुम्हारे सौ ठुकड़े कर देता हूँ ।' यमुनाजीको जब बलरामजीने इस प्रकार डाँटा, तब वे अत्यन्त भयभीत हो उनके चरणकमलोंपर गिर पड़ीं और बोलीं—॥ ८ ॥ 'हे लौकाभिराम राम । हे संकर्षण । हे बलभद्र । हे महाबाहो । मैं आपके असीम बल-पराक्रमको नहीं जानती थी । आपके ही मस्तकपर सारा भूखण्डमण्डल सरसोंके समान पड़ा रहता है । मैं आपके परम प्रभावसे अनभिज्ञ हूँ और आपकी वारणमें आयी हूँ । आप भक्तवत्सल हैं । मुझे छोड़ दीजिये ।' ॥ ९ ॥ इस प्रकार

भगवतो बलभद्रस्य हस्तिनापुरमिव वीर्यं सूचयतीव ह्यद्यापि, च कृष्टवर्त्मना यमुना वहति । इमां
रामस्य रासकथां यः शृणोति श्रावयति च स सर्वपापपटलं छित्वा तस्य परस्परमानन्दपदं प्रतियाति ।
किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ११ ॥

इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीबलभद्रखंडे प्राड्विपाकदुर्योधनसंवादे रामरासक्रीडावर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

(श्रीबलभद्रजीकी पूजापद्धति और पटल)

दुर्योधन उवाच

भगवन् गर्गाचार्येण गोपीयूथाय कथं दत्तं बलभद्रपञ्चाङ्गं तत्कृपया वदतात् । त्वं
सर्वज्ञोऽसि ॥ १ ॥

प्राड्विपाक उवाच

कौरवेन्द्र एकदा गर्गाचार्यः कलिंदनन्दिनीं स्नातुं गर्गाचलाद्ब्रजमंडलं चाजगाम । तत्रैकांते
मरुद्वीलैजल्ललितलतातरुपल्लवपुष्पगंधमत्तमिलिदपुञ्जे कालिंदीकूलकलितनिकुंजे श्रीरामकृष्णध्यान-
तत्परं गर्गाचार्यं प्रणम्य नागेन्द्रकन्याः स्म इति जातिस्मरा गोपकन्याः श्रीमद्वलभद्रप्राप्त्यर्थं
सेवनं पत्रच्छुस्तासां परमां भक्तिं वीक्ष्य पद्धतिपटलस्तोत्रकवचसहस्रनामानि गोपीयूथाय स प्रददौ ।
किं भूयस्त्वं तद्ग्रहणं कर्तुमिच्छसि वदतात् ॥ २ ॥

दुर्योधन उवाच

रामस्य पद्धतिं ब्रूहि यया सिद्धिं ब्रजाम्यहम् । त्वं भक्तवत्सलो ब्रह्मन् गुरुदेव नमोस्तु ते ॥ ३ ॥

मार्थना करनेपर गोपराज बलभद्रजीने यमुनाको छोड़ दिया और हृथिनियोंके साथ गजराजकी भाँति वे
गोपियोंके साथ जलक्रीड़ा करने लगे । तदनन्तर उनके यमुनासे बाहर निकलनेपर यमुनाजीने आकर उन्हें
बहुत-से नील वस्त्र और स्वर्ण तथा रत्नोंके आभूषण भेंट किये । हे दुर्योधन ! बलरामजीने उन सब वस्त्राभूषणोंको
पृथक्-पृथक् गोपियोंमें बाँट दिया और स्वयं नीलाम्बर तथा नवीन रत्नोंसे निर्मित स्वर्णमालाको धारण
करके ऐरावतकी भाँति विराजमान हो गये ॥ १० ॥ हे कौरवेन्द्र ! इस प्रकार क्रीडारत यादवश्रेष्ठ बलरामजीने
वसन्त ऋतुकी रात्रियोंको व्यतीत किया । जिस प्रकार हस्तिनापुरकी देखनेपर भगवान् बलरामजीके
पराक्रमका दर्शन होता है, उसी प्रकार आजतक यमुनाजी टेढ़े मार्गसे प्रवाहित होती हुई उनकी शक्तिको
सूचित कर रही हैं । भगवान् बलरामजीके इस रासलीलाके प्रसङ्गको जो मनुष्य सुनता अथवा सुनाता
है, वह सारे पापोंसे मुक्त होकर परमानन्द-पदको प्राप्त होता है । हे युवराज ! अब क्या सुनना चाहते हो ?
॥ ११ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दुर्योधनने कहा—भगवन् ! आप सर्वज्ञ हैं । यह बतानेकी कृपा कीजिये कि गोपियोंके सूयको
श्रीगर्गाचार्यजीने बलभद्र-पञ्चाङ्ग किस प्रकार प्रदान किया था ॥ १ ॥ प्राड्विपाक मुनि बोले—हे कुरुराज !
एक बार गर्गजी यमुना-स्नान करनेके लिये गर्गाचलसे चलकर ब्रजपुरमें पधारे । यमुनाजीके तटकी ललित
लताएँ पवनके प्रवाहसे हिल रही थीं । पुष्पोंके सौरभसे मत्त भ्रमरोंके समूह गुंजार कर रहे थे । इस
प्रकारके यमुना-तटपर एक निकुञ्जके नीचे एकात्मते श्रीगर्गाचार्य भगवान् बलराम और श्रीकृष्णका ध्यान
करने लगे । उसी समय गोपियोंने आकर उनको प्रणाम किया । सभी उनको स्मरण हो आया कि हम पूर्वजन्मकी
नागेन्द्रकन्याएँ हैं । तब उन्होंने बलभद्रजीकी प्राप्त करनेके लिये गर्गजीसे सेवाका साधन पूछा । उन कन्याओंकी
इस अनुपम भक्तिको देखकर उनके उद्देश्यकी सिद्धिके लिये गर्गजीने उनको पद्धति, पटल, स्तोत्र, कवच
और सहस्रनाम—यह पञ्चाङ्ग-साधन प्रदान किया । अब बताओ, तुम और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ २ ॥

प्राङ्विपाक उवाच

राममार्गस्य नियमं शृणु पार्थिवसत्तम । येन प्रसन्नो भवति बलभद्रो महाप्रभुः ॥ ४ ॥
सहस्रवदनो देवो भगवान् भुवनेश्वरः । न दानैर्न च तीर्थैश्च भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ॥ ५ ॥
सत्संगमेत्याशु शिक्षेद्भक्तिं वै श्रीहरेर्गुरोः । स सिद्धः कथितो जातं यस्य वै प्रेमलक्षणम् ॥ ६ ॥
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय रामकृष्णेति च ब्रुवन् । नत्वा गुरुं भुवं चैव ततो भूम्यां पदं न्यसेत् ॥ ७ ॥
वार्युपस्पृश्य रहसि स्थितो भूत्वा कुशासने । हस्तावुत्संग आधाय स्वनासाग्रनिरीक्षणः ॥ ८ ॥
ध्यायेत्परं हरिं देवं बलभद्रं सनातनम् । गौरं नीलांबरं हृद्यं वनमालाविभूषितम् ॥ ९ ॥
एवं ध्यानपरो नित्यं प्रीत्यर्थं हलिनः प्रभोः । त्रिकालसंध्याकृच्छुद्धो मौनी क्रोधविवर्जितः ॥ १० ॥
अकामी गतलोभश्च निर्मोहः सत्यवाग् भवेत् । द्विवारं जलपानार्थी एकभुक्तो जितेन्द्रियः ॥ ११ ॥
क्षौमाम्बरो भूमिशायी भूत्वा पायसभोजनः । एवं निर्जितषड्वर्गो भवेदेकाग्रमानसः ॥ १२ ॥
तस्य प्रसन्नो भवति सदा संकर्षणो हरिः । परिपूर्णतमः साक्षात्सर्वकारणकारणः ॥ १३ ॥
इत्थं श्रीबलभद्रस्य कथिता पद्धतिर्मया । कौरवेन्द्र महाबाहो किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १४ ॥

दुर्योधन उवाच

मुनीन्द्र देवदेवस्य पटलं ब्रूहि मे प्रभोः । येन सेवां करिष्यामि तत्पदांबुजयोः सदा ॥ १५ ॥

प्राङ्विपाक उवाच

बलस्य पटलं गुह्यं विद्धि सिद्धिप्रदायकम् । एकांते ब्रह्मणा दत्तं नारदाय महात्मने ॥ १६ ॥
प्रणवं पूर्वमुद्घृत्य कामबीजं ततः परम् । कालिंदीभेदनपदं संकर्षणमतः परम् ॥ १७ ॥

दुर्योधनने कहा—हे ब्रह्मान् गुरुदेव । आप भक्तवत्सल हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ । आप कृपया बलराम-जीकी 'पद्धति' का वर्णन कीजिये, जिसे जानकर मैं सिद्धि प्राप्त कर सकूँ ॥ ३ ॥ प्राङ्विपाक मुनि बोले—हे राजसत्तम ! जिससे महाप्रभु बलरामजी प्रसन्न हो जाते हैं, उस बलभद्र-पद्धतिके नियम सुनो ॥ ४ ॥ वे भगवान् बलदेवजी सहस्रमुखवाले हैं । समस्त भुवनोंके अधीश्वर हैं । बहुतसे दान और तीर्थ-सेवनसे भी उनकी प्राप्ति नहीं हो सकती । वे तो केवल 'अनन्य-भक्ति' से प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ श्रीहरिके बड़े भाई उन बलराम-जीकी भक्ति सत्सङ्गके द्वारा शीघ्र प्राप्त हो सकती है । जिनमें प्रेमलक्षणा भक्तिका उदय हो जाता है, वे ही सिद्ध पुरुष हैं ॥ ६ ॥ ब्राह्ममुहूर्तमें उठते ही भगवान् राम-कृष्णके नामोंका उच्चारण करे, फिर गुरुदेवको और पृथ्वीको (मनसे) प्रणाम करके पृथ्वीपर पैर रखे ॥ ७ ॥ तदनन्तर स्नान-आचमन करके निर्जनमें कुशासन-पर बैठ जाय, दोनों हाथ गोदमें रख ले और अपनी नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाकर परमदेव सनातन हरि भगवान् श्रीबलरामजीका ध्यान करे ॥ ८ ॥ उनका गौरवर्ण है । उन्होंने नीलाम्बर धारण कर रक्खा है । वे वनमालासे विभूषित हैं । बड़ी मनमोहन भूर्ति है । ऐसे हलधर भगवान् बलरामजीको प्रसन्न करनेके लिये नित्य उनका ध्यान करना चाहिये ॥ ९ ॥ साधकको चाहिये कि वह बाहर-भीतरसे पवित्र हो, मौन-धारण करे और क्रोधका त्याग करके दोनों कालमें संध्या-वन्दन करे ॥ १० ॥ मनमें कोई कामना, लोभ और मोह न रहे । सत्य भाषण करे । जितेन्द्रिय होकर एक बार केवल पायसका भोजन करे । दो बार जलपान करे ॥ ११ ॥ पवित्र रेशमी शस्त्र पहने और जमीनपर शयन करे । इस प्रकार छः शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके एकाग्र मनसे भजन करनेपर सम्पूर्ण कारणोंके कारण परिपूर्णतम साक्षात् भगवान् श्रीसंकर्षणजी सदाके लिये प्रसन्न हो जाते हैं । हे महाबाहु कौरवराज ! इस प्रकार मैंने महात्मा बलभद्रजीकी 'पद्धतिका' का वर्णन किया, अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १२-१४ ॥ दुर्योधनने कहा—हे मुनिराज ! अब देवदेव बलरामजीका 'पटल' सुनाइये, जिसका साधन करके मैं सदा उनके चरण-कमलोंकी सेवा कर सकूँ ॥ १५ ॥ प्राङ्विपाक मुनि बोले—भगवान् बलरामजीका पटल महान् गोपनीय और सिद्धि प्रदान करनेवाला है । इसे पहले ब्रह्माजीने एकान्त स्थानमें महात्मा नारदजीको दिया था ॥ १६ ॥ पहले प्रणव (ॐ) लिखकर फिर कामबीज (क्लीं) लिखना चाहिये । तत्पश्चात् 'कालिन्दीभेदन' और 'संकर्षण'—इन

चतुर्थ्यन्तं द्वयं कृत्वा स्वाहां पश्चाद्विधाय च । मंत्रराजमिमं राजन् ब्रह्मोक्तं षोडशाक्षरम् ॥१८॥
जपेन्लक्षं व्रती भूत्वा सहस्राणि च षोडश । इहामुत्र परां सिद्धिं संप्राप्नोति न संशयः ॥१९॥
अथ जप्तस्य मंत्रस्य महापूजां समाचरेत् । द्वात्रिंशत्पत्रसंयुक्तं कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् ॥२०॥
मन्त्रं कंजं पञ्चवर्णं लिखित्वा स्थण्डिले शुभे । तस्योपरि न्यसेद्राजन् हेमसिंहासनं शुभम् ॥

तस्मिन् श्रीबलदेवस्य परामर्चा प्रपूजयेत् ॥२१॥

ॐ नमो भगवते पुरुषोत्तमाय वासुदेवाय संकर्षणाय सहस्रवदनाय महानन्ताय
स्वाहा । अनेन मंत्रेण शिखाबन्धनं कृत्वा सर्वतस्तं प्रणम्य तत्संमुखो भूत्वा स्वयं नतो
भवेत् । ॐ जयजयानन्त बलभद्र कामपाल तालाङ्क कालिन्दीभञ्जन आविराविर्भूय मम संमुखो
भवेति । अनेन मंत्रेणावाहनं कुर्यात् । ॐ नमस्तेऽस्तु सीरपाणे हलमुसलधर रौहिणेय
नीलाम्बर राम रेवतीरमण नमस्तेऽस्तु । अनेन मंत्रेणासनपाद्यार्घ्यस्नानमधुपर्कधूपदीपयज्ञोपवीत-
नैवेद्यवस्त्राभूषणगन्धपुष्पाक्षतपुष्पाञ्जलिनीराजनादीनुपचारान् प्रकल्पयेत् । ॐ विष्णवे
मधुसूदनाय वामनाय त्रिविक्रमाय श्रीधराय हृषीकेशाय पद्मनाभाय दामोदराय संकर्षणाय वासु-
देवाय प्रद्युम्नायानिरुद्धायाधोक्षजाय पुरुषोत्तमाय श्रीकृष्णाय नमः । इति पादगुल्फजानुरूक्यु-
दरपार्श्वपृष्ठिभुजाकंधरनेत्रशिरांसि पृथक् पृथक् पूजयामीति मंत्रेण सर्वाङ्गपूजां कुर्यात् । अथ शंख-

दो पदोंका चतुर्थ्यन्त लिखकर अन्तमें स्वाहा जोड़ देना चाहिये । यों करनेपर 'ॐ क्लीं कालिन्दीभेदनाय संकर्षणाय स्वाहा'—यह मन्त्र बन जाता है । यह षोडशाक्षर मन्त्रराज ब्रह्माजीके द्वारा कहा गया है ॥ १८ ॥ मनुष्यको व्रत लेकर इस मन्त्रका एक लाख सोलह हजार जप करना चाहिये । इस प्रकार करनेपर साधक इस लोक और परलोकमें परम सिद्धिको प्राप्त कर लेता है, इसमें कोई संदेह नहीं ॥ १९ ॥ मन्त्र-जपके बाद विशेष रूपसे महापूजा करनी चाहिये । (उसका विधान यह है—) हे राजन् ! मनोरम स्थण्डिलपर कर्णिका-स्थित केसरोसे उज्ज्वल बत्तीस दलोंवाला एक सुन्दर पाँच रंगका कमल अङ्कित करे । उसपर मञ्जलमय स्वर्ण-सिंहासन रखे । उसके ऊपर बलरामजीकी परम श्रेष्ठ मूर्तिको पधराकर उनकी भलीभाँति पूजा करे ॥ २० ॥ २१ ॥ ॐ नमो भगवते पुरुषोत्तमाय वासुदेवाय संकर्षणाय सहस्रवदनाय महानन्ताय स्वाहा'—इस मन्त्रसे शिखा-बन्धन करे । तत्पश्चात् श्रीबलरामजीको सब दिशाओंमें प्रणाम करके उनके सम्मुख अत्यन्त विनयपूर्वक बैठ जाय । फिर 'ॐ जय जयानन्त बलभद्र कामपाल तालाङ्क कालिन्दीभञ्जन आविराविर्भूय मम संमुखो भव ।' इसको पढ़कर आवाहन करे । तदनन्तर 'नमस्तेऽस्तु सीरपाणे हलमुसलधर रौहिणेय नीलाम्बर राम रेवतीरमण नमस्तेऽस्तु ।' इस मन्त्रके द्वारा आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नानीय, यज्ञोपवीत, वस्त्र, भूषण, गन्ध, अक्षत, पुष्प, मधुपर्क, धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्पाञ्जलि आदि उपचार प्रदान करे । तदनन्तर 'ॐ मधुसूदनाय वामनाय त्रिविक्रमाय श्रीधराय हृषीकेशाय पद्मनाभाय दामोदराय संकर्षणाय वासुदेवाय प्रद्युम्नायानिरुद्धायाधोक्षजाय पुरुषोत्तमाय श्रीकृष्णाय नमः ।' —इस मन्त्रके द्वारा पाद, गुल्फ, जानु, ऊरु, कटि, उदर, पार्श्व, पीठ, भुजा, स्कन्ध, अघर, नेत्र और मस्तक आदि सर्वाङ्गकी पृथक्-पृथक् पूजा करे । इसके बाद शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, असि, धनुष, वेध, हल, मुसल, कौस्तुभ, वनमाला, श्रीवत्स, पीताम्बर, नीला-म्बर, वंशी, वेध, गरुडाङ्क और तालाङ्क ध्वजसे चिह्नित रथ, दारुक, सुमति, कुमुद, कुमुदाक्ष और शीदामा—इन शब्दोंके पहले ॐ और अन्तमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर अन्तमें 'नमः' शब्द जोड़ दे । इससे ॐ शङ्खाय नमः, ॐ चक्राय नमः आदि रूप बन जायगा । इन मन्त्रोंके द्वारा सबका पूजन करे । इसी प्रकार कमलके सब ओर अपने-अपने स्थानपर विष्वक्सेन, वेदव्यास, दुर्गा, गणेश, दिक्पाल और नवग्रह आदिका भी पृथक्-पृथक् पूजन करना चाहिये । तदनन्तर परिसमूहन आदि स्थालीपाकके विधानसे अग्नि-देवकी पूजा करके पूर्वोक्त 'ॐ क्लीं कालिन्दीभेदनाय संकर्षणाय स्वाहा ।'—इस मन्त्रसे पचीस हजार आहुतियाँ दे । फिर इसी प्रकार 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—इस द्वादशाक्षर मन्त्रसे आठ हजार और

चक्रगदापद्मासिधनुर्बाणहलमुसलकौस्तुभवनमालाश्रीवत्सपीतांबरनीलांबरवंशीवेत्रगरुडांकतालांकरथ-
दारुकसुमतिकुमुदकुमुदाक्षश्रीदामादीन् प्रणवपूर्वेण चतुर्ध्व्यतेन नमः संयुक्तेन नाममंत्रेण पृथक्-पृथक्
संपूज्य । तथा विष्वक्सेनवेदेच्यासदुर्गाविनायकदिक्पालग्रहादीन् कमले सर्वतः स्वे स्वे स्थाने
संपूजयेत् । पुनः परिसमूहनादिस्थालीपाकविधानेन वैश्वानरं संपूज्य पूर्वोक्तेन मूलमन्त्रेण पंच-
विंशतिसहस्राण्याहुतीर्जुहुयात् । तथाष्टौ सहस्राणि द्वादशाक्षरेण तथाष्टौ सहस्राणि चतुर्व्यूहमन्त्रे-
णाहुतीर्जुहुयात् । ततोऽग्निं प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्याचार्यं महार्हं धनसुवर्णभिरणताम्रपात्रसवत्सगो-
सुवर्णदक्षिणाभिः संपूज्य तथा ब्राह्मणान्भोजनाद्यैः संपूज्य नगरजनेभ्यो भोजनं दत्त्वाऽऽचार्यान्प्र-
णमेत् । इत्थं बलस्थ पटलानुसारेण योजुस्मरति इहामुत्र सिद्धिसमृद्धिभिः संवृतो भवति ।
श्रीरामपटलं गुह्यं मया ते ह्यनुवर्णितम् । सर्वसिद्धिप्रदं राजन् किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥२२॥
इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखंडे प्राड्विपाकदुर्योधनसंवादे पद्धतिपटलवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः

(बलभद्रस्तवराज)

दुर्योधन उवाच

स्तोत्रं श्रीबलदेवस्य प्राड्विपाकं महामुने । वद मां कृपया साक्षात्सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ १ ॥

प्राड्विपाक उवाच

स्तवराजं तु रामस्य वेदेच्यासकृतं शुभम् । सर्वसिद्धिप्रदं राजञ्छृणु कैवल्यदं नृणाम् ॥ २ ॥
देवादिदेव भगवन् कामपाल नमोऽस्तु ते । नमोऽनन्ताय शेषाय साक्षाद्रामाय ते नमः ॥ ३ ॥
धराभराय पूर्णाय स्वधाम्ने सीरपाणये । सहस्रशिरसे नित्यं नमः संकर्षणाय ते ॥ ४ ॥
रेवतीरमण त्वं वै बलदेवाच्युताग्रज । हलायुध प्रलंबधन पाहि मां पुरुषोत्तम ॥ ५ ॥

चतुर्थसंस्कृत '४' नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय साक्षिणे । प्रद्युम्नायानिच्छाय नमः संकर्षणाय च ॥—
इस मन्त्रसे आठ हजार आहुतियां है । इसके बाद अग्निकी प्रदक्षिणा करे और आचार्यको नमस्कार करके
उन्हें सुत्यवान् वस्त्र, स्वर्णके आभूषण, ताम्रपात्र, सवत्सा गौ और स्वर्ण आदि दक्षिणा देकर प्रसन्न करे ।
फिर ब्राह्मणोंका पूजन-सत्कार करके उनको तथा नगरवासी जनोंको भोजन कराये । तत्पश्चात् आचार्यको
प्रणाम करे । जो पुरुष इस पटल-पद्धतिके अनुसार श्रीबलरामजीका स्मरण-पूजन करता है, वह इस लोक और
परलोकमें विविध सिद्धियों और समृद्धियोंके द्वारा सुसम्पन्न होता है । हे राजन् ! भगवान् बलरामजीका यह
गोपनीय और सर्वसिद्धिप्रद 'पटल' तुमको सुना दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ २२ ॥ इति
श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखंडे 'प्रियंवदा'भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दुर्योधनने कहा—हे महामुनि प्राड्विपाकजी ! अब भगवान् श्रीबलरामजीका वह स्तोत्र, जो साक्षात्
समस्त सिद्धियोंको प्रदान करनेवाला है, कृपापूर्वक मुझसे कहिये ॥ १ ॥ प्राड्विपाक मुनि बोले—हे राजन् !
बलरामजीका स्तोत्र श्रीवेदेच्यासजीके द्वारा प्रणीत है, यह मनुष्योंको समस्त सिद्धियाँ और मोक्ष भी प्रदान
करनेवाला है । इस शुभ स्तवराजको तुम सुनो ॥ २ ॥ "हे देवाधिदेव ! हे भगवन् ! हे कामपाल ! आपको
नमस्कार है । हे बलरामजी ! आप साक्षात् अनन्त और शेषजी हैं, आपको नमस्कार है ॥ ३ ॥ आप पृथ्वीको
धारण करनेवाले, परिपूर्ण ब्रह्म, स्वयं प्रकाशमान, हाथमें हल लिये हुए, हजार मस्तकोंसे युक्त संकर्षण
हैं ॥ ४ ॥ आपको नित्य मेरे नमस्कार हैं । हे पुरुषश्रेष्ठ बलरामजी ! आप भगवान् अच्युतके बड़े भाई हैं,
रेवतीके स्वामी हैं, हल आपका शस्त्र है और आप प्रलम्बायुधका संहार करनेवाले हैं । आप मेरी रक्षा करें

बलाय बलभद्राय तालांकाय नमो नमः । नीलांबराय गौराय रौहिणेयाय ते नमः ॥ ६ ॥
 धेनुकारिर्मुष्टिकारिः कूटारिर्वन्चलांतकः । रुक्म्यरिः कूपकर्णारिः कुम्भांडारिस्त्वमेव हि ॥ ७ ॥
 कालिंदीभेदनोऽसि त्वं हस्तिनापुरकर्षकः । द्विविदारिर्यादवेंद्रो ब्रजमंडलमंडनः ॥ ८ ॥
 कंसभ्रातृग्रहंताऽसि तीर्थयात्राकरः प्रभुः । दुर्योधनगुरुः साक्षात्पाहि पाहि प्रभो त्वतः ॥ ९ ॥

जय जयाच्युतदेव परात्पर स्वयमनन्तदिगंतगतश्रुत ।
 सुरमुनींद्रिफणीन्द्रवराय ते सुसलिने बलिने हलिने नमः ॥ १० ॥
 यः पठेत्सततं स्तवनं नरः स तु हरेः परमं पदमाव्रजेत् ।
 जगति सर्वबलं त्वरिमर्दनं भवति तस्य धनं स्वजनं धनम् ॥ ११ ॥
 इति श्रीमद्गर्गसंहितायां बलभद्रखण्डे बलभद्रस्तवराजवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

(बलभद्रस्तोत्र-कवच)

दुर्योधन उवाच

गोपीभ्यः कवचं दत्तं गर्गाचार्येण धीमता । सर्वरक्षारं दिव्यं देहि ममं महामुने ॥ १ ॥

प्राङ्मिपाक उवाच

स्नात्वा जले क्षौमधरः कुशासनः पवित्रपाणिः कृतमन्त्रमार्जनः ।
 स्मृत्वाऽथ नत्वा बलमच्युताग्रजं संधारयेद्भर्मसमाहितो भवेत् ॥ २ ॥
 गोलोकधामाधिपतिः परेश्वरः परेषु मां पातु पवित्रकीर्तनः ।
 भूमण्डलं सर्पपवत्रिलक्ष्यते यन्मूर्ध्नि मां पातु स भूमिमण्डले ॥ ३ ॥

॥ ५ ॥ भगवान् बलराम, बलभद्र और तालध्वजको मेरे बार-बार नमस्कार हैं । आप गौरवर्ण हैं, नीलाम्बर धारण किये हुए हैं, रोहिणीके कुमार हैं; आपको नमस्कार है ॥ ६ ॥ आप धेनुकासुर, मुष्टिकासुर, कूट, बल्कल, रुक्मी, कूपकर्ण और कुम्भाण्डके बाघ और उनके संहारक हैं ॥ ७ ॥ आप कालिन्दीका भेदन करनेवाले, हस्तिनापुरका आकर्षण करनेवाले, द्विविद वानरका वध करनेवाले, मादवोंके राजा और ब्रजमण्डलको सुशोभित करनेवाले हैं ॥ ८ ॥ आपने कंसके भाइयोंका वध किया है, आप सबके स्वामी और तीर्थोंमें भ्रमण करनेवाले हैं । आप दुर्योधनके साक्षात् गुरु हैं । हे प्रभो ! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥ ९ ॥ हे अच्युत ! आपकी जय हो, जय हो । हे परात्पर देव ! आप स्वयं अनन्त एवं दिशा-विदिशाओंमें कीर्तित हैं । आप देवता, मुनि और सपोंके स्वामियोंमें श्रेष्ठ हैं । हल तथा सुसलको धारण करनेवाले भगवान् बलरामजीको मेरे नमस्कार हैं ॥ १० ॥ जो मनुष्य इस स्तवराजका निरन्तर पाठ करता है, वह श्रीहरिके परमपदको प्राप्त होता है । जगत्में वह बाघका घमन करनेवाले सम्पूर्ण बलोंसे सम्पन्न हो जाता है और उसे धन तथा स्वजन प्रचुररूपसे प्राप्त रहते हैं ॥ ११ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखण्डे 'प्रियंवदा' भाषादीकायमेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दुर्योधनने कहा—हे महामुने ! धीमात् गर्गाचार्यने गोपियोंको जो सब तरहसे रक्षा करनेवाला दिव्य कवच दिया था, आप उसे मुझको प्रदान कीजिये ॥ १ ॥ प्राङ्मिपाक मुनि बोले—मनुष्य जलमें स्नान करके रेशमी वस्त्र धारण करे, कुशासनपर बैठे और हाथमें कुशाकी पवित्री पहनकर मन्त्रका शोधन करे । तदनन्तर अच्युताग्रज भगवान् बलरामजीका स्मरण करके उन्हें प्रणाम करे । फिर मनको एकाग्र करके मन्त्ररूपी कवचको धारण करे ॥ २ ॥ जो भगवान् गोलोकधामके अधिपति हैं, जिनका कीर्तन परम पवित्र है, वे परमेश्वर बाघोंसे मेरी रक्षा करें । जिनके मस्तकपर भूमण्डल सरसोंकी तरह प्रतीत होता है,

सेनासु मां रक्षतु सीरपाणिर्धुद्वे सदा रक्षतु मां हली च ।
 दुर्गेषु चान्यान्मुसली सदा मां वनेषु संकर्षण आदिदेवः ॥ ४ ॥
 कलिदजावेगहरो जलेषु नीलांबरो रक्षतु मां सदाऽग्नौ ।
 वायौ च रामोऽवतु खे बलश्च महार्णवेऽनन्तवपुः सदा माम् ॥ ५ ॥
 श्रीवासुदेवोऽवतु पर्वतेषु सहस्रशीर्षा च महाविवादे ।
 रोगेषु मां रक्षतु रौहिणेयो मां कामपालोऽवतु वा विपत्सु ॥ ६ ॥
 कामात्सदा रक्षतु धेनुकारिः क्रोधात्सदा मां द्विविदप्रहारी ।
 लोभात्सदा रक्षतु बन्वलारिमौहोत्सदा मां किल मागधारिः ॥ ७ ॥
 प्रातः सदा रक्षतु वृष्णिधुर्यः प्राह्णे सदा मां मथुरापुरेन्द्रः ।
 मध्यंदिने गोपसखः प्रपातु स्वराट् पराह्णेऽवतु मां सदैव ॥ ८ ॥
 सायं फणीन्द्रोऽवतु मां सदैव परात्परो रक्षतु मां प्रदोषे ।
 पूर्णे निशीथे च दुरन्तवीर्यः प्रत्यूषकालेऽवतु मां सदैव ॥ ९ ॥
 विदिक्षु मां रक्षतु रेवतीपतिर्दिक्षु प्रलम्बारिरधो यदूढहः ।
 ऊर्ध्वं सदा मां बलभद्र आरात्तथा समन्ताद्बलदेव एव हि ॥ १० ॥
 अन्तः सदाऽन्यात्पुरुषोत्तमो बहिर्नागेन्द्रलीलोऽवतु मां महाबलः ।
 सदांतरात्मा च वसन् हरिः स्वयं प्रपातु पूर्णः परमेश्वरो महान् ॥ ११ ॥
 देवासुराणां भयनाशनं च हुताशनं पापचयेन्धनानाम् ।
 विनाशनं विघ्नघटस्य विद्धि सिद्धासनं वर्मवरं बलस्य ॥ १२ ॥
 इति श्रीगर्गसंहितायां श्रीबलभद्रखण्डे स्तोत्रकवचवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

वे भगवान् भूमण्डलमें मेरी रक्षा करें ॥ ३ ॥ हलधरभगवान् सेनामें और युद्धमें सदा मेरी रक्षा करें ।
 मुसलधारी भगवान् दुर्गमें और आदिदेव भगवान् संकर्षण वनमें मेरी रक्षा करें ॥ ४ ॥ यमुनाके प्रवाहको
 रोकनेवाले भगवान् जलमें और नीलाम्बरधारी भगवान् अग्निमें निरन्तर मेरी रक्षा करें । भगवान् राम
 वायु (आँ) में मेरी रक्षा करें । शून्य (आकाश) में भगवान् बलदेव और महान् समुद्रमें अनन्तवपु
 भगवान् मेरी रक्षा करें ॥ ५ ॥ पर्वतोंपर भगवान् वासुदेव मेरी रक्षा करें । घोर विवादमें हजार मस्तकवाले
 प्रभु, रोगमें श्रीरौहिणोन्नन्दन तथा विपत्तिमें भगवान् कामपाल मेरी रक्षा करें ॥ ६ ॥ धेनुकासुरके शत्रु
 भगवान् काम (कामना) से मेरी सदा रक्षा करें । द्विविदपर प्रहार करनेवाले भगवान् क्रोधसे, बल्लके
 शत्रु भगवान् लोभसे और जरासंधके शत्रु भगवान् मोहसे सदा मेरी रक्षा करें ॥ ७ ॥ भगवान् वृष्णिधुर्य
 प्रातःकालके समय, भगवान् मथुरापुरी-नरेश पूर्वाह्ण (पहर दिन चढ़े), गोपसखा मध्याह्नमें और स्वराट्
 भगवान् पराह्ण (दिनके पिछले पहर) में सदा मेरी रक्षा करें ॥ ८ ॥ भगवान् फणीन्द्र सायंकालमें तथा
 परात्पर प्रदोषके समय मेरी सदा रक्षा करें । मध्यरात्रि और प्रलयकालके समय भगवान् दुरन्तवीर्य मेरी
 सदा रक्षा करें ॥ ९ ॥ कोनोंमें रेवतीपति, दिशाओंमें प्रलम्बासुरके शत्रु, नीचे यदूढह, ऊपर बलभद्र और
 दूर अथवा पास सब दिशाओंमें भगवान् बलदेवजी मेरी सदा रक्षा करें ॥ १० ॥ भीतरसे पुरुषोत्तम और
 बाहरसे महाबल नागेन्द्रलील मेरी सदा रक्षा करें और पूर्ण परमेश्वर महान् हरि स्वयं सदा-सदा मेरे
 हृदयमें निवास करते हुए उत्कृष्ट रूपमें सदा मेरी रक्षा करें ॥ ११ ॥ श्रीबलभद्रजीके इस उत्तम कवचको
 देवों तथा असुरोंके भयका नाश करनेवाला, पापका ईधनको जलानेके लिये साक्षात् अग्निरूप और
 विघ्नके घटका विनाश करनेवाला सिद्धासनरूप समझें ॥ १२ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखण्डे 'प्रियंवदा'
 आषाढीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

(बलभद्र-सहस्रनाम)

दुर्योधन उवाच

बलभद्रस्य देवस्य प्राड्विपाकं महामुने । नाम्नां सहस्रं मे ब्रूहि गुह्यं देवगणैरपि ॥ १ ॥

प्राड्विपाक उवाच

साधु साधु महाराज साधु ते विमलं यक्षः । यत्पृच्छसे परमिदं गर्गोक्तिं देवदुर्लभम् ॥ २ ॥

नाम्नां सहस्रं दिव्यानां वक्ष्यामि तव चाग्रतः । गर्गाचार्येण गोपीभ्यो दत्तं कृष्णातटे शुभे ॥ ३ ॥

ॐ अस्य श्रीबलभद्रसहस्रनामस्तोत्रमंत्रस्य गर्गाचार्य ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः सङ्कर्षणः परमात्मा देवता बलभद्र इति बीजं रेवतीति शक्तिः अनन्त इति कीलकं बलभद्रप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

अथ ध्यानम्

स्फुरदमलकिरीटं किंकिणीकंकणार्हं चलदलककपोलं कुंडलश्रीमुखान्जम् ।

तुहिनगिरिमनोज्ञं नीलमेघांबराढ्यं हलमुसलविशालं कामपालं समीडे ॥ ४ ॥

ॐ बलभद्रो रामभद्रो रामः सङ्कर्षणोऽच्युतः । रेवतीरमणो देवः कामपालो हलायुधः ॥ ५ ॥

नीलांबरः श्वेतवर्णो बलदेवोऽच्युताग्रजः । प्रलंबघ्नो महावीरो रौहिणेयः प्रतापवान् ॥ ६ ॥

तालाङ्को मुसली हली हरिर्यदुवरो बली । सीरपाणिः पद्मपाणिर्लगुडी वेणुवादनः ॥ ७ ॥

कालिन्दीभेदनो वारो बलः प्रबल ऊर्ध्वगः । वासुदेवकलाञ्जितः सहस्रवदनः स्वराट् ॥ ८ ॥

वसुर्वसुमतीभर्ता वासुदेवो वसूत्तमः । यदूत्तमो यादवेन्द्रो माधवो वृष्णिवल्लभः ॥ ९ ॥

द्वारकेशो माथुरेशो दानी मानी महामनाः । पूर्णः पुराणः गुरुषः परेशः परमेश्वरः ॥ १० ॥

दुर्योधनने कहा—हे महामुनि प्राड्विपाकजी ! भगवान् बलभद्रके सहस्रनामको, जो देवताओं के लिये भी गोपनीय—अज्ञात है, मुझसे कहिये ॥ १ ॥ प्राड्विपाक मुनि बोले—साधु, साधु महाराज ! तुम्हारा यश सर्वथा निर्मल है । तुमने जिसके लिये प्रश्न किया है, वह परम देवदुर्लभ सहस्रनाम गर्गजीके द्वारा कथित है । उन दिव्य सहस्र नामोंका वर्णन मैं तुम्हारे सामने कर रहा हूँ । गर्गाचार्यजीने यमुनाजीके मङ्गलमय तटपर यह सहस्रनाम गोपियोंको प्रदान किया था ॥ २ ॥ इस बलभद्रसहस्रनाम-स्तोत्ररूपी मन्त्रके गर्गाचार्य ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, परमात्मा संकर्षण देवता हैं, बलभद्र बीज हैं, रेवतीरमण शक्ति हैं, अनन्त कीलक हैं, श्रीबलभद्रकी प्रीतिके लिये इसका विनियोग है ॥ ३ ॥ इसको प्रढ़कर सहस्रनाम-स्तोत्रके लिये विनियोगका जल छोड़ दे । तत्पश्चात् इस प्रकार ध्यान करे—जिनका निर्मल किरीट दमक रहा है, जो करधनी तथा कङ्कणोंसे अलंकृत हैं, चञ्चल अलकावलीसे जिनके कपोल सुशोभित हैं, जिनका मुख-कमल कुण्डलोंसे देदीप्यमान है, जो हिमाचल गिरिके समान मनोहर एवं उज्ज्वल हैं तथा नीलाम्बर धारण किये हुए हैं । विशाल हल-मुसल धारण करनेवाले उन भगवान् कामपाल बलभद्रजीका मैं स्तवन करता हूँ ॥ ४ ॥

सहस्रनाम आरम्भ

१. ॐ बलभद्र, २. रामभद्र, ३. राम, ४. संकर्षण, ५. अच्युत, ६. रेवतीरमण, ७. देव, ८. कामपाल, ९. हलायुध ॥ ५ ॥ १०. नीलाम्बर, ११. श्वेतवर्ण, १२. बलदेव, १३. अच्युताग्रज, १४. प्रलम्बघ्न, १५. महावीर, १६. रौहिणेय, १७. प्रतापवान् ॥ ६ ॥ १८. तालाङ्क, १९. मुसली, २०. हली, २१. हरि, २२. यदुवर, २३. बली, २४. सीरपाणि, २५. पद्मपाणि, २६. लगुडी, २७. वेणुवादन ॥ ७ ॥ २८. कालिन्दीभेदन, २९. वीर, ३०. बल, ३१. प्रबल, ३२. ऊर्ध्वग, ३३. वासुदेवकला, ३४. अनन्त, ३५. सहस्रवदन, ३६. २९. वीर, ३०. बल, ३१. प्रबल, ३२. ऊर्ध्वग, ३३. वासुदेव, ३४. वसूत्तम, ३५. यदूत्तम, ३६. यादवेन्द्र, स्वराट् ॥ ८ ॥ ३७. वसु, ३८. वसुमती, ३९. भर्ता, ४०. वासुदेव, ४१. वसूत्तम, ४२. यदूत्तम, ४३. यादवेन्द्र,

परिपूर्णतमः साक्षात्परमः पुरुषोत्तमः । अनन्तः शाश्वतः शेषो भगवान्प्रकृतेः परः ॥११॥
 जीवात्मा परमात्मा च ह्यन्तरात्मा ध्रुवोऽव्ययः । चतुर्व्यूहश्चतुर्वेदश्चतुर्मूर्तिश्चतुष्पदः ॥१२॥
 प्रधानं प्रकृतिः साक्षी संघातः संघवान् सखी । महामना बुद्धिसख्यन्तौऽहंकारआवृतः ॥१३॥
 इन्द्रियेशो देवतात्मा ज्ञानं कर्म च शर्म च । अद्वितीयो द्वितीयश्च निराकारो निरञ्जनः ॥१४॥
 विराट् सम्राट् महौघश्च धारः स्थास्तुश्चरिष्णुमान् । फणीन्द्रः फणिराजश्च सहस्रफणमण्डितः ॥१५॥
 फणीश्वरः फणी स्फूर्तिः फूत्कारी चीत्करः प्रभुः । मणिहारो मणिधरो वितली सुतली तली ॥१६॥
 अतली सुतलेशश्च पातालश्च तलातलः । रसातलो भोगितलः स्फुरद्दन्तो महातलः ॥१७॥
 वासुकिः शंखचूडामो देवदत्तो धनंजयः । कम्बलाश्वो वेगतरो धृतराष्ट्रो महाशुजः ॥१८॥
 वारुणीमदमत्तांगो मदघूर्णितलोचनः । पद्माक्षः पद्ममाली च वनमाली मधुश्रवाः ॥१९॥
 कीटिकंदर्पलावण्यो नागकन्यासमर्चितः । नूपुरी कटिसूत्री च कटकी कनकाङ्गदी ॥२०॥
 मुकुटी कुण्डली दण्डी शिखण्डी खंडमंडली । कलिः कलिप्रियः कालो निवातकवचेश्वरः ॥२१॥
 संहारकद्रुवयुः कालाग्निः प्रलयो लयः । महाहिः पाणिनिः शास्त्रभाष्यकारः पतञ्जलिः ॥२२॥
 कात्यायनः गङ्गामाभः स्फोटायन उरङ्गमः । वैकुण्ठो याज्ञिको यज्ञो वामनो हरिणो हरिः ॥२३॥
 कृष्णो विष्णुर्महाविष्णुः प्रभविष्णुर्विशेषवित् । हंसो योगेश्वरः कूर्मो वाराहो नारदो भुनिः ॥२४॥
 सनकः कपिलो मत्स्यः कमठो देवमङ्गलः । दत्तात्रेयः पृथुर्वृद्ध ऋषभो भार्गवोत्तमः ॥२५॥

४४. माधव, ४५. वृष्णिबल्लभ ॥ १॥ ४६. द्वारकेष, ४७. माधुरेश, ४८. दानी, ४९. मानी, ५०. महामना,
 ५१. पूर्ण, ५२. पुराण, ५३. पुरुष, ५४. परेश, ५५. परमेश्वर ॥ १० ॥ ५६. परिपूर्णतम, ५७. साक्षात्
 परम, ५८. पुरुषोत्तम, ५९. अनन्त, ६०. शाश्वत, ६१. शेष, ६२. भगवान्, ६३. प्रकृतिसे परे ॥ ११ ॥
 ६४. जीवात्मा, ६५. परमात्मा, ६६. अन्तरात्मा, ६७. ध्रुव, ६८. अव्यय, ६९. चतुर्व्यूह, ७०. चतुर्वेद,
 ७१. चतुर्मूर्ति, ७२. चतुष्पद ॥ १२ ॥ ७३. प्रधान, ७४. प्रकृति, ७५. साक्षी, ७६. संघात, ७७. संघवान्, ७८.
 सखी, ७९. महामना, ८०. बुद्धिसख, ८१. चेतस्, ८२. अहंकार, ८३. आवृत ॥ १३ ॥ ८४. इन्द्रियेश, ८५.
 देवता, ८६. आत्मा, ८७. ज्ञान, ८८. कर्म, ८९. शर्म, ९०. अद्वितीय, ९१. द्वितीय, ९२. निराकार ९३.
 निरञ्जन ॥ १४ ॥ ९४. विराट्, ९५. सम्राट्, ९६. महौघ, ९७. आधार, ९८. स्थास्तु, ९९. चरिष्णुमान्,
 १००. फणीन्द्र, १०१. फणिराज, १०२. सहस्रफणमण्डित ॥ १५ ॥ १०३. फणीश्वर, १०४. फणी,
 १०५. स्फूर्ति, १०६. फूत्कारी, १०७. चीत्कर, १०८. प्रभु, १०९. मणिहार, ११०. मणिधर, १११.
 वितली, ११२. सुतली, ११३. तली ॥ १६ ॥ ११४. अतली, ११५. सुतलेश, ११६. पाताल, ११७.
 तलातल, ११८. रसातल, ११९. भोगितल, १२०. स्फुरद्दन्त, १२१. महातल ॥ १७ ॥ १२२. वासुकि,
 १२३. शंखचूडाम, १२४. देवदत्त, १२५. धनंजय, १२६. कम्बलाश्व, १२७. वेगतर, १२८. धृतराष्ट्र,
 १२९. महाशुज ॥ १८ ॥ १३०. वारुणीमदमत्ताङ्ग, १३१. मदघूर्णितलोचन, १३२. पद्माक्ष, १३३. पद्ममाली,
 १३४. वनमाली, १३५. मधुश्रवा ॥ १९ ॥ १३६. कीटिकंदर्पलावण्य, १३७. नागकन्यासमर्चित, १३८.
 नूपुरी, १३९. कटिसूत्री, १४०. कटकी. १४१. कनकाङ्गदी ॥ २० ॥ १४२. मुकुटी, १४३. कुण्डली, १४४.
 दण्डी, १४५. शिखण्डी, १४६. खण्डमण्डली, १४७. कलि, १४८. कलिप्रिय, १४९. काल, १५०. निवात-
 कवचेश्वर ॥ २१ ॥ १५१. संहारकृत्, १५२. द्रुवयु, १५३. कालाग्नि, १५४. प्रलय, १५५. लय, १५६.
 महाहि ॥ २२ ॥ १५७. पाणिनि, १५८. शास्त्रकार, १५९. भाष्यकार, १६०. पतञ्जलि ॥ २२ ॥ १६१. कात्यायन,
 १६२. गङ्गामाभ, १६३. स्फोटायन, १६४. उरङ्गम, १६५. वैकुण्ठ, १६६. याज्ञिक, १६७. यज्ञ, १६८.
 वामन, १६९. हरिण, १७०. हरि ॥ २३ ॥ १७१. कृष्ण, १७२. विष्णु ॥ २४ ॥ १७३. महाविष्णु, १७४.
 प्रभविष्णु, १७५. विशेषवित्, १७६. हंस, १७७. योगेश्वर, १७८. कूर्म, १७९. वाराह, १८०. नारद,
 १८१. भुनि ॥ २४ ॥ १८२. सनक, १८३. कपिल, १८४. मत्स्य, १८५. कमठ, १८६. देवमङ्गल, १८७. दत्तात्रेय,

धन्वन्तरिर्नृसिंहश्च कल्किर्नारायणो नरः । रामचन्द्रो राघवेन्द्रः कोशलेन्द्रो रघूद्वहः ॥२६॥
 काकुत्स्थः करुणासिंधु राजेन्द्रः सर्वलक्षणः । शूरो दाशरथिस्त्राता कौशल्यानन्दवर्द्धनः ॥२७॥
 सौमित्रिर्भरतो धन्वा शत्रुघ्नः शत्रुतापनः । निपंगी कवची खड्गी शरी ज्याहृतकोष्ठकः ॥२८॥
 बद्धगोधाङ्गुलित्राणः शम्भुकोदण्डभञ्जनः । यज्ञत्राता यज्ञमर्ता मारीचवधकारकः ॥२९॥
 असुरारिस्ताडकारिविभीषणसहायकृत् । पितृवाक्यकरो हर्षी विराधारिवनेचरः ॥३०॥
 मुनिर्मुनिप्रियश्चित्रकूटारण्यनिवासकृत् । कबंधहा दण्डकेशो रामो राजावल्लोचनः ॥३१॥
 मतंगवनसंचारी नेता पंचवटीपतिः । सुग्रीवः सुग्रीवसखो हनुमत्प्रीतमानसः ॥३२॥
 सेतुबन्धो रावणारिलंकादहनतत्परः । रावण्यरिः पुष्पकस्थो जानकीविरहातुरः ॥३३॥
 अयोध्याधिपतिः श्रीमाल्लवणारिः सुरार्चितः । सूर्यवंशी चंद्रवंशी वंशीवाद्यविशारदः ॥३४॥
 गोपतिर्गोपवृन्देशो गोपो गोपीशतावृतः । गोकुलेशो गोपपुत्रो गोपालो गोगणाश्रयः ॥३५॥
 पूतनारिर्वकारिश्च तृणावर्तनिपातकः । अघारिर्धेनुकारिश्च प्रलंवारिर्ब्रजेश्वरः ॥३६॥
 अरिष्टहा केशिशत्रुर्व्योमासुरविनाशकृत् । अग्निपानो दुग्धपानो वृन्दावनलताश्रितः ॥३७॥
 यशोमतीसुतो भव्यो रोहिणीलालितः शिशुः । रासमंडलमध्यस्थो रासमंडलमंडनः ॥३८॥
 गोपिकाशतयूथार्थी शंखचूडवधोद्यतः । गोवर्द्धनसमुद्धर्ता शक्रजिद्वज्ररक्षकः ॥३९॥
 वृषभानुवरो नन्द आनन्दो नन्दवर्द्धनः । नन्दराजसुतः श्रीशः कंसारिः कालियांतकः ॥४०॥
 रजकारिर्मुष्टिकारिः कंसकोदण्डभञ्जनः । चाणूरारिः कूटहन्ता शलारिस्तोशलान्तकः ॥४१॥

१८८. पृष्ठ, १८९. वृद्ध, १९०. ऋषभ, १९१. भार्गवोत्तम ॥ २५ ॥ १९२. धन्वन्तरि, १९३. नृसिंह, १९४. कल्कि, १९५. नारायण, १९६. नर, १९७. रामचन्द्र, १९८. राघवेन्द्र, १९९. कोशलेन्द्र, २००. रघूद्वह ॥२६॥
 २०१. काकुत्स्थ, २०२. करुणासिन्धु, २०३. राजेन्द्र, २०४. सर्वलक्षण, २०५. शूर, २०६. दाशरथि, २०७. त्राता, २०८. कौशल्यानन्दवर्द्धन ॥ २७ ॥ २०९. सौमित्रि, २१०. भरत, २११. धन्वी, २१२. शत्रुघ्न, २१३. शत्रुतापन, २१४. निषङ्गी, २१५. कवची, २१६. खड्गी, २१७. शरी, २१८. ज्याहृतकोष्ठक ॥ २८ ॥
 २१९. बद्धगोधाङ्गुलित्राण, २२०. शम्भुकोदण्डभञ्जन, २२१. यज्ञत्राता, २२२. यज्ञमर्ता, २२३. मारीचवध-
 कारक ॥ २९ ॥ २२४. असुरारि, २२५. ताडकारि, २२६. विभीषणसहायकृत्, २२७. पितृवाक्यकर, २२८. हर्षी, २२९. विराधारि, २३०. वनेचर ॥ ३० ॥ २३१. मुनि, २३२. मुनिप्रिय, २३३. चित्रकूट-
 ण्यनिवासकृत्, २३४. कबंधहा, २३५. दण्डकेश, २३६. राम, २३७. राजावल्लोचन ॥ ३१ ॥ २३८. मतङ्ग, २३९. वनसंचारी, २४०. नेता, २४१. पञ्चवटीपति, २४२. सुग्रीव, २४३. सुग्रीवसखा, २४४. हनुमत्प्रीतमानस ॥ ३२ ॥ २४५. सेतुबन्ध, २४६. रावणारि, २४७. लंकादहनतत्पर, २४८. रावण्यरि, २४९. पुष्पकस्थ, २५०. जानकीविरहातुर ॥ ३३ ॥ २५१. अयोध्याधिपति, २५२. श्रीमान्, २५३. लवणारि, २५४. सुरार्चित, २५५. सूर्यवंशी, २५६. चन्द्रवंशी, २५७. वंशीवाद्यविशारद ॥ ३४ ॥ २५८. गोपति, २५९. गोपवृन्देश, २६०. गोप, २६१. गोपीशतावृत, २६२. गोकुलेश, २६३. गोपपुत्र, २६४. गोपाल, २६५. गोगणाश्रय ॥ ३५ ॥ २६६. पूतनारि, २६७. वकारि, २६८. तृणावर्तनिपातक, २६९. अघारि, २७०. धेनुकारि, २७१. प्रलम्वारि, २७२. ब्रजेश्वर ॥ ३६ ॥ २७३. अरिष्टहा, २७४. केशिशत्रु, २७५. व्योमासुर-
 विनाशकृत्, २७६. अग्निपान, २७७. दुग्धपान, २७८. वृन्दावनलता, २७९. आश्रित ॥ ३७ ॥ २८०. यशो-
 मतीसुत, २८१. भव्य, २८२. रोहिणीलालित, २८३. शिशु, २८४. रासमण्डलमध्यस्थ, २८५. रासमण्डलमण्डन
 ॥ ३८ ॥ २८६. गोपिकाशतयूथार्थी, २८७. शंखचूडवधोद्यत, २८८. गोवर्द्धनसमुद्धर्ता, २८९. शत्रुजित्,
 २९०. वज्ररक्षक ॥ ३९ ॥ २९१. वृषभानुवर, २९२. नन्द, २९३. आनन्द, २९४. नन्दवर्द्धन, २९५. नन्दराज-
 सुत, २९६. श्रीश, २९७. कंसारि, २९८. कालियान्तक ॥ ४० ॥ २९९. रजकारि, ३००. मुष्टिकारि, ३०१
 कंसकोदण्डभञ्जन, ३०२. चाणूरारि, ३०३. कूटहन्ता, ३०४. शलारि, ३०५. तोशलान्तक ॥ ४१ ॥

कंसभ्रातृनिहन्ता च मल्लयुद्धप्रवर्तकः । गजहन्ता कंसहन्ता कालहन्ता कलंकहा ॥४२॥
 मागधारिर्यवनहा पाण्डुपुत्रसहायकृत् । चतुर्भुजः श्यामलाङ्गः सौम्यश्चौपगविप्रियः ॥४३॥
 युद्धभृदुद्धवसखा मन्त्री मन्त्रविशारदः । वीरहा वीरमथनः शंखचक्रगदाधरः ॥४४॥
 रेवतीचित्तहर्ता च रैवतीहर्षवर्द्धनः । रेवतीप्राणनाथश्च रेवतीप्रियकारकः ॥४५॥
 ज्योतिर्ज्योतिष्मतीभर्ता रेवताद्विविहारकृत् । धृतिनाथो धनाध्यक्षो दानाध्यक्षो धनेश्वरः ॥४६॥
 मैथिलाचितपादाब्जो मानदो भक्तवत्सलः । दुर्योधनगुरुर्गुर्वीगदाशिक्षाकरः क्षमी ॥४७॥
 मुरारिमेदनो मन्दोऽनिरुद्धो धन्विनां वरः । कल्पवृक्षः कल्पवृक्षी कल्पवृक्षवनप्रभुः ॥४८॥
 स्यमन्तकमणिर्मन्यो गाण्डीवी कौरवेश्वरः । कृष्णमाण्डखण्डनकरः कूपकर्णप्रहारकृत् ॥४९॥
 सेव्यो रैवतजामाता मधुमाधवसेवितः । बलिष्ठपुष्टसर्वाङ्गा हृष्टः पुष्टः प्रहर्षितः ॥५०॥
 वाराणसीगतः क्रुद्धः सर्वः पौण्ड्रकघातकः ।

सुनन्दी शिखरी शिल्पी द्विविदाङ्गनिषूदनः ॥५१॥

हस्तिनापुरसंकर्षी रथी कौरवपूजितः । विश्वकर्मा विश्वधर्मा देवशर्मा दयानिधिः ॥५२॥
 महाराजच्छत्रधरो महाराजोपलक्षणः । सिद्धगीतः सिद्धकथः शुक्लचामरवीजितः ॥५३॥
 ताराक्षः कीरनासश्च बिम्बोष्ठः सुस्मितच्छविः । करीन्द्रकरदोर्दण्डः प्रचण्डो मेघमण्डलः ॥५४॥
 कपाटवक्षाः पीनांसः पद्मपादस्फुरद्भुतिः । महाविभूतिर्भूतेशो बन्धमोक्षी समीक्षणः ॥५५॥
 चैद्यशत्रुः शत्रुसंघो दन्तवक्रनिषूदकः । अजातशत्रुः पापघ्नो हरिदाससहायकृत् ॥५६॥
 शालबाहुः शाल्वहन्ता तीर्थयायी जनेश्वरः । नैमिषारण्ययात्रार्थी गोमतीतीरवासकृत् ॥५७॥

३०६. कंसभ्रातृनिहन्ता, ३०७. मल्लयुद्धप्रवर्तक, ३०८. गजहन्ता, ३०९. कंसहन्ता, ३१०. कालहन्ता, ३११. कलंकहा ॥ ४२ ॥ ३१२. मागधारि, ३१३. यवनहा, ३१४. पाण्डुपुत्रसहायकृत्, ३१५. चतुर्भुज, ३१६. श्यामलाङ्ग, ३१७. सौम्य, ३१८. औपगविप्रिय ॥ ४३ ॥ ३१९. युद्धभृत्, ३२०. उद्धवसखा, ३२१. मन्त्री, ३२२. मन्त्रविशारद, ३२३. वीरहा, ३२४. वीरमथन, ३२५. शङ्खधर, ३२६. चक्रधर, ३२७. गदाधर ॥ ४४ ॥ ३२८. रेवतीचित्तहर्ता, ३२९. रेवतीहर्षवर्द्धन, ३३०. रेवतीप्राणनाथ, ३३१. रेवती-प्रियकारक ॥ ४५ ॥ ३३२. ज्योति, ३३३. ज्योतिष् तीभर्ता, ३३४. रेवताद्विविहारकृत्, ३३५. धृतिनाथ, ३३६. धनाध्यक्ष, ३३७. दानाध्यक्ष, ३३८. धनेश्वर ॥ ४६ ॥ ३३९. मैथिलाचितपादाब्ज, ३४०. मानद, ३४१. भक्तवत्सल, ३४२. दुर्योधनगुरु, ३४३. गुर्वी, ३४४. गदाशिक्षाकर, ३४५. क्षमी ॥ ४७ ॥ ३४६. मुरारि, ३४७. मदन, ३४८. मन्द, ३४९. अनिरुद्ध, ३५०. धन्विनां वर, ३५१. कल्पवृक्ष, ३५२. कल्पवृक्षी, ३५३. कल्पवृक्षवनप्रभु ॥ ४८ ॥ ३५४. स्यमन्तकमणि, ३५५. मन्य, ३५६. गाण्डीवी, ३५७. कौरवेश्वर, ३५८. कृष्णमाण्डखण्डनकर, ३५९. कूपकर्णप्रहारकृत् ॥ ४९ ॥ ३६०. सेव्य, ३६१. रैवत-जामाता, ३६२. मधुसेवित, ३६३. माधवसेवित, ३६४. बलिष्ठ, ३६५. पुष्टसर्वाङ्ग, ३६६. हृष्ट, ३६७. ३६८. प्रहर्षित ॥ ५० ॥ ३६९. वाराणसीगत, ३७०. क्रुद्ध, ३७१. सर्व, ३७२. पौण्ड्रकघातक, ३७३. सुनन्दी, ३७४. शिखरी, ३७५. शिल्पी, ३७६. द्विविदाङ्गनिषूदन ॥ ५१ ॥ ३७७. हस्तिनापुरसंकर्षी, ३७८. रथी, ३७९. कौरवपूजित, ३८०. विश्वकर्मा, ३८१. विश्वधर्मा, ३८२. देवशर्मा, ३८३. दयानिधि ॥ ५२ ॥ ३८४. महाराज, ३८५. छत्रधर, ३८६. महाराजोपलक्षण, ३८७. सिद्धगीत, ३८८. सिद्धकथ, ३८९. शुक्लचामरवीजित ॥ ५३ ॥ ३९०. ताराक्ष, ३९१. कीरनास, ३९२. बिम्बोष्ठ, ३९३. सुस्मितच्छवि, ३९४. करीन्द्र, ३९५. करदोर्दण्ड, ३९६. प्रचण्ड, ३९७. मेघमण्डल, ॥ ५४ ॥ ३९८. कपाटवक्षा, ३९९. पीनांस, ४००. पद्मपाद, ४०१. स्फुरद्भुति, ४०२. महाविभूति, ४०३. भूतेश, ४०४. बन्धमोक्षी, ४०५. समीक्षण ॥ ५५ ॥ ४०६. चैद्यशत्रु, ४०७. शत्रुसंघ, ४०८. दन्तवक्रनिषूदक, ४०९. अजातशत्रु ४१०. पापघ्न, ४११. हरिदाससहायकृत् ॥ ५६ ॥ ४१२. शालबाहु, ४१३. शाल्वहन्ता, ४१४. तीर्थयायी, ४१५. जनेश्वर, ४१६. नैमिषारण्ययात्रार्थी, ४१७.

गण्डकीस्नानवान्स्नग्नी वैजयन्तीविराजितः । अम्लानपंकजधरो विपाशी शोणसंप्लुतः ॥५८॥
 प्रयागतीर्थराजश्च सरयूः सेतुबन्धनः । गयाशिरश्च धनदः पौलस्त्यः पुलहाश्रमः ॥५९॥
 गङ्गासागरसंगार्थी सप्तगोदावरीपतिः । वेणी भीमरथी गोदा ताम्रपर्णी वटोदकः ॥६०॥
 कृतमाला महापुण्या कावेरी च पयस्विनी । प्रतीची सुप्रभा वेणी त्रिवेणी सरयूपमा ॥६१॥
 कृष्णा पंपा नर्मदा च गंगा भागीरथी नदी । सिद्धाश्रमः प्रभासश्च बिन्दुबिन्दुसरोवरः ॥६२॥
 पुष्करः सैन्धवो जंबू नरनारायणाश्रमः । कुलक्षेत्रपती रामो जामदग्न्यो महामुनिः ॥६३॥
 इल्वलात्मजहन्ता च सुदामासौख्यदायकः । विश्वजिद्विश्वनाथश्च त्रिलोकविजयी जयी ॥६४॥
 वसन्तमालतीकर्षी गदो गद्यो गदाग्रजः । गुणार्णवो गुणानधिगुणपात्रो गुणाकरः ॥६५॥
 रंगवल्लीजलाकारो निर्गुणः सगुणो बृहत् । दृष्टः श्रुतो भवद्भूतो भविष्यच्चाल्पविग्रहः ॥६६॥
 अनादिरादिरानन्दः प्रत्यग्धामा निरन्तरः । गुणातीतः समः साम्यः समदृढ् निर्विकल्पकः ॥६७॥
 गूढान्यूढो गुणो गौणो गुणामासो गुणावृतः । नित्योऽक्षरो निर्विकारोऽक्षरोऽजस्रसुखोऽमृतः ॥६८॥
 सर्वगः सर्ववित्सार्थः समबुद्धिः समप्रभः । अक्लेद्योऽक्लेद्य आपूर्णो शोष्यो दाह्यो निवर्तकः ॥६९॥
 ब्रह्म ब्रह्मधरो ब्रह्मा ज्ञापको व्यापकः कविः । अध्यात्मकोऽधिभूतश्चाधिदैवः स्वाश्रयाश्रयः ॥७०॥
 महावायुर्महावीरश्चेष्टारूपतनुस्थितः । प्रेरको बोधको बोधी त्रयोविंशतिको गणः ॥७१॥
 अंशांशश्च नरावेशोऽवतारो भूपरि स्थितः । महर्जनस्तपःसत्यं भूर्भुवःस्वरिति त्रिधा ॥७२॥
 नैमित्तिकः प्राकृतिक आत्यन्तिकमयो लयः । सर्गो विसर्गः सर्गादिर्निरोधो रौध ऊतिमान् ॥७३॥

गोमतीतीरवासकृत् ॥ ५७ ॥ ४१८. गण्डकीस्नानवान्, ४१९. स्नग्नी, ४२०. वैजयन्तीविराजित, ४२१. अम्लान, ४२२. पङ्कजधर, ४२३. विपाशी, ४२४. शोणसंप्लुत ॥ ५८ ॥ ४२५. प्रयागतीर्थराज, ४२६. सरयू, ४२७. सेतुबन्धन, ४२८. गयाशिर, ४२९. धनद, ४३०. पौलस्त्य, ४३१. पुलहाश्रम ॥ ५९ ॥ ४३२. गङ्गासागर-सङ्गार्थी ॥ ४३३. सप्तगोदावरीपति, ४३४. वेणी, ४३५. भीमरथी, ४३६. गोदा, ४३७. ताम्रपर्णी, ४३८. वटोदक ॥ ६० ॥ ४३९. कृतमाला, ४४०. महापुण्या, ४४१. कावेरी, ४४२. पयस्विनी, ४४३. प्रतीची, ४४४. सुप्रभा, ४४५. वेणी, ४४६. त्रिवेणी, ४४७. सरयूपमा ॥ ६१ ॥ ४४८. कृष्णा, ४४९. पम्पा, ४५०. नर्मदा, ४५१. गङ्गा, ४५२. भागीरथी, ४५३. नदी, ४५४. सिद्धाश्रम, ४५५. प्रभास, ४५६. बिन्दु, ४५७. बिन्दुसरोवर ॥ ६२ ॥ ४५८. पुष्कर, ४५९. सैन्धव, ४६०. जम्बू, ४६१. नरनारायणाश्रम, ४६२. कुल-क्षेत्रपति, ४६३. राम, ४६४. जामदग्न्य, ४६५. महामुनि ॥ ६३ ॥ ४६६. इल्वलात्मजहन्ता, ४६७. सुदामा, ४६८. सौख्यदायक, ४६९. विश्वजित्, ४७०. विश्वनाथ, ४७१. त्रिलोकविजयी, ४७२. जयी ॥ ६४ ॥ ४७३. वसन्तमालतीकर्षी, ४७४. गद, ४७५. गद्य, ४७६. गदाग्रज, ४७७. गुणार्णव, ४७८. गुणनिधि, ४७९. गुणपात्री, ४८०. गुणाकर ॥ ६५ ॥ ४८१. रङ्गवल्ली, ४८२. जलाकार, ४८३. निर्गुण, ४८४. सगुण, ४८५. बृहत्, ४८६. दृष्ट, ४८७. श्रुत, ४८८. भवत्, ४८९. भूत, ४९०. भविष्यत्, ४९१. अल्पविग्रह ॥ ६६ ॥ ४९२. अनादि, ४९३. आदि, ४९४. आनन्द, ४९५. प्रत्यग्धामा, ४९६. निरन्तर, ४९७. गुणातीत, ४९८. सम, ४९९. साम्य, ५००. समदृढ्, ५०१. निर्विकल्पक ॥ ६७ ॥ ५०२. गूढ, ५०३. व्यूढ, ५०४. गुण, ५०५. गौण, ५०६. गुणामास, ५०७. गुणावृत, ५०८. नित्य, ५०९. अक्षर, ५१०. निर्विकार, ५११. क्षर, ५१२. अजस्रसुख, ५१३. अमृत ॥ ६८ ॥ ५१४. सर्वग, ५१५. सर्ववित्, ५१६. सार्थ, ५१७. समबुद्धि, ५१८. समप्रभ, ५१९. अक्लेद्य, ५२०. अक्लेद्य, ५२१. आपूर्ण, ५२२. अशोष्य, ५२३. अदाह्य, ५२४. अनिवर्तक ॥ ६९ ॥ ५२५. ब्रह्म, ५२६. ब्रह्मधर, ५२७. ब्रह्मा, ५२८. ज्ञापक, ५२९. व्यापक, ५३०. कवि, ५३१. अध्यात्म, ५३२. अधिभूत, ५३३. अधिदैव, ५३४. स्वाश्रय, ५३५. अश्रय ॥ ७० ॥ ५३६. महावायु, ५३७. महावीर, ५३८. चेष्टा, ५३९. रूपतनुस्थित, ५४०. प्रेरक, ५४१. बोधक, ५४२. बोधी, ५४३. त्रयोविंशतिकगण ॥ ७१ ॥ ५४४. अंशांश, ५४५. नरावेश, ५४६. अवतार, ५४७. भूपरिस्थित, ५४८. मह, ५४९. जन, ५५०. तप, ५५१. सत्य, ५५२. अ, ५५३. भुव, ५५४. स्व,

मन्वन्तरावतारश्च मनुर्मनुसुतोऽनघः । स्वयंभूः शांभवः शंकुः स्वायंभुवसहायकृत् ॥७४॥
 सुरालयो देवगिरिर्मेरुर्हेमाचितो गिरिः । गिरिशो गणनाथश्च गौरीशो गिरिगह्वरः ॥७५॥
 विंध्यस्त्रिकूटो मैनाकः सुवेलः पारिमद्रकः । पतंगः शिशिरः कंको जारुधिः शैलसत्तमः ॥७६॥
 कालञ्जरो बृहत्सानुर्दरीभृन्नन्दिकेश्वरः । संतानस्तरुराजश्च मन्दारः पारिजातकः ॥७७॥
 त्रयन्तकृञ्जयन्तांगो, जयन्तीदग्जयाकुलः । वृत्रहा देवलोकश्च शशी कुमुदबान्धवः ॥७८॥
 नक्षत्रेशः सुधासिधुर्मृगः पुष्यः पुनर्वसुः । हस्तोऽभिजिच्च श्रवणो वैधृतिर्भास्करोदयः ॥७९॥
 ऐन्द्रः साध्यः शुभः शुक्लो व्यतीपातो ध्रुवः सितः । शिशुमारो देवमयो ब्रह्मलोको विलक्षणः ॥८०॥
 रामो वैकुण्ठनाथश्च व्यापी वैकुण्ठनायकः । श्वेतद्वीपो जितपदो लोकालोकाचलाश्रितः ॥८१॥
 भूमिवैकुण्ठदेवश्च कोटिब्रह्माण्डकारकः । असंख्यब्रह्माण्डपतिर्गोलोकेशो गवां पतिः ॥८२॥
 गोलोकधामधिषणो गोपिकाकण्ठभूषणः । श्रीधरः श्रीधरो लीलाधरो गिरिधरो धुरी ॥८३॥
 कुन्तधारी त्रिशूली च बीभत्सी घर्घरस्वनः । शूलसूच्यर्पितगजो गजचर्मधरो गजी ॥८४॥
 अन्नमाली मुण्डमाली व्याली दण्डकमण्डलुः । वेतालभृद्भूतसंघः कूष्माण्डगणसंवृतः ॥८५॥
 प्रमथेशः पशुपतिर्मृडानीशो मृडो वृषः । कृतांतकालसंधारिः कूटः कल्पांतभैरवः ॥८६॥
 षडाननो वीरभद्रो दक्षयज्ञविधातकः । खर्पराशी विषाशी च शक्तिहस्तः शिवार्थदः ॥८७॥
 पिनाकटंकारकरश्चलज्जकारनूपुरः । पण्डितस्तर्कविद्वान्वै वेदपाठी श्रुतीश्वरः ॥८८॥
 वेदान्तकृत्सांख्यशास्त्री मीमांसी कणनामभाक् । काणादिगौतमो वादी वादो नैयायिको नयः ॥८९॥

॥ ७२ ॥ ५५५. नैमित्तिक, ५५६. प्राकृतिक, ५५७. आत्यन्तिकमय लय, ५५८. सर्ग, ५५९. विसर्ग, ५६०. सर्गादि, ५६१. निरोध, ५६२. रोध, ५६३. ऊतिमात्र ॥ ७३ ॥ ५६४. मन्वन्तरावतार, ५६५. मनु, ५६६. मनु-
 सुत, ५६७. अनघ, ५६८. स्वयम्भू, ५६९. शांभव, ५७०. शंकु, ५७१. स्वायंभुवसहायकृत् ॥ ७४ ॥ ५७२.
 सुरालय, ५७३. देवगिरि, ५७४. मेरु, ५७५. हेम, ५७६. अचित, ५७७. गिरि, ५७८. गिरिश, ५७९. गणनाथ,
 ५८०. गौरी, ५८१. ईश, ५८२. गिरिगह्वर ॥ ७५ ॥ ५८३. विंध्य, ५८४. त्रिकूट, ५८५. मैनाक, ५८६. सुवेल,
 ५८७. पारिमद्रक, ५८८. पतंग, ५८९. शिशिर, ५९०. कङ्क, ५९१. जारुधि, ५९२. शैलसत्तम ॥ ७६ ॥ ५९३.
 कालञ्जर, ५९४. बृहत्सानु, ५९५. दरीभृत्, ५९६. नन्दिकेश्वर, ५९७. संतान, ५९८. तरुराज, ५९९. मन्दार,
 ६००. पारिजातक ॥ ७७ ॥ ६०१. जयन्तकृत्, ६०२. जयन्ताङ्ग, ६०३. जयन्ती, ६०४. दिक्, ६०५. जयाकुल,
 ६०६. वृत्रहा, ६०७. देवलोक, ६०८. शशी, ६०९. कुमुदवान्धव ॥ ७८ ॥ ६१०. नक्षत्रेश, ६११. सुधा, ६१२.
 सिन्धु, ६१३. मृग, ६१४. पुष्य, ६१५. पुनर्वसु, ६१६. हस्त, ६१७. अभिजित्, ६१८. श्रवण, ६१९. वैधृत्,
 ६२०. भास्करोदय ॥ ७९ ॥ ६२१. ऐन्द्र, ६२२. साध्य, ६२३. शुभ, ६२४. शुक्ल, ६२५. व्यतीपात, ६२६. ध्रुव,
 ६२७. सित, ६२८. शिशुमार, ६२९. देवमय, ६३०. ब्रह्मलोक, ६३१. विलक्षण ॥ ८० ॥ ६३२. राम,
 ६३३. वैकुण्ठनाथ, ६३४. व्यापी, ६३५. वैकुण्ठनायक, ६३६. श्वेतद्वीप, ६३७. अजितपद, ६३८. लोकालोका-
 चलाश्रित, ॥ ८१ ॥ ६३९. भूमि, ६४०. वैकुण्ठदेव, ६४१. कोटिब्रह्माण्डकारक, ६४२. असंख्यब्रह्माण्ड-
 पति, ६४३. गोलोकेश, ६४४. गवां पति ॥ ८२ ॥ ६४५. गोलोकधामधिषण, ६४६. गोपिकाकण्ठभूषण,
 ६४७. श्रीधर, ६४८. श्रीधर, ६४९. लीलाधर, ६५०. गिरिधर, ६५१. धुरी ॥ ८३ ॥ ६५२. कुन्तधारी,
 ६५३. त्रिशूली, ६५४. बीभत्सी, ६५५. घर्घरस्वन, ६५६. शूलार्पितगज, ६५७. सूच्यर्पितगज, ६५८.
 गजचर्मधर, ६५९. गजी ॥ ८४ ॥ ६६०. अन्नमाली, ६६१. मुण्डमाली, ६६२. व्याली, ६६३. दण्डक-
 मण्डलु, ६६४. वेतालभृत्, ६६५. भूतसंघ, ६६६. कूष्माण्डगणसंवृत ॥ ८५ ॥ ६६७. प्रमथेश, ६६८. पशुपति,
 ६६९. मृडानी, ६७०. ईश, ६७१. मृड, ६७२. वृष, ६७३. कृतान्तसंधारि, ६७४. कालसंधारि, ६७५.
 कूट, ६७६. कल्पांतभैरव, ॥ ८६ ॥ ६७७. षडानन, ६७८. वीरभद्र, ६७९. दक्षयज्ञविधातक, ६८०. खर्पराशी,
 ६८१. विषाशी, ६८२. शक्तिहस्त, ६८३. शिव, ६८४. अर्थद, ॥ ८७ ॥ ६८५. पिनाकटंकारकर, ६८६.
 चलज्जकारनूपुर, ६८७. पण्डित, ६८८. तर्कविद्वान्, ६८९. वेदपाठी, ६९०. श्रुतीश्वर ॥ ८८ ॥ ६९१. वेदान्त-

वैशेषिको धर्मशास्त्री सर्वशास्त्रार्थतत्त्वगः । वैयाकरणकृच्छंदो वैयासः प्राकृतिर्वचः ॥९०॥
 पाराशरीसंहितावित्काव्यकृत्नाटकप्रदः । पौराणिकः स्मृतिकरो वैद्यो विद्याविशारदः ॥९१॥
 अलंकारो लक्षणार्थो व्यंग्यविद्वनवद्वनिः । वाक्यस्फोटः पदस्फोटः स्फोटवृत्तिश्च सार्थवित् ॥९२॥
 शृंगार उज्ज्वलः स्वच्छोऽद्भुतो हास्यो भयानकः । अश्वत्थो यवभोजी च यवक्रीतो यवाशनः ॥९३॥
 प्रह्लादरक्षकः स्निग्ध ऐलवंशविवर्द्धनः । गताधिरंवरीषांगो विगाधिर्गाधिनां वरः ॥९४॥
 नानामणिसमाकीर्णो नानारत्नविभूषणः । नानापुष्पधरः पुष्पी पुष्पधन्वा प्रपुष्पितः ॥९५॥
 नानाचंदनगन्धाढ्यो नानापुष्परसार्चितः । नानावर्णमयो वर्णो नानावस्त्रधरः सदा ॥९६॥
 नानापद्मकरः कौशी नानाकौशेयवेषधृक् । रत्नकंबलधारी च धौतवस्त्रसमावृतः ॥९७॥
 उत्तरीयधरः पूर्णो घनकञ्चुकसंघवान् । पीतोष्णीषः सितोष्णीषो रक्तोष्णीषो दिगंबरः ॥९८॥
 दिव्यांगो दिव्यरचनो दिव्यलोकावलोकितः । सर्वोपमो निरुपमो गोलोकांकीकृतां गणः ॥९९॥
 कृतस्वोत्संगगो लोकः कण्डलीभूत आस्थितः । माथुरो माथुरादर्शी चलत्स्वजनलोचनः ॥१००॥
 दधिहर्ता दुग्धहरो नवनीतसिताशनः । तक्रभुक् तक्रहारी च दधिचौर्यकृतश्रमः ॥१०१॥
 प्रभावतीबद्धकरो दामी दामोदरो दमी । सिकताभूमिचारी च बालकेलिर्ब्रजार्मकः ॥१०२॥
 धूलिधूसरसर्वाङ्गः काकपक्षधरः सुधीः । मुक्तकेशो वत्सवृन्दः कालिन्दीकूलवीक्षणः ॥१०३॥
 जलकोलाहली कूली पङ्कप्राङ्गणलेपकः । श्रीवृन्दावनसंचारी वंशीवटतटस्थितः ॥१०४॥
 महावननिवासी च लोहागलवनाधिपः । साधुः प्रियतमः साध्यः साध्वीशो गतसाध्वस ॥१०५॥

कृत्, ६९२. सांख्यशास्त्री, ६९३. मीमांसी, ६९४. कणनामभाक्, ६९५. काणादि, ६९६. गौतम, ६९७.
 वादी, ६९८. वाद, ६९९. नैयायिक, ७००. नय, ॥ ८२ ॥ ७०१. वैशेषिक ७०२. धर्मशास्त्री, ७०३. सर्वशास्त्रार्थ-
 तत्त्वग, ७०४. वैयाकरणकृत्, ७०५. छन्द, ७०६. वैयास, ७०७. प्राकृति, ७०८. वचन ॥ ९० ॥ ७०९.
 पाराशरीसंहितावित्, ७१०. काव्यकृत्, ७११. नाटकप्रद, ७१२. पौराणिक, ७१३. स्मृतिकर, ७१४.
 वैद्य, ७१५. विद्याविशारद ॥ ९१ ॥ ७१६. अलंकार, ७१७. लक्षणार्थ, ७१८. व्यङ्ग्यवित्, ७१९. ध्वनिवित्,
 ७२०. ध्वनि, ७२१. वाक्यस्फोट, ७२२. पदस्फोट, ७२३. स्फोटवृत्ति, ७२४. रसार्थवित् ॥ ९२ ॥ ७२५.
 शृङ्गार, ७२६. उज्ज्वल, ७२७. स्वच्छ, ७२८. अद्भुत, ७२९. हास्य, ६३०. भयानक, ७३१. अश्वत्थ,
 ७३२. यवभोजी, ७३३. यवक्रीत, ७३४. यवाशन ॥ ९३ ॥ ७३५. प्रह्लादरक्षक, ७३६. स्निग्ध, ७३७.
 ऐलवंशविवर्द्धन, ७३८. गताधि, ७३९. अश्वरीषाङ्ग, ७४०. विगाधि, ७४१. गाधीनां वर ॥ ९४ ॥ ७४२.
 नानामणिसमाकीर्ण, ७४३. नानारत्नविभूषण, ७४४. नानापुष्पधर, ७४५. पुष्पी, ७४६. पुष्पधन्वा, ७४७.
 प्रपुष्पित ॥ ९५ ॥ ७४८. नानाचन्दनगन्धाढ्य, ७४९. नानापुष्परसार्चित, ७५०. नानावर्णमय, ७५१. वर्ण,
 ७५२. सदा नानावस्त्रधर ॥ ९६ ॥ ७५३. नानापद्मकर, ७५४. कौशी, ७५५. नानाकौशेयवेषधृक्, ७५६.
 रत्नकम्बलधारी, ७५७. धौतवस्त्रसमावृत ॥ ९७ ॥ ७५८. उत्तरीयधर, ७५९. पूर्ण, ७६०. घनकञ्चुकवान्,
 ७६१. संघवान्, ७६२. पीतोष्णीष, ७६३. सितोष्णीष, ७६४. रक्तोष्णीष, ७६५. दिगम्बर ॥ ९८ ॥ ७६६.
 दिव्याङ्ग, ७६७. दिव्यरचन, ७६८. दिव्यलोकविलोकित, ७६९. सर्वोपम, ७७०. निरुपम, ७७१. गोलोकाङ्गी-
 कृताङ्गण ॥ ९९ ॥ ७७२. कृतस्वोत्सङ्गगोलोक, ७७३. कण्डली, ७७४. भूत, ७७५. आस्थित, ७७६. माथुर,
 ७७७. माथुरा, ७७८. आदर्शी, ७७९. चलत्स्वजनलोचन ॥ १०० ॥ ७८०. दधिहर्ता, ७८१. दुग्धहर्, ७८२.
 नवनीतसिताशन, ७८३. तक्रभुक्, ७८४. तक्रहारी, ७८५. दधिचौर्यकृतश्रम ॥ १०१ ॥ ७८६. प्रभावतीबद्धकर,
 ७८७. दामी, ७८८. दामोदर, ७८९. दमी, ७९०. सिकताभूमिचारी, ७९१. बालकेलि, ७९२. ब्रजार्मक
 ॥ १०२ ॥ ७९३. धूलिधूसरसर्वाङ्ग, ७९४. काकपक्षधर, ७९५. सुधी, ७९६. मुक्तकेश, ७९७. वत्सवृन्द, ७९८.
 कालिन्दीकूलवीक्षण ॥ १०३ ॥ ७९९. जलकोलाहली, ८००. कूली, ८०१. पङ्कप्राङ्गणलेपक, ८०२. श्रीवृन्दावनसंचारी
 ८०३. वंशीवटतटस्थित ॥ १०४ ॥ ८०४. महावननिवासी, ८०५. लोहागलवनाधिप, ८०६. साधु, ८०७.

रंगनाथो विट्टलेशो मुक्तिनाथोऽघनाशकः । सुकीर्तिः सुयशाः स्फीतो यशस्वी रंगरंजनः ॥१०६॥
 रागषट्को रागपुत्रो रागिणीरमणोत्सुकः । दीपको मेघमन्दारः श्रीरागो मालकोशकः ॥१०७॥
 हिन्दोलो भैरवाख्यश्च स्वरजातिस्मरो मृदुः । तालो मानप्रमाणश्च स्वरगम्यः कलाक्षरः ॥१०८॥
 शमी श्यामी शतानन्दः शतयामः शतक्रतुः । जागरः सुप्त आसुप्तः सुषुप्तः स्वप्न उर्वरः ॥१०९॥
 ऊर्जः स्फूर्जो निर्जरश्च विज्वरो ज्वरवर्जितः । ज्वराज्ज्वरकर्ता च ज्वरयुक् त्रिज्वरो ज्वरः ॥११०॥
 जम्बवान् जम्बकाशङ्की जम्बूद्वीपो द्विपारिहा । शाल्मलिः शाल्मलिद्वीपः प्लक्षः प्लक्षवनेश्वरः ॥१११॥
 कुशधारी कुशः कौशी कौशिकः कुशविग्रहः । कुशस्थलीपतिः काशीनाथो भैरवशासनः ॥११२॥
 दाशार्हः सात्वतो वृष्णिर्भोजोऽन्धकनिवासकृत् । अन्धको दुन्दुभिद्योतः प्रद्योतः सात्वतां पतिः ॥११३॥
 अग्रसेनोऽनुविषयो भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः । आहुकः सर्वनीतिज्ञ उग्रसेनो महोग्रवाक् ॥११४॥
 अग्रसेनाग्रयः प्रार्थ्यः पार्यो यदुसभापतिः । सुधर्माधिपतिः सत्त्व वृष्णिचक्रावृतो भिषक् ॥११५॥
 सभाशीलः सभादीपः सभाभिश्च सभारविः । सभाचन्द्रः सभाभासः सभादेवः सभापतिः ॥११६॥
 प्रजार्थदः प्रजामर्ता प्रजापालनतत्परः । द्वारकादुर्गसंचारी द्वारकाग्रहविग्रहः ॥११७॥
 द्वारकादुःखसंहर्ता द्वारकाजनमंगलः । जगन्माता जगत्त्राता जगद्भर्ता जगत्पिता ॥११८॥
 जगद्वर्धजगद्धाता जगन्मित्रो जगत्सखः । ब्रह्मण्यदेवो ब्रह्मण्यो ब्रह्मपादरजो दधत् ॥११९॥
 ब्रह्मपादरजःस्पर्शी ब्रह्मपादनिषेवकः । विप्राग्निजलपूतांगो विप्रसेवापरायणः ॥१२०॥
 विप्रमुख्यो विप्रहितो विप्रगीतमहाकथः । विप्रपादजलद्रांगो विप्रपादोदकप्रियः ॥१२१॥

प्रियतम, ८०८. साध्य, ८०९. साध्वीश, ८१०. गतसाध्वस ॥ १०५ ॥ ८११. रङ्गनाथ, ८१२. विट्टलेश, ८१३.
 मुक्तिनाथ, ८१४. अघनाशक, ८१५. सुकीर्ति, ८१६. सुयशा, ८१७. स्फीत, ८१८. यशस्वी, ८१९. रङ्ग-
 रंजन ॥ १०६ ॥ ८२०. रागषट्क, ८२१. रागपुत्र, ८२२. रागिणी, ८२३. रमणोत्सुक, ८२४. दीपक,
 ८२५. मेघमन्दार, ८२६. श्रीराग, ८२७. मालकोशक ॥ १०७ ॥ ८२८. हिन्दोल, ८२९. भैरवाख्य, ८३०.
 स्वरजातिस्मर, ८३१. मृदु, ८३२. ताल, ८३३. मान, ८३४. प्रमाण, ८३५. स्वरगम्य, ८३६. कलाक्षर
 ॥ १०८ ॥ ८३७. शमी, ८३८. श्यामी, ८३९. शतानन्द, ८४०. शतयाम ८४१. शतक्रतु, ८४२. जागर,
 ८४३. सुप्त, ८४४. आसुप्त, ८४५. सुषुप्त, ८४६. स्वप्न, ८४७. उर्वर ॥ १०९ ॥ ८४८. ऊर्ज, ८४९. स्फूर्ज,
 ८५०. निर्जर, ८५१. विज्वर, ८५२. ज्वरवर्जित, ८५३. ज्वरजित, ८५४. ज्वरकर्ता, ८५५. ज्वरयुक्त,
 ८५६. त्रिज्वर, ८५७. ज्वर ॥ ११० ॥ ८५८. जम्बवान्, ८५९. जम्बुकाशङ्की, ८६०. जम्बूद्वीप, ८६१.
 द्विपारिहा, ८६२. शाल्मलि, ८६३. शाल्मलिद्वीप, ८६४. प्लक्ष, ८६५. प्लक्षवनेश्वर ॥ १११ ॥ ८६६.
 कुशधारी, ८६७. कुश, ८६८. कौशी, ८६९. कौशिक, ८७०. कुशविग्रह, ८७१. कुशस्थलीपति, ८७२.
 काशीनाथ, ८७३. भैरवशासन ॥ ११२ ॥ ८७४. दाशार्ह, ८७५. सात्वत, ८७६. वृष्णि, ८७७. भोज,
 ८७८. अन्धकनिवासकृत्, ८७९. अन्धक, ८८०. दुन्दुभि, ८८१. द्योत, ८८२. प्रद्योत, ८८३. सात्वतां
 पति ॥ ११३ ॥ ८८४. अग्रसेन, ८८५. अनुविषय, ८८६. भोजेश्वर, ८८७. वृष्णीश्वर, ८८८. अन्धकेश्वर,
 ८८९. आहुक, ८९०. सर्वनीतिज्ञ, ८९१. उग्रसेन, ८९२. महोग्रवाक् ॥ ११४ ॥ ८९३. उग्रसेनप्रिय, ८९४.
 प्रार्थ्य, ८९५. पार्य, ८९६. यदुसभापति, ८९७. सुधर्माधिपति, ८९८. सत्त्व, ८९९. वृष्णिचक्रावृत,
 ९००. भिषक् ॥ ११५ ॥ ९०१. सभाशील, ९०२. सभादीप, ९०३. सभाभि, ९०४. सभारवि, ९०५. सभा-
 चन्द्र, ९०६. सभाभास, ९०७. सभादेव, ९०८. सभापति ॥ ११६ ॥ ९०९. प्रजार्थद, ९१०. प्रजामर्ता,
 ९११. प्रजापालनतत्पर, ९१२. द्वारकादुर्गसंचारी, ९१३. द्वारकाग्रहविग्रह ॥ ११७ ॥ ९१४. द्वारकादुःखसंहर्ता,
 ९१५. द्वारकाजनमङ्गल, ९१६. जगन्माता, ९१७. जगत्त्राता, ९१८. जगद्भर्ता, ९१९. जगत्पिता ॥ ११८ ॥
 ९२०. जगद्वन्धु, ९२१. जगद्धाता, ९२२. जगन्मित्र, ९२३. जगत्सख, ९२४. ब्रह्मण्यदेव, ९२५. ब्रह्मण्य, ९२६.
 ब्रह्मपादरजो दधत् ॥ ११९ ॥ ९२७. ब्रह्मपादरजःस्पर्शी, ९२८. ब्रह्मपादनिषेवक, ९२९. विप्राग्निजल-
 पूताङ्ग, ९३०. विप्रसेवापरायण ॥ १२० ॥ ९३१. विप्रमुख्य, ९३२. विप्रहित, ९३३. विप्रगीतमहाकथ, ९३४.

विप्रभक्तो विप्रगुरुर्विप्रो विप्रपदानुगः । अक्षौहिणीवृतो योद्धा प्रतिमापञ्चसंयुतः ॥१२२॥
 चतुरंगिराः पद्मवर्ती सामन्तोद्धृतपादुकः । गजकोटिप्रयायी च रथकोटिजयध्वजः ॥१२३॥
 महारथश्चातिरथो जैत्रं स्यन्दनमास्थितः । नारायणास्त्री ब्रह्मास्त्री रणश्लाघी रणोद्भटः ॥१२४॥
 मदोत्कटो युद्धवीरो देवासुरभयंकरः । करिकर्णमरुत्प्रजत्कुन्तलव्याप्तकुण्डलः ॥१२५॥
 अग्रगो वीरसम्मर्दो मर्दलो रणदुर्मदः । भटः प्रातिभटः प्रोच्यो बाणवर्षी सुतोयदः ॥१२६॥
 खड्गखण्डितसर्वाङ्गः षोडशाब्दः षडक्षरः । वीरघोषः क्लिष्टवपुर्वज्राङ्गो वज्रमेदनः ॥१२७॥
 रुग्णवज्रो भग्नदन्तः शत्रुनिर्मर्त्सनीयतः । अट्टहासः पट्टधरः पट्टराज्ञीपतिः पट्टः ॥१२८॥
 कलः पट्टहवादित्रो हुंकारो गर्जितस्वनः । साधुभक्तपराधीनः स्वतन्त्रः साधुभूषणः ॥१२९॥
 अस्वतन्त्रः साधुमयः साधुग्रस्तमना मनाक् । साधुप्रियः साधुधनः साधुज्ञातिः सुधाधनः ॥१३०॥
 साधुचारी साधुचित्तः साधुवासी शुभास्पदः । इति नाम्नां सहस्रं तु बलभद्रस्य कीर्तितम् ॥१३१॥
 सर्वसिद्धिप्रदं नृणां चतुर्वर्गफलप्रदम् । शतवारं पठेद्यस्तु स विद्यावान् भवेदिह ॥१३२॥
 इन्दिरां च विभूतिं चाभिजनं रूपमेव च । बलमोजश्च पठनात्सर्वं प्राप्नोति मानवः ॥१३३॥
 गङ्गाकूलेऽथ कालिंदीकूले देवालये तथा । सहस्रावर्तपाठेन बलात्सिद्धिः प्रजायते ॥१३४॥
 पुत्रार्थं लभते पुत्रं धनार्थं लभते धनम् । बन्धान्मुच्यते बद्धो रोगी रोगान्निवर्तते ॥१३५॥
 अयुतावर्तपाठे च पुरश्चर्याविधानतः । होमतर्पणगोदानविप्रार्चनकृतोद्यमात् ॥१३६॥
 पटलं पद्धतिं स्तोत्रं कवचं तु विधाय च । महामण्डलमर्ता स्यान्मण्डितो मण्डलेश्वरैः ॥१३७॥
 मत्तेभकर्णप्रहिता मदगंधेन विह्वला । अलंकरोति तद्द्वारं भ्रमद्भृङ्गावली मृशम् ॥१३८॥

विप्रपादजलार्द्राङ्ग, ९३५. विप्रपादोदकप्रिय ॥ १२१ ॥ ९३६. विप्रभक्त, ९३७. विप्रगुरु, ९३८. विप्र, ९३९. विप्रपदानुग, ९४०. अक्षौहिणीवृत, ९४१. योद्धा ९४२. प्रतिमापञ्चसंयुत ॥ १२२ ॥ ९४३. चतुर, ९४४. अक्षिरा, ९४५. पद्मवर्ती, ९४६. सामन्तोद्धृतपादुक, ९४७. गजकोटिप्रयायी, ९४८. रथकोटिजयध्वज ॥ १२३ ॥ ९४९. महारथ, ९५०. अतिरथ, ९५१. जैत्रस्यन्दनमास्थित, ९५२. नारायणास्त्री, ९५३. ब्रह्मास्त्री, ९५४. रणश्लाघी, ९५५. रणोद्भट ॥ १२४ ॥ ९५६. मदोत्कट, ९५७. युद्धवीर. ९५८. देवासुरभयंकर. ९५९. करिकर्णमरुत्प्रज-त्कुन्तलव्याप्तकुण्डल ॥ १२५ ॥ ९६०. अग्रक, ९६१. वीरसम्मर्द, ९६२. मर्दल, ९६३. रणदुर्मद, ९६४. भटप्र-तिभट, ९६५. प्रोच्य, ९६६. बाणवर्षी, ९६७. इषुतोयद ॥ १२६ ॥ ९६८. खड्गखण्डितसर्वाङ्ग, ९६९. षोड-शाब्द, ९७०. षडक्षर, ९७१. वीरघोष, ९७२. अक्लिष्टवपु, ९७३. वज्राङ्ग, ९७४. वज्रमेदन ॥ १२७ ॥ ९७५. रुग्णवज्र, ९७६. भग्नदन्त, ९७७. शत्रुनिर्मर्त्सनीयत, ९७८. अट्टहास, ९७९. पट्टधर, ९८०. पट्टराज्ञी-पति, ९८१. पट्ट, ॥ १२८ ॥ ९८२. कल, ९८३. पट्टहवादित्र. ९८४. हुंकार, ९८५. गर्जितस्वन, ९८६. साधु, ९८७. भक्तपराधीन, ९८८. स्वतन्त्र, ९८९. साधुभूषण ॥ १२९ ॥ ९९०. अस्वतन्त्र, ९९१. साधुमय, ९९२. मनाक्साधुग्रस्तमना, ९९३. साधुप्रिय, ९९४. साधुधन, ९९५. साधुज्ञाति, ९९६. सुधाधन ॥ १३० ॥ ९९७. साधुचारी, ९९८. साधुचित्त, ९९९. साधुवश्य, १०००. शुभास्पद । इस प्रकार भगवान् बलभद्रजीके एक सहस्र नामोंका वर्णन किया गया ॥ १३१ ॥ यह सहस्रनाम मनुष्यको सब प्रकारकी सिद्धि और चतुर्वर्ग (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) फल प्रदान करनेवाला है । जो इसका सौ बार पाठ करता है, वह इस लोकमें विद्यावान् होता है ॥ १३२ ॥ इस सहस्रनामका पाठ करनेसे मनुष्य लक्ष्मी, वैभव, सद्दशमें जन्म, रूप, बल तथा तेज—सब कुछ प्राप्त करता है ॥ १३३ ॥ गङ्गाजी एवं यमुनाजीके तटपर अथवा देवालय (देवमन्दिर) में इसके एक हजार पाठ करनेसे बलात् सिद्धि मिलती है ॥ १३४ ॥ इसके पाठसे पुत्रकी कामनावालेको पुत्र तथा धनार्थीको धन प्राप्त होता है । बन्धनमें पड़ा मनुष्य उससे मुक्त हो जाता है और रोगीका रोग चला जाता है ॥ १३५ ॥ जो मनुष्य पुरश्चरणकी विधिसे पद्धति, पटल, स्तोत्र और कवचसहित इस सहस्रनामका दस हजार बार पाठ करता है तथा होम, तर्पण, गोदान तथा ब्राह्मणका पूजन-

निष्कारणः पठेद्यस्तु ग्रीत्यर्थं रेवतीपतेः । नाम्नां सहस्रं राजेन्द्र स जीवन्मुक्त उच्यते ॥१३९॥
सदा वसेत्तस्य गृहे बलभद्रोऽच्युताग्रजः । महापातक्यपि जनः पठेन्नामसहस्रकम् ॥१४०॥
छित्त्वा मेरुसमं पापं भुक्त्वा सर्वसुखं त्विह । परात्परं महाराज गोलोकं धाम याति हि ॥१४१॥

श्रीनारद उवाच

इति श्रुत्वाऽच्युताग्रजस्य बलदेवस्य पंचांगं धृतिमान् धार्तराष्ट्रः सपर्यया सहितया परया
भक्त्या प्राड्विपाकं पूजयामास तमनुज्ञाप्याशिषं दत्त्वा प्राड्विपाको मुनींदो गजाह्वयात्स्वाश्रमं
जगाम ॥ १४२ ॥ भगवतोऽनंतस्य बलभद्रस्य परब्रह्मणः कथां यः शृणोति श्रावयते तयाऽऽनंद-
मयो भवति ॥ १४३ ॥

इदं मया ते कथितं नृपेन्द्र सर्वार्थदं श्रीबलभद्रखंडम् ।

शृणोति यो धाम हरेः स याति विशोकमानंदमखंडरूपम् ॥ १४४ ॥

इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखंडे प्राड्विपाकदुर्योधनसंवादे बलभद्रसहस्रनामवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१५॥



रूप कर्म विधिवत् करता है, वह समस्त राजाओंसे घिरा रहता है ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ मदकी गन्धसे विह्वल
भ्रमर मतवाले हाथियोंके कानोंकी चपेटसे आहत हो उड़ते हुए उसके द्वारपर जाकर उसकी शोभा बढ़ाते
रहते हैं ॥ १३८ ॥ हे राजेन्द्र ! यदि कोई मनुष्य निष्कामभावसे रेवतीरमण भगवान् बलभद्रजीकी प्रसन्नताके
लिये इस सहस्रनामका पाठ करता है तो वह जीवन्मुक्त हो जाता है ॥ १३९ ॥ अच्युताग्रज बलभद्रजी सदा-
सर्वदा उसके घरमें निवास करते हैं । हे महाराज ! घोर पापी मनुष्य भी यदि इस सहस्रनामका पाठ करता
है तो उसके मेरुके समान सारे पाप कट जाते हैं और वह इस लोकमें सम्पूर्ण सुखोंका उपभोग करके अन्तमें
परात्पर गोलोकधामको प्रयाण कर जाता है ॥ १४० ॥ १४१ ॥ नारदजी कहते हैं—अच्युताग्रज श्रीबलभद्र-
जीके इस पंचांगको सुनकर धृतिमान् दुर्योधनने सेवा भाव तथा परम भक्तिके साथ प्राड्विपाक मुनिकी पूजा
की । तदनन्तर मुनीन्द्र प्राड्विपाकजीने दुर्योधनको आशीर्वाद दे तथा उनकी अनुमति प्राप्त करके हस्तिनापुर
अपने आश्रमको गमन किया ॥ १४२ ॥ परब्रह्म परमात्मा भगवान् अनन्त श्रीबलभद्रजीकी कथाको जो
पुरुष सुनता अथवा सुनाता है, वह आनन्दमय बन जाता है ॥ १४३ ॥ हे नृपेन्द्र ! मैं आपके सामने सब
मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले बलभद्रखण्डका वर्णन कर चुका । जो मनुष्य इसका श्रवण करता है, वह भगवान्
श्रीहरिके शोकरहित अखण्ड आनन्दमय धामको प्राप्त हो जाता है ॥ १४४ ॥ इति श्रीगर्गसंहितायां बलभद्रखंडे
'प्रियंवदा'भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

सम्पूर्णोऽयं बलभद्रखण्डः

